

महाराज
नन्दकुमार को फाँसी



प्रताप-पुस्तक-माला की १६ वीं पुस्तक।

महाराज

नन्दकुमार को फाँसी

अथवा

(तत्कालीन बंगाल की सामाजिक अवस्था)

मूल लेखक—

स्वर्गीय चण्डीचरण सेन

प्रकाशक—

प्रताप पुस्तकालय,

कानपुर।

कमर्शल प्रेस कानपुर में मुद्रित।

द्वितीय संस्करण

सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

मूल्य २॥
ढाई रुपया

प्रताप पुस्तकालय,
कानपुर।

प्रथम संस्करण
अक्टूबर १९२२

द्वितीय संस्करण
नवम्बर १९२३।

मुद्रक—
लाला भगवानदास गुप्त,
कमर्शल प्रेस, कानपुर

॥ श्रीहरि: शरणम् ॥

ग्रन्थकार की भूमिका।

हमारे "टामकाका की कुटिया" नामक ग्रन्थ को पढ़ कर कितने ही सुशिक्षित सज्जनों ने कहा है कि 'श्वेताङ्गों के द्वारा अमेरिका के गुलामों पर जैसा अत्याचार हुआ, सम्भवतः संसार की अन्य किसी जाति पर किसी के द्वारा वैसा भीषण अत्याचार कभी नहीं हुआ।' किन्तु दुःख की बात है कि हमारे देश के सुशिक्षित व्यक्ति अपने देश के इतिहास से सर्वथा अनभिज्ञ हैं।

सिराजुद्दौला की सिंहासन च्युति के बाद बङ्गाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने जुलाहों, सुनारों तथा किसानों के प्रति जैसा निष्ठुर आचरण किया था उसके स्मरण मात्र से हृदय विदीर्ण होता है।

बङ्गवासियों के ऊपर 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के कर्मचारियों ने जो अत्याचार किये थे, उनके सम्बन्ध में लार्ड मेकाले ने कहा है—"बङ्गवासियों के प्रति मुसलमानों के जमाने में भी अत्याचार हुआ था, पर ऐसा भीषण अत्याचार कभी नहीं हुआ।"

इस देश के जनसाधारण प्रायः इतिहास पढ़ने में रुचि नहीं रखते, इसीलिए यह पुस्तक उपन्यास के रूप में लिखी गई है।

प्रथम संस्करण में जो जो त्रुटियां रह गई थीं, इस तृतीय संस्करण में उनका संशोधन कर दिया गया है।

श्री चण्डीचरण सेन।

विषय-सूची

भूमिका (ले० प्रोफेसर हरिश्चन्द्र मिश्र एम० ए०) अ
अनाथ बालक, (पहिला परिच्छेद) ... १
एकान्त चिन्ता, (दूसरा परिच्छेद) ११
जङ्गल में टूटा फूटा घर, (तीसरा परिच्छेद) . २३
क़ासिम बाजार में रेशम की कोठी, (चौथा परिच्छेद) ३०
लट या व्यापार, (पाचवा परिच्छेद) ५४
पितृ-वियोग , (छठवा परिच्छद) ६४
आराटून साहब की पत्नी, (सातवा परिच्छेद) ९१
रामदास शिरोमणि का वैष्णव धर्म-ग्रहण, (आठवाँ परिच्छेद) १०३
कलकत्ते की यात्रा, (नवाँ परिच्छेद) . १२६
गुरु गोविन्द भक्त, (दसवा परिच्छेद) १३४
छिदाम विश्वास की स्त्री, (ग्यारहवा परिच्छेद) .. १४५
विश्वास परिवार का पूर्व-वृत्तान्त, (बारहवा परिच्छेद) १५१
बाबा प्रेमानन्द और भक्तानन्द वैरागी, (तेरहवा परिच्छेद) १७४
बाल-विधवा की मृत्यु-शय्या, (चौदहवा परिच्छेद) २०३
बङ्गविधवाओं के चरित्र की आलोचना, (पन्द्रहवा परिच्छेद) २२६

अनाथा-कन्यात्रय, (सोलहवां परिच्छेद) ... २३३
तत्कालीन कलकत्ता (सत्रहवां परिच्छेद) .. २५५
विलायती वैष्णव, (अठारहवा परिच्छेद) .. २६७
स्वप्न में भगवद्दर्शन, (उन्नीसवां परिच्छेद) . २८९
वापूदेव शास्त्री, (बीसवां परिच्छेद) २९८
वापूदेव शास्त्री, और नन्दकुमार, (इक्कीसवा परिच्छेद) ३१८
वापूदेव शास्त्री और नवाब कासिम अली (बाइसवां परिच्छेद) . ३२९
कारागार दर्शन, (तेइसवां परिच्छेद) ... ३३५
कारापिट आराटून, (चौबीसवा परिच्छेद) ... ३४१
भाई-बहिन, (पच्चीसवा परिच्छेद), ३४८
कारापिट आराटून की मृत्यु, (छब्बीसवा परिच्छेद) ३५२
एस्थार बीबी की कलकत्ते की यात्रा (सत्ताइसवां परिच्छेद) ३५८
रामा और रामहरी, (अट्ठाइसवा परिच्छेद) ३६०
रामहरी, (उन्तीसवा परिच्छेद) . ३६६
दुर्भिक्ष, (तीसवा परिच्छेद) .. ३८२
भीषण दृश्य ! (इकतीसवां परिच्छेद) ३९०
वापूदेव शास्त्री और मुहम्मद रजा खा, (बत्तीसवां परिच्छेद) ४०२
स्वर्गारोहण, (तेतीसवा परिच्छेद) .. ४१२
श्यामा और बाबा कृष्णानन्द, (चौंतीसवा परिच्छेद) . . ४१६
वारन हेस्टिंग्स, (पैंतीसवा परिच्छेद) ४३०
मुहम्मद रजाखा और शिताबराय का विचार (छत्तीसवां परिच्छेद) ... ४३५
नई कौंसिल और सुप्रीम कोर्ट, (सैंतीसवां परिच्छेद) ४४२

अभियोग, (अड़तीसवा परिच्छेद) ४४६
पहला षडयन्त्र, (उन्तालीसवां परिच्छेद) ४५३
पहले अभियोग का विचार, (चालीसवा परिच्छेद) ४५६
दूसरा षड़यन्त्र, (इकतालीसवा परिच्छेद) ४५६
विचार या नरहत्या ? (बयालीसवा परिच्छेद) ४६८
गुरु और शिष्य, (तेतालीसवा परिच्छद) ४८७
द्वितीय वार गुरु-दर्शन, (चवालीसवाँ परिच्छेद) ५०३
ब्रह्म-हत्या, (पैंतालीसवां परिच्छेद) ५०७
उपसहार .. ५१२
Appendix ५१८—५४०



भूमिका



ङ्ग देश का साहित्य सर्वाङ्ग परिपूर्ण है। उस के विद्वान अंग्रेजी भाषाओं के साहित्य का अध्ययन व मनन करके शनै शनै उन बातों को अपने साहित्य में पूरा करते गये जिनकी उस में कमी है। यही कारण है कि जितना प्रेम बङ्गालियों को अपनी मातृ भाषा की पुस्तकों से है उतना अन्य प्रान्तों के निवासियों को अपनी प्रान्तीय भाषा की पुस्तकों से नहीं है। बङ्गला साहित्य का आदर बङ्गाल प्रान्त के अतिरिक्त और प्रान्तों में भी है। युक्तप्रान्त में तो उपन्यासों में इतनी रुचि 'चन्द्रकान्ता' के बाद बङ्गाली उपन्यासों के अनुवादों ने ही की। यह पुस्तक भी चण्डीचरण सेन कृत एक बङ्गला उपन्यास का अनुवाद है।

उपन्यासों का उद्देश्य केवल मनोरंजक ही नहीं होता। विचारवान के लिये उसमें संसार का ज्ञान भरा होता है। मनुष्यों की भावुकता, उनके हृदयों की तरङ्गें, कुटिलों की नीचता, उदार हृदयों की सहृदयता, वीरों का आत्मसमर्पण, कायरों की भीरुता—केवल इन सब भावों का ही पता उपन्यासों में नहीं मिलता है— वरन् किसी समयविशेष की समाज का पूरा चित्र नेत्रों के सामने भी उपन्यास द्वारा प्रकट किया जाता है।

यह तो साधारण उपन्यासों की बात रही जो कि केवल काल्पनिक होते हैं। यदि ऐसा उपन्यास हस्तगत हो जो कि वास्तविक घटनाओं के आधार पर लिखा गया हो तो पाठकों की रुचि कहीं अधिक अच्छी हो जाती है। ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रभाव पाठकों के चित्त पर अधिक स्थायी और फलदायक होता है। यह उपन्यास जो पाठकों के विनोदार्थ विशेष प्रयत्न से अनुवादित होकर प्रकाशित किया जा रहा है एक ऐसा ऐतिहासिक उपन्यास है जिसकी घटनायें पाठकों के लिए विशेष रूप से रुचिकर होना चाहिए।

बंगाल में अँगरेजों के भारतीय राज्य की नींव डाली गई। बंगाल के धन सम्पत्ति से इस जाति ने फ्रांस को पराजित करके देशीय राज्यों पर अपना प्रभुत्व जमाया। अँगरेज प्लासी की लड़ाई के पूर्व (१७५७) कलकत्ते में वाणिज्य-व्यवसाय में तत्पर थे। वाणिज्य से राज्य मिला। जिस अलीवर्दी खाँ की कृपाकटाक्ष के लिए अंगरेज घण्टों दरबार में प्रतीक्षा कर बारम्बार झुक झुक कर सलाम करते थे उसी अलीवर्दी खाँ के पौत्र सिराजुद्दौला को उन्होंने राज्यशासन से हटा कर बंगाल में अपना अधिकार जमाया। यह सब कैसे हुआ, यह एक लम्बी कथा है। यहां पर इतना कह देना पर्याप्त होगा कि प्लासी की लड़ाई, जिसने अँगरेजों के पैर बंगाल में जमाये, एक बहुत साधारण युद्ध था। जिस युद्ध में भारतीयों के रुधिर की नदियां बहना चाहिए थीं, जिस युद्ध में पराजय होने पर भी बैरी के दांत खट्टे कर देने थे, ऐसे इस युद्ध में केवल २२ मनुष्य अंगरेजों के और ५०० नवाब की ओर के मारे गए। बङ्गालियों ने मुक़ाबिला करना तो दूर रहा, अंगरेजों की उनकी नीति में पूरी सहायता पहुंचाई। वीरत्व, स्वामि-

मान तथा स्वावलम्बन का इससे अधिक अधःपतन क्या हो सकता है ?

मान लिया कि सिराजुद्दौला की क्रूरता से भयभीत और पीड़ित होकर उस समय के राजा व उमराओं ने सेठ साहूकारों ने, महानीतिज्ञ क्लाइव के सहयोग का स्वागत किया परन्तु प्लासी के लड़ाई के पश्चात् लगभग २५ वर्ष तक जो अन्याय बङ्गाल की प्रजा पर हुआ, उसको वे क्यों सहन करते गये ? इसके कारणों का पता तत्कालीन समाज की दुरवस्था से ही पाया जा सकता है। जबतक कि समाज में स्वार्थी, लम्पट, व्यभिचारी, कायर, लोलुप तथा विश्वासघाती मनुष्यों की अधिक सख्या नहीं हो जाती तबतक ऐसी घटनाओं का होना जो इस उपन्यास से विदित है, असम्भव है। इस पुस्तक में बङ्गवासियों के समाज तथा उनके ऊपर जो अत्याचार हुये हैं उनका जीवित चित्र खींचा गया है।

इस उपन्यास में नायक और नायिका कई हैं, परन्तु सावित्री का उल्लेख करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हू। वापूदेव के से दूरदर्शी, सहृदय तथा निस्वार्थी महात्मा कम मिलेंगे। दूसरी ओर रामहरी ऐसे कुलाङ्गरों का चित्र अच्छा खींचा गया है। बाबा ललितानन्द ऐसे साधु आजकल सब तीर्थस्थानों पर अड्डा जमाये हुए हैं। परन्तु यवनों के इतने आक्रमणों के बीच में, सैकड़ो वर्ष उनके भारत में राज्य करने पर भी, अङ्गरेजों की पाश्चात्य सभ्यता भारतीय घरों में प्रविष्ट होने पर भी, सावित्री सदृश नारीरत्नों ही ने आजतक भारत की लाज रक्खी और कम से कम पातिव्रत धर्म में भारत का सिर, इस पतित अवस्था में

भी उन्नत कर रखा है। सावित्री तुल्य स्त्रियां, और आराट्न सदृश पश्चिमीय सज्जनों पर ही आशारोपण किये हुये भारतवर्ष जीवित है, नहीं तो निराशा का तमोच्छादित दृश्य हमारे नेत्रों के सन्मुख नाचता होता।

इस उपन्यास की रोचकता महाराज नन्दकुमार की कथा के कारण विशेष रूप से है और लेखक ने भी कदाचित इसी विचार से पुस्तक का नाम " महाराज नन्दकुमार की फांसी " रक्खा है, यद्यपि इस में उस समय के बङ्गसमाज का उल्लेख आवश्यकता से अधिक है। महाराज नन्दकुमार अपने समय के बङ्गाली वैष्णवों के नेता समझे जाते थे। ब्राह्मणों में कदाचित उनका इतना ऊँचा पद न हो क्योंकि वे एक ऐसे वंश में उत्पन्न हुए थे जिसमें कि दो पीढ़ी पहिले एक विवाह समगोत्री के यहा कर लिया गया था। महाराज नन्दकुमार एक साधारण स्थिति के मनुष्य से अपनी कार्यकुशलता तथा बुद्धिबल द्वारा नवाब मीरजाफर के दीवान हो गए थे। अङ्गरेजों के साथ भी उनको मैत्री प्रारम्भ में घनिष्ट थी। क्लाइव के वे विशेष कृपापात्र थे, यहां तक कि एक अवसर पर उनके मुकाबिले में वारनहेस्टिंग्स को जो उस समय एजन्ट के पद पर थे, क्लाइव की गवर्नरी में नीचा देखना पड़ा। क्लाइव के कृपापात्र होने का कारण यही हो सकता है कि नन्दकुमार ने नवाब का नमक खाते हुए भी अङ्गरेजों की सहायता प्लासी के युद्ध के पूर्व की थी।

अङ्गरेजों से महाराज नन्दकुमार का वैरभाव उनके दीवानी के समय से बढने लगा। उस समय उनका प्रयत्न यह था कि किसी प्रकार अङ्गरेजों का प्रभाव बङ्गाल से उठ जावे और ये लोग बङ्गाल से निकाल दिए जाय। महाराज नन्दकुमार नीतिज्ञ थे और उस समय की राजनीति में हर प्रकार की

चालें भारतवासी तथा अङ्गरेज सभी प्रयोग में लाते थे। इसकारण अँगरेजी इतिहासों में उनका नाम बहुत कुत्सित शब्दों में लिखा गया। वे अँगरेजों की दृष्टि में एक जालसाज व मकार मनुष्य दिखाये गये हैं। उनके जीवन के अन्तिम वर्षों में कम्पनी के सभी कर्म्मचारी उनसे द्वेष मानने लगे थे। नन्दकुमार ने भी सार्वजनिक जीवन से अपना हाथ खींच लिया था परन्तु कुटिल कालचक्र ने उन्हें शान्त न रहने दिया फ्रांसिस इत्यादि नई कौंसिल के सदस्य इङ्गलैण्ड से आये और उन्हो ने हेस्टिंग्स के विरुद्ध कार्य्य प्रारम्भ किया। नन्दकुमार ने वारन हेस्टिंग्ससे बदला लेने का यह अच्छा अवसर समझा, क्यों कि वे हेस्टिंग्स को अपना परम शत्रु समझते थे। इस नवागन्तुक कौंसिल के सदस्यों पर भरोसा करके और उनकी सहायता पर विश्वास कर के महाराज ने राजनीति की चौपड़ में गहरा दाव लगाकर पासा फेंका। पासा उलटा पड़ा और उनको अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। कहा जाता है कि नन्दकुमार पर जालसाजी का अभियोग इसलिए लगाया गया कि वे गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स पर रिश्वत का अभियोग लाये थे। यह कहां तक सत्य है, यह इस भूमिका में नहीं बताया जा सकता। केवल इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस बात के लेखबद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलते। हां सन्देह अवश्य हो सकता है। इसके प्रमाण भी उस समय की परिस्थितियों ही में पाये जाते हैं। सारांश में मेरा यह मत है कि यदि महाराज नन्दकुमार उस समय के दाव पेंच में फ्रांसिस के आने पर फिर से हाथ न डालते तो विश्वास है कि इस वैष्णव भक्त के प्राण अपवित्र जल्लाद के हाथ से न लिये जाते। इस उपन्यास में जो घटनाएँ नन्दकुमार के अभियोग के सम्बन्ध में लिखी गई हैं उनके कोई प्रमाण नहीं दिये गये हैं। वास्तव में घटनाए

इस से कहीं भिन्न थीं। हा प्रजा के ऊपर दुर्भिक्ष से, तन्तुकारों पर तथा नमक वालों और किसानों पर जो अत्याचार लिखे गये हैं वे बहुत अंशों में सत्य है, अथवा सच्ची घटनाओं पर निर्धारित हैं। यो तो उपन्यास लेखकों की अत्युक्ति प्रसिद्ध ही है।

उपन्यास के उपसंहार में ग्रन्थकार ने कुछ ऐसी बातें लिखी हैं जिनसे कि सम्भवतः पाठकों के चित्त में भ्रम उत्पन्न हो सकता है और उनको विश्वास हो सकता है कि महाराज नन्दकुमार की कथा आद्योपान्त अक्षरशः सत्य है। वापूदेव नवकिशोर से कहते हैं कि "तुम ऐसी चेष्टा करना जिस से देश के सच्चे इतिहास का संरक्षण कर सको" और ग्रन्थकार का कहना है कि यह पुस्तक जो नवकिशोर १०० वर्ष पूर्व लिख कर छोड़ गये हैं उसी के, आधार पर हैं। यदि यह केवल उपन्यास की घटनाओं की वास्तविकता के भेष में रञ्जित करने की एक चाल नहीं है तो नवकिशोर की मूल पुस्तक को प्रकाशित करके श्रीयुत चण्डीचरण सेन ने भारतवर्ष के सच्चे इतिहास को बड़ी भारी हानि पहुचाई है। सच्चे इतिहास-प्रेमी तो इसी पर संतोष करें कि उपसंहार के अन्तिम वाक्य पाठकों की जिज्ञासा अवस्था में छोड़ने के लिये लिखे गये हैं और ग्रन्थकार ने इस प्रकार अपनी कुशलता का प्रमाण दिया है जैसा कि सब अच्छे उपन्यास-लेखकों का ढङ्ग है।

महाराज नन्दकुमार की ऐतिहासिक कथा अँगरेजी की कई पुस्तकों में है। स्वयं बङ्गला में श्रीयुत सत्यचरण शास्त्री लिखित ऐतिहासिक पुस्तक मौजूद हैं प्रमाणयुक्त हाल इन पुस्तकों में मिल सकता है। मेरे अनुमान में इस उपन्यास के लेखक का मुख्य उद्देश्य अठारहवीं शताब्दी के समाज तथा कम्पनी

चालें भारतवासी तथा अङ्गरेज़ सभी प्रयोग में लाते थे। इसकारण अँगरेजी इतिहासों में उनका नाम बहुत कुत्सित शब्दों में लिखा गया। वे अँगरेजों की दृष्टि में एक जालसाज व मक्कार मनुष्य दिखाये गये हैं। उनके जीवन के अन्तिम वर्षों में कम्पनी के सभी कर्म्मचारी उनसे द्वेष मानने लगे थे। नन्दकुमार ने भी सार्वजनिक जीवन से अपना हाथ खींच लिया था परन्तु कुटिल कालचक्र ने उन्हें शान्त न रहने दिया फ्रांसिस इत्यादि नये कौंसिल के सदस्य इङ्गलैण्ड से आये और उन्हों ने हेस्टिंग्स के विरुद्ध कार्य्य प्रारम्भ किया। नन्दकुमार ने वारन हेस्टिंग्ससे बदला लेने का यह अच्छा अवसर समझा, क्यों कि वे हेस्टिंग्स को अपना परम शत्रु समझते थे। इन नवागन्तुक कौंसिल के सदस्यों पर भरोसा करके और उनकी सहायता पर विश्वास कर के महाराज ने राजनीति की चौपड़ में गहरा दाव लगाकर पासा फेंका। पासा उलटा पड़ा और उनको अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। कहा जाता है कि नन्दकुमार पर जालसाजी का अभियोग इसलिए लगाया गया कि वे गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स पर रिश्वत का अभियोग लाये थे। यह कहा तक सत्य है, यह इस भूमिका में नहीं बताया जा सकता। केवल इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस बात के लेखबद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलते। हां सन्देह अवश्य हो सकता है। इसके प्रमाण भी उस समय की परिस्थितियों ही में पाये जाते हैं। सारांश में मेरा यह मत है कि यदि महाराज नन्दकुमार उस समय के दाव पेंच में फ्रांसिस के आने पर फिर से हाथ न डालते तो विश्वास है कि इस वैष्णव भक्त के प्राण अपवित्र जल्लाद के हाथ से न लिये जाते। इस उपन्यास में जो घटनाएँ नन्दकुमार के अभियोग के सम्बन्ध में लिखी गई हैं उनके कोई प्रमाण नहीं दिये गये हैं। वास्तव में घटनाएं

इस से कहीं भिन्न थीं। हा प्रजा के ऊपर दुर्भिक्ष से तन्तुकारों पर तथा नमक वालों और किसानो पर जो अत्याचार लिखे गये हैं वे बहुत अंशों में सत्य है, अथवा सच्ची घटनाओ पर निर्धारित हैं। यो तो उपन्यास लेखकों की अत्युक्ति प्रसिद्ध ही है।

उपन्यास के उपसहार म गृथकार ने कुछ ऐसी बातें लिखी हैं जिनसे कि सम्भवत पाठकों के चित्त मे भ्रम उत्पन्न हो सकता है और उनको विश्वास हो सकता है कि महाराज नन्द-कुमार की कथा आद्योपान्त अक्षरश सत्य है। वापूदेव नवकिशोर से कहते है कि "तुम ऐसी चेष्टा करना जिस से देश के सच्चे इतिहास का सरक्षण कर सको" और ग्रन्थकार का कहना है कि यह पुस्तक जो नवकिशोर १०० वर्ष पूर्व लिख कर छोड गये हैं उसी के, आधार पर हैं। यदि यह केवल उपन्यास की घटनाओं की वास्तविकता के भेष में रञ्जित करने की एक चाल नहीं है तो नवकिशोर की मूल पुस्तक को प्रकाशित करके श्रीयुत चण्डीचरण सेन ने भारतवर्ष के सच्चे इतिहास को वडी भारी हानि पहुचाई है। सच्चे इतिहास-प्रेमी तो इसी पर सतोप करे कि उपसँहार के अन्तिम वाक्य पाठकों की जिज्ञासा अवस्था मे छोड़ने के लिये लिखे गये हैं और गृन्थकार ने इस प्रकार अपनी कुशलता का प्रमाण दिया हैं जैसा कि सब अच्छे उपन्यास-लेखकों का ढङ्ग है।

महाराज नन्दकुमार की ऐतिहासिक कथा अँगरेजी की कई पुस्तकों में है। स्वय वङ्गला मे श्रीयुत सत्यचरण शास्त्री लिखित ऐतिहासिक पुस्तक मौजूद हैं प्रमाणयुक्त हाल इन पुस्तकों मे मिल सकता है। मेरे अनुमान में इस उपन्यास के लेखक का मुख्य उद्देश्य अठारहवीं शताब्दी के समाज तथा कम्पनी

के आरम्भिक शासन काल की उद्दण्डता का दिग्दर्शन कराना था और इस उद्देश्य में वे सफल हुये हैं।

इण्टर मीजिएट कालिज
फैजाबाद
जन्माष्टमी १९७६

हरिश्चन्द्र मिश्र, एम० ए०

महाराज

नन्दकुमार को फाँसी

अथवा

तत्कालीन बंगाल की सामाजिक अवस्था।

पहला परिच्छेद

अनाथ बालक।

मीरक़ासिम की सिंहासनच्युति के कुछ महीनों बाद एक दिन, रात के समय, मुर्शिदाबाद के राजमहल से कोस भर की दूरी पर, एक दुतल्ले घर में बैठे हुए दो व्यक्ति परस्पर वार्त्तालाप कर रहे थे।

दोनों व्यक्तियों में से एक व्यक्ति की अवस्था अनुभव से पैंतालीस अथवा पचास बरस के लगभग होगी। इसके परिधेय वस्त्र बड़े सुन्दर, सुसज्जित और मूल्यवान थे। वेश-भूषा और आकार प्रकार से यह कोई प्रधान राज-पुरुष प्रतीत होता था।

द्वितीय व्यक्ति की अवस्था प्राय अस्सी बरस की होगी। पोशाक और बात चीत के रंग ढग से यह कोई ब्राह्मण पण्डित जान पड़ता था। श्वेत केश और प्रशान्त मुखमण्डल को देखते ही दर्शक के हृदय में इनके प्रति प्रगाढ श्रद्धा का प्रादुर्भाव होता था।

बहुत कुछ वार्तालाप और वादानुवाद के अनन्तर शेषोक्त वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—"तुम्हारे ये सभी राजनैतिक कौशल व्यर्थ होंगे, इस जाल में फँस कर अन्तत तुम अपने प्राण खो बैठोगे।"

प्रथमोक्त व्यक्ति ने किंचित् हँसते हुए कहा—"आप तो बराबर यही कहते आते हैं। इस विषय में अब अधिक तर्क-वितर्क करने से कोई लाभ नहीं। मैं आपसे यह पूछता हू कि क्या आपने इस देश को छोड जाने का पूर्ण निश्चय कर लिया है?"

वृद्ध—हा अब एक दिन भी यहा रहने को मेरा जी नहीं चाहता। अलीवर्दी की मृत्यु के बाद फौरन ही मुझे बगाल छोड़ जाना चाहिए था।

प्रथम—तो फिर कलकत्ता जाने से क्या लाभ होगा? निर्बल और निःसहाय जनों के प्रति जैसा अत्याचार यहा हो रहा है, वैसा ही वहां भी।

वृद्ध—इस स्थान के जुलाहे सुनार तथा अन्यान्य व्यवसायी और श्रमजीवी सभी मेरे परिचित हैं। बाल्यावस्था से ये सब लोग मेरा आदर करते आये हैं, मुझ से श्रद्धा रखते हैं, और मै भी इन सब को बहुत प्यार करता हू। अतएव इनका दुख और कष्ट देख कर मेरा हृदय बहुत ही व्यथित और दुखित होता है। अपरिचित लोगों के दुख से हृदय

को इतना अधिक दुख न होगा । कल हलधर की कन्या का मृत शरीर देखते ही प्रमदा मूर्छित हो कर गिर पड़ी थी । वह जनसाधारण, विशेषतः स्त्रियों के दुःख का हाल सुन कर बड़ी दुखित होती है। उसे साथ लेकर मेरा अन्यत्र चला जाना ही उचित है, लोगों का दुख देख कर उसके हृदय में कष्ट होता है। पहले यह विचार किया था कि सदा के लिए बंगाल छोड़ कर काशी चला जाऊंगा। परन्तु प्रमदा की शारीरिक अवस्था ऐसी है कि इस समय उसे साथ ले दूर देश को जाना दुःसाध्य है। अतएव काशी न जाकर कल ही कलकत्ते चला जाऊंगा, और कालीघाट के आस पास किसी स्थान पर रहूंगा।

प्रथम—तो मुझे क्यों बुलवाया है?

वृद्ध — देखो, सिराज की मृत्यु के बाद आज पांच छः बरस से बराबर मैं तुम से जिस मार्ग का अवलम्बन करने के लिए कहता आया हूं, तुमने आज तक उस मार्ग का अवलम्बन नहीं किया। तुम सचमुच मोहान्धकार में डूबे हुए हो; अपने हृदय में स्थित मोहान्धकार के कारण हिताहित को समझने में सर्वथा असमर्थ हो रहे हो। दिव्य-दृष्टि से मुझे दिखाई दे रहा है कि तुम अपना मृत्युवाण आप ही तैयार करते हो। आज मैं तुम से एक अन्य अनुरोध करता हूं — (पार्श्वस्थित बिछौने पर सोते हुए एक तीन बरस के बालक की ओर देख कर) इस बच्चे के प्रतिपालन का कोई उपाय करो। इसके पिता-माता कोई नहीं हैं यह सर्वथा निराश्रय है। इसके पिता के पास जो कुछ धन माल था, वह सब कृपाराम के यहां रख दिया गया। परन्तु कृपाराम यदि आज इसे अपने घर में रखे तो

अंगरेज लोग सभाराम के पुत्र को भी हलधर का साथी समझ बैठेंगे । हलधर के संग कौन था, वास्तव में इसे वे लोग आज भी निश्चयरूप में नहीं जान सके हैं ।

प्रथम — हलधर के मामले के सम्बन्ध में अंगरेज लोग शायद मेरे ही ऊपर सन्देह कर रहे हैं । कासिमबाजार की रेशमवाली कोठी के साहबलोगों ने शायद यह कहा है कि मेरा नौकर चेतननाथ हलधर के साथ था । परन्तु मैं इस मामले के सम्बन्ध में सत्य-कृष्ण कुछ भी नहीं जानता । यदि इस बालक को मैं अपने घर में रखूँ तो वे लोग अवश्य ही सन्देह करेंगे कि हलधर के मामले में मैं भी शामिल था । इसलिए इसके पालन-पोषण में जो कुछ खर्च होगा वह सब मैं दूंगा, परन्तु फिलहाल आप इसे मेरे यहा न रख कर कहीं अन्यत्र रख देने की चेष्टा करें ।

वृद्ध —(क्रोधपूर्वक घृणा और असन्तोष का भाव प्रकट करते हुए) तो तुम इस निराश्रय बालक को आश्रय देने मे असमर्थ हो, इसे अपने यहा रखने में डरते हो ?

प्रथम — वर्त्तमान मे जैसी कुछ अवस्था है, उस से असमर्थ हो रहा हू । मैं जाहिरा अंगरेजों से किसी प्रकार की शत्रुता नहीं करना चाहता । नवाब मीरजाफर में यह शक्ति नहीं कि अंगरेजो की अनिच्छा की दशा में वह मुझे दीवान के पद पर प्रतिष्ठित रख सके । अंगरेज चाहें, तो इसी समय मुझे पदच्युत कर सकते हैं ।

वृद्ध — प्रजा के ऊपर जो अत्याचार हो रहा है, यदि उसका निवारण न कर सके तो तुम्हारे इस दीवानी लाभ से लाभ ही क्या ? यही न, कि तुम्हें अपने लिए एक पद मिल गया । इसके अतिरिक्त तो कोई लाभ दिखाई देता नहीं ।

प्रथम — क्या एक ही दिन में सब अत्याचार दूर किया जा सकता है ? धीरे ही धीरे दूर हो सकेगा।

वृद्ध — एक ही दिन में यह सब अत्याचार दूर नहीं हो सकता है, यह ठीक है। परन्तु क्या कोई सहृदय व्यक्ति इन समस्त क्रूर आचरणों को देखकर तुम्हारी तरह चुप बैठा रह सकता है ? तुम सर्वथा हृदयहीन हो। क्या तुमने बारम्बार मुझसे यह नहीं कहा था कि दीवानी प्राप्त हो जाने पर वर्त्तमान अत्याचार को दबाने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करूँगा ? नराधम ! इस तीन बरस के पितृ-मातृहीन अनाथ बालक की दुरवस्था को देखकर तुम्हारा हृदय नहीं पसीजता ? धिक्कार तुम्हारे जीवन को और धिक्कार तुम्हारी दीवानी को !

प्रथम — मैं आप के चरणों पर हाथ रख कर कहता हूँ कि रेशम की कोठी के अंगरेज-व्यापारियों के अत्याचार को दूर करने के लिए प्राणपण से उद्योग करूँगा। परन्तु कौशल से काम लेना पड़ेगा।

वृद्ध — हृदयहीन ! पाखण्डी ! यदि तुम्हारे हृदय होता तो तुम "राजनैतिक कौशल", "राजनैतिक कौशल" चिल्ला कर देर न लगाते। इन निराश्रय, निर्बलों के कष्ट निवारणार्थ इसी क्षण प्राण विसर्जन करने के लिए तैयार हो जाते।

प्रथम — (कुछ हँस कर) आप तो सिराज की मृत्यु के बाद, आज सात बरस से मुझे "नीच", "पाखण्डी", "अधम" आदि सुललित शब्दों से विभूषित करते रहे हैं। परन्तु आपके उपदेशानुसार कार्य करके मीरक़ासिम की कैसी दुर्दशा हुई, ज़रा सोचिए तो सही।

वृद्ध—क्या मेरे उपदेशानुसार चलकर मीरक़ासिम की दुर्दशा हुई है ? यदि तुम्हें थोड़ा भी ज्ञान होता तो तुम

सहज ही समझ सकते थे, कि मीरकासिम की दुर्दशा उसकी निर्दयता का ही अवश्यम्भावी फल है। "यतो धर्मस्ततो जय," । मैंने मीरकासिम को कभी क्रूर और निष्ठुर आचरण का उपदेश नहीं दिया। मैंने क्या उससे यह कहा था कि वह इस प्रकार की निन्दनीय नर-हत्या के द्वारा अपने हाथों को कलङ्कित करे? नितान्त कायरों की भांति उसने कई एक निरस्त्र अंगरेजों का प्राण-वध करके अत्यन्त घृणित और गर्हित काम किया। मैं सदा ही उससे सत्य और न्याय का पथ ग्रहण करने के लिए कहता रहा। यदि न्याय-पथ से भ्रष्ट न होता तो वह कभी न हारता। अन्याय के मार्ग का अवलम्बन करके मनुष्य आपही अपनी शक्ति का ह्रास करता है। मोहान्धकार के कारण तुम इसे नहीं समझ सकते।

प्रथम—(कुछ हँसकर) प्रभु, क्षमा कीजिए। मीरकासिम ने सम्पूर्ण रूप से आप के उपदेशानुसार कार्य नहीं किया, इसी से आज निर्वासित अवस्था में भी वह अपने मन को किसी अंश में सान्त्वना प्रदान कर सका है। यदि सम्पूर्ण रूप से आपही के उपदेश पर चलता तो उसे इस थोड़ी सी मानसिक तुष्टि से भी वंचित रहना पड़ता।

वृद्ध—कौन सी मानसिक तुष्टि के द्वारा वह अपने मन को समझाने में समर्थ हुआ है?

प्रथम—और कुछ नहीं, सिर्फ यही कि सिंहासन-च्युति होते होते, अन्ततः वह कुछेक शत्रुओं का प्राण-नाश करने में समर्थ हुआ। इस मानसिक तुष्टि से उसे वंचित नहीं होना पड़ा। परन्तु आपके उपदेशानुसार यदि वह न्याय-पथ का अवलम्बन करता तो उन कुछेक दुष्टों का भी प्राण-वध करने में समर्थ न होता।

वृद्ध—नीच कहीं के! विश्वासघात में तुम्हारा अन्तरात्मा नरक जैसा मलिन हो रहा है। कैसे दुःख की बात है! शास्त्र के गूढ़ तत्व को समझने में तुम तनिक समर्थ नहीं हो। तुम्हारे साथ अधिक बातचीत करके मैं अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहता। अस्त्रहीन अवस्था में शत्रु-पक्ष के आदमियों का प्राण-नाश करके मीरकासिम ने नितान्त कायरों का काम किया और अपने नाम को कलङ्कित कर लिया।

प्रथम—मैंने माना कि मुझे शास्त्र का ज्ञान नहीं; परन्तु आप के उपदेशानुसार चलकर मीरकासिम का कौन सा भला हुआ?

वृद्ध—मीरकासिम का बहुत कुछ भला हुआ। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मीरकासिम कौन था? सिंहासनासीन होने के पहले मीरकासिम भी सिराज और मीरजाफर ही की तरह नर-पिशाच था। यदि ऐसा न होता, तो वह अपने ससुर की हत्या करके राज्य प्राप्त करने की चेष्टा क्यों करता? परन्तु सिंहासनासीन होने के बाद उसने अपने सारे जीवन में मेरे जिस एक उपदेश का प्रतिपालन किया है, उसी के कारण परलोक में निश्चय ही उसे सद्गति प्राप्त होगी, बंगाल के इतिहास में चिरकाल तक उसका नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा, भावी वंशज उसके जीवन के समस्त कलङ्कों को भूल जायगे, संसार में वह एक प्रजा-हितैषी राजा प्रसिद्ध होगा, उसके नाम का स्मरण आते ही क्या हिन्दू क्या मुसलमान बङ्गाल के समस्त निवासियों के हृदय में कृतज्ञता का स्रोत बहने लगेगा। मानव-जीवन में इसकी अपेक्षा विशेष वाञ्छनीय और क्या है? न्याय का राज्य स्थापित करने के लिए, सत्य का आधिपत्य जमाने के लिए जो मनुष्य प्राण

विसर्जन करते हैं, वही देवता हैं।

प्रथम—(नीचे को सिर झुकाये बहुत देर तक सोच-विचार करने के बाद गहरी साँस लेकर।) तो फिर अब आप को मुझसे और कुछ नहीं कहना, मैं जा सकता हूँ?

वृद्ध—हाँ, मैं तुम से और कुछ नहीं कहना चाहता। सिर्फ यही पूछने के लिए बुलाया था कि तुम इस असहाय बालक के प्रतिपालन का भार अपने जिम्मे ले सकते हो या नहीं। किसी ने इसे आश्रय देने का साहस नहीं किया। जिससे कहो, वही कहता है कि यदि हमें इसे आश्रय देंगे तो अँगरेज लोग हमें हलधर का साथी समझ कर फाँसी दे देंगे। परन्तु मैं तुमसे यह निश्चय कहता हूँ कि जिन लोगों ने इस तीन बरस के अनाथ, पितृ-मातृ-हीन बच्चे को आश्रय देना अस्वीकार किया है, परमेश्वर स्वयं उनके लिए फाँसी का फंदा तैयार कर रहे हैं, नन्दकुमार! आज तुम्हारे लिए फाँसी का फंदा निश्चित हो चुका।

प्रथम—मैं आप के प्रति पिता से भी अधिक भक्ति और श्रद्धा रखता हूँ। आप मेरे गुरु हैं, देवता हैं, मुझे श्राप देते हैं?

वृद्ध—मैं दिन रात तुम्हारे कल्याण की कामना करता हूँ। जब तक इस शरीर में प्राण रहेंगे, श्राप देना तो दूर स्वप्न में भी तुम्हारा अहित नहीं चाहूँगा। परन्तु ईश्वर के न्याय-विचार से भविष्य में तुम्हें जो फल भोगना पड़ेगा, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ।

प्रथम—(कुछ हँस कर) देश भर में किसी ने भी तो इस बालक को आश्रय देना स्वीकार नहीं किया, तो क्या ईश्वर के विचारानुसार सारे देशवासियों को फाँसी होगी?

वृद्ध — इस असहाय बालक को आश्रय देना अस्वीकार करने के कारण देश के सभी लोगों को ईश्वर के निकट अपराधी बनना पड़ेगा। परन्तु इस अपराध के लिए कौन किस रूप में दण्डित होगा, यह मनुष्य के जानने की बात नहीं। जिस देश में एक का दुख दूर करने के लिए दूसरे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं, उस देश में क्रम क्रम से एक न एक दिन सभी को दुख भोगना पड़ता है। बंग-देश नरपिशाचों से परिपूर्ण हो रहा है, इसके दुर्दिन समीप हैं, शीघ्र ही इसका नाश होनेवाला है।

प्रथम — तो गुरुदेव, आप सारे देशवासियों को शाप दे रहे हैं?

वृद्ध — मैं देश का अहित नहीं चाहता। परन्तु जब देश का एक आदमी दूसरे का दुख दूर करने की कोई चेष्टा नहीं करता तो निश्चय ही इस देश का अध:पतन होगा। हलधर की जो दशा हुई है एक दिन सब की वही दशा होगी।

प्रथम — (कुछ हँस कर) जो लोग अत्याचार कर रहे हैं, ईश्वर के विचारानुसार यदि उन का अध पतन हो तो समझिये कि वह विचार न्यायसंगत हुआ। परन्तु आप का मुँह से आज यह एक नये ही क़िस्म का विचार सुन रहा हूं। जो लोग अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें भी कोई दण्ड मिलेगा या नहीं, इस विषय में तो आप ने कुछ नहीं कहा। वरन जो बेचारे गरीब आदमी अपने अपने जान माल और इज्जत आबरू के भय से अत्याचारी के हाथों से अत्याचार-पीड़ितों की रक्षा नहीं कर पाते, पहले उन्हीं को दण्डित होना पड़ेगा, क्या यह ईश्वर का न्यायसंगत विचार होगा?

वृद्ध — जो लोग अत्याचार कर रहे हैं, वे ईश्वरीय दण्ड से कदापि नहीं बच सकते। परन्तु तुमने जो इस समय देश के एक प्रधान राज-पुरुष हो कर इस अत्याचार को रोकने का प्रयत्न नहीं किया इसके लिए सब से पहले तुम्हीं को दण्डित होना पड़ेगा। जो लोग संसार के प्रचलित दुख और अत्याचार को दूर करने का उद्योग नहीं करते, वे अवश्य ही उस दुख और अत्याचार में सहायता देते हैं।

प्रथम — यह तो अद्भुत विचार है! मैं निरपराधी हूं और इस अत्याचार को दूर करने के लिए कितनी ही चालें चल रहा हूं, तिस पर पहले मुझे ही दण्डित होना पड़ेगा?

वृद्ध — यह विचार चाहे अच्छा हो या बुरा, पर इसी अकाट्य ईश्वरीय नियम के द्वारा सारा संसार शासित हो रहा है। जब तक तुम्हारे हृदय का मोहान्धकार दूर न हो जाय, तुम इसके गूढ रहस्य को नहीं समझ सकते। मैं निश्चय कह रहा हूं कि तुम विनाश के पथ पर चल रहे हो। यदि अपना कल्याण चाहो तो अपनी इस सारी राजनैतिक चालबाजियों को छोड़ कर प्रकट रूप में अत्याचार को दबाने पर कमर कसो। भिखारी स्त्री के आंखों के आंसू दावाग्नि की तरह प्रज्वलित होकर समस्त बंगाल को भस्मीभूत कर डालेंगे। पतिंगे की तरह तुम इस दावाग्नि की ज्वाला में पतित होकर अपने प्राण खोओगे। नन्दकुमार, अब देर करने का काम नहीं। आसन्न-मृत्यु से अपनी रक्षा करो। परमेश्वर ने साधारण जनों की अपेक्षा तुम्हें अधिक शक्ति और अधिक क्षमता प्रदान की है। निर्बल

और निःसहाय जनों का दुःख दूर करने में इस शक्ति और क्षमता का सदुपयोग करो।

इतना कह कर वृद्ध चुप हो रहा। महाराज नन्दकुमार नीचे को सिर डाले बहुत देर तक सोच विचार करते रहे। कुछ देर बाद वृद्ध के चरणों में प्रणाम करके वह अपने स्थान को चले गये।

दूसरा परिच्छेद

एकान्त चिन्ता।

आधी रात का समय है। स्वच्छ, सुनील आकाश में उदित होकर चन्द्रमा अत्यन्त गम्भीर भाव से संसार के प्रति दृष्टिपात कर रहा है। सारा जगत् चन्द्र की शीतल सुहावनी किरणों से समुज्ज्वल हो रहा है। प्राणी मात्र निस्तब्ध हैं, चारों ओर सन्नाटा है। इसी समय, बंगाल के सूबेदार मीरजाफर के दीवान, महाराज नन्दकुमार अत्यन्त चिन्ताकुल अवस्था में राजमार्ग से हो कर अपने स्थान को लौट रहे हैं। बीच बीच में ऊपर को नेत्र उठाकर वह चन्द्रमा की ओर देखते जाते हैं।

चन्द्र के आलोक से केवल बाह्य जगत् ही आलोकित होता है। मनुष्य का हृदयस्थित मोहान्धकार चन्द्रालोक से

में अङ्गरेजों ने अत्यन्त अनिच्छापूर्वक अनुमति दी है—जरा सी त्रुटि देखते ही वे मुझे पदच्युत कर देंगे—त्रुटियों का अभाव नहीं है। मालगुजारी वसूल करने के लिए हजार चेष्टायें करता हू, पर नहीं वसूल होती। उधर अङ्गरेज लोग कहते हैं कि मैं मालगुजारी वसूल कर के स्वय हजम कर लेता हू। मालगुजारी वसूल न होने की दशा में नवाब ने अङ्गरेजो को जो रुपया देने का वचन दिया है, वह भी अदा न हो सकेगा। अन्ततः इन्हीं कारणो से अङ्गरेज मुझे पदच्युत कर देंगे।

"गुरुदेव की कोई बात मिथ्या नहीं। वस्तुत मालगुजारी वसूल करने में मुझे सैकडो आदमियो पर अत्याचार करना पड़ेगा। इन्होने जो कुछ कहा, सभी सत्य है। अपने पद की रक्षा के लिए अत्याचार कर के मालगुजारी वसूल करनी पड़ेगी, परन्तु पद फिर भी नहीं बना रह सकता। परिणाम मे सिर्फ अपने अत्याचार के पाप का फल भोगना शेष रह जावेगा।

"दीवानी तो यह रहने की नहीं। अच्छा, तो दीवानी जाय तो जाय, मैं गुरुदेव के कहने पर चलूगा। अगरेजों से खुले शब्दों में यह कहूगा कि आप लोग जुलाहों के प्रति ऐसा अत्याचार नहीं कर सकते—गुरुदेव ने ठीक ही कहा है। यदि अत्याचार का अवरोध न किया तो मेरा जीवन वृथा है। गुरुदेव ने ठीक ही कहा है—इस कायर मीरजाफर की दीवानी ग्रहण करके मुझे भी अगरेज व्यापारियों के अत्याचार में सहायता देनी पडी। अत्याचारी राजा के नौकर को भी अत्याचार करने के लिए बाध्य होना पडता है। मैं क्या नवाब का दीवान हू ? मैं तो एक

प्रकार से अंगरेजों का दौरात्म्य हो रहा है। अंगरेज कौन हैं? सिर्फ थोड़े से व्यापारी मात्र। वे क्या इस देश के राजा हैं? तो फिर वे प्रजा पर ऐसा अत्याचार क्योंकर कर सकते हैं? मैं नवाब का दीवान हूँ। इस राज्य का वास्तविक राजा नवाब ही है। अन्तत यदि नवाब मेरी बात पर ध्यान नहीं देगा तो मैं दिल्ली के बादशाह के पास से दीवानी की सनद प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा। एक बार उद्योग करके देखता हूँ देखूँ, नवाब को अंगरेजों के विरोध के लिए तैयार कर सकता हूँ या नहीं? फरासीसों की सहायता मिल जाय तो अभी अभी अंगरेजों को देश से बाहर निकाल सकता हूँ। अवश्य ही मैं फरासीसों से सहायता माँगूंगा। नवाब को यही राय दूँगा। परन्तु गुरुदेव तो फरासीसों से सहायता माँगने के लिए भी मना करते हैं। वे कहते हैं कि फरासीसों से सहायता लेना अच्छा न होगा। बाद में क्या वे भी अंगरेज व्यापारियों की तरह अत्याचार फैलावेंगे? अच्छा तो करूँ क्या? गुरुदेव कहते हैं कि अपने निज के बाहुबल पर निर्भर रहो। मुझमें बल ही क्या है? गुरुदेव की इस बात का अर्थ समझ में नहीं आता। वे कहते हैं "मानसिक बल के द्वारा असाध्य भी साध्य हो सकता है।" वे कहते हैं "नवाब के मतामत की प्रतीक्षा व्यर्थ है, दिल्ली सम्राट की अनुमति अनावश्यक है, फरासीसों से सहायता लेने का भी कोई काम नहीं। अत्याचार-निवारण के हेतु एक बार प्राणों की भेंट के लिए तैयार हो जाओ, अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी।" गुरुदेव की यह बात समझ में नहीं आती। देश के सभी आदमी अंगरेजों की वाणिज्य-कोठियों में नौकरी पाने के लिए लालायित

हो रहे हैं, प्राणपण से इसी की चेष्टा में लीन हैं। ये भला अंगरेजों को देश से बाहर निकालने के लिए अग्रसर होंगे? कभी नहीं। तो गुरुदेव की इस बात का कोई अर्थ नहीं। वे कहते हैं, "तुम प्राण-विसर्जन के लिए तैयार हो जाओ, अपना उदाहरण लोगों के सामने रक्खो, देश के सैकड़ों आदमी तुम्हारा अनुसरण करेंगे, दूसरे का मुंह मत ताको।" परन्तु मुझे निश्चय है कि एक आदमी भी मेरा अनुसरण नहीं करेगा। भला बंगाली लोग। नौकरी इनके जीवन का सर्वस्व है! सभी नवकृष्ण मुंशी के पथ का अवलम्बन करेंगे। अंगरेजों का आश्रय लेकर देश में अत्याचार फैलावेंगे।

"तो फिर वास्तव में कौशल के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं। फरासीसी की सहायता लेकर युद्ध करना पड़ेगा—अथवा यह न सही तो षड्यन्त्र के द्वारा अंगरेज लोगों में आपसी फूट सङ्गठित करनी पड़ेगी। गुरुदेव ने कहा है कि इस मार्ग का अवलम्बन करने से राजनैतिक जाल में फंस कर प्राण खोना पड़ेगा। परन्तु इस कौशल पथ के अतिरिक्त और कोई मार्ग तो देख ही नहीं पड़ता। दो ही उपाय हैं— युद्ध या कौशल। सो युद्ध के लिए कोई साधन नहीं, बंगाली युद्धक्षेत्र में कदम नहीं रक्खेंगे। अन्ततः कौशल ही के पथ का अवलम्बन करना पड़ेगा। परन्तु कैसी आफत है, गुरुदेव बारम्बार इस पथ का परित्याग करने के लिए कहते हैं। गुरुदेव की आज्ञा का उल्लङ्घन किए बिना इस पथ को ग्रहण करने का कोई उपाय नहीं। उनकी यह आज्ञा कहां तक युक्तिमगत है, कुछ समझ में नहीं आता। अस्तु, गुरुदेव की आज्ञा का अर्थ समझूं या

न समझे, मैं निश्चय इसी मार्ग का अवलम्बन करूंगा। परन्तु नहीं नहीं, गुरुदेव की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करूंगा। मेरा यह दीवानीपद बहुत दिन नहीं रहेगा। अंगरेज व्यापारी अवश्य ही मुझे पदच्युत कराने की चेष्टा करेंगे—यह पद सर्वथा अस्थायी है। सवेरा होते ही मैं उस निराश्रय बालक को लाकर अपने घर में रखूंगा। अगरेज लोग सन्देह करें तो करें। मैं गुरुदेव की आज्ञानुसार कार्य करूंगा। ऐसा करने में मृत्यु भी हो जाय तो अच्छा।

इस प्रकार चिंता करते करते महाराज नन्दकुमार को नींद आने लगी, उठ कर बिछौने पर पड़ रहे।

मनुष्य यह समझता है कि उच्च पद लाभ कर के सुख शांति की प्राप्ति होती है। वह यह नहीं सोचता कि उच्च पदस्थ लोगों को हर घड़ी चिंता की ज्वाला में दग्ध होना पड़ता है। महाराज नन्दकुमार को अच्छी तरह नींद नहीं आई। अर्धनिद्रित अवस्था में उन्होंने स्वप्न देखा, "कलकत्ता कौन्सिल के वाटसन साहब कितने ही सैनिकों को साथ लेकर आ रहे हैं, मुझ से मालगुजारी की वसूली का हिसाब तलब किया है। हिसाब को देखने पर उसमें गबन बता कर वे मुझे बन्दी के रूप में कलकत्ते भेजने को तैयार हुए हैं। अङ्गरेजों की रेशम की कोठी के गुमाश्ते रामहरी चट्टोपाध्याय को उन्होने नवाब की दीवानी के पद पर नियुक्त किया है। देश के लोग रामहरी को दीवानी के काम पर नियुक्त होते देख 'ही-ही' करके हँस रहे हैं। नवाब मीरजाफर ने रामहरी की नियुक्ति के सम्बन्ध में प्रबल प्रतिवाद आरम्भ किया है।" स्वप्न के अन्त में जाग कर देखा, प्रभात हो गया। बिस्तर से उठकर उन्होंने

गोचा, — गुरुदेव की आज्ञा का प्रतिपालन करूंगा — उस निराश्रय बालक को ले आने के लिए अभी आदमी भेजता हूं ?

नन्दकुमार ! प्राणपण से इस प्रभात-प्रतिज्ञा के प्रतिपालन की चेष्टा करो। रात्रि के अन्त में प्रतिदिन आकाशमण्डल के बीच उदित होकर भगवान सूर्यनारायण मोहान्धकार मे डूबे हुए नर नारियो से कहते हैं—" ऐ मनुष्यो ! तुम्हारे हृदय का मोहान्धकार दूर करने के लिए, तुम्हारे चरित्र के संशोधन के लिए जगत्पिता ने आज पुन तुम्हें एक नूतन सुयोग प्रदान किया है । उन्हीं के आदेश से आकाश में उदित होकर मैं तुम्हें जगाता हू और उनकी आज्ञा से तुम्हें सूचित करता हू । "

पाठक और पाठिकाओ ! यदि अपने चरित्र का संशोधन करना हो, यदि अपने हृदय का पवित्र बनाना हो, यदि अपने अन्तरस्थित मोहान्धकार को दूर करना हो तो प्रतिदिन के प्रभात-उपदेश का प्रतिपालन करने की चेष्टा करो। ससार की चिन्ता और ससार का कोलाहल कानो मे प्रविष्ट होने के पहले ही जाग कर सुनो कि प्रतिदिन का प्रभात तुम से क्या कहता है । यदि प्रभात उपदेश के सदुपयोग से तुमने अपने को वञ्चित रक्खा, तो तुम्हारे हृदय के समुन्नत होने की आशा बहुत ही कम है ।

प्रात क्रिया को समाप्त करके महाराज नन्दकुमार अभी दरबार में नहीं आये थे, कि दरबारगृह में सकड़ों आदमियों की भीड लग गई। दीवानी महल से भीड़ भाड का कोलाहल सुनाई देने लगा । मालगुजारी वसूल करने वाले कर्मचारीगण अपनी अपनी तहसील का हिसाब किताब

लेकर दीवानखाने के पार्श्वस्थ कमरे में घुसते ही सदर के नायब, मुहर्रिर, पेशकार आदि को नजर भेंट देने लगे। हिसाब चुकता करते वक्त सदर के अमले वाले, किसी प्रकार की आपत्ति उठा कर, झगड़े में न डालदें, इस आशंका से थोड़ी बहुत पूजा चढ़ा कर पहिले उन्हें राजी कर लेना पड़ता था। कितने ही जमींदार अपनी अपनी मालगुजारी का रुपया स्वयं ही लेकर आये हैं, परन्तु उनमें से जिन्होंने अभी तक अमले वालों को भेंट नहीं चढाई, उन्हें बैठने का हुक्म नहीं मिला, बेचारे खड़े हैं। नवाब सरकार में नौकरी के प्रार्थी होकर अनेकानेक भद्र युवक दीवान के दर्शनों की आशा से नजर हाथ में लिए दीवानखाने के सम्मुखस्थ द्वार पर खड़े हैं। इन में से जिन्होंने दीवानखाने के ड्योढ़ीवान और सिपाही प्यादों को पान-तमाखू के लिए कुछ दे दिला कर, उनकी कृपा को खरीद लिया है, वे तो भीतर घुमने पाये; बाकी सब आजकल के, पेशकारी और डिप्टी कलेक्टरी के उम्मेदवारों की तरह सिर पर पगडी बाँधे दीवानखाने के सामने घास पर टहल रहे हैं। ब्राह्मण पण्डित "महाराज की जय हो, महाराज की जय हो"— कहते हुए महल के भीतर घुसते जा रहे हैं, इन लोगों से किसी को कुछ मिलने की आशा नहीं है, इस लिए इन्हें अन्दर जाने से कोई नहीं रोकता। ये लोग भीतर पहुच कर निर्दिष्ट उच्च स्थान पर बैठते जाते हैं। सैकड़ों प्रजा जन अपने अपने आवेदनपत्र हाथ में लिए महल के सामने खड़े हैं। उस समय इस देश में, काशी के पण्डों की तरह, वकील मुख्तारों का दौरदौरा नहीं था। वकील मुख्तार थे ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने प्रार्थनीय विषय को स्वयं निवेदन करते

था। वकील-मुख्तारों के पंजे में फँस कर किसी को अपना सर्वनाश नहीं करना पड़ता था। जो दो चार रुपये खर्च होते थे, वे अमले वालों की नजर भेंट में। अमले वाले थोड़े ही में सन्तुष्ट हो जाते हैं। परन्तु वकीलों के बड़े पेट को कोई नहीं भर सकता, चाहे लक्ष्मीपति के उद्यान के सारे फलमूल ही बटोर कर क्यों न दे दें।

प्रातःक्रिया समाप्त करके अन्यान्य दस बारह व्यक्तियों के सहित महाराज नन्दकुमार ने जैसे ही दरबार-गृह में प्रवेश किया, सब उठकर खड़े हो गये। ब्राह्मण पण्डितों ने हाथ उठा उठा कर "महाराज का कल्याण हो", "महाराज का कल्याण हो"—कहते हुए आशीर्वाद किया। अन्यान्य सब लोगों ने सम्मानपूर्वक सिर झुका कर अभिवादन किया।

महाराज के सभासीन होते ही पण्डितों के अगुआ हरिदास तर्कपञ्चानन ने सामने आकर शास्त्रालाप शुरू किया, अन्यान्य पण्डितगण भी चुप नहीं रहे। पण्डितों में इस प्रकार का नियम नहीं था कि वे क्रम क्रम से एक एक करके अपना अपना वक्तव्य सुनावें। चार पाँच पण्डित मिल कर एक साथ ही चीत्कार कर उठते थे। समय रहता था थोड़ा, इतने ही में सभी को अपनी अपनी विद्या प्रकट करनी पड़ती थी। थोड़ी ही देर बाद महाराज राजकार्य में लग जाते थे, अतएव जल्दी के मारे सभा में उपस्थित पण्डित एक साथ ही चिल्ला उठते थे। इनका वाक्‌युद्ध आरम्भ होने पर सारा महल गूंज उठता था, कोलाहल मच जाता था। निदान आरम्भ में धर्म्मालोचना की पुकार मची, बाद में नीति-शास्त्र की चर्चा छिड़ी। तर्क पञ्चानन

महाशय ने कहा — "महाराज! हमारे शास्त्रकारों ने कहा है, कौशल से राजकार्य चलाना चाहिए — कौशल के विना कोई राजकार्य सम्पन्न नहीं होता — शत्रु को पराजित करना हो, जनसाधारण को मुट्ठी में रखना हो, तो राजपुरुषों को विविध कौशल का अवलम्बन करना उचित है। मन्त्रि प्रवर चाणक्य ने इसी मार्ग का अनुसरण किया था। विष्णु शर्मा ने भी हितोपदेश में स्थान स्थान पर कौशलमार्ग को ग्रहण करने के लिए ही लिखा है। यथा —

"साम्ना दानेन भेदेन, समस्तैरथ वा पृथक्।
साधितु प्रयतेतारीन् ना युद्धेन कदाचन॥"

तर्क पचानन जी इस श्लोक को पूरा नहीं कह पाये थे कि वाचस्पति महाशय बोल उठे — हां हां, वह पहिलेवाला श्लोक छोड दिया —

"विजेत प्रयतेतारीन् न युद्धेन कदाचन।
अनित्यो विजयो यस्माद् दृश्यते युद्धमानयो॥"

महाराज नन्दकुमार इन दोनो श्लोकों को सुन कर बोले — "महाशय, कोई कोई कहते हैं कि कौशल से कुछ भी लाभ नहीं होता।"

तर्क पचानन, वाचस्पति और विद्यावागीश एक साथ ही चिल्ला उठे —

"यथा काल कृत्योद्योगात कृषी फलवती भवेत्।
तद्वन्नीतिरिय देव! चिरात् फलति न क्षणात्॥"

पण्डितों के मुह से कौशल की यह व्याख्या सुनते ही महाराज नन्दकुमार को गत रात्रि की सारी बातें याद आईं, पण्डितों को सम्बोधन कर के कहने लगे — "महाशय! शास्त्र का मतामत कुछ समझ में नहीं आता। बापूदेव

शास्त्री कहते हैं कि, "राज-धर्म पालन करने के लिए राजा को चाहिये कि वह सतान की भांति प्रजा का प्रतिपालन करे और सदा ही सत्य और न्याय के पथ पर चले। नीतिशास्त्रविशारदों ने जिन बातों को राजनैतिक कौशल में गिना है, वे ठगी और धोखेबाजी के सिवा और कुछ नहीं। न्यायपरायण राजाओं के लिए ऐसे मार्ग का अवलम्बन सर्वथा त्याज्य है।"—वे कहते हैं "आर्य्य-जाति के वर्त्तमान अधःपतन की अवस्था में आधुनिक पण्डित-गण राजनैतिक कौशल की व्याख्या में जिन व्यवहारों की गणना करते हैं, वे सभी धर्म-विरुद्ध प्रवञ्चनामूलक व्यवहार हैं। जो राजा कौशल-मार्ग का अवलम्ब लेकर राज्य-शासन करते हैं, वे राजा कहलाने योग्य नहीं। डाकू लोग जिस प्रकार जबरदस्ती दूसरों का धन माल लूट लेते हैं, उसी प्रकार कौशलावलम्बी राज पुरुष भी एक रूप में, डाकुओं ही की वृत्ति का अनुसरण करते हैं।" बापूदेव शास्त्री कौशल का जिक्र छिड़ते ही साधु सुलभ घृणा और असंतोष का भाव प्रकट करते हैं और कहते हैं—"यदि प्रजा पर प्रभुत्व रखना हो, प्रभाव जमाना हो तो उसे प्रेमरज्जु से बांधने की आवश्यकता है; वह बन्धन कभी छिन्न ही नहीं होता।"

महाराज को यह बात सुनकर कुछ पण्डित कह उठे—"महाराज! बुढ़ापे के कारण बापूदेव शास्त्री को भले बुरे का ज्ञान नहीं रहा है।" कोई कोई कहने लगे—"बापूदेव की शास्त्र में कभी अच्छी गति नहीं हुई। हाँ थोड़ा सा ज्योतिष-शास्त्र अवश्य जानते हैं, और इसीलिए जनाब अलीवर्दी खाँ उनका आदर करते थे।" पण्डित-प्रवर हरि-

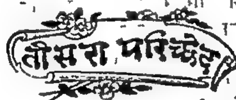
दास तर्क पचानन बापूदेव शास्त्री का नाम सुनकर उनके प्रति विशेष घृणा प्रकट करते हुए बोले—" महाराज! उस पागल बूढ़े की बात पर ध्यान न दीजिए। अलीवर्दी ख़ाँ उसका आदर करते रहे थे, इसीलिए सिंहासन प्राप्ति के बाद मीरकासिम ने भी उसी के उपदेश पर चलना शुरू किया। परन्तु विचार कर देखिए, मीरकासिम की कैसी दुर्दशा हुई। मैं आप से सामह अनुरोध करता हूं कि आप उस बूढ़े की बात न सुन कर सारा राजकार्य कौशल के ही द्वारा सम्पन्न करें।"

महाराज नन्दकुमार की बापूदेव के प्रति प्रबल श्रद्धा थी। हरिदास तर्क पचानन समाज में यद्यपि बड़े धार्मिक माने जाते थे, तथापि वे लोगों के श्रद्धाभाजन नहीं बन सके थे, सर्वसाधारण में उनके प्रति भक्तिभाव नहीं था। अतएव हरिदास तर्क पचानन तथा अन्यान्य पण्डितों की बातें सुन कर, महाराज नन्दकुमार के हृदय में स्थित बापूदेव शास्त्री के प्रति भक्ति और श्रद्धा तनिक भी विचलित न हुई। तथापि शास्त्री जी के मत की सत्यता के सम्बन्ध में उनके मन में सन्देह का सञ्चार हो गया।

वस्तुतः इस समार में मनुष्य का मन चारों ओर सघटित होने वाली घटनाओं और विविध विषयों के अनुभव के कारण सदा ही डाँवाडोल होता रहता है। इस प्रकार की डाँवाडोल अवस्था में सिद्धपुरुषों के अतिरिक्त कोई भी अपने मन को सरक्षित रखने में समर्थ नहीं होता। महाराज नन्दकुमार का चित्त डाँवाडोल होने लगा और वे पुन गत रात्रि की बातों का चिन्तन करने लगे। प्रभात-प्रतिज्ञा के औचित्य के सम्बन्ध में उन्हें सन्देह होने लगा।

धीरे धीरे वह प्रतिज्ञा उनके हृदय से लुप्त होगई। कौशल के पथ का ग्रहण करना ही निश्चय किया। कुछ देर बाद सभा में आये हुए पण्डित विदा हो अपने अपने घर चले गये। महाराज राजकार्य की देखभाल करने लगे। दो तीन घंटे बाद दरबार बरखास्त हुआ। इष्ट मन्त्र के साधनार्थ महाराज ने पूजा-गृह मे प्रवेश किया।

इस घटना के लगभग एक साल बाद नवाब मीरजाफ़र की मृत्यु हुई। अङ्गरेज लोग पहले ही से महाराज नन्दकुमार को अपना शत्रु समझ रहे थे। मीरजाफर की मृत्यु के बाद उन्होंने उन्हें पदच्युत कर दिया और मुहम्मद रजा खाँ को उनके पद पर नियुक्त किया। सरकारी मालगुजारी में गबन बताकर महाराज नन्दकुमार बन्दीस्वरूप कलकत्ते को भेज दिये गये।



जंगल में टूटा फूटा घर

आषाढ़ का महीना है। दिन ढल चुका है। मूसलाधार पानी बरस रहा है। इसी समय—"हा विधाता! भाग्य में इतना क्लेश बदा था।" यह कह कह कर अपने भाग्य को धिक्कारती हुई एक अत्यन्त दुर्बला स्त्री फलों से युक्त

आमों की एक डाल सिर पर रक्खे जोर से दौड़ी जा रही है। थोड़ी दूर जाकर वह एक घास फूस से घिरे हुए सुन-सान घर के भीतर प्रवेश करने लगी। स्त्री की अवस्था अठारह बरस से अधिक न होगी। वह निहायत मैले और फटे पुराने वस्त्र पहिने है, मुख पर शोक, दुख और दरिद्र के चिन्ह अंकित हो रहे हैं। उसका शरीर गोरा नहीं श्याम है, तथापि उसकी सुन्दरता में कोई सन्देह नहीं। जान पड़ता है, दरिद्र अथवा किसी मानसिक क्लेश के कारण उसके मुख पर की आभा जाती रही है। देखने में वह अत्यन्त कृश और दुर्बल जान पड़ती है, परन्तु वह जिस तेजी से दौड़ी जा रही है, उसे देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि उसके शरीर मे बल नहीं है। कुछ देर तक नजर ठहरा कर देखने से उसके मुखकमल पर स्त्री-जाति सुलभ-लज्जा, नम्रता और सरलता के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। परन्तु इन समस्त सद्भावों के अतिरिक्त — एव इन से भी अधिक उत्तम और मधुर—न जाने कौन से अनुपम और अपूर्व सौन्दर्य का भाव उसके मुखमण्डल पर वर्त्तमान है कि उसे देखते ही सहृदयदर्शकों का मन मुग्ध हो जाता है और उनके हृदय में उसके प्रति स्नेह, दया और प्रेम के भाव का प्रादुर्भाव होने लगता है।

रमणी जिस टूटे फूटे घर के भीतर प्रवेश कर रही थी वह घर आरमीनियनों और फरासीसों की सैदाबाद वाली रेशम की कोठी से आध कोस के फासले पर था। इस समय फरासीसों और आरमीनियनों की रेशम की कोठियां सैदाबाद में थीं और अंगरेजो की कासिमबाजार में। अभी पूरा एक साल भी नहीं हुआ था कि लार्ड क्लाइव ने ईस्ट इंडिया

कम्पनी के लिए बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी हासिल की थी।

जिस घर में रमणी ने प्रवेश किया, वह उजाड़ सा प्रतीत होता है। सारा घर झाड़ झंखाड़ से परिपूर्ण है। भीतर बाहर सब जगह लम्बी लम्बी घास खड़ी है, वृक्षों के सड़े गले पत्तों से घर की सारी जमीन ढकी हुई है। कहीं पर मनुष्य के पावों के चिन्ह नहीं दिखाई देते। घर के आगन में भी घास जमी है, जान पड़ता है महीनों से इस घर को झाड़ने बुहारने की चेष्टा किसी ने नहीं की। घर के समग्र टूटे फूटे अंशों को देखने से सहज ही यह अनुमान होता है कि पहले यह घर दो खण्डों में विभक्त था। बाहरी खण्ड में कोई चार पाच घरों के टूटे-फूटे छप्पर अधगिरे पड़े हैं। इन में मिट्टी के लम्बे लम्बे चबूतरों को देख कर ऐसा बोध होता है कि पूर्व में शायद जुलाहे लोग यहाँ रहते थे और यहां वे लोग वस्त्र बुना करते थे। मकान के पिछले खण्ड में भी कोई पांच छ कोठरिया हैं। परन्तु प्राय सभी कोठरियों की छत भूमिसात हो चुकी है। सिर्फ एक छोटी सी कोठरी की छत अभी तक नहीं गिरी है। परन्तु यह कोठरी भी बरसात में रहने योग्य नहीं। छत का खड़-फूस सड़ चुका है। बूँदें पड़ीं कि चूना शुरू हुआ। मेह बरसता है तो कोठरी भी बरसती है। चारों ओर की दीवारें भी अधगिरी खड़ी हैं। इस कोठरी में सिर्फ एक दरवाजा है। भीतर एक छोटी सी कोठरी और है। देखने में किसी साधारण गृहस्थ की रसोई सी जान पड़ती है।

रमणी हापते हापते इस छोटे से घर में घुस गई। घर

आमों की एक डाल सिर पर रक्खे जोर से दौड़ी जा रही है। थोड़ी दूर जाकर वह एक घास फूस में घिरे हुए सुनसान घर के भीतर प्रवेश करने लगी। स्त्री की अवस्था अठारह बरस से अधिक न होगी। वह निहायत मैले और फटे पुराने वस्त्र पहिने है, मुख पर शोक, दुख और दरिद्र के चिन्ह अंकित हो रहे हैं। उसका शरीर गोरा नहीं श्याम है; तथापि उसकी सुन्दरता में कोई सन्देह नहीं जान पड़ता है, दरिद्र अथवा किसी मानसिक क्लेश के कारण उसके मुख पर की आभा जाती रही है। देखने में वह अत्यन्त कृश और दुर्बल जान पड़ती है; परन्तु वह जिस तेजी से दौड़ी जा रही है, उसे देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि उसके शरीर में बल नही है। कुछ देर तक नजर ठहरा कर देखने से उसके मुखकमल पर स्त्री-जाति-सुलभ-लज्जा, नम्रता और सरलता के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। परन्तु इन समस्त सद्भावों के अतिरिक्त — एव इन से भी अधिक उत्तम और मधुर—न जाने कौन से अनुपम और अपूर्व सौन्दर्य का भाव उसके मुखमण्डल पर वर्त्तमान है कि उसे देखते ही सहृदयदर्शकों का मन मुग्ध हो जाता है और उनके हृदय में उसके प्रति स्नेह, दया और प्रेम के भाव का प्रादुर्भाव होने लगता है।

रमणी जिस टूटे फूटे घर के भीतर प्रवेश कर रही थी वह घर आरमीनियनों और फरासीसों की सैदाबाद वाली रेशम की कोठी से आध कोस के फासले पर था। इस समय फ़रासीसों और आरमीनियनों की रेशम की कोठिया सैदाबाद में थी और अगरेजों की कासिमबाजार में। अभी पूरा एक साल भी नहीं हुआ था कि लार्ड क्लाइव ने ईस्ट इंडिया

कम्पनी के लिए बंगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी हासिल की थी।

जिस घर में रमणी ने प्रवेश किया, वह उजाड़ सा प्रतीत होता है। सारा घर झाड़ झंखाड़ से परिपूर्ण है। भीतर बाहर सब जगह लम्बी लम्बी घास खड़ी है, वृक्षों के सड़े गले पत्तों से घर की सारी जमीन ढकी हुई है। कहीं पर मनुष्य के पांवों के चिन्ह नहीं दिखाई देते। घर के आंगन में भी घास जमी है, जान पड़ता है महीनों से इस घर को झाड़ने बुहारने की चेष्टा किसी ने नहीं की। घर के समग्र टूटे-फूटे अंगों को देखने से सहज ही यह अनुमान होता है कि पहले यह घर दो खण्डों में विभक्त था। बाहरी खण्ड में कोई चार पांच घरों के टूटे-फूटे छप्पर अधगिरे पड़े हैं। इन में मिट्टी के लम्बे लम्बे चबूतरों को देख कर ऐसा बोध होता है कि पूर्व में शायद जुलाहे लोग यहाँ रहते थे, और यहां वे लोग वस्त्र बुना करते थे। मकान के पिछले खण्ड में भी कोई पांच छः कोठरियां हैं। परन्तु प्राय सभी कोठरियों की छत भूमिसात हो चुकी है। सिर्फ एक छोटी सी कोठरी की छत अभी तक नहीं गिरी है। परन्तु यह कोठरी भी बरसात में रहने योग्य नहीं। छत का खड़-फूस सड़ गया है। यहाँ तक कि चूना शुरू हुआ। मेंह बरसता है तो कोठरी भी बरसती है। चारों ओर की दीवारें भी अधगिरी सी हैं। इस कोठरी में सिर्फ एक दरवाजा है। भीतर एक छोटी सी कोठरी और है। देखने में किसी साधारण गृहस्थ की रसोई सी जान पड़ती है।

रमणी हांफते हांफते इस छोटे से घर में घुस गई। घर

के भीतर से किसी ने अत्यन्त कातर स्वर से कहा—"सावित्री बड़ा शीत है । कहां गई थी ?"

रमणी दौड़ते दौड़ते आने के कारण थक गई थी । हांपते हांपते कहने लगी — "पिता ! आज घर में एक मुट्ठी भी चावल नहीं हैं । तुम्हें पथ्य कहा से दूगी, बड़ी चिन्ता में हू । सैदाबाद के बाजार में बेचने के लिए कुछ आम लिए जा रही थी; यदि कोई ले लेता तो उन्हीं पैसों से चावल खरीद लाती । परन्तु रास्ते में मेह बरसने लगा । तुम्हें ज्वर मे छोड़ गई थी । यदि मेह में भीग जाते तो तुम्हारा जीवन सकट में पड़ जाता, इस मारे वहीं से लौट पड़ी । दौड़ती हुई आ रही हू । उठो मेरी गोदी में सिर रख लो और पाव समेट कर पड़ रहो ।"

वृद्ध ने कापते कापते कहा — "हा ईश्वर ! मेरी बेटी के भाग्य में इतना कष्ट बदा था ! बेटी, मैं कुछ नहीं खाऊंगा बड़ा शी — ई — त — है ।"

कोठरी में मेह का पानी आ रहा था । एक चटाई के ऊपर एक फटी पुरानी कथरी पड़ी हुई थी, वृद्ध उसी पर लेटा हुआ था । रमणी ने दोनों हाथों से वृद्ध को उठाया और ऐसे स्थान पर बिठा दिया, जहा पर छत से पानी नहीं गिरता था । कथरी समेत चटाई को उठा कर कोठरी के एक कोने में रख दिया । वृद्ध से बहुत देर तक बैठा न रहा गया, कन्या की गोद में सिर रख लिया, और हाथ पाव समेट कर धरती पर पड़ रहा । कन्या के कपडे भी भीग गये थे । पिता को जार का जाड़ा लग रहा था । उढ़ाने के लिए कोई दूसरा वस्त्र

नहीं था। अतएव जाड़े को दूर करने के लिए वह उनकी पीठ पर हाथ फेरने लगी।

कुछ देर बाद मेह थम गया। सन्ध्या होगई। चारों ओर अन्धकार छागया। रमणी भाड़ लेकर कोठरी का पानी बाहर को फेंकने लगी। पुनः चटाई बिछा कर वृद्ध को उसके ऊपर लिटा दिया। घर में तेल नहीं था, दीपक न जला सकी। बाहरी खण्ड के छप्परों का [illegible] मेह में भीग गया था, जलने योग्य न था। अतएव रमणी घर के इधर उधर से ढूढ-ढाँढ कर थोड़ा सा सूना [illegible] करकट बीन लाई और पिता के बिछौने के पार्श्व में आग जलाई। अपने और पिता के भीगे हुए वस्त्रों को आग की आच में सुखाने लगी।

कोठरी के एक कोने पर एक चूल्हा था। वहाँ [illegible] मिट्टी की हाडिया और दो घडे रक्खे हुए थे। धातु [illegible] बरतनों में सिर्फ एक पीतल की घटी थी। "घर में [illegible] एक मुट्ठी चावल है, और कुछ नहीं। पिता को [illegible] से दूंगी"—रमणी इसी चिन्ता में व्यस्त है। [illegible] बद बद आँसू टपक रहे हैं। सवेरे भी घर में [illegible] नहीं थे। प्राय स्त्रियों में यह एक परम्परा [illegible] कि अन्न रखने के पात्र को सूना कभी न [illegible]। इसीलिए सवेरे बर्तन में जो दो तीन मुट्ठी [illegible] से दो मुट्ठी लेकर पिता को भात बना दिया [illegible] मुट्ठी चावल बरतन में रहने दिये थे। [illegible] दिन कुछ नहीं खाया था। बहुत कुछ [illegible] विचार [illegible] अनन्तर सावित्री ने इन्हीं रक्खे हुए [illegible]

पिता को पथ्य दे देना निश्चय किया। चूल्हे में आग जलाकर वह भात रांधने लगी।

कुछ देर बाद अकस्मात् घर के बाहर लालटेन का उजाला दिखाई दिया। देखते देखते चार पाच आदमी इस छोटे से घर के भीतर घुस पड़े। इनमें से जो आदमी सब के आगे था, उसका नाम था रामहरी चट्टोपाध्याय। यह अङ्गरेजों की कासिमबाजार वाली रेशम की कोठी का गुमाश्ता था। सावित्री इसे पहले से पहिचानती थी। इसके साथ के अन्यान्य तीन चार आदमी कोठी के प्यादे थे।

इन्हें देखकर युवती चिल्ला उठी। भय और त्रास के मारे उस का सारा शरीर काँपने लगा।

कासिमबाजार की कोठी मे रामहरी चट्टोपाध्याय को कोई कोई रामहरी बाबू कह कर पुकारते थे। परन्तु कोठी के साहब लोग उन्हें सिर्फ "बाबू" कहा करते थे। कोई कोई नवागत अगरेज "बाबू" न कह कर "बे बून" कहते थे।

घर में घुसते ही रामहरी ने युवती का हाथ पकड़ लिया, और कहा — "चल तुझे कासिमबाजार की कोठी को चलना पड़ेगा।" युवती उसके पांव पकड़ कर जमीन पर लेट गई, और कातर स्वर से कहने लगी—"चटर्जी महाशय आप मेरे पिता हैं, इस ससार में मेरा कोई नहीं है, मुझे क्षमा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिए।"

रामहरी—आज मैं तेरी एक न सुनूगा। चल तो चल, नहीं तो मेरे आदमी तुझे पकड़ कर ले चलेंगे।

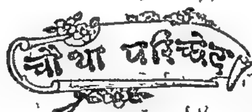
सावित्री—मेरे महाराज, मेरे पिता आप ही मेरे धर्म के रक्षक हैं, आपही मेरे धर्म के पिता हैं।

रामहरी — चुप रह । सरकारी काम के वक्त ये बातें अच्छी नहीं लगतीं । अपना भला चाहे तो सीधे चली चल । नहीं तुझे घसीट ले चलूगा । आज तुझे हर्गिज नहीं छोड़ने का । तीन दिन से तुझे समझाता हू, खुशामद करता हू, तेरे मन में एक नहीं गडती ।

युवती निराश हो गई । समझ लिया कि यह कुलागार ब्राह्मण मुझे किसी तरह नहीं छोड़ेगा, इस नरपिशाच के हृदय में लेशमात्र भी दया नहीं है । अब सावित्री को क्रोध आया, प्रचंड कोपाग्नि में उसके दोनों होठ कापने लगे । हृदयावेग से उत्तेजित हो वह कहने लगी— " रे पापी ! तू ने षड्यंत्र करके मेरा सारा धन-माल लूट लिया, मेरे भाई और स्वामी को जेल में ठेल दिया । दुष्ट ! अब क्या मेरा धर्म भी लेना चाहता है ? सब तो गया — भाई गया, मा गई, स्वामी गया — अब अपना धर्म भी दे डालूँ ? अभी अभी आत्महत्या करके अपने सारे दु खों का अन्त किये लेती हू । यह कह कर युवती उन्मत्त की भाँति सामने पड़ी हुई लकड़ी हाथ मे ले कर जोर जोर से अपने माथे में मारने लगी । रामहरी ने आगे बढ कर उसका हाथ पकड लिया ।

युवती का आर्त्तनाद उसके पिता के कानों में पहुचा । वृद्ध बेचारा रोग, शोक और क्षुधा की पीड़ा के मारे अधमरा पडा था । अत्याधिक दुर्बलता के कारण कुछ दिनों से वह प्राय अचतन्य अवस्था में रहता था । इस वक्त भी बेहोशी की हालत में आखें मूँदे पडा था । कन्या का आर्त्तनाद सुनकर जाग उठा । रामहरी ने सावित्री के सम्बन्ध में जो षड्यत्र रचा था, उसे कल उसने सावित्री ही की जबानी सुना था । वह समझ गया कि रामहरी मेरी कन्या को

जबरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए आया है। उस वक्त उस के मृतप्राय शरीर में एकाएक नवशक्ति का संचार हुआ। प्रायः एक महीने से उसमे उठने की शक्ति नहीं थी। परन्तु कैसे आश्चर्य की बात! हृदय का जोश कभी कभी मृतप्राय शरीर में बलप्रदान करता है। वृद्ध सहसा बिस्तरे से उठकर खड़ा हो गया, उसने हाथ बढ़ा कर रामहरी को पकड़ने की चेष्टा की। परन्तु क्षण भर में वह कांपते-कांपते जमीन पर गिर पड़ा, और पुनः एकदम बेहोश हो गया। रामहरी के साथियों ने खींचते-घसीटते सावित्री को घर के बाहर निकाला। वह मूर्च्छित हो गई। उसी मूर्च्छित अवस्था में दो आदमियों ने उसे उठाकर अपने कन्धों पर रख लिया और कासिमबाजार का रास्ता पकड़ा।



कासिमबाजार में रेशम की कोठी।

पाठक और पाठिकाओं में प्रायः सभी ने कासिमबाजार का नाम सुना होगा। परन्तु ईसवी सन् १७६६ में,— अर्थात् इस उपन्यास में उल्लिखित घटनाओं के समय यह कासिमबाजार जैसा गौरवान्वित और जैसा समृद्धिशाली था,

इस समय उसका लेशमात्र भी नहीं। क़ासिमबाज़ार के उस समस्त गौरव और उस सारी समृद्धि का लोप हो गया है। आस पास सघन जंगल से घिरा सुनसान डाग पड़ा हुआ है।

दिन रात हज़ारों आदमियों की भीड़ भाड़, दौड़ धूप, चिल्ली-पुकार से परिपूर्ण, बँगाल के सर्वप्रधान व्यापारीय नगरों में परिगणित, भागीरथी गंगा और जलंगी — तीन नदियों की धाराओं से परिवेष्टित तात्कालिक क़ासिमबाज़ार का प्रकृतगौरव आज कल्पनाशक्ति को भी परास्त कर रहा है। व्यापार के लिए आये हुए देश-देशान्तर के लाखों आदमी यहां एकत्रित होते थे। अङ्गरेज, फरासीस, डच और आरमोनियन व्यापारियों की उच्च अट्टालिकायें, भागीरथी में बहती हुई असंख्य व्यापारीय नावें स्थान स्थान पर स्तूपाकार में रक्खी हुई ढेर की ढेर विक्रेय वस्तुएँ, नदी के पार्श्वस्थित माल गोदाम में, अनेकानेक रेशम के कारख़ाने, देशी जुलाहों तथा भिन्न भिन्न कारीगरों की श्रेणीबद्ध दूकानें और दूकानों के सामने लटकते हुए रंगबिरंगे रेशमी वस्त्र इस नगर को एक अपूर्व शोभा से सुसज्जित कर रहे थे। मनुष्य की चिल्लाहट, दलालों की दौड़ धूप, विविध देशों के विलास-प्रिय लोगों की सुन्दर सुन्दर पोशाकें; वेशविन्यास की सजधज, अर्थोपार्जन के लिए अर्थलोलुप व्यापारियों के विविध उद्योग और परस्पर एक दूसरे के साथ प्रवञ्चनामूलक व्यवहार मानवहृदय की घोर विषयासक्ति एवँ स्वार्थपरता का परिचय प्रदान करते थे, और प्रत्यक्षरूप में यह प्रमाणित कर रहे थे कि अर्थोपार्जन के मार्ग में मनुष्य बड़े से बड़े कष्टों के उठाने, बड़ी से बड़ी विपत्तियों

को झेलने और बड़ी से बड़ी लांछनाओं को सहने से पराङ्मुख नहीं होता।

अंधेरी रात में नदी के पार्श्वस्थित भवनों में जलते हुए दीप दूरस्थित दर्शकों को असंख्य सितारे से जगमगाते प्रतीत होते थे। संध्या के बाद अङ्गरेजों के कन्टूनमेंट में बजनेवाले अङ्गरेजी बाजों की झनकार तथा निकटस्थ ग्रामों के तँबुकार एवं अन्यान्य गृहस्थों और वैष्णव धर्मावलम्बी पुरुषों के यहां बजनेवाले शंख-घड़ियाल, खजड़ी-करताल की ध्वनि भागीरथी की धारा के कलकल शब्द से संयुक्त होकर एक अपूर्व सुमधुर संगीत की वृष्टि करती थी। चारों ओर के समग्र स्थान उससे गूंज उठते थे। सुननेवाले के कानों में मानों अमृत बरसता था।

परन्तु कासिमबाजार की यह अतुल सुखसामग्री, यह अपूर्व सज-धज, यह मनोहर दृश्य सौ बरस बीतते बीतते कैसे लुप्त हो गया? दुराचारी रमणी के यौवन की भांति कासिमबाजार का समस्त गौरव इस थोड़े से समय में क्योंकर नष्ट हो गया? जिस प्रकार परमासुन्दरी कुलटा स्त्रियां यौवन के अन्त में विविध सौन्दर्य्य-शोभा से हीन हो कुकर्मों से उत्पन्न होनेवाले विभिन्न रोगों के कारण घोर विरूपता को प्राप्त होती है, वही दशा कासिमबाजार की हुई। और क्यों न होती? कासिमबाजार क्या पवित्र काशीधाम की तरह कोई तीर्थस्थान थोड़े ही था? भिन्न भिन्न देशों के साधु सज्जन क्या यहां सत्संग लाभ करने या सत्कथाओं को सुनने के लिए थोड़े ही आते थे? काशीधाम में श्री गँगा के किनारे पर बैठ कर हजारों धर्मानुरागी प्रातःकाल के समय जिस प्रकार विविध

भक्तिपूर्ण छन्दों का गायन और परम पवित्र वेद-शास्त्र का अध्ययन करते हैं, उस प्रकार क्या कभी क़ासिमबाज़ार में भी भागीरथी के किनारे धर्म-शास्त्र की चर्चा हुई थी? नहीं यहां धर्म का नाम ही नहीं था। धर्मशास्त्र की पैठ ही नहीं थी। यहां तो हर घड़ी यही उद्योग था, यही चेष्टा थी कि कौन किसे धोखा देकर दो पैसे प्राप्त करे, कौन किसे ठग मूँड़ कर अपना पेट भरे।

क्या देश, क्या समुद्र, क्या गांव, क्या नगर, धर्मानुष्ठान का पवित्र संसर्ग सभी को अमर बना सकता है। जिस किसी भी वस्तु अथवा जिस किसी भी स्थान के साथ धर्म और सदाचार सम्बन्धी भाव, संस्कार या घटना सम्बद्ध रही है, उस वस्तु अथवा उस स्थान ने धर्म के पवित्र संसर्ग से अमरत्व लाभ किया है। परम सच्चरित्रा साध्वी स्त्रियां जिस प्रकार यौवन के अन्त में भी दुराचारिणी कुलटाओं की भांति विरूपता को प्राप्त नहीं होतीं वरन् यौवन का अन्त हो जाने पर प्रौढ़ और वृद्धावस्था में स्नेह, दया और पवित्रता की ज्योति से उनका चेहरा और भी अधिक जगमगाने लगता है, जनसाधारण उन्हें देवी की भांति पूजते और उनका अत्यंत सत्कार करते हैं, इसी प्रकार साधु-महात्माओं के पवित्र सम्मिलन के स्थानों का सौन्दर्य कभी नष्ट नहीं होता, उनका महत्व चिरस्थाई होता है, उनके माहात्म्य का कभी ह्रास नहीं होता। ऐसे स्थान सदा के लिए अमर होकर काल के आक्रमणों को परास्त करते रहते हैं।

परन्तु पाठक! कासिमबाज़ार का लोप — क़ासिमबाज़ार की वर्त्तमान अवस्था तुम्हें क्या उपदेश देती है? क़ासिम बाज़ार का यह अधःपतन केवल वेश-विन्यास के साजसामान

से परिपूर्ण, धर्मशून्य मानव-जीवन की असारता को प्रतिवादित करता है। पाठिकाओ! कासिमबाजार की वर्तमान दुर्दशा को देख कर तुमने कौन सी शिक्षा ली? जिस प्रकार पिता एवं पतिहीना बाल-विधवायें पति की मृत्यु के अनन्तर जब उन के छोड़े हुए प्रभूत ऐश्वर्य और धन सम्पत्ति की अधिकारिणी होती हैं तो सैकड़ों धूर्त ठग और दुराचारी मनुष्य उनके धन और धर्म को नष्ट करने के अभिप्राय से उन्हें कुपथ की ओर घसीट लेजाते हैं और धीरे धीरे उनका सर्वस्व हरण कर युवावस्था के अन्त तक उन्हे दर-दर की भिखारिणी बना डालते हैं, उस प्रकार राजशासन से शून्य, देश के नवाब और देश निवासियों से अरक्षित, अतुल ऐश्वर्यशाली कासिमबाजार के धन-ऐश्वर्य को हस्तगत करने की लोभ-लालसा से देशदेशान्तर के अर्थ-लोलुप व्यापारी उसकी छाती पर आ डटे थे और विविध प्रकार के कुकर्मों, दुष्पापों एवं अत्याचारों से उसकी छाती को कलंकित कर — उसके सारे धन-वैभव को हड़प कर, उसे भिखारी बना चले गये। पवित्र सलिला भागीरथी ने उसे कलंकित समझ उसका संसर्ग छोड़ दिया और वहा से हट कर वह अन्यत्र प्रवाहित होने लगीं। कासिमबाजार गंगा के सामीप्य से भी हाथ धो बैठा।

ईसवी सन १७६६ के जुलाई महीने में, जब कि कासिमबाजार में असख्य आदमियों की बस्ती थी, और वहां विविध प्रकार के पाप और अत्याचारों का दौर-दौरा था, एक दिन सध्या के आठ बजे बगकुलांगार रामहरी साथी, सावित्री को कन्धों पर रक्खे अंगरेजों की रेशम की कोठी के पास आ उपस्थित हुए।

कोठी के दाहिने पार्श्व में एक इकतल्ला दालान थी। कोठी के असिस्टेन्ट इवसन् साहब इसी दालान में रहा करते थे। इन कम्बख्तों ने सावित्री को ला कर इवसन् साहब के दालान के बराडे में उतारा। सावित्री अभी तक बेहोश थी। क़ासिमबाज़ार पहुंचते ही आदमियों के कोलाहल से जाग पड़ी, अचैतन्यता जाती रही, आंखें खोल कर देखा कि किसी दालान के बराडे मे पडी हूं, एक आदमी पास खड़ा है। भय के मारे शरीर कांपने लगा। बारम्बार मनही मन कहने लगी — "हे विपद्-भंजन विश्वम्भर! इस अनाथा की रक्षा करो।"

रेशम की कोठी के गुमाश्ता रामहरी बाबू जिस अभिप्राय से सावित्री को लाये थे और जिस प्रकार सावित्री के पिता की यह दुर्दशा हुई थी, इसे बतलाने के लिए, पहले कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है।

पाठक और पाठिकाओं में बहुतों का यह विश्वास है कि मुसलमान राजाओं के शासनकाल में प्रजा के ऊपर घोर अत्याचार होता था। हम भी इसे स्वीकार करते हैं कि मुसलमान राजागण बडे अत्याचारी थे। उनके अत्याचार से प्रजा को बडे बडे क्लेश भोगने पडे थे, इस में कोई सन्देह नहीं। परन्तु उनके अत्याचार के अन्तर्गत कोई कौशल नहीं देख पड़ता था। उनका अत्याचार सिर्फ एक प्रकार की असभ्योचित निर्दयता थी। कौशलपूर्ण क्रमबद्ध अत्याचार, विक्रेय वस्तुओं पर एकाधिकार स्थापित करके व्यापार की जड़ में कुठाराघात, विविध चालों व फरेबों से जनसाधारण के धन का अपहरण इत्यादि कुप्रथाओं से मुसलमानी शासन कभी नहीं कलंकित हुआ। उनकी

असंख्योचित क्रोधाग्नि में पड़ कर समय समय पर देश के कितने ही धनी-मानियों को अपना सर्वस्व नष्ट कर देना पड़ा, कितनों ही को धर्म खोना पड़ा, कितनों ही को जाति भ्रष्ट होना पड़ा। अपनी दुर्दमनीय भोग लालसा को तृप्त करने के लिए समय-समय पर उन्होंने कितनी ही भद्र महिलाओं के प्रति अत्यन्त कुत्सित और घृणित अत्याचार करके अपने हाथों को कलंकित किया। परन्तु गरीब मजदूरों को, दुर्बल व्यवसायियों को, तन्तुकार आदि शिल्पियों और कारीगरों को उनके अत्याचार से कभी न पीड़ित होना पड़ा। इन लोगों के प्रति अत्याचार की बात तो दूर रही, अनेकानेक जुलाहे तथा अन्यान्य कारीगर लोग मुसलमान राजाओं के निकट अपने अपने शिल्प-नैपुण्य का परिचय देकर पुरस्कार स्वरूप उनसे जागीरें प्राप्त करते रहे।

परन्तु पलासी-युद्ध के बाद जब बंगाल पर अंगरेज व्यापारियों का आधिपत्य स्थापित हुआ, और जब से मुर्शिदाबाद के नवाब अंगरेजों की मुट्ठी में रहने लगे, एवं कायर मीरजाफर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तात्कालिक अर्थलोलुप कर्मचारियों के निकट इकरारनामा लिख कर नवाब की गद्दी पर बैठा, उस समय से देशी व्यापार के मूल में कुठाराघात हुआ। विविध प्रकार की विक्रेय वस्तुओं पर एकाधिकार स्थापित हो गया। देशी व्यापारियों के प्रति दिनों दिन घोर अत्याचार होने लगा। तन्तुकार इत्यादि शिल्पी और कारीगर अपना अपना व्यवसाय और घर-द्वार छोड़कर इधर उधर भागने लगे।

सिराजुद्दौला की सिंहासन-च्युति के समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने कभी स्वप्न में भी

सोचा था कि भविष्य में इस विस्तीर्ण भारत साम्राज्य के शासन का भार हमारे हाथों में आ जायगा। अतएव पलासी-युद्ध के बाद (जब मीरजाफर बंगाल का सूबेदार हुआ तो अंगरेजों ने उसके निकट यह प्रस्ताव किया कि आप हमारी व्यापारीय कोठियों के साहिबों और गुमाश्तों के काम-काज में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न कर सकेंगे बल्कि यदि कभी दूसरा कोई उन्हें सताने आवे या उनके कार्य में बाधा डाले तो आपको उनको सहायता करनी होगी। कायर मीरजाफर ने इस प्रस्ताव को मञ्जूर कर लिया। अंगरेजों की व्यापार की कोठियों के साहबों और गुमाश्तों ने देश के जुलाहे इत्यादि सभी श्रेणी के कारीगरों पर घोर अत्याचार करना शुरू किया।* इसका एक विशेष कारण यह था कि इस समय इंगलैण्ड के प्रतिष्ठित घरानों के अङ्गरेज भारतवर्ष में नहीं आते थे। तात्कालिक इङ्गलैण्डीय समाज के अनुदार और अर्थलोलुप व्यक्ति ही, जिन्हें स्वदेश में भोजन नहीं जुटता था और जो हर तरह के कुकर्मों में लीन रहते थे, धन के लोभ से इस देश को आते थे। रुपया इकट्ठा करने के लिए उन्हें कोई भी कुकर्म करने में संकोच नहीं होता था।† ये लोग देशी तन्तुकारों को जबरदस्ती, मजबूर करके, दादनी (पेशगी रुपया) देते थे। अनिच्छा रहते हुए भी तन्तुकारों को इस प्रकार दादनी का रुपया लेकर निर्दिष्ट समय के भीतर, निर्दिष्ट सख्यक वस्त्र बुनकर देने के लिए इकरारनामा लिख देना

* Vide Note (1) in the appendix

† Vide Note (2) in the appendix

पड़ता था ।* परन्तु उनके बुने हुए वस्त्रों का मूल्य निश्चित करते समय अङ्गरेज लोग अथवा उनकी कोठियों के गुमाश्ता गण जिस वस्त्र का वास्तविक मूल्य १००) होता, उसके ५०) से ज्यादह नहीं देते थे । असहाय तन्तुकारों को इस प्रकार के अत्याचार से छुटकारा पाने की कोई आशा न थी। देश के नवाब थे मीरजाफर । वे पहले ही यह इकरार कर चुके थे कि हम अङ्गरेजों की वाणिज्य-कोठियों के साहबों और गमाश्तो के काम-काज में किसी तरह का दखल न देंगे । अतएव गरीब तन्तुकार चुपचाप यह अत्याचार सहते रहे । इस समय कासिमबाजार में फरासीसी, डच और आरमीनियन लोगों की भी रेशम की कोठियां थीं। अभी तक तन्तुकार लोग अपने बुने हुए वस्त्रों को उनके हाथ भी बेच सकते थे । परन्तु अब अङ्गरेजों ने तन्तुकारों से कहा कि वे फरासीसों और डचों के हाथ कपड़ा न बेचें। यदि कोई व्यक्ति अङ्गरेजों के इस निषेध को न मानकर फरासीसों अथवा डचों के हाथ कपड़ा बेच देता तो अङ्गरेजों की फैक्टरी के साहब और गुमाश्ता लोग उसके लिए गुरुतर दण्ड का विधान करते थे । † कभी उसका घरबार लूट लेते थे और कभी उसकी स्त्रियों को अपमानित करते थे। इसी तरह कितने ही तन्तुकारों को जातिभ्रष्ट होना पड़ा, एवं इस दशा में अनन्योपाय होकर उन्होंने कपड़ा बुनने का व्यवसाय एकदम छोड़ दिया और मूड़ मुड़ाकर वैरागी बन गये ।

* Vide Note (2) in the appendix

† Vide Note (3) in the appendix

फ़रासीस अथवा डच लोगों के हाथ कपड़ा बेचने पर जुलाहे लोग सहज ही उसका उपयुक्त मूल्य पा सकते थे, परन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों के भय से वे कभी दूसरों के हाथ कपड़ा नहीं बेचने पाते थे। इधर अंगरेजों की कोठियों के बंगाली गुमाश्ता तथा अन्यान्य देशी धूर्त, जुलाहों से रुपया ऐंठने के अभिप्राय से उनके ऊपर इस प्रकार के झूठे अभियोग आरोपित करते रहते थे कि उन्होंने गुप्त रूप से फ़रासीसों अथवा डचों के हाथ कपड़ा बेचा है। कोठी के साहब लोग इस प्रकार के अभियोगों को सुनते ही उनके सत्यासत्य का अनुसंधान न करके तत्काल ही उनके यहां सिपाही भेजते थे। सिपाही लोग उनका घरबार लूट लेते थे, उनकी स्त्रियों का धर्म नष्ट करके, उन्हें जातिभ्रष्ट कर डालते थे।

क़ासिमबाज़ार के आस पास हज़ारों जुलाहों की बस्ती थी, परन्तु ऐसा कहा जाता है कि मीरक़ासिम की सिंहासनच्युति के बाद ईसवी सन् १७६६ में एक बार एक ही रात में कोई सात सौ जुलाहे अपना अपना गांव छोड़ भाग गये थे।

सावित्री के पिता सभाराम बसाक बड़े प्रसिद्ध तन्तुकार थे। इनके समान अच्छा वस्त्र बुननेवाले तन्तुकार बहुत थोड़े थे। जिस ज़माने में अलीवर्दीख़ां बंगाल के सूबेदार थे, उस ज़माने में सभाराम ने एक बहुत सुन्दर वस्त्र बुन कर नवाब को भेंट किया था। अलीवर्दीख़ां ने इन के शिल्पनैपुण्य से चकित हो पुरस्कारस्वरूप इन्हें पांच सौ बीघे की जागीर प्रदान की। मुर्शिदाबाद के सेठ घराने के सब लोगों के पहिनने के लिए सारे वस्त्र सभाराम

ही तैयार करते थे, और समय समय पर विवाह, नामकरण इत्यादि उत्सवों के उपलक्ष में सेठों के यहां से हजारों रुपया पुरस्कार पाते थे। इस प्रकार सभाराम ने बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया था। परन्तु नवाब के यहां से पांच सौ बीघे की जागीर पाने के बाद सभाराम ने साधारणतः वस्त्र बुनने का व्यवसाय छोड़ दिया। अब वे सिर्फ सेठ घराने और नवाब घराने के आदमियों के लिए हर साल थोड़ा सा अच्छा कपड़ा बुनते थे और उसी से उन्हें साल में दो तीन हजार रुपया मिल जाता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दीवानी की सनद प्राप्त होने के बाद अंग्रेजों की क़ासिमबाज़ार की रेशम की कोठी के अध्यक्ष को कहीं खबर मिली कि सभाराम बहुत अच्छा कपड़ा बुनता है; बस, सभाराम पर सनीचर की नजर घूमी। परन्तु सभाराम को अब बुढ़ापे ने घेर लिया था, चलने फिरने की शक्ति न रही थी। उनके तीन पुत्र कालाचांद, गोराचांद और रायचांद एवं दामाद नवीनपाल—ये ही चारों उनका व्यवसाय चला रहे थे। अंगरेजों की कोठी के गुमाश्ता रामहरी कई एक सिपाही प्यादों को साथ ले एक दिन सभाराम के मकान पर आये और उनके दामाद तथा पुत्रों से १००) दादनी लेने के लिए कहा। सभाराम के दामाद और पुत्रों ने दादनी लेना अस्वीकार किया। परन्तु गुमाश्ता ने उनकी एक न सुनी। दादनी का रुपया हाथ में देकर इक़रारनामे पर उनके दस्तखत ले लिये। इस इक़रारनामे में क्या लिखा था, वह भी सभाराम के दामाद और पुत्रों को पढ़ कर नहीं सुनाया। रामहरी गुमाश्ता दादनी का रुपया दे और इक़रारनामे पर दस्तख़त ले

कोठी को वापिस गयेगे। परन्तु इस इकरारनामे में यह लिखा था कि दो महीने के भीतर दो हजार रेशमी थान बुन कर देंगे। दो महीने बीतते ही सभाराम के तीनों पुत्र और दामाद कोठी में तलब किये गये। अध्यक्ष साहब ने उनसे इकरारनामे में अंगीकृत दो हजार थान देने के लिए कहा। उन लोगों ने अचम्भे में आकर कहा—"धर्मावतार भला दो महीने के भीतर क्या कोई इतना कपड़ा बुन सकता है?" इतने में कोठी के गुमाश्ता रामहरी चट्टोपाध्याय साहब से कह उठे—"धर्मावतार ये लोग बड़े बदमाश हैं, इन्होंने सारा कपड़ा सैदाबाद के आरमीनियन और फरासीस व्यापारियों के हाथ बेच लिया है। दो हजार क्या, दो महीने में ये पांच हजार थान तयार कर सकते हैं।" साहब ने हुक्म दिया, इन चारों को क़ैद करलो और इनके घर का सारा माल-असबाब कुर्क और नीलाम करके दादनी का रुपया वसूल करो। रामहरी को मालूम था कि सभाराम के घर में बहुत रुपया है। अतएव साहब का हुक्म सुनकर मनही मन सोचने लगे कि आज तो इन लोगों के घर को लूट कर खूब माल मारूंगा। तीन बार "हरि" नाम का स्मरण किया और सिपाही प्यादों को साथ ले मन ही मन आनन्द मनाते सभाराम का घर लूटने चले। इधर सिपाहियों के पहुंचने के दो तीन मिनट पहिले सभाराम के एक आत्मीय व्यक्ति ने सभाराम की स्त्री को इस विपत्ति की सूचना दी। उस समय अंगरेजों की कोठी के सिपाही का नाम सुन कर भय और त्रास के मारे गर्भवती स्त्रियों का गर्भ पात होता था। सभाराम की स्त्री ने अपनी कन्या और बहुओं को साथ ले भागने की

चेष्टा की। सभाराम से चला फिरा भी नहीं जाता था। सावित्री ने झट-पट पिता को गोदी उठाया, और भाग कर एक निकटस्थित जंगल की झाड़ियों के भीतर घुस गई। परन्तु सब लोगों के एक ही तरफ को भागने से सब के पकड़ जाने की आशंका थी, अतएव सभाराम की स्त्री और बहुएं सैदाबाद के आरमीनियन व्यापारियों की कोठी की तरफ भागीं। घर से बाहर होते ही देखा कि गुमाश्ता और सिपाही उनके घर की तरफ चले आ रहे हैं। डर के मारे उनके होश हवास जाते रहे, उन्मत्त की भांति दौड़ने लगी। उन्हें भागते देखकर सिपाहियो ने उनका पीछा किया। बेचारी अनाथा स्त्रियां बचने का कोई उपाय न देख कर, भागीरथी की धारा में कूद पड़ीं। पवित्र सलिला भागीरथी ने उनकी समस्त सांसारिक यन्त्रणाओ को दूर किया, असहाय अब-लाओं को अपने उदर में छुपा लिया। क्या बगीय कुलांगार-रामहरी, क्या वे निर्दयी सिपाही और क्या अर्थ-लोलुप अंगरेज वणिक अब उनके प्रति कोई अत्याचार न कर सकता था, इस संसार के अत्याचारियों के हाथों से छूट कर अब वे अनन्त काल के लिए उसी अनन्त मंगल-मय परमेश्वर की अमृतमयी गोद में जा विराजीं।

गुमाश्ता बाबू ने सिपाहियों को साथ ले सभाराम के सूने घर में प्रवेश किया। घर का सारा माल-असबाब बाहर निकाल कर बेचने के लिए क़ासिमबाज़ार भेज दिया। परन्तु सभाराम का गुप्त धन कहां रखा है, इसका पता न लगा। इस समय देश के लोग रुपये को घर भीतर मिट्टी में गाड़ रखते थे। इन लोगों ने सभाराम के सारे मकानों

को तोड़ताड़ कर धरती को खोदना शुरू किया। परन्तु सारे दिन परिश्रम करने पर भी रुपये का पता न लगा। अंगरेजों की कोठी के गुमाश्ता और सिपाहीगण इसीलिए जब किसी व्यक्ति का घर लूटने जाते थे तो पहले उसके यहां की स्त्रियों को रोक रखते थे। सोचते थे कि जहां स्त्रियों को मारना पीटना और अपमानित करना आरम्भ किया कि वे तुरन्त ही गड़े हुए रुपये का पता बता देंगी। जिन समस्त हतभागिनी स्त्रियों को इस प्रकार इन लोगों के हाथों में पतित होना पड़ता था, उनके प्रति ये लोग जैसा निष्ठुर आचरण करते थे, उसके स्मरणमात्र से हृदय विदीर्ण होता है। उन समस्त अत्याचारों का उल्लेख करके हम भाषा को कलुषित नहीं करना चाहते। वे अश्लीलता से परिपूर्ण हैं, सभ्यता और सुरुचि की सीमा का उल्लंघन किये बिना उनका उल्लेख असम्भव है।

सारे दिन सभाराम का घर खोदने पर भी गुमहरी को गुप्त धन का पता न मिला। अन्त में सर्वथा निराश हो कोठी को लौट आये, और मन ही मन सोचने लगे कि सभाराम के पुत्रों और दामाद को मारने-पीटने से वे अवश्य ही गुप्त धन का पता बता देंगे। निदान उन्होंने इन्हें मारना शुरू किया। मार की चोट से व्यथित हो गोराचाद और रायचाद ने अपनी मानवलीला को समाप्त कर अत्याचार के हाथों से मुक्ति पाई। कालाचाद और नवीनपाल अपने इक़रार को तोड़ने के अपराध में कलकत्ता जेल भेजे गये।

इधर साबित्री अपने पिता को लेकर दो दिन और दो रात निराहार जंगल के भीतर छिपी रही। बाल्यावस्था से ही वह पिता के प्रति असीम श्रद्धा रखती थी और

उनका बहुत ही आदर करती थी। पिता ही को वह अपना जीवन सर्वस्व जानती थी, उन्हीं को अपना आराध्य देवता मानती थी। इस अभिप्राय से कि सावित्री को कभी मुझ से अलग न होना पड़े, रामाराम ने सावित्री का विवाह करके अपने दामाद नवीनपाल को अपने ही पास रख लिया था।

दो दिन और दो रात के बाद सावित्री ने पिता को लेकर कहीं अन्यत्र भाग जाने का निश्चय किया। परन्तु अभी तक उसे कुछ पता नहीं था कि मेरी माता, भौजाई और भाई कहां हैं और उनकी क्या दशा है। बहुत कुछ सोच विचार के अनन्तर वह अपने उसी छोड़े हुए घर को लौट आई। घर में घुसते ही देखा कि सारा घर खसाखसाया पड़ा है, सभी कोठरियों की जमीन खुदी हुई है, जगह जगह पर गड्ढे हैं। अन्न का एक दाना भी बाकी नहीं है। दो दिन और दो रातें निराहार बीती थीं, सोचने लगी कि क्षुधा से पीड़ित पिता को भोजन कहां से लाऊँ। बहुत कुछ सोचा विचारी के अनन्तर निश्चय किया कि भीगते बख्त तन पर जो दो तीन गहने रह गये थे उन्हीं को बेच कर सैदाबाद के बाजार से चावल खरीद लाऊँ। यह सोच कर पिता को अकेला घर में रख और स्वयं सैदाबाद की तरफ चल दी। चलते चलते रास्ते में सैदाबाद के आरमीनियन व्यापारी आराटून साहब की ... आया

खोल था। बदरुन्निसा सावित्री को देखते ही उस का गला पकड़ कर रोने लगी। सावित्री भी रोने लगी और रोते ही रोते पूछा—"मेरी मा और भौजाइयाँ कहाँ हैं, कुछ मालूम है? क्या वे तुम्हारी कोठी में आ गई हैं?"

बदरुन्निसा ने लड़खड़ाती हुई आवाज से कहा—"कल तुम्हारी माता और भौजाइयों की लाशें नदी में उतरा रहीं थीं। मैंने अपनी आंखों उन तीनों की लाशें देखी हैं। तुम्हारे भाई गोराचांद और रामचांद को साहब के आदमियों ने इतना मारा कि वे मर गये। तुम्हारे पति और बड़े भाई को कलकत्ते की जेल में भेज दिया है।"

यह हाल सुनते ही सावित्री शोकावेग से मूर्छित होकर गिर पड़ी। बदरुन्निसा उसके सिर को गोदी में रख कर रास्ते के एक कनारे बैठ गई। कुछ देर बाद सावित्री को होश आया और वह पुनः सिर पीट-पीट कर रोने लगी। बदरुन्निसा ने उसे बहुत कुछ समझाया-बुझाया और कहा—"इस खुले रास्ते में रो-पीट कर गड़बड़ न मचाओ। तुम्हारे घर का गुप्त धन शायद उन लोगों को नहीं मिला है, अतएव सम्भव है वे तुम्हें पकड़ ले जाकर गुप्त धन का पता पूछने की चेष्टा करें।" परन्तु शोक से सावित्री के कान बहिरे हो रहे थे। बदरुन्निसा क्या कह रही है, वह कुछ न समझ सकी। अन्ततः बदरुन्निसा खींचते खींचते उसे फिर उसके घर लिवा ले गई और उसके सिर पर पानी छोड़ने लगी। सावित्री बारम्बार अचेत हो जाती थी, कभी कभी बेहोशी बहुत बढ़ने लगती थी। बदरुन्निसा ने सोचा कि यदि कुछ खायेगी नहीं तो इस का शरीर और भी दुर्बल हो जायगा, फिर इसी व्यथा में मृत्यु हो जाय तो आश्चर्य नहीं। यही सोच कर उसने सावित्री

को पिता के पास लिटा दिया और स्वयं उनके भोजनों का कुछ प्रबन्ध करने के लिए आराट्न साहब की कोठी पर आई। आराट्न साहब की मेम ने बदरुन्निसा की जबानी जब आद्योपान्त सारा वृत्तान्त सुना तो उनका स्त्री-जाति-सुलभ कोमल हृदय विदीर्ण होने लगा, तुरन्त ही उन्होंने दो-तीन रुपये का सामान—चावल, दाल इत्यादि—मँगवाया, और बदरुन्निसा को साथ करके तीन-चार आदमियों के हाथ सभाराम के घर पर भेज दिया। परन्तु सावित्री को इस वक्त भोजन बनाने या खाना खाने की कहाँ फुर्सत ? सारी सुध भूली है, शोकाग्नि से हृदय दग्ध हो रहा है। बदरुन्निसा उसे बारम्बार समझाने-बुझाने लगी। परन्तु इस प्रकार के दारुण दुख में हजार समझा-बुझा कर भी मनुष्य के हृदय को धीरज बँधाना दुःसाध्य है।

वृद्ध सभाराम को अभी तक कुछ हाल नहीं मालूम हुआ। कुछ देर में उन्होंने कहा—"सावित्री गला सूख रहा है, एक घूट पानी दो।" उस समय पिता की दुरवस्था देख कर सावित्री का हृदय और भी अधिक शोकाकुल होने लगा। उठ कर पिता को पानी दिया और उनके लिए भात राँधने लगी। तैयार करके पिता को भोजन कराया। स्वयं कुछ नहीं खाया। बदरुन्निसा मुसलमान थी, सावित्री के पास बैठ कर अपने हाथ से उसके मुँह में कौर दे नहीं सकती थी। सावित्री जब भात बनाने लगी, बदरुन्निसा वहाँ से हट कर दूर जा बैठी, और वहीं बैठे बैठे सावित्री से भात खाने के लिए अनुरोध करती रही। सावित्री किसी तरह खाने को तैयार न हुई। अन्त में बदरुन्निसा ने कहा—"बेटी, यदि तुम लघनों के मारे मर गई तो तुम्हारे इन वृद्ध पिता

को कौन घूंट भर पानी देगा?" बदरुन्निसा ने जब वारम्बार ऐसा कहा तो अन्तत सावित्री ने गिनती के दो तीन चावल पानी में डालकर वही पानी पी लिया। जब तक संध्या हुई। बदरुन्निसा ने घर में एक दीपक जला दिया, और फिर वह अपने स्थान को चली गई।

भोजनों के बाद सभाराम का चित्त कुछ शान्त हुआ। वह सावित्री से पूछने लगे—"बेटी, तुम्हारी मा और भाई कहा हैं, कुछ पता लगा?" सावित्री अपने को न सभाल सकी, फूट फूट कर रोने लगी। माता, भाई और भौजाइयो की मृत्यु का सारा वृत्तान्त पिता को कह सुनाया। सुनते ही सभाराम शोक से मूर्च्छित हो गये। बस, इसी वक्त से सभाराम प्रायः पागल से हो रहे। सदा ही अपने तन की सुध बुध भूले रहते थे। बीच बीच में कभी-कभी कुछ होश आ जाता था।

इसी दशा में पिता के सहित सावित्री इस टूटे-फूटे घर मे रहने लगी। ईसवी सन् १७६६ के जनवरी महीने में इनके ऊपर यह विपत्ति पड़ी। जनवरी से जुलाई तक वे दोनों इसी घर में रहे। अपने पास जो दो चार आभूषण थे, उन्हें बेच-बाच कर सावित्री अपने और पिता के भोजनों का प्रबन्ध करती रहीं। बीच बीच में आराटून साहब की मेम कुछ सहायता देती थीं। बदरुन्निसा दूसरे तीसरे दिन आकर उनकी खबर ले जाती थी। सारा गांव ऊजड़ हो चुका था। सभाराम की जागीर में जो कितने ही जुलाहे तथा अन्यान्य आसामी बसते थे, वे सभी घर छोड़ भाग गये थे। जुलाई मास के प्रारम्भ में अर्थात् सन् ११७२ (१७६६ ई०) के आषाढ़ महीने में, जब कि सावित्री को

भोजनों का बड़ा कष्ट हो रहा था, एक दिन अपने घर के निकट स्थित बाग में से कुछ आम तोड़ कर बाजार में बेचने जा रही थी। रास्ते में मेह बरसने लगा तो घर लौट आई। उसी दिन रात को सिपाही प्यादों के साथ आकर रामहरी ने उसे घर पकड़ा।

पाठकों को याद होगा कि रामहरी ने सावित्री को पकड़ते वक्त कहा था कि "सरकारी काम" है, आज तुझे हर्गिज न छोड़ूंगा। साहब लोगों का कोई भी काम होता, रामहरी उसे सरकारी काम, कहा करते थे। परन्तु कौन से 'सरकारी काम' के लिए वह सावित्री को पकड़ ले गये थे, उसे हम नीचे लिखते हैं।

इसके पहले भारतवर्ष के भावी गवर्नर-जनरल वारन हेस्टिंग्स कासिमबाजार की फैक्टरी के असिस्टेन्ट थे। वारन हेस्टिंग्स अर्थ-लोलुप थे अवश्य, परन्तु वे इन्द्रियासक्त नहीं थे। विशेषतः जब वे कासिमबाजार में थे तो उनकी स्त्री भी उनके साथ थी। कासिमबाजार ही में उनकी पहली स्त्री और उसके गर्भजात बालक का प्राणान्त हुआ था। वारन्हेस्टिंग्स के बाद लपटेन्ट डबसन यहां के असिस्टेन्ट नियुक्त हो कर आये। यह तो ठीक नहीं मालूम कि ये वारन् हेस्टिंग्स ही के बाद यहां आये थे, परन्तु उपन्यास में उल्लिखित इस घटना के समय डबसन साहब ही फैक्टरी के असिस्टेन्ट थे। यह कुछ विषयी और लम्पट थे। फैक्टरी के गुमाश्ता लोगों को इन के लिए देशी स्त्रियां जुटानी पड़ती थीं। यदि कभी कोई बंगाली गुमाश्ता इस तरह का कुकर्म करने में आनाकानी करता था तो यह फौरन उसके उपर रिपोर्ट तानकर उसे बरखास्त करवा देने की चेष्टा करते थे।

बंगाली लोग चाकरी के भक्त ठहरे। संसार में ऐसा कौन सा कुकर्म है, चाकरी के लिए जिसे करने में बंगालियों को संकोच हो? चाकरी बंगालियों का प्राण है, चाकरी उनका जीवन-सर्वस्व है, चाकरी उनकी उपास्यदेवी है। विशेषत इस समय जिन्हें ईस्ट इंडिया कम्पनी की रेशम की कोठियों अथवा नमक की गोदामों मे चाकरी मिल जाती थी, वे तो मानों देश के नवाब ही बन जाते थे। निदान क़ासिमबाज़ार की कोठी में जिस समय जो गुमाश्ता रहता था, उसे डब्सन साहब की इन समस्त कुक्रियाओं में सहायता देनी पड़ती थी।

इन दिनों रामहरी क़ासिमबाज़ार की कोठी के गुमाश्ता थे। इन्हें अपने कर्त्तव्य का कुछ विशेष ज्ञान था। "सरकारी काम" पूरा करने के लिए प्राणपण से चेष्टा करते थे।

डब्सन साहब के इन समस्त कुकर्मों में सहायता पहुंचाने को वह "सरकारी काम" समझते थे। परन्तु इन दिनों क़ासिमबाज़ार के चारों तरफ के गांव प्राय उजड़ हो चुके थे अतएव रामहरी को उपर्युक्त "सरकारी काम" चलाने में बड़ी दिक्कत पड़ रही था।

एक दिन डब्सन साहब ने रामहरी से कहा—"साला बदमाश तुम कुछ काम का आदमी नहीं, तुम को बरतरफ़ करने होगा।"

रामहरी ने देखा, बड़ी आफ़त आई। साहब को सन्तुष्ट करने के लिए इधर-उधर स्त्री के खोज मे दौड़ने-धूपने लगे चार-पांच दिन लगातार चक्कर काटते रहे पर काम न हुआ। ऐसी दशा मे रामहरी ने कहीं दूर जाकर स्त्री तलाश कर लाने के लिए साहब से एक हफ्ते की छुट्टी मांगी। परन्तु डब्सन साहब ने छुट्टी नहीं दी। जरूरी कार्य ठहरा, इतना

विलम्ब सहन न हुआ। इसके बाद एक दिन रविवार को तीसरे पहर के वक्त जब डवमन साहब गिर्जे से लौटे, रामहरी को बुला भेजा। रामहरी कांपते-कांपते, साहब के सामने आ उपस्थित हुये। साहब ने गुस्से में आकर कहा— "बदमाश, तुझे याद नहीं, चार दफे हम तुमको माफ किया"।

× × × × ×

—कहीं चाकरी न चली जाय,—इस भय से रामहरी के प्राण काप गये। "थैंक यू सर" (Thank you sir) "वेरी गुड सर" (Very good sir)—कह कर रामहरी, साहब के कमरे से बाहर निकले। मन ही मन स्थिर किया, जो कुछ हो—कोई न कोई उपाय करना ही पड़ेगा। बहुत कुछ खोजा-खोजी के बाद पता मिला कि सभाराम के गिरे पड़े मकान में उनकी लड़की सावित्री रहती है। निदान सावित्री के पास दौड़ लगानी शुरू की। विविध प्रकार के प्रलोभन देने लगे। परन्तु सावित्री वास्तव में सत्यवान् की स्त्री सावित्री ही की तरह सच्चरित्रा रमणी थी। किसी तरह भी धर्मत्याग के लिए तैयार न हुई, वरन् वहां से भाग जाने का उपाय सोचने लगी, परन्तु मृतप्राय पिता को छोड़ कर भागती कैसे। अन्तत अहर्निश केवल परमेश्वर का ध्यान करने लगी। जभी रामहरी की बात याद आती, तभी चिल्ला उठती — हे दीनबन्धु, "हे विपद्भञ्जन भगवान! मेरे धर्म की रक्षा करो।" दो तीन दिन लगातार रामहरी सावित्री के पास आये, बहुतेरा समझाया, बहुतेरी खुशामद की, परन्तु जब देखा कि सावित्री किसी तरह कब्जे में नहीं आती, किसी उपाय से धर्म-त्याग के लिए तयार नहीं होती,

तो मन ही मन निश्चय किया कि कोठी में दो तीन सिपाही प्यादों को साथ लाकर जबरदस्ती इसे साहब के पास पहुंचाऊंगा। निदान आज उन्होंने सावित्री को जबरदस्ती पकड़ लाकर डब्सन साहब की कोठी के बरामदे में ला बिठाया। डर के मारे सावित्री का शरीर काप रहा है, मन ही मन ईश्वर को पुकार रही है, बारम्बार कहती है — "विपद्भञ्जन-भगवान्! मेरी रक्षा करो।"

रात के आठ बजे सावित्री को बरामदे में रखकर रामहरी डब्सन साहब के कमरे में गए और उन्हें इस शुभ-सम्वाद की सूचना दी। साहब बड़े प्रसन्न हुए। फौरन कह उठे— "ले आओ।"

परन्तु पाठक! संसार के समस्त कार्य उस न्यायवान् परमेश्वर के द्वारा परिशासित होते हैं। कार्य-जगत् में जगत् पिता का अपूर्व कौशल विद्यमान है। पापीजनों को कुकर्म से विरत रखने के लिए, निःसहाय निर्बलों को निर्दय पापियों के अत्याचार से बचाने के लिए कार्य-कारण-शृङ्खला के द्वारा मङ्गलमय भगवान् उन दुष्ट पापियों के हाथ पांव बांध रखते हैं।

रामहरी सावित्री को अन्दर लिवा ले जाने के लिए जैसे ही कमरे के बाहर आये, देखा कि कोठी के प्रधान कार्याध्यक्ष फ्रान्सिस साइक साहब बरामदे में खड़े हैं। साइक साहब में कोई इन्द्रिय दोष नहीं था, वरन् वे सदा ही अन्यान्य साहब लोगों की कुवासनाओं और कुव्यवहारों का दमन करने के लिए यथासाध्य चेष्टा करते थे। रामहरी को देखते ही साइक साहब ने कहा— "यह स्त्री कौन है?" रामहरी के होश उड़ गये। घबराकर कह उठे— "धर्मा

वतार'। अंधेरी रात में यह वैष्णवी रास्ता भूल गई थी। मैं उधर से निकला, और इस प्रकार की दुरवस्था में प्राप्त देखकर मैं इसे अपने साथ लेता आया। आज मेरे घर रहेगी, सवेरे अपने अखाड़े को चली जायगी।"

साइक साहब इस वक्त बड़े व्यस्त हैं, बहुत जरूरी काम से आये हैं। रामहरी का उत्तर सुनकर चुपचाप भीतर को चल दिए। डबसन साहब के कमरे के दरवाजे पर जोर से आवाज देने लगे—'लफटैन्ट डबसन,, लफटैन्ट डबसन !!! भीतर से आवाज आई — "कम इन मिस्टर साइक।" (Come in Mr Sykes) मिस्टर साइक ने अन्दर घुसते ही कहा— "लफटैन्ट डबसन, तुमको अभी, इसी क्षण, दीनाजपुर जाना पड़ेगा। पचास गोरा और दो सौ सिपाही लेकर तुरन्त ही दीनाजपुर चले जाओ। कन्टूनमेन्ट में मेजर संडर्स को मैंने सामान तैयार रखने के लिए लिख दिया है। सम्भवतः वे सब प्रबन्ध कर चुके होंगे। तुम अब क्षण भर भी देर न करो। दीनाजपुर में आरमीनियन व्यापारी कारापिट आगाटून के नमकगोदाम में प्राय तीस हजार मन नमक मौजूद है। उससे बहुतेरा अनुरोध किया गया कि वह अपना सारा नमक ट्रेडिंग कम्पनी के हाथों बेंच दे। परन्तु वह किसी तरह इसके लिए राजी नहीं हुआ। अन्तत हम लोगों ने उसे दो रुपया फी मन के हिसाब से नमक का मूल्य देना स्वीकार किया, वह उस पर भी राजी नहीं। तुम रहा जाओ, पहले तो उसके निकट, एक बार फिर, दो रुपया फी मन के हिसाब से मूल्य देने का प्रस्ताव करो, यदि तब भी न स्वीकार करे तो उसका गोदाम तोड़ कर वहाँ का सारा नमक अपने गोदाम में जमा करलो। उस

माश्ता के पास दो रुपया मन के हिसाब से मूल्य भेज
[या जावेगा।"

डब्मन साहब ने कहा — "अच्छा तो आप घर जाइये,
[अभी रवाना होता हूं।" परन्तु साइक साहब बडी लाग
[काम करते थे। वे कहने लगे — "तुम्हें रवाना करके घर
[ाऊँगा, नौकरों को बुला कर सामान बाधने के लिए कहो।"
[ब्मन साहब ने देखा, जब तक मैं रवाना नहीं हो जाऊँगा,
[ाइक साहब यहा से नहीं हटेंगे। तत्काल ही नौकरों को
[ामान बांधने की आज्ञा दी। बाहर आकर रामहरी के एक
[ात जमाई और कहने लगे — "साला, साइक साहब को
[हीं देखता, हटाओ जल्दी।"

साहब का सुचारु पदाघात प्राप्त होते ही रामहरी ने चट
[ट सावित्री से कहा — 'अरे भाग — भाग — बहुत कुछ
[हने सुनने पर आज साहब ने तुझे छोड दिया।'" सावित्री
[भी-तक बेहोश पड़ी थी। यह बात कान में पडते ही
[सके शरीर में नव शक्ति का सचार हुआ। औंधें मुँह वहां
[े भागी निकली। अँधेरी रात थी, चारों ओर घोर अन्धकार
[ाया था। किधर को दौड रही थी, कुछ पता न था।
' हे परमेश्वर, आज तुम्हीं ने रक्षा की, हे परमेश्वर आज
[ुम्हीं ने रक्षा की"—यही कहते कहते सावित्री अविराम दौड़ती
[ली जाती थी।



लूट या व्यापार।

ईसवी सन् १७६५ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने नमक के व्यापार के सम्बन्ध में जो नियम प्रचारित किये उनका सविस्तार उल्लेख न करने पर हमारे पाठक इस परिच्छेद मे उल्लिखित घटनाओं के मर्म अच्छी तरह न समझ सकेंगे। अतएव आरम्भ में हम उन ऐतिहासिक बातो का ही उल्लेख करते हैं।

मुसलमान कुल-तिलक, बंगाल के अन्तिम सूबेदार, उदार-चेता, न्यायपरायण, प्रजा-हितैषी नवाब मीरकासिम जिस लिए अंगरेजों की कोपाग्नि में पतित हुए थे, और जिस प्रकार उन्हें सिंहासनच्युत होना पड़ा था, वह सम्भवत सभी पाठकों को ज्ञात है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने अपने व्यापार की विक्रेय वस्तुओं के ऊपर, देश-प्रचलित-प्रथा के अनुसार महसूल देना अस्वीकार किया। मीरकासिम ने जब यह देखा कि अंगरेज लोग किसी तरह महसूल देने के लिए तैयार नहीं होते, तब उन्होंने सोचा कि ऐसी दशा में सिर्फ गरीब बंगालियों से ही महसूल वसूल करना सर्वथा अन्याय है। वह उस वक्त देश का राजा था। किस प्रकार वह एक श्रेणी की प्रजा को महसूल की अदायगी से मुक्त रखता और दूसरी श्रेणी की प्रजा से महसूल वसूल करता? न्यायपरता के अनुरोध से उसने महसूल लेने की प्रथा को

एक दम उठा देने का निश्चय किया। परन्तु इस पर खीष्ट धर्मावलम्बी सुसभ्य अगरेज कह उठे कि बंगालियों से महसूल जरूर लेना पड़ेगा। अल्पज्ञान मीरकासिम अगरेजों के इस नूतन खृष्ट-धर्मोचित व्यवहार का मर्म समझने में सर्वथा असमर्थ था। अगरेजी राजनीति के गूढ़ तत्वों का उसे कुछ ज्ञान न था, अतएव वह उनके इस प्रकार के प्रस्ताव से सहमत न हुआ। इसी पर अँगरेजों से उसका विवाद छिड़ा और अन्तत अँगरेजों के षडयंत्र में फँस कर उसे सिंहासन-च्युत होना पड़ा।*

ईसवी सन १७६४ में मीरकासिम की सिंहासनच्युति का सम्वाद जब विलायत में पहुचा तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने सोचा कि हमारे कलकत्ते के कर्मचारियों ने जिस प्रकार का अन्याय-व्यवहार आरम्भ किया है, और देशी व्यापारियों के प्रति वे जैसा कुछ अत्याचार कर रहे हैं, उससे बंगाल में हमारे आधिपत्य का सर्वथा लोप हो जायगा। इन डाइरेक्टरों में सालविन् नामक एक अँगरेज विशेष न्यायपरायण थे। यह क्लाइव के परम शत्रु थे। इन का विश्वास था कि क्लाइव को धर्माधर्म का कुछ भी खयाल नहीं रहता, धन के लोभ में वह सभी तरह के कुकर्मों से अपने हाथों को कलंकित कर सकता है।†

इन्हीं के भय से क्लाइव को दुबारा भारतवर्ष में आने की इच्छा न होती थी, परन्तु मीरकासिम की सिंहासनच्युति के बाद डाइरेक्टरों ने क्लाइव को पुन भारतवर्ष में भेजना

* Vide Note (5) in the appendix

† Vide Note (2) in the appendix

स्थिर किया । इधर क्लाइव ने स्वयं उपयाचक होकर ईसवी सन् १७६४ को, इक्कीसवीं अपरेल को डाइरेक्टरों के पास इस आशय का एक पत्र भेजा* कि यदि मुझे पुन. बंगाल को भेज दिया जाय तो मैं कम्पनी के कर्मचारियों को नमक, तमाखू और सुपारी के व्यापार में लिप्त न होने दूंगा । निदान इस प्रकार का वचन देकर क्लाइव पुन. भारतवर्ष में आये ।

क्लाइव को भारतवर्ष में भेजने के बाद तुरन्त ही, अर्थात् ईसवी सन १७६४ की पहली जून को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने कलकत्ता कौंसिल को एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखा । इस पत्र में इस विषय का उपदेश दिया गया था कि कम्पनी के कलकत्ते के कर्मचारी नमक, तमाखू और सुपारी के व्यापार के सम्बन्ध में अमुक-अमुक उपायों का अवलम्बन करें । डाइरेक्टरों के इस पत्र में यह आज्ञा दी गई थी कि कलकत्ते के गवर्नर तथा कौंसिल मुर्शिदाबाद के वर्त्तमान नवाब से मेल करके, और उनकी राय से, नमक, तमाखू और सुपारी के व्यापार-सम्बन्धी नियम संस्थापित कर लें । नवाब के हानि-लाभ के प्रति विशेष लक्ष्य रखें, और देश के व्यापारियों तथा देश के जनसाधारण का जिस से कोई अनिष्ट न हो, इसका पूरा खयाल रख कर नियमावली तयार करें ।

परन्तु उस समय अंगरेज लोग तो सिर्फ धन के लोभ से इस देश में आते थे । उन्होंने इन समस्त उपदेशों के

* Vide Note (6) in the appendix.

सर्वथा विपरीत आचरण किया । क्लाइव ने भी अपने वचन को बिलकुल भुला दिया । नवाब की राय लेना तो दूर रहा उनसे बात भी न पूछी गई । ईस्वी सन् १७६५ की दसवीं अगस्त को इन लोगों ने अपने स्वार्थ-साधनार्थ और बंगाल की धन सम्पत्ति को लूटने के अभिप्राय से नमक, तमाखू तथा सुपारी के व्यापार के सम्बन्ध में बड़े भयानक नियम* प्रचारित किये । इन नियमों के अनुसार कार्य आरम्भ होते ही देश का सर्वनाश होने लगा । चारों ओर हाहाकार मचगया । देशी प्रजा के दुःखों की सीमा न रही।

क्लाइव और उनकी कौंसिल के मेम्बरों ने कलकत्ते में ट्रेडिंग एसोसियेशन नामक एक वणिक-सभा स्थापित की। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्राय सभी अंगरेज कर्मचारी इस वणिक-सभा के मेम्बर हुए । यह नियम बनाया गया कि देश में जितना नमक, तमाखू और सुपारी पैदा होगा, सब का सब देशी लोगों को पहले वणिक-सभा के हाथों बेंच देना पड़ेगा । बाद में वणिक-सभा इन समस्त विक्रेय वस्तुओं को देशी व्यापारियों के हाथ बेंचेगी । देशी व्यापारी इस प्रकार वणिक-सभा के पास से नमक, तमाखू और सुपारी खरीद-खरीद कर देश के जनसाधारण के हाथ बेंचा करेंगे। देशी व्यापारी देशी आदमियों के पास से ये वस्तुयें कदापि न खरीद सकेंगे ।

मूल्य के सम्बन्ध में यह नियम हुआ कि वणिक-सभा इस देश के नुनेरियों (नमक तैयार करनेवालों) के पास से ७५) फी सैकड़ा मन के हिसाब से नमक खरीद

---

* Vide Note (8) in the appendix

करेगी, बाद में ५००) फी सैकड़ा मन के हिसाब से वह नमक देशी व्यापारियो के हाथ बेचेगी। देशी व्यापारी ५००) फी सैकड़ा मन के हिसाब से नमक खरीद-खरीद कर, उसके ऊपर निर्दिष्ट लाभ रख कर, देश के जन-साधारण के हाथ बेचेंगे।

पाठक! जरा विचार कीजिये, यह लूट थी या व्यापार? बंगाल में इस समय शायद १।) फी मन के भाव मे नमक बिकता था। जन-साधारण को दो पैसे में प्राय. एक सेर नमक मिलता था। परन्तु उपरयुक्त नियमो के अनुसार अब एक ओर तो देश के नमक तैयार करनेवाले नुनेरियों और महाजनो को १।) के बजाय ॥।) फी मन के भाव मे नमक वणिक सभा के हाथों बेचना पड़ा, और दूसरी ओर देश के जन-साधारण को १।) के स्थान में सात रुपया, साढे सात रुपया फी मन के भाव में नमक खरीदना पड़ा। सभी को नमक की जरूरत ठहरी। जब देशी व्यापारियो को वणिक सभा के पास से ५) फी मन के हिसाब में नमक खरीदना पड़ा तो वे यदि उसे सात रुपया, साढे सात रुपया फी मन के भाव में न बेचते तो लेते ही क्या? निदान वणिक-सभा के अपरिमित मुनाफे के लिए देश के समस्त जन-साधारण को क्षतिग्रस्त होना पड़ा।

अंगरेजी वणिक-सभा नमक के व्यापार पर इस प्रकार का एकाधिकार संस्थापित कर के देश का धन बटोरने लगी। गरीबों में हाहाकार मच उठा। कितने ही बेचारे नमक खरीदने में सर्वथा असमर्थ हुए, और वे एक काष्ठ-विशेष का कोयला पानी में डाल कर उसी कोयला मिश्रित खारी

पानी से नमक की जरूरत रफा करने लगे। परन्तु नमक की महगी और उसके कारण ग़रीबो को नमक के न मिलने मे जो कष्ट हुआ, वह एक सामान्य कष्ट था। इसी से सारे कष्टों का अन्त न हुआ, इसी से सारी मुसीबतें दूर न हुई। नमक-व्यापार के उपलक्ष मे इन दिनो बगालियों को नित नई मुसीबतें, नित नई विपत्तिया, झेलनी पडीं। बगालियो में जैसी असाधारण सहनशीलता वर्त्तमान रही है, जिस प्रकार अविचलित चित्त से वे लगातार कष्टों को बरदाश्त करने की शक्ति रखते हैं, जिस प्रकार हसते हुए वे अपने अपमान को सहन कर लेते हैं, उससे हमारे तात्कालिक पूर्वज, पितामह, प्रपितामह इत्यादि, अनायास ही उन समस्त दुखों को सहन करने मे समर्थ होते थ। परतु इस नमक व्यापार के साथ ही साथ अन्यान्य विविध प्रकार के अत्याचारो का सूत्रपात हुआ।

क्लाइव की कौंसिल के सुयोग्य मेम्बर फ्रांसिस साइक्स इन दिनों क़ासिमबाजार की रेशम की कोठी के कार्याध्यक्ष थे। उन्होने मुर्शिदाबाद के नवाब को बाध्य करके उनकी तरफ से, उनके हस्ताक्षर-युक्त, कितने ही परवाने * जारी करवाये। इन समस्त परवानों के द्वारा नमक बनानेवाले नुनेरियों और नमक-महाल के जिमींदारो को हुक्म दिया गया कि उन्हे कलकत्ते की अङ्गरेजी वणिक सभा के निकट इस आशय के इकरारनामे लिख देने पडेंगे कि वे जितना भी नमक तैयार करेंगे, सब का सब अङ्गरेजी वणिकसभा के हाथों बेचेंगे। उसके अतिरिक्त और किसी के हाथ वे

* Vide Note (9) in the appendix

एक पैसे का नमक न वेच सकेंगे। यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार का इक़रारनामा लिखे विना नमक तयार करे अथवा इकरारनामा लिखने में देर करे तो उसे यथोचित दण्ड दिया जायगा।

मुर्शिदाबाद के नवाब इस वक्त अङ्गरेज़ों की मुट्ठी में थे। नवाब स्वयं अभी नाबालिग थे। महाराज नन्दकुमार इस समय नवाब के दीवान नहीं थे, अंगरेज़ों ने उनकी जगह पर मोहम्मद रज़ा ख़ां का नियुक्त किया था। रज़ा ख़ां अङ्गरेजों की प्रसन्नता का आकांक्षी था। अंगरेज़ व्यापारियों के अनुरोध से, उसी ने, देशीय जन-साधारण के सर्वनाश की परवाह न कर, इस प्रकार के परवाने जारी किए थे। महाराज नन्दकुमार यदि इस समय दीवान के पद पर नियुक्त होते तो देश की यह दुर्दशा कदापि न होती।

ये परवाने जारी होने के बाद अङ्गरेज़ों की नमक गोदाम के साहब और गुमाश्तागण बिना ही किसी अपराध के देश के सैकड़ों आदमियों को पकड़ मंगाते और यह दोष लगा कर उन्हें दण्डित करते कि इन्होने बिना ही इक़रारनामा लिखे नमक तैयार किया अथवा परवाने के आदेश का उल्लंघन किया है। जिन लोगों ने इकरारनामा लिख दिया था उनके ऊपर भी समय समय पर इस प्रकार के अभियोग उपस्थित होने लगे कि इन्हो ने गुप्त रूप से अन्यान्य लोगों के हाथ नमक वेचा है। जो लोग वणिक सभा के पास से नमक ख़रीदते थे वे समय समय पर इस अपराध के लिए दण्डित होते थे कि इन्होने नियत मूल्य से अधिक मूल्य में नमक फ़रोख़्त किया है। देश के जिन आदमियो के यहा कभी सात पीढ़ियों से नमक

ख़रीद-फ़रोख्त का कारबार नहीं हुआ था, वे तक समय पर इस अपराध मे जेल भेजे जाने लगे कि व्यवहार के लिए गुप्त रूप से नमक ख़रीद किया इन अभियोगों की सत्यता-असत्यता के सम्बन्ध में विवेचन नहीं होता था। जहां एक व्यक्ति ने किसी व्यक्ति पर अभियोग उपस्थित किया कि अभियुक्त लिया जाता था। चालाकी और दम-पट्टी से किसी को पकड़ लाने पर बंगाली गुमाश्ता और साहब लोगो कुछ न कुछ लाभ हो जाता था। अभियुक्त को या अर्थ-दण्ड देना पड़ता था, अथवा जेल जाना होता था। स्थान-विशेष में किसी किसी अभियुक्त का घरबार लूट जाता था और उसके घर की स्त्रियोको विविध शीलतापूर्ण अपमान और घृणित अत्याचार सहन करने थे। वस्तुत इस समय के बाद बहुत दिनों तक नमक एकाधिकार व्यापार के द्वारा बंगालियो को जो घोर अत्याचार सहना पड़ा था, वह शब्दों में प्रकट नहीं जा सकता। नमक की कोठी के गुमाश्ता अथवा के दारोग़ा गांव में आ रहे हैं,—यह बात सुनते ही के सब आदमी घरबार छोड़ स्त्री पुत्रों को लेकर गांव निकल भागते थे।

ईसवी सन् १७६५ की अठारवीं सितम्बर को क्लाइव उनकी कौंसिल के मेम्बरो ने नमक, तमाखू तथा सुपारी व्यापार के सम्बन्ध में और भी कई कठोर नियम * जारी किये। नवाब के हानि लाभ अथवा जन-साधारण

---

* Vide Note (11) in the appendix.

अन्योपाय हो अन्त में वेरेलस्ट और साइक साहब के गुमाश्ता के ऊपर कलकत्ते के मेयरकोर्ट में दावा दायर किया।

मेयरकोर्ट की कार्य-प्रणाली और आराटून साहब के मुक़द्दमे का वृत्तान्त यथास्थान सविस्तार रूप में लिखा जायगा। आगे के परिच्छेद में हम उस अनाथा, आश्रयहीना अत्याचार पीड़िता सावित्री की जो दुर्दशा हुई, उसी का उल्लेख करते हैं। सम्भवतः हमारे सहृदय पाठक सावित्री का हाल जानने के लिए विशेष उत्सुक होंगे।



पितृ-वियोग।

विकट अँधेरी रात है, अविराम मूसलाधार मेंह बरस रहा है। प्राणीमात्र का शब्द सुनाई नहीं देता सिर्फ जोर जोर से बादल तड़पा रहा है। बिजली के क्षणस्थायी प्रकाश में क्षण क्षण के बाद सिर्फ दो चार गृहस्थों की, पथ पार्श्व-स्थित पर्णकुटिया दिखाई दे जाती हैं। परन्तु वे किन गृहस्थों की कुटिया हैं, अथवा किस गांव की कुटिया हैं — यह निश्चित करना दुःसाध्य है। इस भयावने अंधकार से समाच्छन्न अंधेरी रात में, प्रबल आंधी मेंह के समय एक अष्टादश वर्षीया युवती ऊपर को मुंह उठाये दौड़ी चली जा रही है। किधर को जाती है, और कहां जाती है — यह कुछ भी नहीं मालूम।

परन्तु जो निराश्रय के आश्रय हैं, जो निरुपाय के पाय हैं, जो अनाथ के नाथ हैं, जिनका करुणा-वारि ानी, मूर्ख, धनी, निधनी, सभी के सिर पर समभाव से रस रहा है, वह क्या आज बन्ध-बान्धव-हीना युवती को ध भूल जावेंगे? निर्दय वगीय कुलागार रामहरी की तरह ाम की कोठी के बंगाली गुमाश्तागण इस दुखिनी रमणी ी दुर्दशा को देख कर यदि तनिक भी दुखित न हों तो हों, स्वार्थपरायण अङ्गरेज व्यापारी असिताङ्गों को वन्य-पशु थवा जङ्गली जन्तु समझ कर साधारण खेल कूद में भी न्हें इस प्रकार के कष्ट और क्लेश दे सकें तो दे सकें; र मगलमय भगवान की दृष्टि में श्वेताङ्ग और असिताङ्ग नों समान हैं, उनकी सुधामयी गोद सभी के लिए प्रसारित । वह सदा ही पीड़ित की पुकार सुनते हैं और विपन्न ो विपदा से मुक्त करते हैं।

सावित्री! डरो नहीं; जगन्माता इस विपन्न अवस्था ं तुम्हें न भूलेगी। जिनकी कृपा से आज तुम्हारे धर्म ी रक्षा हुई, जिनकी दया से आज तुमने उस नरपिशाच ्रंटेन्ट डवसन के हाथों से मुक्ति पाई, वे अब भी तुम्हारे ाथ हैं, वे तुम्हें तुम्हारे घर ही की तरफ ले जा ही हैं।

देर तक दौड़ते-दौड़ते सावित्री इतनी थक गई कि अब ागे बढ़ने की शक्ति न रही। सारे दिन लंघन हुआ है; तिस पर पर्वत के समान दुख का भारी भार छाती पर खा है, फिर शरीर में बल कहा से आवे? इस ओर ब अपने दुख की आशंका किसी अंश में दूर हुई तो पिता ी दुरवस्था का स्मरण हो आया। सोचने लगी कि सम्भवतः

मेरे पिता की मृत्यु हो चुकी होगी। हृदय में दुःसह शोकाग्नि प्रज्वलित हो उठी। मन ही मन कहने लगी—"हाय! हाय! मृत्युकाल में पिता को न देख सकी, उनके मुंह में एक बूद पानी भी न डाल पाया, मरते समय भगवान् का नाम सुनाने के लिए कोई भी उनके पास न रहा।"

यह चिन्ता सावित्री के हृदय को विशेष व्यथित करने लगी कि मृत्यु के समय पिता के कानों में पतितपावन परमेश्वर का पवित्र नाम न पहुचा। हमारे देश में यह एक सुदृढ़ धार्मिक विश्वास है कि मनुष्य अपने जीवन में हजारों पाप-कर्मों में लिप्त रहने पर भी मृत्यु के समय भगवान् के पवित्र नाम को सुनकर मुक्तिलाभ करने में समर्थ होता है। इसी विश्वास से प्रेरित हो सावित्री का हृदय अधिकाधिक व्यथित होने लगा। पिता की दुरवस्था को सोच सोचकर वह अत्यन्त कातर होने लगी।

इतने में फिर एकाएक बिजली चमकी। विद्युतालोक में सामने की तरफ रास्ते के एक किनारे एक पर्ण-कुटी दिखाई दी, सावित्री जरा ठिठकी। परन्तु वह किसकी कुटी है, यह पूछने का साहस न हुआ। सोचने लगी, क्या जाने यदि यह घर अंगरेजों की रेशम की कोठी के किसी सिपाही या प्यादे का हुआ तो सम्भव है वह मेरा धर्म नष्ट करने के लिए तैयार हो। वस्तुतः इस समय अँगरेजों अथवा अँगरेजों की रेशम की कोठी के किसी सिपाही प्यादा या गुमाश्ता का नाम सुनकर देश के समस्त जनसाधारण के हृदय में एक ही साथ भय और घृणा के भाव का सञ्चार हो जाता था। सावित्री दबे पाव उस घर के पास जा खड़ी हुई। इतने में मेंह भी कुछ थम गया। घर के भी

ने रोगी का आर्त्तनाद सुनाई दिया। कुछ देर में एक वृद्ध रमणी की आवाज़ सुनाई दी। वृद्धा कह रही है— "न होता इस देश से भाग चलती, तू ने इस प्रकार अगूठा काटा ही क्यों ?" लडखडाते हुए स्वर मे एक दूसरी स्त्री ने उत्तर दिया—"मा ! भाग जाने के लिए जगह कहा है ? कल सुना है, जिले-जिले में नमक की कोठिया क़ायम करली हैं, कितने ही आदमियो को बेगार मे पकड़ रहे हैं। यह संसार छोडकर कहीं जा सके, तभी निस्तार है।"

सावित्री इनके पारस्परिक वार्त्तालाप को सुनकर समझ गई कि यह सैदाबाद के आराटून साहब की कोठी में काम करने वाली रामा जुलाहिन का घर है। उस वक्त उसके मन किंचित आशा का सचार हुआ। यह भी जान लिया कि रास्ता नहीं भूली हू, ईश्वर की दया से बराबर सीधे रास्ते पर चली आ रही हू। सावित्री बाहर से—"रामा की मा, रामा की मां।" कह कर आवाज़ देने लगी। रामा की मा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने सोचा कि इस प्रबल आधी मेंह में, भयावनी अँधेरी रात में, मुझे कौन पुकारने आवेगा, भूतो अथवा दैत्य-दानवो के अतिरिक्त क्या कहीं मनुष्य इतनी रात को चलते फिरते हैं ?

रामा की मा का यह विश्वास था कि जब से अङ्गरेज़ इस देश मे आये हैं, यहा दो प्रकार के भूतों का दौरात्म्य आरम्भ हुआ है। रात्रि के पहिले भाग मे तो देशी भूतों का दौर-दौरा रहता है, परन्तु रात्रि के पिछले भाग में, निस्तब्ध निशा में सिर्फ़ विलायती भूतों का डंका बजता है। अतएव रामा की मा ने सावत्री को विलायती भूत समझ कर कोई उत्तर न दिया। कितनी ही दफे रामा की मां को पुकारने

पर भी सावित्री ने कोई जवाब न पाया। अन्त में कातर स्वर से कहा —" रामा की मा मैं हू सावित्री, बड़ी आपद मे फँसी हू, दरवाजा खोलकर मुझे घर मे ले लो।" इतने मे रामा उठकर बैठ गई और कहने लगी — " मा, सभाराम की लड़की सावित्री शायद मेंह मे भीग रही है, जल्दी से दरवाजा खोलकर उसे घर ले आओ। इतनी रात को जाने कहा से आ रही है? मुझे मालूम होता है, सभाराम ज्यादा बीमार हो गये हैं, इसीलिये मुझे बुलाने आई है।"

रामा की मा ने चुपके चुपके रामा के कान मे कहा — "मैं उसे घर मे नहीं घुसाऊँगी। जैसा करेगी, वैसा भोगेगी। मैंने दो तीन बार उसे रामहरी बाबू के साथ गुप्तरूप से वार्त्तालाप करते देखा है। शायद अपना धरम खो चुकी है। क़ासिमबाज़ार में किसी साहब अथवा बँगाली बाबू के पास गई होगी, इस वक्त घर लौटी जा रही है।"

रामा ने धीरे से कहा —" नहीं मा, सावित्री ऐसी नहीं है। प्राण चले जाय, पर ऐसा काम कभी न करेगी। उसका बाप शायद ज्यादा बीमार हो गया है, इसीलिए मुझे बुलाने आई है। एक दिन उसने रोते-रोते मुझसे कहा था —" रामा! पिता को किस समय क्या हो जाय, कुछ ठीक नहीं, बुलाऊँ तो चली आना।" मा, तुम दरवाजा खोल कर उसे अन्दर बुलालो।"

रामा की मा —" तू चुपचाप पडी रह। मैं इस वक्त दरवाजा नहीं खोल सकती।"

रामा—" अच्छा तो तुम न खोलो, मैं खोल दूगी।"

यह कहते हुए रामा ने हाथ की पीड़ा के कारण काँपते-काँपते उठकर दरवाजा खोला। सावित्री ने घर

भीतर प्रवेश किया। घर में उजाला नहीं है, अंधकार से परिपूर्ण एक छोटी सी कोठरी है, उसी में एक तरफ रामा का विस्तर है, और दूसरी तरफ उसकी वृद्धा माता लेटी हुई है। सवित्री ने जैसे ही घर के भीतर कदम रक्खा है। रामा की मा ने उसके प्रति घृणा का भाव प्रकट करते हुए पूछा—"ऐं, तू इतनी रात को कहा से आ रही है? कासिमबाजार गई थी जान पड़ता है?"

सावित्री ने रोतेरोते लड़खड़ाते हुए स्वर से कहा—"रामा की मा, अपनी विपत्ति तुम्हें क्या सुनाऊँ—आज रामहरी बाबू कई एक आदमियो को साथ ले मेरे घर आये, और मुझे पकड़कर कासिमबाजार लेगये। रामा की मा, मेरे भाई-भावज सभी नष्ट हो चुके। अच्छा होता यदि भगवान् मुझे भी मृत्यु दे देता। गले में फाँसी लगा कर अथवा गगा मे डूबकर मर जाने की इच्छा होती है। परन्तु फिर सोचती हु—यदि मैं मर गई तो पिता को एक घूट पानी कौन देगा। उफ! न जाने, पिता की आज क्या दशा हुई होगी। रह-रहकर मेरे जी में उठता है कि पिता अब है नहीं।"

सावित्री के इन कातर वाक्यों को सुन कर रामा का दयार्द्र हृदय पानी पानी हो होगया। रामा सर्वथा अशिक्षित थी, अपना नाम भी लिखना नहीं जानती थी, शारीरिक बल उस में बहुत अधिक था, परन्तु आजकल वह कुछ कमजोर हो रही है। ससार में रामा किसी से नहीं डरती थी, उसमें अत्यन्त साहस था, परन्तु इस वक्त उसमें वह साहस नहीं है। अत्याचार से पीड़ित हो वह अपने मानसिक बल-पराक्रम से हाथ धो चुकी है। सावित्री की

कातरोक्ति को सुन कर रामा कह उठी — "एक दिन साला रामहरी कहीं अंधेरी रात में मिल जाय तो मार ही डालूं। यही साला तो साहब-सूबेदारों को परामर्श दे-दे-कर सब की जान खा रहा है।"

रामा की बात सुन कर उसकी मां कह उठी— "अरे, चुप, चुप। कहीं ये बातें रामहरी बाबू के कानों पहुची तो तेरा सिर काट लेगा। तू सभी को अपना मिला समझ कर सब के सामने जो मन में आता है, बक डालती है।" रामा की मा के ऐसा कहने का मतलब यह कि सावित्री शायद रामहरी से ये सब बातें कह देगी रामा का हृदय बहुत ही सरल था। सावित्री के सरल परिपूर्ण वाक्यों को सुन कर रामा ने उसकी सारी बातों विश्वास कर लिया था। परन्तु रामा की मा ने सावि की एक बात पर भी विश्वास नहीं किया। यौवन काल रामा की मा बड़ी प्रसिद्ध दुराचारिणी थी, उसका मन ही मैला था। सावित्री की कातर उक्तियो को सुन कर मन ही मन विविध प्रकार के सन्देह करने लगी, और मे यह निश्चय किया कि सावित्री स्वेच्छापूर्वक अपना सब बेचने के लिए क़ासिमबाज़ार गई थी, आधी-मेंह में आ फसी तो मक्कर कर के रोने धोने लगी। पापान्ध में निमग्न, विविध दुराचारो से कलङ्कित, रामा की का पापी हृदय भला यह समझने को कैसे समर्थ हो सक था कि सावित्री की सच्ची कातरोक्ति का प्रत्येक शब्द के हृदय ही से निकल रहा है, और उस के करुणाज बिलाप के प्रत्येक वाक्य से सत्यता और सरलता के का प्रादुर्भाव हो रहा है। जब तक हृदय पवित्र न

मनुष्य किसी विषय के सत्यासत्य विवेचने में समर्थ नहीं होता, विशेषत. जिनका हृदय अपवित्र है उन्हें किसी काल में भी यह विश्वास नहीं हो सकता कि किसी भी दूसरे व्यक्ति के हृदय मे पवित्र भावों का अस्तित्व है। इसीलिए विषयासक्त कुटिल-हृदय कभी यह विश्वास करने को तैयार नहीं होता कि ससार में सज्जन मनुष्य भी हैं। यही कारण है कि इस संसार मे कपटाचारी मनुष्य प्राय सन्देह ही में फसे रहते हैं। साधारणत. वे दूसरे की बात पर विश्वास नहीं करते।

रामा की मा ने सावित्री की किसी बात पर विश्वास नहीं किया, वरन् मन ही मन निश्चय किया कि सावित्री बड़ी कुटला है। रुपये के लोभ से अवश्य ही यह अपना सर्वस्व बेचने गई थी।

कुछ देर बाद उसने अत्यन्त कर्कश आवाज से सावित्री को सम्बोधन करके कहा — "तो इस वक्त यहा क्या लेने आई? मै रात भर तो जग नहीं सकती। तेरा बाप घर में अकेला पड़ा होगा, अपने घर नहीं जायगी क्या?"

सावित्री पुन कातरस्वर से कहने लगी — "रामा की मा, इस अन्धकार में अकेले जाते बड़ा डर लगता है। रामा से कहो, मुझे मेरे घर तक पहुचा दे।"

सावित्री की यह बात सुन कर रामा की मा जोर से ठट्ठा मार कर कहने लगी —

"ओफ! हद हो गई! वही मसल हुई कि 'सिंहन सों निरभै लरै, लखि सियार डरि जाहि।' तेरी बातें सुन कर मेरी देह सुलग उठी। कासिमबाजार से यहा तक आने मे डर नहीं लगा, अब जरा दूर जाते डर लगता है।

रामा ज्वर में पड़ी है, इस मेंह मे वह तेरे साथ नहीं जायगी। ले उठ तो यहा से, देख तो तेरे भीगे कपड़े से कोठरी में कीच हो गई, अब क्या मेरा बिछौना भी भिगो देगी?"

सावित्री — "रामा की मां! तो तुम कोठी से ज़रा बदरुन्निसा को बुला दोगी? मेरी विपत्ति का हाल सुन कर वे अवश्य ही किसी को साथ कर के मुझे घर तक पहुचवा देंगी।"

रामा की मा — "हां हां, तू बड़ी कहीं की रानी आई! आयाजी को क्या पड़ी है कि इतनी रात को तुझ से मुलाक़ात करेंगी। तिस पर आज कल वे खुद ही आफत में फँसी हुई हैं। कोठी में रेशम का कारबार बन्द हो रहा है। दीनाजपुरवाले नमक-गोदाम की लूट हो गई है। साहब दीनाजपुर गये हैं। फिर आयाजी मेमसाहब के कमरे में सोती होंगी। वहा इस वक्त पहुंच ही कौन सकता है? जा, तू धीरे धीरे चली जा। डर काहे का? मुझे नींद लग रही है, क्यों मेरा सर खाती है।"

रामा की मा के ये वाक्य समाप्त न हुए थे कि रामा बीच ही मे उसे रोक कर कहने लगी — "मा, तुम चुप रहो, क्यों उससे इतना रिस्याती हो? मैं उसके साथ जाकर उसे घर तक पहुंचाए आती हू।"

रामा की मा बोली — "अरी अभागिन! सारी रात अगूठे की पीड़ा के मारे चिल्लाती रही, बुख़ार चढ़ा हुआ है, मेंह में तू कैसे इस के साथ जायगी?"

परन्तु रामा जिस काम को करने का निश्चय कर लेती थी, चाहे प्रलय उतर आवे, वह उसे पूरा किए बिना न

रहती थी। सावित्री की कातरोक्ति को सुन कर रामा का सरल हृदय द्रवीभूत हो चुका था। वह धीरे धीरे विस्तिरे से उठी, और बाएं हाथ में एक बांस की लाठी लेकर बोली—"चल सावित्री, चल, मैं तुझे पहुंचाये देती हूं।"

रामा को इस प्रकार जाने के लिए तैयार देख कर उसकी मा जोर से चिल्ला कर कहने लगी—"अरे तुझे क्या हो गया है? अभागिन कहीं की—तुझे ज्वर चढ़ा है, इस मेह में भीग कर जल्दी ही मरना चाहती है क्या?"

रामा ने अपनी मा की बात पर ध्यान न दिया। उसने घर के बाहर निकल कर सावित्री से कहा—"चल चल, अब क्यों बैठी है, आ जलदी आ।" सावित्री रामा की मा की बातें सुन कर अभी तक हतबुद्धि सी बैठी थी। रामा के बारम्बार बुलाने पर वह घर के बाहर निकली और उसके साथ अपने घर की तरफ चल दी।

रामा सरल हृदया तो थी ही, पर तदतिरिक्त एक विशेष गुण उसमें यह था कि इन्द्रियन्दोष किसे कहते हैं, यह यह स्वप्न में भी नहीं जानती थी। बाल्यकाल में उसके पिता की मृत्यु हो गई थी। उसकी मा बड़ी दुराचारिणी थी। रामा को उसने कुछ विशेष लाड़-प्यार से नहीं पाला। अनादर और अवहेलना के साथ रामा का प्रतिपालन हुआ। बाल्यकाल से ही उसने कष्टों को सहन करने की शिक्षा पाई। इसी कारण दूसरे का दुख देखते ही उसका हृदय पानी पानी हो जाता है। किसी तरह का कोई शौक़ उसे नहीं है। पागलों की तरह इधर-उधर दौड़ती धूपती रहती

है और विविध गीत गा-गाकर अपने हृदय का आनन्द प्रकट किया करती है । पास-पडोस में कोई बीमार पड़े और आधी रात के वक्त भी रामा से दवा लाने के लिए अथवा वैद्य को बुला देने के लिए कहा जाय तो वह तनिक भी आलस्य या आनाकानी न करके हँसते हुए वहां को चल देती है । यह सोचकर अथवा इस अभिप्राय से वह कभी कोई काम नहीं करती थी कि इस प्रकार के परोपकारी कामों से पुण्य सञ्चय होगा अथवा लोग मेरी प्रशंसा करेंगे और मुझे अपना कृपापात्र बनावेंगे । रामां सर्वथा अशिक्षित थी, किसी विषय का चिन्तन अथवा मनन करने की शक्ति उसमे नहीं थी । कितने ही लोग उसे "रामां पगली" कह कर पुकारा करते थे। परन्तु कौन उसे अच्छा कहता है, कौन बुरा,— यह उसने स्वप्न में भी कभी नहीं सोचा । दूसरे का दुख देख कर उसका हृदय बहुत ही दुखित होता था, अतएव केवल हृदयावेग से प्रेरित हो वह दूसरे का दुख दूर करने के लिए प्राणपण से चेष्टा करती थी, परन्तु जब अपने को कोई दुख होता, तब किसी से सहायता नहीं मागती थी । पहिले उसके शरीर में बहुत बल था, परन्तु आजकल वह दुर्बल हो रही है ।

बांए हाथ मे बांस की लाठी लिये रामां आगे-आगे जा रही है पीछे पीछे सावित्री चलो जाती है। परन्तु सावित्री से चला नहीं जाता। रामां दो चार कदम चलकर बारम्बार सावित्री के लिए ठिठक रहती है। उसका दाहिना हाथ बिल्कुल बेकार हो रहा है,—बहुत सूजा हुआ है।

रामा के चले जाने के बाद उसकी मां मन ही मन सोचने लगी,—रामा अपना नाश कर चुकी है, सावित्री बडी

सुन्दरी है, अतएव रामा का मन उसके प्रति आकृष्ट हो गया है।

कितनी ही दूर चलने के बाद सावित्री ने रामा से पूँछा —"रामा तुम्हारे दाहिने हाथ में क्या हुआ है?"

रामा — क्या बताऊ, बड़ी बेवकूफी की। (हाथ का अगूठा दिखा कर) इस अगूठे को हँसिये से काटा। किसी अच्छे हथियार से एकही दफे में काट डालती तो इतना दुख न होता। हँसिये से दो चोटों में कट सका, इसीलिए इतनी पीड़ा हो रही है।

सावित्री—(बहुत अचम्भे में आकर) तो यह हाथ का अगूठा काटा क्यों?

रामा—हम लोगों की इस कोठी के जुलाहों पर जो विपत्ति पड़ी है वह तुम्हे नहीं मालूम?

सावित्री—नहीं तो, मैंने कुछ नहीं सुना। पिता की बीमारी के मारे मैं तो प्राय घर के बाहर निकल ही नहीं पाती हू। दिन रात उन्हीं की शुश्रूषा में व्यस्त रहती हू।

रामा—कोठी में काम करनेवाले समस्त जुलाहो में से कोई पचास आदमियों ने अपने अपने हाथ का अगूठा काट डाला है। आजकल नवाब एकदम कम्पनी बहादुर का गुलाम हो रहा है। कम्पनी के आदमी सब का सर्वनाश कर रहे हैं। उस दिन हमारी कोठी के सारे जुलाहों को अंगरेजों के आदमी पकड़ ले गये थे*। कम्पनी के बड़े साहब ने कहा —"तुम लोग आराटून साहब की कोठी में काम नहीं करने पाओगे। हमारी कासिमबाजारवाली कोठी में तुम्हें

---

*Vide Note (13) in the appendix

काम करना पड़ेगा।" आराटून साहब हम लोगों को न रोक सके। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे, और कहने लगे—"महाराज नन्दकुमार हैं नहीं, रजा खां दीवान है। कम्पनी के आदमी जो चाहें, करें।"

सावित्री—तो फिर इसके लिए अंगूठा क्यों काटा?

रामा—आज सत्तरह दिन हुए, कम्पनी के आदमी हम लोगों से कासिमबाजार की कोठी में काम ले रहे हैं। काम के वक्त जमादार पास बैठा रहता है। काम में ज़रा भी भूल हो जाय, तो बेत फटकारने लगता है। तमाखू तक नहीं पीने देता। तिस पर महीने में सिर्फ १।) तनख्वाह मिलेगी, सो भी महीना समाप्त होने के बाद। इन्हीं दामों में से छः पैसे रामहरी बाबू अपनी दस्तूरी के काट लेंगे। जमादार और प्यादों की दस्तूरी एक आना है। अनुमान से कोई साढे पांच आना एक रुपया अथवा छः आना एक रुपया मिलेगा। सो भी दूसरे महीने में। बताओ तो सही, खांय क्या? यहां इस कोठी में महीने में २॥) तो तनख्वाह मिलती थी, और हिन्दू मुसलमानों के सभी त्योहारों पर मेमसाहब हर किसी को दो दो आना त्योहारी देती थीं। तिस पर भी कभी किसी के घर खाने को न हो तो मेमसाहब उसे अपने यहां से चावल दिये जाने की व्यवस्था करती थीं। अब ऐसा मालिक कहां मिलेगा? मेमसाहब मानों साक्षात् लक्ष्मी थीं। हम लोगों पर बड़ी दया रखती थीं।

सावित्री—तो अँगूठा क्यों काटा? क्या साहबलोगों ने अंगूठे काट दिये?

रामा—साहब लोग क्यों काटते? हम लोगों ने आप ही काट लिए हैं। जब किसी तरह नहीं छोड़ते थे तब हम

लोगों ने अपने अगूठे काट कर साहब से कहा — हुजूर हमारे अगूठा नहीं है, हम रेशम बुनने में असमर्थ हैं।

सावित्री — तो क्या साहब ने इस पर तुम सब लोगों को छोड़ दिया?

रामा — पहिले पहिल जिन दो आदमियों ने काटा था उन्हें तो छोड़ दिया। परन्तु अब जब कितने ही आदमी अपने अगूठे काटने लगे हैं तो बड़ा गड़बड़ मच उठा है। क्या हो, कुछ मालूम नहीं। आखिर जब अगूठा नहीं है तो रेशम बुना कैसे जावेगा? लाचार साहब को छोड़ना ही पड़ेगा।

रामा की ये बातें समाप्त होते-होते वे दोनो सभाराम के घर आ पहुचीं। सावित्री के कपड़े पहिले ही भीग चुके थे। अब भी रास्ते में थोड़ा थोड़ा पानी बरसता रहा था, अतएव रामा के कपड़े भी भीग गये। उसे बुखार भी था, शीत के मारे कांपते-कांपते बोली — "सावित्री, देख तो, थोड़ी आग जला सकती है? बड़ा जाड़ा लग रहा है।"

सावित्री ने अन्धकार में घर के भीतर घुस कर देखा कि उसके पिता के कपड़े पानी मे भीग रहे हैं, शरीर ठढा हो रहा है, जोर से सास चल रही है। सावित्री बारम्बार 'पिता! 'पिता' कह कर आवाज देने लगी, परन्तु सभाराम अचैतन्य अवस्था में पड़े थे, कोई उत्तर न मिला। तब सावित्री ने बाहर से थोड़ा सा सूखा कूड़ा करकट इकट्ठा कर के आग जलाई। पिता के शरीर पर से भीगे हुये कपड़ों को हटाकर अलग रखा और उनके शरीर को गरम करने के अभिप्राय से अपने हाथ आग मे सेंक सेंक

कर उनके शरीर पर फिराने लगी। परन्तु पिता की अचैतन्यता दूर न हुई। सावित्री ने आज तक कभी किसी की मृत्यु नहीं देखी थी। मरते वक्त लोगों की कैसी हालत होती है, इसे वह नहीं जानती थी। अतएव उसने यह न जान पाया कि मेरे पिता का मृत्यु काल उपस्थित है। परन्तु रामा ने मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए हज़ारों रोगियों की सेवा शुश्रूषा की थी। गांव में जब कभी कोई ज्यादा बीमार पड़ता अथवा मरने को होता तो उस के घर वाले रात को उसके पास बैठने या जागरण करने के लिए रामा को ही बुलाते थे। रामां सिर्फ़ रोगियों की शुश्रूषा ही करती हो सो नहीं, वरन् रोगी की मृत्यु हो जाने पर उस का दाह संस्कार कराने के लिए बाज़ार से, सर पर लाद कर, ईंधन लाती थी, चिता तयार करती थी। विशेष परिश्रम का काम लोग रामा से ही कराया करते थे। किसी किसी रोगी की मृत्युशय्या के पास वह लगातार सात-सात रात जागी है। सभाराम को गहरी सांसें भरते देखकर रामा उनका हाथ पकड़ कर नाड़ी देखने लगी। रामां को नाड़ी का ज्ञान हो गया था। रोगी की नाड़ी को देख कर वह उसके मृत्युकाल की देर-अदेर को जान सकती थी।

सभाराम की नाड़ी को देख कर रामा ने चटपट सावित्री से कहा — "सावित्री, अब क्या देखती हो? तुम्हारे पिता का मृत्युकाल उपस्थित है, इनके प्राण निकलना ही चाहते हैं। जल्दी जल्दी नारायणक्षेत्र की तैयारी करो, वृद्ध सभाराम का नारायणक्षेत्र न हुआ तो ठीक नहीं। देखो, धीरज बाँधे रहना रोना धोना मत। नीम का पेड़ तो तुम्हारे घर में हई है, मैं जाकर बेल और तुलसी की

डालें लाती हूं।" यह कहती हुई रामा चटपट घर के बाहर निकली।

सावित्री चौंक उठी, सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया। आंखों में आंसू भर कर बारम्बार पुकारने लगी—"पिता! पिता!" पर कोई उत्तर न पाया।

नारायणक्षेत्र की रचना करने में जिन जिन वृक्षों की डालें आवश्यक होती हैं, रामा क्रम क्रम से उन सभी का संग्रह करने लगी। दाहिना हाथ अगर तन्दुरुस्त होता तो रामा को कोई तकलीफ न होती, केवल बांए हाथ से काम करने में कठिनता पड़ती थी, समय भी अधिक लगता था। बड़े कष्टपूर्वक बांए हाथ से रामा ने तुलसी का एक पौदा जड़ से उखाड़ लिया, क्रम क्रम से अन्यान्य वृक्षों की डालें भी तोड़ लाई और घर के आंगन में नारायणक्षेत्र की रचना प्रारम्भ की। थोड़ी देर में पुनः कोठरी के भीतर जाकर उसने सभाराम की हालत देखी। इस बार सभाराम को बड़े कष्टपूर्वक सांस लेते देख कर रामा ने कहा—"लो सावित्री, अब इन्हें बाहर निकाल लेना चाहिये, उठाओ तो।"

सावित्री हतबुद्ध हो रही थी। रामा बारम्बार उससे पिता को पकड़ कर उठाने के लिए कहने लगी। रोते रोते सावित्री ने पिता के सर को हाथों पर उठा लिया। रामा ने बांए हाथ से उनकी दोनों टांगें पकड़ीं। बड़े कष्ट से दोनों ने सभाराम को घर के बाहर निकाला, और जिस स्थान पर नारायणक्षेत्र की रचना की थी, वहीं पर ला रखा। सभाराम मृतक के समान मृत्तिका पर पड़ रहे। आकाश स्वच्छ होगया था, बादल विलीन हो चुके थे, चन्द्र का प्रकाश फैला हुआ था। सावित्री बारम्बार पिता को पुकारने

और करुण स्वर में कहने लगी — "पिता, अब मुझे तुम्हारी बातें कहां सुनने को मिलेगी भला मृत्युकाल में कुछ तो कहते।"

रामा ने कहा — "सावित्री, अपने पिता के कानों के पास भगवान् के नाम का उच्चारण करो। मैंने देखा है, कितने ही मनुष्य नारायणक्षेत्र पर पहुंच कर भी भगवान् का नाम सुन कर जाग उठते हैं।"

सावित्री बारम्बार पिता के कानों के पास कहने लगी— "भगवान्, भगवान्, विपद्भंजन भगवान — दयामय, परमेश्वर, हे हरे, हे हरे, हे राम, हे राम।"

कितनी ही देर तक कानों के पास रामनामोच्चारण होने पर सभाराम की आखें खुल गई, वह टकटकी बांध कर सावित्री के मुह की तरफ देखने लगे। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वे कोई भयंकर स्वप्न देखते-देखते सहसा जाग उठे हैं।

सावित्री ने पुकारा — "पिता!" वृद्ध के दोनों होंठ हिलने लगे। जान पड़ा कि वह कुछ कहना चाहता है, परन्तु बात मुह से न निकली, आख मुंदने लगी।

सावित्री ने फिर कहा — "पिता! पिता! मुझे यहीं छोड़ चले? पिता! कुछ तो कहो, मैं हूं तुम्हारी सावित्री।"

"वृद्ध ने आखें खोल कर बड़े कष्टपूर्वक कहा— जा—बा—हलधर—मो—ह—र—।"

इसके कुछ ही क्षणों बाद सभाराम का चेहरा बिगड़ने लगा। यही उनका अन्तिम समय था। समस्त शारीरिक वेदनाओं को पार करके उनके आत्मा ने स्वर्गलोक को

प्रस्थान किया। देखते-देखते सभाराम का शरीर प्राणशून्य हो गया।

अत्यन्त ही दीनदुखी के वेश मे बगाल के एक सुविख्यात तन्तुकार सभाराम ने इस ससार से कूच किया। उनके बुने हुए वस्त्र नवाब के राजमहलों की शोभा बढाते रहे। बगाल की सभी समृद्धिशालिनी भद्र महिलाए उनके नाम से परिचित थीं। लघनों का कष्ट भोगकर आज उन सभाराम की मृत्यु हो गई। पाच हजार स्वर्ण मुद्रायें आज भी सभाराम के शयनगृह में गडी हुई हैं, परन्तु इस ससार में सम्पत्ति ही से सारे कष्टों का निवारण नहीं होता।

मनुष्य के हृदय में स्थित स्वार्थपरता, ईर्ष्या, द्वेष और हिंसा सदा ही विष का वमन करते रहते हैं। इस कालकूट-विष के स्पर्श मात्र से सामाजिक वायु विषाक्त होती रहती है। अतएव जब तक इस ससार से स्वार्थपरता और हिंसा-द्वेष का नाम न मिटे कोई सुख-शान्ति को प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकता। किसने आज नितान्त दीन हीन के वेश मे सभाराम को इस ससार से विदा किया? सभाराम की अन्तिम अवस्था के असह्य क्लेशों का मूल कारण कौन था? इन प्रश्नों के उत्तर में कोई कोई कहेंगे कि क़ासिमबाज़ार के अगरेज व्यापारी इसके मूल कारण थे, कोई कहेंगे कि वही बगीय कुलागार रामहरी चट्टोपाध्याय इसका मूल कारण था, क्योंकि उसी के परामर्श से अँगरेजों ने सभाराम के पुत्र को दादनी का रुपया लेने के लिए बाध्य किया था। परन्तु पाठक! एक बार भली भाति कार्य-कारण-शृङ्खला पर विचार कीजिये और पूर्णरूप से उसकी आलोचना कीजिये। तात्कालिक बगीय समाज में

पारस्परिक सहानुभूति का सर्वथा अभाव और समाज प्रचलित व्यक्ति विशेष की घोर स्वार्थपरता ही सभाराम की इस दुर्दशा का एकमात्र मूल कारण थी। रामहरी क्यों कर ऐसे कुत्सित चरित्र और निन्दित आचरण को प्राप्त हुआ था? पाठक! बंगाल की तात्कालिक सामाजिक अवस्था ने, एक रामहरी क्या, ऐसे सैकड़ों रामहरी पैदा किये थे! बंगालियो की स्वार्थपरता जनित कायरता और पारस्परिक सहानुभूति-शून्यता अंगरेज़ों के उस अवैध आधिपत्य संस्थापन का मूल कारण हो रही थी। समाज-प्रचलित स्वार्थपरता और पाप-परायणता समय समय पर दावाग्नि की तरह प्रज्वलित हो कर समाज के समग्र नरनारियों को इसी प्रकार भस्मीभूत कर डालती है। छोटी समझ के आदमी यह सोचते हैं कि संसार में दूसरो के दुख से, दूसरों के कष्ट से, हमारी क्या हानि हो सकती है। हमारे स्त्री पुत्रों को कोई कष्ट न हो, बस, यही काफी है। परन्तु जिस प्रकार जब किसी गांव के एक कोने में अथवा किसी एक घर मे आग लगती है, तो अपने पास पड़ोस में स्थित अन्यान्य घरों को भी जला कर खाक कर डालती है, इसी प्रकार समाज मे स्थित किसी एक श्रेणी के दुराचरण और पापाचार से उत्पन्न दुख दारिद्र की आग से समस्त मानवसमाज को दग्ध होना पड़ता है। पाठक! यदि सुख मे रहने की अभिलाषा रखते हो, यदि अपने कल्याण की कामना करते हो तो अपने आप को भूल कर दूसरों का दुख दूर करने की चेष्टा करो। समाज में प्रचलित सर्व प्रकार के पापाचारों के साथ अविराम युद्ध करने के लिए तैयार रहो। जब तक इस संसार में पाप और

अत्याचार का अस्तित्व रहेगा, जब तक इस संसार में व्यक्तिविशेष की स्वार्थपरता सामाजिक महानुभूति के बन्धन को छिन्न भिन्न करती रहेगी, तब तक दावाग्नि की तरह प्रज्वलित उस पापाग्नि के आक्रमण से कोई भी अपनी रक्षा करने में समर्थ न होगा।

इस समय यदि वंगीय समाज में पारस्परिक सहानुभूति का अभाव न होता, एक का दुख देख कर दूसरे का हृदय व्यथित होता, अत्याचारी के अत्याचार से हर कोई अपने पड़ोसी की रक्षा करने को उद्यत होता, तो क्या आज सभाराम की यह दुर्दशा होती, तो क्या आज बंगाल सभाराम जैसे उत्कृष्ट वस्त्र-निर्माता तन्तुकारों से सूना हो जाता, तो क्या आज मुर्शिदाबाद प्राय तन्तुकारों से खाली नजर आता?

संसार के विकट विपद्-जाल से विमुक्त होकर और सारे कष्ट क्लेशों को पार कर, सभाराम ने सुधामय सर्वेश्वर की सुधामयी गोद मे आश्रय लिया। दुखिनी, अनाथा कन्या सावित्री पिता के मृत शरीर को गोद मे रख कर धरती पर बैठ रही। वह रोती नहीं है, आँख से आँसुओं का एक बूंद भी नहीं गिरता है। पाठक यह खयाल करेंगे कि सावित्री के हृदय में पितृप्रेम नहीं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। शोकाकुल अवस्था मे विलाप करने के लिए अवकाश की आवश्यकता होती है। दुखिनी सावित्री को विलाप करने का अवकाश ही नहीं है। जिस के ऊपर शोक पर शोक, चोट पर चोट, दुख पर दुख, क्लेश पर क्लेश और कष्ट पर कष्ट पड़ रहे हैं, उसे आँसू गिराने का समय कहाँ? फिर मनुष्य की आँखों में जल ही कितना सचित रह सकता है? सावित्री की आँखों में अब जल नहीं रहा है, उसकी आँखें सूख गई हैं। विपत्ति के बोझ से इस

कर हृदय सर्वथा अचल हो रहा है। बालक की छाती पर यदि एक छोटा सा मिट्टी का ढेला आ गिरे तो शरीर में पीड़ा पहुचने के कारण वह जोर से रो उठता है परन्तु यदि पर्वत के समान भारी बोझ उसकी छाती पर रख दिया जाय तो वह चू भी न कर सकेगा। जितने परिमाण के दुख-शोक में रो धो कर और विलाप परिताप कर के मनुष्य अपने हृदय के भार को हलका किया करते हैं, उससे हजार गुना दुख शोक सावित्री के हृदय को पीस रहा है। पर्वत के समान दुख का भारी बोझ उसकी छाती पर रखा हुआ है। इसी लिए सावित्री से न रोया गया, उसकी आँखों से आँसू नही गिरे। इस वक्त उसी दुख भार में दबे हुए हृदय से स्नेह, दया और ममता को बाहर निकाल कर सावित्री केवल कठिन कर्त्तव्या-कर्त्तव्यज्ञान के द्वारा परिचालित हो रही थी।

सावित्री अपने पिता की इकलौती कन्या थी। बाल्य-काल से वह बड़े स्नेह और आदर के साथ पाली गई है। निम्नश्रेणी के गृहस्थों के यहा जिस प्रकार बचपन ही से कन्याओ को विविध गृह कार्य करने पड़ते हैं, उस प्रकार सावित्री को कभी नही करने पड़े। उसके तीन भौजाइयां थीं। वे ही घर का सब कामकाज करती थीं। सभा राम और उनके पुत्र सावित्री को बहुत ही प्यार करते थे। उन्होंने बचपन में सावित्री को बँगला पढ़ना सिखा दिया था। कीर्तिवास की रामायण, काशीरामदास का महाभारत, मुकुन्दराम की कविकङ्कण, चडी इत्यादि उस समय की पाठ्य पुस्तकों को सावित्री बड़ी रुचि से पढा करती थी। कभी-कभी सभाराम के पास बैठ कर ये ... पढ

कर सुनाती थी। इन समस्त पुस्तकों के प्रतिपादित धार्मिक सिद्धांत सावित्री की नस नस में भिद चुके थे, अतएव रात को जब उसके पिता की मृत्यु हुई तो उसने सोचा कि यदि रातो-रात पिता के मृत शरीर का दाह संस्कार प्रारम्भ न हो सका तो उनकी परलोकगत आत्मा का अनिष्ट होगा।

ऐसा सोच कर बड़े कातर स्वर में उसने रामा को सम्बोधन करके कहा—"रामा! रात थोड़ी रह गई है। यदि रातो-रात पिता का दाह प्रारम्भ न हुआ तो उनका शव बासी हो जावेगा। बड़ा पाप पड़ेगा। इहलोक में, अन्तकाल में, मेरे पिता की यह दुर्गति हुई, अब क्या परलोक में भी उनकी दुर्गति होगी। क्या करूं बताओ। कहां से ईंधन लाऊं, कैसे चिता तैयार करूँ? हा विधाता! मेरे एक नहीं, दो नहीं, तीन तीन भाई थे। मेरे पति की ओर इशारा करके, मेरे पिता कहा करते थे इस वक्त मेरे चार पूत हैं। आज उनके वे चारों पूत कहां गये? यदि वे आज यहां होते तो क्या पिता की आज यह दशा होती? रामा! न तो मेरे भाई रहे न पति, सब अपनी अपनी राह गये। अब जो कुछ हो सो तुम्हीं हो। तुम्हीं मेरे भाई और तुम्हीं मेरे दादा। ऐसा उपाय करो, जिससे रात ही में पिता का दाह-संस्कार प्रारम्भ हो सके।"

हम पहले ही कह चुके हैं, दूसरे के कातर वाक्यों को सुन कर रामा का हृदय पानी पानी हो जाता था। विशेषत जब कोई व्यक्ति नम्र वचनों में रामा से कोई काम करने के लिए कहता तो वह जी जान से उसे पूरा करने का प्रयत्न करती थी। परन्तु डरा-धमका कर अथवा कठोर

कर हृदय सर्वथा अचल हो रहा है। बालक की छाती पर यदि एक छोटा सा मिट्टी का ढेला आ गिरे तो शरीर में पीडा पहुचने के कारण वह जोर से रो उठता है परन्तु यदि पर्वत के समान भारी बोझ उसकी छाती पर रख दिया जाय तो वह चू भी न कर सकेगा। जितने परिमाण के दुख-शोक मे रो धो कर और विलाप परिताप कर के मनुष्य अपने हृदय के भार को हलका किया करते हैं, उससे हजार गुना दुख शोक सावित्री के हृदय को पीस रहा है। पर्वत के समान दुख का भारी बोझ उनकी छाती पर रखा हुआ है। इसी लिए सावित्री से न रोया गया, उसकी आँखो से आँसू नहीं गिरे। इस वक्त उसी दुख-भार में दबे हुए हृदय से स्नेह, दया और ममता को बाहर निकाल कर सावित्री केवल कठिन कर्त्तव्या-कर्त्तव्यज्ञान के द्वारा परिचालित हो रही थी।

सावित्री अपने पिता की इकलौती कन्या थी। बाल्य-काल से वह बडे स्नेह और आदर के साथ पाली गई है। निम्नश्रेणी के गृहस्थों के यहा जिस प्रकार बचपन ही से कन्याओ को विविध गृह कार्य करने पड़ते हैं, उस प्रकार सावित्री को कभी नहीं करने पडे। उसके तीन भौजाइयां थीं। वे ही घर का सब कामकाज करती थीं। सभाराम और उनके पुत्र सावित्री को बहुत ही प्यार करते थे। उन्होंने बचपन में सावित्री को बँगला पढना सिखा दिया था। कीर्तिवास की रामायण, काशीरामदास का महाभारत, मुकुन्दराम की कविकंकण, चडी इत्यादि उस समय के पाठ्य पुस्तकों को सावित्री बडी रुचि से पढा करती थी। कभी-कभी सभाराम के पास बैठ कर ये पुस्तकें उन्हें प

सावित्री ऐसे बैर पडी है कि उस के मारे इस मुहल्ले के लोग नहीं रहने पावेंगे। कल रात को वह कासिमबाज़ार में किसी साहब-सूबा के पास गई थी। कोई आधी रात के वक्त वह मेरे घर आई और रामा को साथ लिवा ले गई। मेरी रामा पागल रही हो, चाहे मूर्ख रही हो, उसमें ये सब औगुन अभी तक नहीं थे। परन्तु रात वह सावित्री के साथ चली गई, सारी रात वापिस नहीं आई, अब देखो इतना दिन चढ चुका, अभी तक नही लौटी। मै अभी सभाराम के घर जाकर रामा को, चुट्ट पकड कर घसीटे लाती हू।"

आराटून साहब की स्त्री और बदरुन्निसा रामा की मा की बाते सुनकर चकित हो रही। उन्होंने उसकी बातों पर तनिक भी नही विश्वास किया। आराटून साहब की स्त्री ने कहा—"रामा की मा क्या स्वप्न तो नहीं देख रही है कि सावित्री तेरे घर आकर रामा को लिवा ले गई? सावित्री को मैं बाल्य-काल से अच्छी तरह जानती हू, उसकी रहन सहन को खूब पहिचानती हू। सावित्री रात में क़ासिम-बाज़ार गई और बाद में तेरी रामा को लिवा ले गई—इसे तो मैं कदापि नहीं मान सकती।"

रामा की मा—मेमसाहब आप दूसरो के रग ढग को नहीं समझती। सभी को भलामानस मान बैठती हैं। मैं आदमी की सूरत देखकर उसके पेट का हाल जान लेती हू। लोगों का रग रवैया देखते देखते मेरे तीन पन बीत गये।

बदरुन्निसा—सचमुच सावित्री रात तेरे घर आई थी। अच्छा, तो मुझे खबर क्यों नहीं दी?

वाक्य कहकर त्रिकाल मे भी रामा से कोई कुछ काम नहीं ले सकता था।

रामा ने सावित्री का धीरज देते हुए कहा—

"घबड़ाओ मत। अभी इनका अग्नि सत्कार कराती हू मैं जीती बनी रहू और मेरे बूढे संभाराम का शव बासी हो जाय ? देखो, तुम धीरज बाधे रहना, बीच में रो धो कर मुझे रज न दिलाना।"

यह कह कर, किंचित सोच-विचार के बाद, रामा भट से एक आम के पेड़ पर चढ़ गई, और उसमे जितनी सूखी सूखी डाले थीं, सब को उसने बाएँ हाथ से तोड़ तोड़ कर जमीन पर गिरा दिया। इसी प्रकार कोई एक घंटे के भीतर आम के दो तीन पेडो की सूखी डालें तोड़-तोड़ कर काफी ईंधन इकट्ठा कर लिया। बाद में चिता तैयार की और सबेरा होने के प्राय दो घटे पहले ही सभाराम के मृत-शरीर का दाह-सस्कार प्रारम्भ कर दिया। सावित्री ने पिता के मुख मे अग्नि का समावेश किया। जिस वक्त सभाराम का शरीर प्राय अधजला हो चुका था, तब कही रात का अन्त हुआ। ऐसे दारुण दुख मे भी मन ही मन सावित्री को किंचित् आनन्द प्रतीत होने लगा, उसके इस क्षणिक आनन्द का एकमात्र कारण यही था कि रात ही में उसके पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया आरम्भ हो गई।

इधर सबेरा होते ही रामा की मा जैसे ही बिछौने से उठी, गुस्से के मारे रिसाती-चिल्लाती आराट्न साहब की कोठी पर आई, और जिस कमरे में बदरुन्निसा तथा आराट्न साहब की मेम बैठी थीं वहा जाकर हाथ नचा नचाते, कहने लगी—"देखो आयाजी, सभाराम की लड़की

सावित्री ऐसे बैर पड़ी है कि उस के मारे इस मुहल्ले के लोग नहीं रहने पावेंगे। कल रात को वह कासिमबाज़ार में किसी साहब-सूबा के पास गई थी। कोई आधी रात के वक्त वह मेरे घर आई और रामा को साथ लिवा ले गई। मेरी रामा पागल रही हो, चाहे मूर्ख रही हो, उसमें ये सब औगुन अभी तक नहीं थे। परन्तु रात वह सावित्री के साथ चली गई, सारी रात वापिस नहीं आई, अब देखो इतना दिन चढ़ चुका, अभी तक नहीं लौटी। मैं अभी सभाराम के घर जाकर रामा को, चुट्टा पकड़ कर घसीटे लाती हू।"

आराटून साहब की स्त्री और बदरुन्निसा रामा की मा की बातें सुनकर चकित हो रहीं। उन्होंने उसकी बातों पर तनिक भी नहीं विश्वास किया। आराटून साहब की स्त्री ने कहा—"रामा की मा क्या स्वप्न तो नहीं देख रही है कि सावित्री तेरे घर आकर रामा को लिवा ले गई? सावित्री को मैं बाल्य-काल से अच्छी तरह जानती हू, उसकी रहन सहन को सब पहिचानती हूं। सावित्री रात में कासिमबाज़ार गई और बाद मे तेरी रामा को लिवा ले गई—इसे तो मै कदापि नहीं मान सकती।"

रामा की मा—मेमसाहब आप दूसरो के रग ढग को नही समझतीं। सभी को भलामानस मान बैठती हैं। मैं आदमी की सूरत देखकर उसके पेट का हाल जान लेती हू। लोगों का रग रवैया देखते देखते मेरे तीन पन बीत गये।

बदरुन्निसा—सचमुच सावित्री रात तेरे घर आई थी। अच्छा तो मुझे खबर क्यों नहीं दी?

रामा की मा—आयाजी! आप को खबर देने के लिए उसने मुझसे कई बार कहा अवश्य, परन्तु आप जानती हैं, ऐसे आदमियो को कहाँ शरम होती है? तरह-तरह के मक्कर करने लगी, रोना पीटना शुरू कर दिया। मैं क्या अब फिर कभी उसकी बातों में आऊंगी?

बदरुन्निसा—तेरे पास आकर उसने क्या कहा था?

रामा की मा—और क्या कहती! रो रो कर कहने लगी—"आज रामहरी बाबू कई आदमियों को साथ लेकर मेरे घर आये। मुझे पकड़ कर क़ासिमबाज़ार ले गये। मैं वहां से भाग आई। मेरे पिता की, न मालूम, क्या दशा हुई होगी। मुझे डर लग रहा है, रामा से कहो, मुझे मेरे घर तक पहुचा दे।"

आराटून साहब की स्त्री ये बातें सुनते ही घबड़ा कर बोलीं—"उफ़! गजब हो गया। जान पड़ता है, अभागा रामहरी फिर इस अनाथा सावित्री को सता रहा है।" इसके बाद मेमसाहब बदरुन्निसा को सम्बोधन करके कहने लगीं—"मा! सावित्री का क्या हाल है, पता तो लगाओ। और कुछ न होगा, तो हम लोग अपनी कोठी में उसके लिए एक छप्पर डलवा देंगे। अपने बूढे बाप को साथ ले, वह हमारे ही यहा आ रहे।"

आराटून साहब की स्त्री बदरुन्निसा को मा कहा करती थीं। बदरुन्निसा ने जल्दी जल्दी कपड़े पहिन कर रामा की मा को साथ लिया और सभाराम के घर की राह ली।

रास्ते में रामा की मा कहने लगी —"आयाजी! हमारी मेममाहब लोगों का रंग ढग नहीं पहिचानतीं

अभी मानों बच्ची ही हैं कुछ जानती ही नहीं। तुम तो बूढी हो गईं। तुम इन सब बातों को अच्छी तरह समझ सकती हो।"

बदरुन्निसा मन ही मन सावित्री के दुख का चिन्तन कर रही थी। रामा की मा के कथन पर उसने विशेष कुछ ध्यान न दिया। चुपचाप आगे को चलती रही। रामा की मा ने अपनी बातों के उत्तर में बदरुन्निसा को बिल्कुल खामोश देखकर सोचा कि बदरुन्निसा भी सावित्री को कुलटा और दुराचारिणी समझ चुकी है। परन्तु बदरुन्निसा का अन्तरात्मा रामा की मा की तरह अपवित्र न था। उसने कभी स्वप्न में भी सावित्री के चरित्र पर सन्देह नहीं किया था।

कुछ देर मे दोनों ने सभाराम के घर पहुच कर देखा कि सावित्री और रामा सभाराम की मृत-देह का दाह संस्कार कर रहीं हैं। बदरुन्निसा सावित्री के दुख और निराशापूर्ण मुख को देख कर अपने आसुओं को न रोक सकी। उसकी दोनो आखों से अश्रुधारा बह निकली। परन्तु रामा की मा चकित हो सावित्री की ओर देखने लगी। थोड़ी देर बाद रामा की मा ने बदरुन्निसा के कानों के पास मुह ले जाकर चुपचुपाते हुए कहा—"इसका कुछ भेद मालूम नहीं होता। कहीं इन दोनो ने यह सलाह करके बूढे सभाराम को खुद ही तो नहीं मार डाला, कि इसे मार कर हम दोनों कहीं को निकल चलें?"

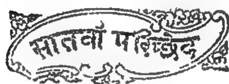
रामा की मा की यह बात सुन कर बदरुन्निसा अपने गुस्से को न सभाल सकी, और उसे जोर का धक्का देकर बोली—"हरामजादी कहीं की चल, दूर हो यहा से। कुकर्म

करते-करते तेरी उमर बीत गई, इसीलिए तू सब को बुरा समझती है ।”

रामा की मा चुप रह गई । मुँह खोल कर कुछ न कह सकी । बदरुन्निसा आराटून साहब के घर की मालकिन ठहरी । मेमसाहब माता के समान उनका आदर करते हैं—यह सोच कर रामा की मा को प्रकट रूप से तो कुछ कहने का साहस न हुआ, पर मन ही मन कहने लगी—“हा, मैंने तो उमर भर कुकर्म किये हैं, तुम बडी कही की सती हो । ” अस्तु बदरुन्निसा की फटकार सुन कर आज के बाद कभी रामा की मा सावित्री के विरुद्ध कोई बात अपनी जबान पर नहीं लाई, और ऊपरी बातो मे सदा ही सावित्री के प्रति प्रेम प्रकट करती रही ।

हमारे पाठक सम्भवत यह सोचेंगे कि रामा की मां बडी दुष्टा थी । परन्तु इस उन्नीसवीं शताब्दी की सभ्यता के प्रकाश में भी यदि शिक्षित कहलाने वाली अनेकानेक बङ्गीय भद्र महिलाओं के चरित्र की आलोचना की जाय तो वे ठीक ‘ रामा की मा ’ प्रमाणित होती हैं । जब शिक्षित समुदाय में भी सैकडों रामा की मा ’ पाई जाती हैं, तब उस अज्ञानान्धकार मे आछन्न अठारवी शताब्दी की अशिक्षिता रामा की मा को हम किसी गुरुतर अपराध की अपराधिनी नही कह सकते । मनुष्य शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, यदि उसका चरित्र पवित्र नहीं है—यदि उसका हृदय सद्भावों से परिपूर्ण नही है—यदि अहङ्कार और अहम्मन्यता उसके हृदय से दूर नहीं हुई है यदि सत्य और न्याय के प्रति उसमें अनुराग नहीं है, तो वह अवश्य ही रामा की मां हो कर पशु जीवन व्यतीत करेगा, और

पवित्र से पवित्र चरित्र को भी कलंकित करने की चेष्टा करेगा। परन्तु 'रामा की मा' जैसे अशिक्षित मनुष्य दूसरे की डाट फटकार के सामने सिर झुकाने को तैयार रहते हैं, और शिक्षित कहलाने वाले वर्गीय युवक अपने मत का समर्थन करने के लिए तर्कशास्त्र का आश्रय लेते हैं। ये किसी तरह खामोश हो जाने वाले जीव नहीं। दोनो में यही अन्तर है।



आराटून साहब की पत्नी।

सभाराम की अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त हुई—उनका शरीर अग्नि मे भस्मीभूत हुआ। इस संसार में उनका कोई चिन्ह बाक़ी न रहा—रहा सिर्फ उनके शिल्प-नैपुण्य का विश्वव्यापी यश, और उनकी अन्तिम अवस्था के दुखों की कहानी।

सावित्री हाथ मे घडा लेकर तालाब से पानी भर लाई और चिता की अग्नि को बुझाने लगी। बाद मे राख को उठा कर उसने चिता का स्थान साफ किया, और चिता के गड्ढे में मिट्टी भर कर उसे जमीन के बराबर कर दिया। रामा तुलसी के एक पौदे को समूल उखाड़

लाईं और चिता के स्थान पर सावित्री ने उसे रोपण किया। तदनन्तर रामा और सावित्री दोनों स्नान के लिए भागीरथी के तट पर आईं। स्नान और तर्पण करके सावित्री अपने घर की तरफ चली। बदरुन्निसा अभी तक उसके साथ ही थी। वह भी सावित्री के साथ उसके घर आई। रामा स्नान कर के मां के साथ अपने घर चली गई।

सावित्री अपने वृद्ध पिता के सहित जिस टूटे-फूटे घर में रहा करती थी, आज उस घर में उससे क़दम न रखा गया। पिता की अन्तिम अवस्था का दुख याद आते ही उसका हृदय विदीर्ण होने लगा, वह तीव्र शोकावेग में हाहाकार कर के रो उठी। इस वक्त तक उसे रोने पीटने का अवकाश नहीं मिला था, सिर्फ यही चिन्ता, सम्पूर्ण रूप से, उसके हृदय पर अधिकार जमाये रही थी कि किस प्रकार पिता की अन्त्येष्टि क्रिया को समाप्त करूं। अब वह चिता नहीं रही। पिता की अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त हो चुकी। शोक और दुख ने, अवकाश पाकर, तुरन्त ही बडे जोरों में हृदय के भीतर प्रवेश किया। गुरुतर शोक-भार को सहन करने में असमर्थ हो सावित्री घर के दरवाजे पर अचैतन्य हो गिर पड़ी। कुछ देर में जब होश आया तो, उठ कर वहीं बैठ रही।

बदरुन्निसा ने कहा—"बेटी! तुम अकेली यहां कैसे रहोगी? चलो, मेरे साथ चलो। हम अपनी कोठी के अहाते में तुम्हारे लिए एक छप्पर डलवा देंगी। बाद में परमेश्वर की दया से जब तुम्हारे बडे भाई और स्वामी जेल से छुट कर आवें तब उनके साथ अपने घर आकर रहना।"

कहा रहूगी ? कैसे रहूगी ? किस प्रकार जीवन विताऊंगी ? ये प्रश्न अभी तक सावित्री के हृदय में उत्पन्न नहीं हुए थे, और होते कैसे, पिता की मृत्यु के बाद तो उसे सिर्फ यह चिन्ता लगी रही कि किस प्रकार पिता की अन्त्येष्टि क्रिया को सम्पादन करू, इधर जब इस चिन्ता से छुट्टी मिली तो दारुण शोकाग्नि उसके हृदय को प्रज्वलित करने लगी। इसी व्यथा में वह अघोर पड़ी है। दूसरे, यह चिन्ता उसने पहिले भी कभी नहीं की थी कि मैं किस प्रकार अपना जीवन बिताऊंगी, किस प्रकार अपना पेट पालूगी। घर-बार लुट जाने के बाद भी सावित्री ने कभी अपने सुख ओर अपने आराम की चिन्ता नहीं की। अपने को सर्वथा भूल कर वह सिर्फ इसी चिन्ता में लीन रहती थी कि किस प्रकार अपने वृद्ध पिता का दुःख दूर करू। बदरुन्निसा की बात सुन कर आज अपने लिए पहिले पहिल उसके हृदय में यह प्रश्न उपस्थित हुआ— कहा रहूगी ? अष्टादश वर्षीया युवती क्या अकेली इस निर्जन घर मे निवास कर सकती है ? — विशेषत पूर्व रात्रि की घटना याद आते ही सावित्री का हृदय काप उठा सोचने लगी, क्या जानें, दुष्ट रामहरी कहीं फिर न यहा आकर मेरे ऊपर आक्रमण करे ? इसी आशंका से वह तुरन्त ही बदरुन्निसा के प्रस्ताव से सहमत हो गई, और उसके साथ आरादून साहब की कोठी को चल दी।

कोठी के पास पहुचते ही इन दोनों ने देखा कि आरादून साहब की मेम अपने शयनगृह से थोडे फ़ासिले पर कई एक मजदूरों के द्वारा एक कुटी बनवा रही हैं। उसकी तैयारी में सिर्फ तीन ही चार घटे की कसर है। सावित्री

ने आराट्न साहब की मेम को पूर्व-रात्रि की सारी घटनाएं आद्योपान्त कह सुनाई। मेमसाहब के हृदय में बड़ी दया थी, सावित्री की बातें सुनते सुनते उनकी आंखों से बूंद बूंद आंसू टपकने लगे।

इस सहृदया रमणी ने सावित्री के प्रति असीम दया प्रकट की। निर्दय रामहरी के पंजे से उसकी रक्षा करने के लिए अपनी कोठी में उसे रहने को जगह दी, कुटी बनवा दी। यह रमणी कौन थी, यह जानने के लिए हमारे पाठक विशेष उत्सुक होंगे। अतएव पाठकों की इस उत्सुकता को शान्त करने के लिए हम इन सदाशया रमणी (आराटून साहब की मेम) और बदरुन्निसा के जीवन का संक्षिप्त इतिहास नीचे लिखते हैं।

बंगाल के सूबेदार अलीवर्दी खा के सिंहासनासीन होने के बाद ईसवी सन् १७४१ में मराठों ने बंगाल पर चढ़ाई की। मीरहुसेनअली नामक अलीवर्दी खा के एक विश्वस्त सेनानायक ने इस युद्ध में विशेष वीरता और रणकुशलता का परिचय देकर मराठों को परास्त किया और अपने स्वामी अलीवर्दी खा की प्रसन्नता लाभ की। युद्ध के बाद अलीवर्दी खा ने इसे प्रधान सेनाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया। मीरजाफ़र, मीरहुसेन का सगा छोटा भाई था। मीरहुसेन अपने भाई मीरजाफर को प्राणों से अधिक प्यार करता था। परन्तु विषयासक्त कायर पुरुष प्राय घोर कृतघ्न हुआ करते हैं। मीरजाफर ने अपने बड़े भाई मीरहुसेन को गुप्तरूप से विष देकर मार डाला। अलीवर्दी खा ने मीरहुसेनअली की मृत्यु के वास्तविक कारण को न जान पाया, और इस लिये उन्होंने मीरहुसेनअली की कारगुजा

यों के पुरस्कार स्वरूप उनकी मृत्यु के बाद उनके छोटे
ाई मीरजाफर को उनके पद पर नियुक्त किया। मीरजा-
र ने प्रधान सेनाध्यक्ष के पद पर नियुक्त होते ही अपने
ाई हुसेनअली की प्रधान प्रधान स्त्रियों को अपने महल
दाखिल कर लिया। हुसेनअली की दस बारह परम
न्दरी विवाहिता स्त्रिया और कोई सौ से अधिक उप
त्निया मीरजाफर के अन्तःपुर मे ले ली गई। परन्तु
रहुसेनअली ने यौवन के आरम्भ मे एक ब्राह्मण कन्या
ा हरण कर के, मुसलमानी प्रथा के अनुसार, उनका
णिग्रहण किया था। यही हुसेनअली की सर्वप्रधान पत्नी
ी। हिन्दू स्त्रिया जातिभ्रष्ट हो जाने पर भी प्राय दूसरा
ति ग्रहण करने के लिए सहमत नहीं होती, सतीत्वधर्म का
ाव इन में स्वाभाविक होता है। हुसेनअली के द्वारा
स ब्राह्मण स्त्री के गर्भ से एक पुत्र और एक कन्या जन्मी
ी। अपने पति (मीर हुसेनअली) की मृत्यु के बाद
तीत्वधर्म की रक्षा के उद्देश से यह ब्राह्मण स्त्री अपने
त्र और कन्या को साथ ले भाग निकली और सैदाबाद
निकटवर्ती किसी गाव मे रहने लगी। इसके पुत्र का
ाम मीरमदन और कन्या का नाम बदरुन्निसा था। कुछ
िन बाद इस ब्राह्मण स्त्री की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु
समय, उनके पुत्र मीरमदन की अवस्था अठारह बरस की
ी और कन्या बदरुन्निसा की अवस्था चौदह बरस की
ी। यौवन-प्राप्ति के बाद ही मीरमदन नवाब-सरकार में
ेनापति के पद पर नियुक्त हो गया, और बाद में किसी
तिष्ठित घराने की मुसलमान कन्या के साथ पाणिग्रहण
र के सुखपूर्वक जीवन बिताने लगा। मीरमदन में सारे

ढग अपने पिता के से थे । पिता का वीरोचित स्वभाव पिता की सदाशयता, पिता की उदारता उस के जीवन के, प्रत्येक कार्य में परिलक्षित होती थी । परन्तु बदरुन्निसा अपने मां के स्वभाव की थी । पिता की मृत्यु के बाद जब उसने अपनी विमाताओं को दूसरे के हाथों में जाते देखा, उसी वक्त से उसके हृदय में मुसलमानी आचार-व्यवहार के प्रति अत्यन्त अरुचि उत्पन्न हो गई।

मुसलमानों की बहु-विवाह-प्रथा को वह अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखती थी । यौवन के आरम्भ ही में उसने मन ही मन यह निश्चय किया कि चाहे आजीवन अविवाहिता रहूं, पर किसी मुसलमान का पाणिग्रहण न करूँगी अतएव बदरुन्निसा का विवाह नहीं हुआ । विवाह होने की कोई सम्भावना भी नहीं थी । वह ठहरी मुसलमान कन्या, कोई ब्राह्मण-वर उस से विवाह करने काहे को आता ? बदरुन्निसा अपने सहोदर मीरमदन के घर पर रहती रही । मीरमदन के सिर्फ एक इकलौती कन्या थी । और कोई सन्तान न थी । बदरुन्निसा बड़े प्रेम से उस कन्या का प्रतिपालन करती थी, और उसे प्राणों से अधिक चाहती थी ।

मीरमदन के साथ सैदाबाद के आरमीनियन व्यापारी सामुएल आराटून की गाढी मित्रता थी । आराटून साहब प्राय प्रति दिन मीरमदन के मकान पर आते और उनके साथ खाते पीते थे । सामुएल अराटून की स्त्री भी कभी कभी मीरमदन के घर पर आकर उनकी स्त्री एवं बदरुन्निसा के साथ एकत्र भोजन किया करते थीं ।

कुछ दिन बाद सामुएल आराटून साहब की स्त्री क

देहान्त हो गया। इस स्त्री के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। माता की मृत्यु के समय इस बालक की अवस्था सिर्फ़ चार बरस की था। इसका नाम था कारापिट आराटून। मातृ-वियोग के अनन्तर कारापिट प्रायः मीरमदन ही के घर पर रहा करता था। बदरुन्निसा सन्तान की भांति उसका लालन-पालन करती थी। मुसलमानों की स्त्रियां पर्दे के कारण कभी घर के बाहर नहीं निकलतीं, अतएव किसी को उन्हें देखने का अवसर नहीं मिलता। सामुएल आराटून ने आज तक कभी बदरुन्निसा को नहीं देखा था, परन्तु उस की सहृदयता की प्रशंसा अपनी स्त्री की ज़बानी बहुत दफ़े सुनी थी। जब उनकी स्त्री का देहान्त हो गया और बदरुन्निसा उनके पुत्र कारापिट आराटून का प्रतिपालन करने लगी तो आना जाना विशेष बढ़ जाने पर बीच बीच में कभी कभी बदरुन्निसा उनकी नज़र पड़ जाती थी। उसकी स्नेहशीलता, सहृदयता और सच्चरित्रता को देख कर सामुएल आराटून उस पर बड़े विमोहित हुए। बदरुन्निसा की अवस्था इस वक़्त तीस बत्तीस बरस के लगभग थी। देखने में वह बड़ी सुन्दर थी। दिनों दिन सामुएल आराटून का मन बदरुन्निसा के प्रति आकृष्ट होने लगा। विशुद्ध प्रेम में विलक्षण शक्ति होती है। आराटून साहब का हृदय-स्थित शुभ्र प्रेम अस्पष्ट और अज्ञात रूप में बदरुन्निसा के मन को आकर्षित करने लगा। इन दोनों के पारस्परिक प्रणय के क्रमिक विकाश और परिवर्द्धन का इतिहास लिखकर उपन्यास के आयतन को बढ़ाना व्यर्थ है। सक्षेप में केवल इतना ही कह देना काफ़ी है कि बदरुन्निसा को सामुएल आराटून के साथ विवाह करने की इच्छा हुई। इधर आराटून साहब

ने यह निश्चय किया कि वदरुन्निसां के साथ बिवाह कर के हम अवश्य ही इस संसार में सुखशांति के अधिकारी होंगे, एव फिर हमें और कुछ भी वाछनीय न रहेगा।

परन्तु देशाचार और लोकाचार कभी कभी अवस्था विशेष में कितना कष्टदायक होता है कि जिसका कोई हद-हिसाब नहीं। आराटून साहब ने सोचा कि यदि हम वदरुन्निसा के साथ विवाह कर लेंगे तो अपने स्वदेशीय वणिक-समाज में हमारी बड़ी निन्दा और अवज्ञा होगी। हमारी सह-धर्मिणी को अन्यान्य आरमीनियन व्यापारी गिर्ने में न घुसने देंगे। अतएव आराटून साहब वदरुन्निसां और मीरमदन के साथ मिल कर इन सब बातों पर बिचार करने के लिए विविध परामर्श करने लगे। अन्त में यह निश्चय किया कि बदरुन्निसां को ब्याह कर बंगाल छोड़ मदरास में जाकर रहेंगे और वहीं व्यापार करेंगे; परन्तु बंगाल छोड़ जाने से उनका व्यापारीय कार-बार एकदम नष्ट हो जाता और उनके धन-माल की बरबादी होती।

बदरुन्निसा ने देखा कि आराटून साहब मेरे लिए अपनी सारी जायदाद और धन सम्पत्ति को छोड़ने पर तैयार हैं। अतएव मन ही मन वह बहुत ही व्यथित होने लगी। बहुत कुछ सोच विचार के अनन्तर उसने एक दिन आराटून साहब से कहा—"मैं तुम्हारे घर में एक परिचारिका की भांति रहूगी। तुम्हारे यहा की आया होकर मैं तुम्हारे बाल बच्चों का लालन पालन करूंगी। ऐसा होने पर तुम्हें किसी प्रकार का सामाजिक अपमान न सहना पड़ेगा। ईश्वर की दृष्टि में मैं तुम्हारी धर्मपत्नी

होऊंगी, पर तुम्हारे स्वदेशीय वणिकों की दृष्टि में मैं तुम्हारे घर की दासी रहूंगी।"

पवित्र प्रणय के अनुरोध से जब बदरुन्निसा इस प्रकार का त्याग स्वीकार करने के लिए तैयार हुई तो मीरमदन ने भी इसमें कोई आपत्ति न की। मीरमदन बड़े उदार-चेता मनुष्य थे। परन्तु आराटून साहब यह सोच सोचकर मन ही मन बड़े व्यथित होने लगे कि अपनी प्रणयपात्री बदरुन्निसा को दासी की भांति हमें अपने घर रखना पड़ेगा। परन्तु अन्त में विवश हो उन्हें इसी उपाय का अवलम्बन करना पड़ा। बदरुन्निसा के मनोरञ्जनार्थ आरा-टून साहब ने मुसलमानी रीत्यानुसार उसके साथ विवाह किया, क्योंकि बदरुन्निसा अपने धार्मिक विश्वासों में बड़ी पक्की थी। पतिप्राणा बदरुन्निसा पवित्र प्रणय के अनुरोध से मानाभिमान को तिलांजलि देकर अपने पति के घर की परिचारिका हुई और इस प्रकार का त्याग स्वीकार करके उसने अपने पति को सामाजिक अपमान और लोकनिन्दा के भय से मुक्त किया। पावन प्रणय की विलक्षण शक्ति को देखिये कि एक बड़े प्रतिष्ठित घराने की बेटी सेनापति मीरमदन की सहोदरा, बदरुन्निसा ने अपने पति के घर में दास्यवृत्ति का अवलम्बन किया। मेरे महोदर सेनापति मीरमदन को किसी प्रकार की लोक-लज्जा न उठानी पड़े,— इस अभिप्राय से बदरुन्निसा ने आज तक कभी किसी के निकट अपने को सेनापति मीरमदन की बहिन बता कर परिचित नहीं किया। अपना परिचय देते हुए वह सदा यही कहा करती थी कि मैं पहिले सेनापति मीरमदन के घर में दासी के काम पर नियुक्त थी। लोग बदरुन्निसा

को दुराचारिणी खयाल करते थे और उसे सामुएल आराटून साहब की उप-पत्नी समझते थे, परंतु परमेश्वर की दृष्टि में वह आराटून साहब को धर्मपत्नी थी। पाठकों को याद होगा, जिस वक्त रामा की मा ने मन ही मन बदरुन्निसां की भर्त्सना की थी, उस वक्त उसने चुपके चुपके कहा था—"मैं ने उमर भर कुकर्म किये हैं और तुम बड़ी कहीं की सती हो।" रामा की मा के इस प्रकार कहने का कोई कारण था और वह यही कि वह जानती थी, बदरुन्निसा आराटून साहब की उपपत्नी है।

बदरुन्निसां के इस गुप्त विवाह के दो बरस बाद, पलासी के युद्धक्षेत्र में उसके भाई सेनापति मीरमदन ने अपनी मानवलीला को समाप्त किया। वे मीरजाफर की तरह विश्वासघाती नहीं थे। सिराजुद्दौला को वह प्राय-कुकर्मों से बाज रखने का उद्योग किया करते थे और उसकी कुक्रियाओं को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे। कभी कभी वे स्पष्ट शब्दों में सिराज को, सन्मुख सग्राम में परास्त कर, सिंहासन-च्युत करने का भय दिखाया करते थे। परतु उसके विरुद्ध कोई गुप्त षड्यत्र रचने की चेष्टा उन्होंने कभी नहीं की। वे खयाल करते थे कि सिराजुद्दौला दुराचारी सही, पर आखिर मेरा मालिक ही है, अतएव विश्वासघातपूर्वक उसके नाश की चेष्टा करनी मेरे लिए न्याय और धर्म के सर्वथा विरुद्ध है।

सहृदय मीरमदन ने अपने स्वामी को विपत्ति से मुक्त करने के लिए पलासी युद्धक्षेत्र में अपने प्राण विसर्जित किये। उनकी स्त्री और कन्यां एकदम अनाथा हो गई। मीरजाफ़र ने सिंहासनासीन होकर सिराज और मीरमदन के

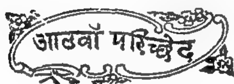
महल की स्त्रियों को अपने अन्तःपुर में दाखिल कर लिया। बदरुन्निसा को जैसे ही मीरमदन के प्राणांत की खबर लगी, वह उनकी कन्या को अपने यहां लिवा लाई और सस्नेह उसका प्रतिपालन करने लगी। इस प्रकार मीरमदन की कन्या एरफन्निसा, उर्फ बेगमी बीबी, आराटून साहब के घर बदरुन्निसा की देखरेख में रही। बाल्यावस्था से ही इस कन्या को आरमीनियन लोगों का सहवास प्राप्त रहा, कुछ ही दिनों में इसने आरमीनियनों की भाषा भी सीख ली। फारसी भाषा में लिखना पढना इसने अब से पहिले ही सीख लिया था। इसका स्वभाव बहुत ही सरल और नम्र था। दूसरे का दुःख देख कर इसका हृदय द्रवीभूत हो उठता था। दर्शकगण इसके चिरहास्य विराजित चेहरे को देख कर मुग्ध हो जाते थे, क्या शारीरिक सौन्दर्य के सम्बन्ध में और क्या मानसिक प्रकृति के सम्बन्ध में — सांसारिक भाव, सांसारिक आचरण तथा सांसारिक आडम्बर इसके जीवन में विशेष नहीं देखे जाते थे। यह सचमुच देवकन्या सी जान पडती थी। सामुएल आराटून अपनी कन्या की भांति इसे प्यार करने लगे और मन ही मन उन्होंने निश्चय किया कि अपने पुत्र कारापिट के युवा होने पर, जहां तक हो सकेगा, इस कन्या के साथ उसका विवाह करने की चेष्टा करेंगे। परन्तु इसके लिए उन्हें फिर अधिक उद्योग न करना पडा। कारापिट बाल्यावस्था से एरफन्निसा के साथ एकत्र खेला करते थे, एक ही साथ खाते पीते थे। यौवनावस्था में, इन दोनों के हृदयों में, एक दूसरे के प्रति अकृत्रिम प्रेम का संचार हुआ। सामुएल आराटून की मृत्यु के एक बरस बाद कारापिट आरा-

टून ने एरफन्निसा के साथ विवाह किया। विवाह के बाद एरफन्निसा का नाम हुआ एस्थार। आज इनका विवाह हुए पांच छः बरसें हो चुकी हैं। इस बीच में एस्थार बीबी के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं।

कारापिट आराटून साहब की स्त्री आरमीनियन वंश की नहीं हैं, ये मीरमदन की बेटी हैं, और बदरुन्निसा मीरमदन की सगी छोटी बहन है। मुसलमानों के शासन-काल में हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर विशेष घनिष्ठता थी। अतएव आराटून साहब की स्त्री यदि सावित्री के प्रति इतना दया प्रकट कर रही हैं तो यह कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं। हिन्दू महिलाएं मुसलमान कुलांगनाओं के प्रति सदा ही सहानुभूति प्रकट किया करती थीं। मुसलमान लोग हिन्दुओं को पराजित जाति कह कर उनसे घृणा नहीं करते थे, वरन् हिन्दुओं को अपने समान समझ कर मित्र की भांति उनमें श्रद्धा रखते थे, और देश के शासन-कार्य-सम्बन्धी प्रधान प्रधान पदों पर हिन्दुओं को नियुक्त करते थे।

आराटून साहब की सहधर्मिणी एस्थार बीबी ने अपने शयन-गृह के पार्श्व में सावित्री के लिए एक घर तैयार करवा दिया। हिन्दुओं के आचार-व्यवहार को वे अच्छी तरह जानती थीं। यह उन्हें मालूम था कि हिन्दुओं के यहां पिता-माता की मृत्यु के बाद उनका दाह-संस्कार करने वाले को अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करना पड़ता है। अतएव उन्होंने अपने हिन्दू नौकर के द्वारा सावित्री के लिए चावल घी इत्यादि सामान मंगा रखा। सावित्री ने कल से कुछ नहीं खाया था। एस्थार बीबी बारम्बार उससे भोजन बनाने का अनुरोध करने लगीं। सावित्री ने अपने हाथों

रसोई तैयार की, और उस छोटी सी कुटीर में बैठ कर भोजन किया। सावित्री के भोजन कर चुकने पर एस्थार बीबी ने स्नान करके स्वय कोई तीन बजे के वक्त खाना खाया।



रामदास शिरोमणि का वैष्णवधर्म-ग्रहण।

इस प्रकार सावित्री आराटून साहब के यहा रहने लगी। उसके दुख निवारणार्थ एस्थार बीबी और बदरुन्निसा प्राण-पण से उद्योग करने लगी। परन्तु जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं, धार्मिक बातों पर सावित्री का प्रबल विश्वास था। उसने अपने मन में सोचा कि यदि पिता का श्राद्ध न हुआ तो उन्हें मुक्ति प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं। जब तक उनका श्राद्ध न होगा, तब तक सम्भवत उन्हें नरक में रह कर दु सह दुख भोगना पडेगा। इस चिन्ता में उसका हृदय बहुत ही व्यथित होने लगा।

वह पुन सोचने लगी — "हा! यदि अगरेजों के अत्याचार से हम लोगो की यह दुर्दशा न हुई होती तो आज मेरे भाई पाच छ हजार रुपया खर्च कर पिता का श्राद्ध करते। परन्तु आज वे न जाने कहा चले गये? पिता

की मृत्यु हो गई—उन्हें यह भी न मालूम हो सका।" इसी सोच में सावित्री अकेली बैठी बैठी आसू बहाया करती थी कि गांठ में एक पैसा नहीं, श्राद्ध करू तो कहा से? एस्थार बीबी मेरे भरण पोषण का खर्च दे ही रही हैं, फिर उनसे और श्राद्ध के लिए खर्च मागूँ, सो कैसे? हिन्दू शास्त्र के नियमानुसार कन्या को पिता की मृत्यु के बाद तीसरे दिन उसका श्राद्ध करना चाहिये। परन्तु तीन दिन तो बीत चुके अब यदि महीने के भीतर भी किसी तरह पिता का श्राद्ध कर सकती तो भी अच्छा होता।

एक दिन इसी विषय का चिन्तन करते-करते सावित्री अत्यन्त शोकाकुल हो उठी। सहसा उन्मत्त की भाति चिल्ला कर कहने लगी—"हा ईश्वर! मेरे पिता के भाग्य में यही बदा था। उन्होंने तो कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया, फिर उनकी ऐसी दुर्दशा क्यों हुई! हाय! हाय! पिता का श्राद्ध भी न हो सका।" यही कहते-कहते सावित्री अचेतन्य हो पृथ्वी पर गिर पडी।

दैवात् एस्थार बीबी इस वक्त सावित्री की कुटी की तरफ़ आ रही थीं। सावित्री की कातरोक्ति ने उनके कानों में प्रवेश किया। दौड़ कर वे सावित्री की कुटी के पास आईं, वहा पहुचने पर उन्होंने देखा कि सावित्री अचेत पडी है।

कुछ देर बाद जब सावित्री चैतन्य हुई, एस्थार बीबी ने पूछा—"आज फिर तुम इतनी शोकाकुल हो रही हो, क्यों?" सावित्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

एस्थार बीबी आग्रहपूर्वक बारम्बार कहने लगीं—"यदि तुम्हारे दुःख का कोई नया कारण हो तो मुझसे

कहो । मैं यथाशक्ति उसे दूर करने का उद्योग करूगी । मैं तुम्हें छोटी बहिन के समान प्यार करती हू । तुम्हें दुखी देख कर मुझे बडा दुख होता है ।"

तब सावित्री ने कहा — "मेरे पिता का श्राद्ध न हुआ इस कारण मेरा हृदय बहुत ही दुखी हो रहा है । सुना है, जब तक श्राद्ध नहीं होता तब तक मृतक व्यक्ति को नरक में रहना पडता है, श्राद्ध होने ही पर वह स्वर्ग को जा सकता है । ऐसी दशा में सम्भवत मेरे पिता नरक में दु सह दुख झेल रहे होंगे । वृद्धावस्था में असहनीय क्लेश भोग कर पिता की मृत्यु हुई, अब उन्हें नरक के दारुण कष्ट भी भोगने पडेंगे — इसी चिंता से मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है ।"

एस्थार बीवी ने कहा — यह बात तुमने अब तक मुझ से क्यों नहीं कही ? श्राद्ध में जो कुछ खर्च लगेगा, वह मैं दूगी ।

सावित्री — नहीं, नहीं । मैं आपको अधिक खर्च के लिए मजबूर नहीं कर सकती । तिस पर आप भी आज कल मुसीबत में हैं ।

एस्थार — अच्छा तो श्राद्ध में कितना रुपया लगेगा ?

सावित्री — मेरे खयाल में दस पद्रह रुपये में काम चल सकता है ।

एस्थार — मैं इसी वक्त पद्रह रुपये देती हूं । श्राद्ध के लिए जो जो सामान चाहिए, सो बताओ, मैं अपने नौकर से मँगा दू गी ।

सावित्री — ब्राह्मण के बिना पूँछे मैं नहीं बता सकती

कि कौन कौन चीज चाहिये । अगौछा वगैरह की जरूरत पड़ती है ।

एस्थार — मै अपने नौकर से ब्राह्मण को बुलवाती हू।

सावित्री — आप रामा को बुलवा लें, और उसी से ब्राह्मण को बुलवाए । रामा इन सब बातो की जानकार है । श्राद्ध के अवसर पर वह प्राय जहा-तहा काम-काज किया करती है ।

आराट्न साहब की स्त्री के आज्ञानुसार रामा ब्राह्मण को बुलाने गई । परतु सैदाबाद के आस पास तीन-तीन कोस तक कही तंतुकारो के पुरोहित-ब्राह्मण का पता न लगा । पास पड़ोस के सभी गावों के ततुकार घर-बार छोड़ अन्यत्र भाग गये थे, अतएव उनके पुरोहित लोग भी उन्हीं के साथ चले गये थे । रामा ने लौट कर यह सब हाल आराट्न साहब की स्त्री और सावित्री से कहा। सावित्री बड़ी निराश हुई । एस्थार बीबी भी सोचने लगीं, अब क्या करें। इतने में बदरुन्निसा ने सावित्री से पूछा— "ये जो कितने ही भट्टाचार्य्य पण्डित हमारे सैदाबाद के पड़ोस में रहते हैं, इनसे काम नही चलेगा ? "

सावित्री ने कहा — "काम तो चल सकता है परन्तु हम लोग ततुकार हैं, नीची जाति के आदमी हैं ये भट्टाचार्य्य पण्डित मुझे श्राद्ध-मन्त्र पढाना स्वीकार नहीं करेंगे।

बदरुन्निसा — अरे रुपये से तो शेर की आखें तक खरीदी जा सकती हैं, रामा, तू कुछ ज्यादा रुपया देने कह, भट्टाचार्य्य महराज तो दौड़े आवेंगे और श्राद्ध करवा जायंगे।

सावित्री—नहीं, वे लोग कदापि स्वीकार न करेंगे।

परन्तु रामा को आशा हुई । उसने सोचा कि कुछ

ज्यादा रुपया देना मजूर करने पर भट्टाचार्य पण्डित मिल सकते हैं जरूर । निदान वह तुरन्त ही हरिदास तर्क-पचानन के पास गई ।

हम पहिले ही कह चुके हैं, रामा बडे सरल स्वभाव की स्त्री थी । ससार के रग-ढग को वह तनिक भी नहीं समझती थी । तर्क पचानन महाशय विद्यार्थियों से घिरे हुए बैठे थे । अन्यान्य दो चार ब्राह्मण पण्डित भी वहाँ मौजूद थे। रामा ने उन सब लोगों के सामने ही अपने मतलब की बात खोल दी । तर्क पचानन महाशय रामा की बात सुन कर आगबबूला हो उठे। सामने पड़े हुए खडाऊँ उठा कर रामा के सिर में जमाने को तैयार हुए, और चिल्लाकर कहने लगे—“ नीच कहीं की, तू इतनी बढ गई । मुझसे तन्तुकारो का श्राद्ध कराने के लिए कहती है । मैं कभी शूद्रों का दान लेता हू ? ”

रामा तनिक भी चीचपड़ न कर के चट-पट वहां से भाग खड़ी हुई । तर्क पचानन ने देखा, शिकार हाथ से निकला जाता है, अतएव जैसे ही रामा ने पीठ घुमाई तर्कपचाननजी ने दाहिने हाथ से कान पर जनेऊ चढाते हुए, बाएं हाथ में पानी का लोटा लिया, और पेशाब के बहाने धीरे धीरे घर के बाहर आये । चटपट इशारे से रामा को पुकारा और कहने लगे—“अरे तू तो बडी पगली है, इतने आदमियों में कहीं ऐसी बातें कही जाती हैं ? देख, दो सौ रुपया दे तो मैं गुप्त रूप से श्राद्ध करवा आऊँगा। परन्तु खबरदार ! किसी को जाहिर न होने पावे। ”

रामा के चरित्र का हाल पाठकों को भली भांति ज्ञात है । यदि कोई उससे नाराज होकर कुछ कहता तो यह

उससे सीधे बात नहीं करती थी। तर्कपचानन की बातें सुनकर रामा गुस्से में आकर कह उठी— "महाराज, अब आप अपने घर बैठें, हमें बहुत ब्राह्मण मिल जावेंगे।"

यह कहते हुए रामा झटपट रामदास शिरोमणि के पास पहुची। शिरोमणि महाशय के पास भी दो चार आदमी बैठे हुए थे। परन्तु अबकी दफे रामा ने किसी के सामने अपनी बात नहीं कही। कुछ देर वहा बैठी रही, जब वे अपरिचित आदमी सब चले गये तब रामा ने, विदेशी राजदूत की तरह, अपने मतलब की बात प्रकट करने के पहिले भूमिका बांधनी शुरू की। अत्यन्त विनम्रता प्रकट करती हुई बोली—"पण्डित जी महाराज, एक मतलब से आपके पास आई हूं।"

शिरोमणि—कौन मतलब ?

रामा—श्रीमान्—श्रीमान्— पण्डित जी महाराज, आप तो जानते ही हैं कि हमारे पुरोहित लोग सब देश छोड गये हैं।

शिरोमणि—हा, हा, छोड न जाते तो और करते क्या ? उनके सब जजमान भाग गये तो वे यहा रहकर क्या करते ?

रामा—पण्डित जी महाराज—हमारी जाति के मुखिया थे सभाराम, वे मर गये। उनका श्राद्ध अभी तक नहीं हुआ। उनकी लड़की सावित्री उनका श्राद्ध करना चाहती है, पर कोई ब्राह्मण नहीं मिलता।

शिरोमणि— हा, हा, खूब समझा। तो मुझसे तन्तुकार का श्राद्ध कराने के लिए कहेगी ? तीन पन बीत गये, कभी शूद्र का दान नहीं लिया। अब क्या चौथे पन में यह कुकर्म करूँगा ?

रामा— महाराज आप से यह कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। परन्तु करूँ क्या, बिना कहे बनता नहीं। पुरोहितों का कहीं पता नहीं लगता।

शिरोमणि — अच्छा तो, मुझे मालूम है, मभाराम के पास बहुत रुपया था। वह क्या अगरेजों ने लूट लिया ?

रामा — सब लूट लिया। एक पैसा भी न रह गया। श्राद्ध का खर्च हमारी मेम साहब देंगी।

शिरोमणि — अच्छा तो पाच सौ रुपया देने पर गुप्त रूप से श्राद्ध का मंत्र पढा सकता हूँ। परन्तु खबरदार किसी को जाहिर न होने पावे।

रामा — महाराज भला ऐसी बातें कहीं जाहिर करने की होती हैं। परन्तु मेम साहब भला इतना रुपया क्यों देने लगीं ? हम लोग तो कोई दस बारह रुपये में सब काम निपटाना चाहते हैं।

शिरोमणि — जा तो एक सौ रुपया दे सकेगी ?

रामा — नहीं पण्डित जी।

शिरोमणि — अच्छा तो जा, मैं तन्तुकार का श्राद्ध नहीं करवा सकता।

रामा उदास हो उठ कर चल दी। इतने में शिरोमणि महाराय पुन रामां से बोले— "अच्छा तो दस रुपया दे। मभाराम का घर लुट गया है, उनका बड़ा लड़का जेल में है, सावित्री बेचारी बड़ी विपत्ति में फँसी है, चलो इतना ही सही। मगर देख खबरदार ! इस बात को कहीं चर्चा न हो।"

रामां — पडित महाराज, पाच रुपये से ज्यादा हम लोग नहीं दे सकेंगे।

शिरोमणि जी ने सोचा, आज कल तंगी का वक्त है पांच रुपये भी हाथ से निकाल देना ठीक नहीं। अतएव रामां को जाते देख शिरोमणि जी कह उठे—"अरे सु तो श्राद्ध कौन दिन होगा ?"

रामा—महराज, आगामी मंगलवार को। सभाराम की मृत्यु को आज चौथा रविवार है। अट्ठाइस दिन हो गये। तीसवें दिन परसों मंगलवार को श्राद्ध होगा।

शिरोमणि—श्राद्ध का स्थान गंगा के उस पार रख सकेगी ? क्योंकि गुप्त रूप से काम करना पड़ेगा।

रामा—महाराज, रातोरात गंगापार उतर चलेंगे। एक पहर में श्राद्ध का काम समाप्त हो जायगा। श्राद्ध समाप्त होते ही पहिले मैं आप को इस पार उतार जाऊंगी। बाद में सावित्री को लिवा कर मैं भी चली आऊंगी।

यह बात सुन कर शिरोमणि जी बोले—अरे तू बड़ी हुशियार है, तुझे क्या सिखाऊँ। अच्छा, जा, मैं श्राद्ध कराऊँगा। सभाराम की बेटी बेचारी बड़ी आफत में फँसी है। अब ज्यादा लोभ करना अच्छा नहीं। सभाराम का बड़ा बेटा जब जेल से छूट कर आवेगा तो मैं उस से अपना मन मना लूंगा।

रामा—महाराज, श्राद्ध के लिए क्या क्या सामग्री चाहिए, हम लोगों को तो कुछ मालूम नहीं। मूर्ख आदमी ठहरे, जो जो चीजें चाहिए, उन सब की एक फेहरिस्त बना दीजिए। कल बाजार से सब खरीद रखूंगी।

शिरोमणि—श्राद्ध में जो जो सामान लगेगा, सब मेरे घर मौजूद है। थोड़े से अंगोछे चाहिये, कुछ और चीजें भी चाहिये। खैर, वे सब चीजें मैं अपने साथ लेता

आऊंगा। तुम्हे उनका सिर्फ मूल्य दे देना पड़ेगा।

ब्राह्मण मिल गया, रामा को बड़ी खुशी हुई। झटपट कोठी पर आई और मेम साहब, बदरुन्निसा और सावित्री से उसने आद्योपान्त सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सावित्री ने कहा — रामा, तुमने वास्तव में मेरे साथ बड़े भाई ही के से सलूक किये हैं। रातोरात पिता का दाह संस्कार तुम्हीं ने करवाया और आज उनके श्राद्ध का ठीक ठाक भी तुम्हीं ने लगाया।

मंगलवार आया। प्रभात होते होते सावित्री और शिरोमणि जी को साथ ले एक नौका पर सवार हो, रामा गंगा-पार उतर गई। सावित्री गंगा में डुबकी लगा कर भीगे वस्त्र पहिने पहिने मन्त्रपाठ करने लगी। शिरोमणि महाशय जो-जो कहलाते गये, सावित्री वह सब कहती गई। पर समझी कुछ भी नहीं, किसी भी शब्द का अर्थ उसकी समझ में नहीं आया। बीच में जब "पिता" और "सभाराम" शब्द कहना पड़ा तो उसकी आंखों से आँसू टपक पड़े। कोई पहर भर दिन चढ़े तक श्राद्ध समाप्त हो गया। सावित्री ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति के सहित शिरोमणि जी के चरणों में प्रणाम कर उनकी पद-रज को ग्रहण किया। मन ही मन उसे दृढ़ विश्वास हुआ कि आज मेरे पिता प्रेतलोक को छोड़ कर अवश्य ही स्वर्ग लोक में जा पहुचे होंगे। अतएव मन ही मन हर्षित हो, शोक और दुख की अवस्था में भी, विमल आनन्द का अनुभव करने लगी। एतबार बीबी के प्रति उस का हृदय कृतज्ञता-रस से परिपूर्ण हो गया। रामा ने शिरोमणि महाशय को सामग्री के मूल्य की बाबत सात रुपया और श्राद्ध की दक्षिणा पाच रुपया, कुल बारह रुपये दिये।

शिरोमणि जो अंगौछे के खूँट मे रुपये बांध कर और सामान वगैरह सब लेकर नाव पर सवार हुए। रामा पहिले शिरोमणि को इस पार उतार जाने के लिए उनके साथ नाव पर सवार हुई। सावित्री अकेली उस पार रही। बाद मे रामा फिर उस पार जाकर सावित्री को भी लिवा लाई।

इधर रामा की मा ने इस श्राद्ध का सारा वृत्तान्त सुना। उसे किसी तरह यह पता लग गया कि आज थोड़ी रात रह शिरोमणि पण्डित सावित्री को श्राद्धमन्त्र पढाने के लिए गगा के उस पार गये है। शिरोमणि जी के साथ रामा की मा का पुराना वैर था। परन्तु रामा को इस वैर का कुछ भी पता नहीं था। रामा की मा सवेरे उठते ही फ़ौरन बाबा प्रेमदास के अखाडे में गई और बाबा कृष्णानन्द को आवाज़ देकर कहा—"वैरागी महाशय, ए, वैरागी महाशय जल्दी से इधर आना। आज बहुत दिना के बाद शिरोमणि पण्डित की क़लई खोलने का मौका मिला है।

बाबा कृष्णानन्द ने विस्मित होकर पूछा—"क्यों क्या क्या हुआ ?"

रामा की मा—देखो, यहां तो आओ, शिरोमणि महाशय सभाराम की लड़की सावित्री को श्राद्ध-मत्र पढाने के लिए गंगा के उस पार गये हैं। अभी कुछ ही देर में श्राद्ध की सामग्री लेकर लौटे आते होंगे। शिरोमणि ने तुम्हारे साथ कुछ उठा नहीं रखा, आज इनका भडाफोड़ कर दो।

बाबा कृष्णानद यह बात सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। रामा की मा को साथ ले तुरन्त ही नदी के किनारे आ पहुंचे और इधर-उधर टहलने लगे। पाठक! गुरु-दक्षिणा प्रदान करने का दृढ़ सकल्प कर आज बाबा कृष्णानन्द नदी

किनारे शिरोमणि पण्डित की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बाबा कृष्णानन्द, रामा की मा और शिरोमणि पण्डित में इस से पहिले जो झगड़ा हो चुका था, यदि यहां पर उस का उल्लेख न किया जायगा तो हमारे पाठक इस बैर-प्रतिशोध के मूल कारण को न समझ सकेंगे। बाबा कृष्णानद बंगाल के एक गरीब ब्राह्मण की सन्तान थे। इनका पहिला नाम था नवकिशोर चट्टोपाध्याय। बाल्यकाल में ही इन के पिता की मृत्यु हो गई। आठ बरस की अवस्था में इनकी माता ने इन्हें शिरोमणि पण्डित की पाठशाला में शास्त्राध्ययन करने के लिए भेजा। बारह बरस तक इन्होंने शिरोमणि की पाठशाला में विविध शास्त्रों का अध्ययन किया। जब इनकी अवस्था बीस बरस की हुई, तब इन्होंने न्याय, दर्शन और योगशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। इनकी बुद्धि बड़ी पैनी थी। तर्क और विचार में ये अपने सभी सहपाठियों को समय समय पर परास्त करते रहते थे। सभी विद्यार्थियों में प्राधान्यता प्राप्त करते देख इनके सहपाठी इन से बहुत जलते थे। शिरोमणि महाशय खुद भी यह आशंका करते थे कि नवकिशोर भविष्य में मुझ से भी अधिक बढ़ जावेगा, और मेरे ऊपर भी प्राधान्य प्राप्त करेगा।

प्राय दो बरसें बीत गईं, एक दिन नवकिशोर शिरोमणि की पाठशाला को जा रहे थे, दैवात् मेंह बरसने लगा। उस समय नवकिशोर निकट-स्थित रामा की मा के मकान के बरांडे में जा कर खड़े हो रहे। रामा की मा उस वक्त घर में नहीं थी। घर का दरवाजा भी बन्द था। नवकिशोर के पीछे-पीछे उन का एक सहपाठी, वामाचरन बन्धोपाध्याय भी उसी समय पाठशाला को जा रहा था।

नवकिशोर ने उसे नहीं देख पाया। वामाचरन, नवकिशोर को पाठशाला के सब विद्यार्थियों पर प्राधान्यता प्राप्त करते देखकर मन ही मन उसके अनिष्ट का सुयोग ढूंढता रहता था। आज जो वामाचरन ने नवकिशोर को रामा की मा के मकान के बराडे में खड़ा देखा, तो तुरन्त ही मेंह में भीगते-भीगते दौड़ कर वह शिरोमणि पण्डित के पास आये और प्रणाम कर के बोले—"गुरुदेव! आज से आप की पाठशाला में नहीं आऊँगा। मुझे अपनी पद-रज देकर विदा दीजिए।"

शिरोमणि जी ने घबड़ाकर पूछा—"क्यों, क्या हुआ?"

उन दिनों शिरोमणि महाशय की एक विधवा कन्या के नाम पर बहुत अपवाद चढ़ रहे थे। इसलिए उन्होंने खयाल किया कि शायद उसी के सम्बन्ध में कुछ झगड़ा उठा होगा। बड़ी घबराहट के साथ शिरोमणि महाशय बारम्बार पूछने लगे—"क्या हुआ, बताते क्यों नहीं?"

वामाचरन ने इधर उधर से बहुत कुछ घुमा फिरा कर कहा—"गुरुदेव! आपकी पाठशाला में प्रधान विद्यार्थी हैं, नवकिशोर। परन्तु आज मैंने उन्हें एक ऐसा कुकर्म करते देखा है कि उनके साथ बैठने-उठने और ध्यान पान रखने से अवश्य ही हम लोगों को पतित होना पड़ेगा—पतित ही क्यों जातिभ्रष्ट होना पड़ेगा।"

यह सुन कर शिरोमणि का चेहरा तनिक बहाल हुआ क्योंकि उन्होंने जिस बात की आशंका की थी, वह बात नहीं निकली। वामाचरन से पूछा—"अच्छा बताओ तो नवकिशोर ने किया क्या? उसके सम्बन्ध में मुझे सन्देह तो पहिले ही से हो रहा था।"

वामाचरन बोले — "गुरुदेव! नवकिशोर ने जो कुकर्म किया है, उसे सुनकर शरीर रोमाचित होता है। भला मैं उसे अपनी जबान से कैसे कहूं? आप मेरे गुरु हैं, पिता के तुल्य हैं। आप के सामने मैं ऐसी बातें कैसे कह सकता हूं। यदि आप चाहे तो मेरे साथ चलकर देख लें। इस वक्त नवकिशोर उसी कुलटा स्त्री, रामा की मा के घर बैठा उसी के साथ-साथ पान खा रहा है।"

शिरोमणि महाशय यह सुनते ही आगबबूला हो उठे और आपे से बाहर हो गये। इस वक्त उनके इतने अधिक क्रुद्ध होने का कोई कारण था, और वह यही कि उन्हें जो आशंका थी, वह दूर हो गई। बस पलमात्र की देर न करके वामाचरन का साथ ले फौरन सैदाबाद आये। इतने में मेह भी थम गया। रामा की मा के मकान के पास आकर इन्होंने देखा कि नवकिशोर उस मकान के घराडे से बाहर निकल रहे हैं। शिरोमणि महाशय उन्हें देखते ही गरज उठे, और हजारों गालियों की बौछार करते हुए बोले — "रे पापी, रे दुष्ट! मैंने इतनी अधिक मेहनत करके बारह बरस लगातार तुझे शास्त्र की शिक्षा दी, वह सब तूने मिट्टी में मिला दी? बड़ा नीच निकला! आज ही तुझे पाठशाला से निकाल बाहर करूंगा। तू तो जाति-भ्रष्ट हो चुका। आज से कोई भी ब्राह्मण तुझे नहीं छुएगा, कोई भी तेरे हाथ का छुआ पानी नहीं पियेगा।"

नवकिशोर बेचारे चकित हो खड़े रह गये। सोचने लगे, क्या मामला है? इधर शिरोमणि महाशय ने घर लौट कर सारे विद्यार्थियों को यह हाल कह सुनाया। दो ही घंटे के भीतर नवकिशोर के कुकार्य की चर्चा सारे गांव

में फैल गई, सब किसी को यह हाल मालूम हो गया। गांव के कितने ही आदमी कहने लगे — "नवकिशोर के इन दुराचरणो का हाल तो हम पहले ही से जानते थे, परन्तु हम तो किसी की ऐसी बातो पर ध्यान ही नहीं देते। जिसकी जो इच्छा हो, करे, हमें क्या।" कोई कोई कहने लगे — "शिरोमणि महाराज अपनी आंखों देख आये हैं कि नवकिशोर रामा की मा के बिछौने पर बैठा हुआ उसके साथ एक ही पानदान मे पान खा रहा था।" गाव का एक अन्धा वृद्ध ब्राह्मण, जिसे आज बारह वर्ष से कुछ भी सुझाई नहीं देता था कहने लगा — "अरे भाई, मेरी उमर इस गांव में सब से ज्यादा है। अब तो मेरी आखें जाती रहीं। जब आखे थीं तब मैंने न जाने क्या-क्या कौतुक देखे थे। परन्तु भाई, किसी की बुराई चेतने या किसी की निन्दा करने की मेरी आदत नहीं। उमर भर में न कभी ऐसा किया, न अब करूंगा। अरे इस बेईमान नवकिशोर को तो मैंने अपनी आंखों से रामा की मा के साथ भोजन तक करते देखा है।"

पाठक! बारह बरस पहिले रामा की मा सदाबाद में रहती भी नहीं थी। दूसरे, उस वक्त नवकिशोर की अवस्था सिर्फ सात या आठ बरस की थी। इस वृद्ध ब्राह्मण ने अब से बारह बरस पहिले नवकिशोर को रामा की मा के साथ भोजन करते देखा था!

नवकिशोर की वृद्धा माता यह हाल सुन कर मृतप्राय हो रही। लोकलज्जा के भय से गले में फांसी लगाकर अथवा गगा में डूब कर मर जाने का विचार करने लगी। इधर गांव के सब ब्राह्मणों ने मिलकर नवकिशोर को बिरादरी

से बाहर कर दिया। नवकिशोर की माता ने यह हाल सुन कर पहिले अपने पुत्र ही को दोषी समझा था। अतएव दुख और क्रोध में अभिभूत हो उसने उसी वक्त नवकिशोर से कहा था — "रे अभागे! क्या आज अपना मुह काला करवाने के लिए ही मैंने नौ महीने तुझे अपने पेट में रखा था? मैंने जनेऊ कात कात कर तुझे पाला पोसा। स्वयम् लघन किया, पर तुझे खिलाया। आज तूने उसका यह बदला दिया।" नवकिशोर से माता के यह वाक्य सहन न हुये। वह तुरन्त ही आत्महत्या कर लेने पर उतारू हुये। पर माता ने उन्हे पकड़ रखा। भला माता का हृदय, पुत्र की आत्महत्या को कैसे सह सकता था? निदान इसके बाद उनकी माता ने उनसे कुछ नहीं कहा। उन्हें गोद में लेकर बैठ रही। नवकिशोर ने माता के पाव पकड़ कर, शपथपूर्वक इस मामले की सारी हकीकत उन के सामने बयान की। धीरे-धीरे उनकी माताने अच्छी तरह समझ लिया कि नवकिशोर क़तई निर्दोष है, मेंह बरसते वक्त जब वह रामा की मा के मकान के बराडे में खडा हो रहा था, उस वक्त रामा की मा मकान मे थी भी नहीं।

परन्तु नवकिशोर के निर्दोष होन पर भी गाव के लोगों ने उन्हें अपने समाज से निकाल बाहर किया। नवकिशोर की मा सोचने लगी कि अब क्या उपाय किया जाय, कैसे इस आफ़त मे छुटकारा हो। बेचारी वृद्धा ब्राह्मणी गाव में हर किसी के घर-घर जाकर, पाव पकड पकड़ कर, नवकिशोर के निर्दोष होने की बात कहने लगी। परन्तु एक-एक करके गाव के सब लोगों ने यही कहा — "नवकिशोर निर्दोष है, यह हम खुद बहुत अच्छी तरह

जानते हैं, इसके सिवाय एक बात यह भी है कि इससे ज्यादा बुरे-बुरे कर्म करते हुए भी कितने ही आदमी हमारे समाज में चल रहे हैं। परन्तु बात असली यह है कि समाज के दस आदमियों ने जब उसे समाजच्युत कर दिया तो मैं अकेला क्या करूं ? समाज के अनुरोध से मुझे भी नवकिशोर को त्यागने के लिए बाध्य होना पड़ा है।" समाज के कौन से दस आदमियों ने नवकिशोर को समाजच्युत किया, नवकिशोर की वृद्धा माता इसका पता न लगा सकी। पता लगता ही कैसे, गांव के छोटे बड़े सभी यही कहते थे कि "अन्यान्य दस आदमियों ने नवकिशोर को समाजच्युत किया तो हमें भी उनसे सम्बन्ध तोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा, अन्यथा हम उन्हें कदापि नहीं छोड़ सकते थे।"

नवकिशोर की मां ने देखा कि अब समाज में चलने की कोई आशा नहीं। दिनोदिन उसकी मानसिक व्यथा बढ़ने लगी। जब वह गंगा घाट पर स्नान करने जाती थी, तब उसे देखते ही गांव की अन्यान्य स्त्रियां अपना जल का घड़ा उठा कर अलग को सरक जाती थीं। जो स्त्रियां कुछ विशेष कलहप्रिय और कटुवादिनी थीं, वे नवकिशोर की मां को देखते ही कह उठती थीं—"अरे, देखो, कहीं मुझे छू न लेना। अभी स्नान कर के निकली हूं, जल का घड़ा ले कर घर जाना है।" इन बातों को सुन कर ब्राह्मणी की छाती सुलगने लगती थी।

एक दिन नवकिशोर की मां गंगा घाट पर स्नान करने जा रही थी, और उधर से नवकिशोर के पड़ोसी जगन्नाथ विश्वास के घर की एक दासी गंगाघाट से जल का घड़ा

लिए घर को आ रही थी। नवकिशोर की माँ ने जब उसे आते देखा तो उस के सामने से बच कर निकलने लगीं। परन्तु हवा से उड़ कर कहीं नवकिशोर की मा की धोती का छूट उस दासी के शरीर पर छू गया, बस, इतने ही में उसने झट जल का घड़ा जमीन पर पटक दिया और कहा—"यह जातिभ्रष्टा तो सारे गाँव की जाति लेना चाहती है। मैं अपने मालिक के यहां को पूजा के लिए जल लिये जाती थी, इस दुष्टा ने मुझे जान बूझ कर छू लिया।"

यह दासी चिल्लाते-चिल्लाते वहाँ से लौट कर गंगाघाट पर आई। घाट पर और भी दस-पन्द्रह स्त्रियां थीं। सभी एक हो कर नवकिशोर की मा को बुरा भला कहने लगीं। एक ने कहा—"घड़े के पैस इस से वसूल करो, दुष्टा से दूसरे घाट पर नहीं जाया जाता। रोज इसी घाट पर आकर हम सब को जलाया करती है।"

नवकिशोर की मा बेचारी मुह दाब कर रह गई। उसके चेहरे का भाव देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानो वह नीचे को सिर झुकाए पृथ्वी माता से कह रही है—"जगन्माता पृथ्वी! तुम फट जाओ, मैं तुम्हारे गर्भ में प्रवेश करू, इस ससार मे अब नहीं रहा जाता।"

घाट पर उस वक्त जितनी स्त्रियां थीं, उन सब में मृत छिराम विश्वास की स्त्री कुछ विशेष अभिमानिनी और बहु-भाषिणी थीं। बड़े आदमी के घर की विधवा ठहरीं, हर रोज पालकी पर सवार हो गंगा नहाने आया करती थीं। इन्होंने हाथ नचाते नचाते नवकिशोर की मा के पास आकर कहा—"सुन तो, तुझसे लोगों को मुँह कैसे दिखाया जाता

है ? गले में फासी लगा कर मर क्यों नहीं जाती ? क्या अब तू गांव के सब लोगों को जातिभ्रष्ट कर के नरक में ठेलना चाहती है ? हम लोगों की कोई तनिक भी निन्दा करे तो लज्जा के मारे मर जाती हैं। यह दुष्टा जाने कौन सा मुँह लेकर घाट पर स्नान करने आती है, कुछ समझ में नहीं आता। ”

नवकिशोर की मा मन ही मन पहिले ही से मृत्यु की कामना कर रही थी। अतएव "गले में फांसी" ये शब्द सुन कर, भगवान जाने, उसके हृदय में कौन से भाव का उदय हुआ। फिर उसने गंगा स्नान नहीं किया। तुरन्त ही वहा से घर चली आई, चारपाई की अदवाइन खोल कर उसने रस्सी निकाली, और उसी वक्त फासी लगा कर प्राण त्याग दिये। छिदाम विश्वास की विधवा ने इस निरपराधिनी वृद्धा ब्राह्मणी को मानो मृत्यु का मार्ग बता दिया। परन्तु छिदाम विश्वास की विधवा ने जिस वक्त यह कहा था कि—"हम लोगो की कोई तनिक भी निन्दा करे तो लाज के मारे मर जाती हैं, इस दुष्टा से जाने कैसे मुह दिखाया जाता है।"—उस वक्त वहा पर उपस्थित सभी स्त्रियां मुह दाब कर हसने लगी थीं। श्यामाचरन सरकार की विधवा बहिन ने हँसते हँसते गुरु प्रसाद की मा के कान में कुछ कहा, परन्तु क्या कहा, सो कुछ सुनाई न दिया। थोडी देर में छिदाम की स्त्री के चले जाने पर उसने खुले शब्दो मे यह कहा—"और इन्होंने कैसा अच्छा दामाद पाया था।"

दो घड़े के बाद जब नवकिशोर घर मे आये तो देखा कि माता का मृत शरीर रस्सी में लटक रहा है।

दोपहर का वक्त था, अभी तक नवकिशोर ने कुछ खाया-पिया नहीं था । आजीविका का कोई प्रबन्ध न होने के कारण क़ासिमबाज़ार की किसी दुकान में मुनीमी का काम मिल जाने की तलाश में गये थे । परन्तु घर लौट कर देखा कि माता ने फांसी लगा कर प्राण त्याग दिये हैं । गांव का एक भी आदमी नवकिशोर की माता के दाह संस्कार में शामिल नहीं हुआ । सभी कहने लगे कि जातिभ्रष्टा के दाह-संस्कार में सम्मिलित होने पर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा । नवकिशोर के पास एक पैसा भी नहीं था, जिस से माता का दाह करने के लिए ईंधन खरीदते । पिता के जमाने की एक शाल उनके घर रक्खी थी । लकड़ी वाले की दूकान पर उसी शाल को गिरों रख कर वहां से लकड़ी लीं, और कई बार में उन लकड़ियों को अपने सिर पर लाद लाये । दोपहर के बाद कोई पांच घंटे ईंधन चीरने और चिता बनाने में बीत गये । गांव के किसी आदमी ने रत्ती भर भी सहायता नहीं दी, यहां तक बात भी नहीं पूछी । नवकिशोर के बहनोई शिवदास वन्द्योपाध्याय तक अपनी सास की अन्त्येष्टि क्रिया में शामिल नहीं हुये ।

शिवदास वन्द्योपाध्याय की स्त्री ने अपनी माता के मृत शरीर को देखने जाने के लिए अपने स्वामी से आज्ञा मांगी । परन्तु वन्द्योपाध्याय महाशय हाथ में लाठी ले स्त्री को मारने दौड़े और कहने लगे—"मेरे घर में दो लड़कियां, एक आठ बरस की, एक सात बरस की, तू उस जाति भ्रष्टा के यहां जाना चाहती है, गाँव के दस आदमी मुझे भी बिरादरी से बाहर कर देंगे ।" लड़कियां जन्म भर

शिरोमणि के प्राण सूख गये, बारम्बार कहने लगे— "बेटा, मुझे क्षमा करो, मैं तुम्हारा गुरु था।"

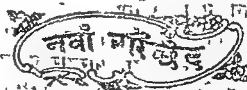
वैर-प्रतिशोध की इच्छा से प्रेरित बाबा कृष्णानन्द गुस्से मे आकर कह उठे—"अरे दुष्ट तू मेरा गुरु था! तू मेरा साला था। साले यह देख, मेरी निरपराधिनी जननी की चिता है। आज तुझे घसीट कर पहले तेरे परम शत्रु हरिदास तर्कपंचानन के पास ले चलूंगा।" यह कहते हुए बाबा कृष्णानन्द शिरोमणि के गले में अगौछा डाल कर उन्हें घसीटते-घसीटते हरिदास तर्कपंचानन के यहाँ ले गये।

हरिदास तर्कपंचानन आद्योपान्त सारा वृत्तान्त सुन कर क्रोधाग्नि में प्रज्वलित हो उठे। मन ही मन कहने लगे—"बेटा ने मेरे मुह का कौर निकाल लिया। इस श्राद्ध के लिए रामा पहिले मेरे ही पास आई थी। सभा राम के पास बहुतेरी स्वर्ण मोहरें थीं, न जाने आज इस बूढे को कितनी मोहरें मिली होंगी।" मन में तो यह सोचा परन्तु प्रकट रूप में कहने लगे—"राधा माधव, राधा माधव! इस बूढ़े को धर्म-अधर्म का तनिक भी ख़याल न हुआ! इस श्राद्ध के लिए रामा जिस वक्त मेरे पास आई थी, मैं उसे खड़ाऊ लेकर मारने उठा। [illegible] गई नहीं

कितने ही कहने लगे— "सिर्फ श्राद्ध ही क्यों करवाया, तन्तुकार के घर में भोजन तक बना कर खाया, उसके यहां से भोजन तक की दक्षिणा ग्रहण की। अन्तत गाव के सब ब्राह्मणों ने मिलकर शिरोमणि महाराज को बिरादरी से बाहर कर दिया। विद्यार्थीगण शिरोमणि की पाठशाला से भाग कर अपने-अपने घर चले गये। शिरोमणि महाराज दो महीने तक घर-घर घूमे, पर समाज में सम्मिलित न हो सके। नवकिशोर के घरबार था नहीं, इसलिये जातिच्युत होने के बाद वे मूँड़ मुड़ा कर वैरागियों के अखाड़े में चले गये थे। परन्तु शिरोमणि महाशय के चार कन्यायें थीं, स्त्री भी थी। दूसरे यह भी शिरोमणि को अच्छी तरह ज्ञात था कि वैरागियो का अखाड़ा बहुत ही घृणित स्थान है, वहा सभी तरह के कुकर्म होते हैं। अतएव सोचने लगे कि स्त्री और कन्याओं को साथ ले वैरागियों के अखाड़े में दाखिल होना ठीक नहीं। परन्तु किसी न किसी समाज का आश्रय लिये बिना भी निर्वाह नहीं हो सकता। यदि आज स्त्री की मृत्यु हो जाय तो गाव का एक आदमी भी उसका दाह संस्कार कराने नहीं आवेगा। यह सोचते हुए बेचारा वृद्ध ब्राह्मण बड़ी विपत्ति में फँसा। अन्त में मूँड़ मुड़ाने ही के मार्ग का अवलम्ब करना पड़ा, परिवार के सहित शिरोमणि महाराज वैष्णवधर्म में दीक्षित हुए। गृहस्थ वैरागी बन कर अपने घर ही में रहने लगे। जात-वैष्णवों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित किया। ऐसी ही घटनाओं से बगाल में जात वैष्णवों की सख्या धीरे धीरे बहुत बढ़ गई थी।

जात-वैष्णव होने के बाद शिरोमणि महाराज को गुरुगीरी के व्यवसाय और श्राद्ध इत्यादि कर्मकाण्ड कराने से जो

आमदनी होती थी, वह सब जाती रही। पितामह के ज़माने की उनके पास थोड़ी सी ब्रह्मोत्तर की ज़मीन थी, उसी की आय से बड़े कष्टपूर्वक दिन बिताने लगे, परन्तु गांव के लोगों ने यह ज़मीन भी उनके हाथ से निकलवा देने का उद्योग आरम्भ किया। विशेषत. शिरोमणि के पुराने शत्रु हरिदास तर्कपञ्चानन ने गांव के सब लोगों को बुला बुला कर कहा कि पतित ब्राह्मण को ब्रह्मोत्तर की ज़मीन भोगने का कोई अधिकार नहीं है, अतएव इसके लिए ज़मींदारी अदालत में दरख्वास्त देनी चाहिये। गांव के लोगों ने यह दरख्वास्त दी थी या नहीं, यह तो हमें नहीं मालूम, पर इस में सन्देह नहीं कि शिरोमणि महाशय ने अपनी अन्तिम अवस्था के दिन बड़ी तकलीफ़ में गुज़ारे थे। आगे चल कर शिरोमणि महाशय और बाबा कृष्णानन्द का क्या हाल हुआ, यह बाद में यथास्थान उल्लिखित होगा।



कलकत्ते की यात्रा।

इस संसार में मनुष्य किसी न किसी विषय का अवलम्बन लिये बिना नहीं रह सकता। जो मनुष्य नितान्त आलसी हैं, जिनका हृदय सर्वथा नि.सार है, जिनके

जीवन का कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नहीं है, जो किसी प्रकार के सत्कार्य में लिप्त होने की इच्छा नहीं रखते हैं, उनके जीवन का भी कोई न कोई अवलम्ब अवश्य है। जिस प्रकार की स्थिति में रहने पर, जिस प्रकार के कार्य में दिन गुजारने पर उन्हें कोई कष्ट नहीं प्रतीत होता वरन् कुछ सुख जान पड़ता है, वही स्थिति और वही कार्य उनके जीवन का एकमात्र अवलम्ब है। परन्तु इस प्रकार के आलसी और निकम्मे मनुष्य प्राय हृदयहीन देखे जाते हैं। इनका हृदय रसहीन और इनका अन्तरात्मा जड़वत् हो जाता है। अतएव इनके जीवन में किसी विषय के लिए भी सजीव उत्साह दिखाई नहीं देता। हृदय ही उत्साह का उद्गम है। हृदय-गह्वर से ही उत्साह और इच्छाओं के स्रोत की धारा प्रवाहित होती है। अतएव जिनका हृदय रस सूख गया है, उनकी जीवन-सरिता में स्रोत नजर नहीं आता; और वह स्रोत-शून्य जीवन-सरिता जब मलिनता से परिपूर्ण हो जाती है, तब प्रतिक्षण उससे भी भीषण विषाक्त वायु बाहर निकला करती है।

सावित्री अशिक्षिता है, पर वह हृदयहीना नहीं है। उसका हृदय-गह्वर स्नेहरस से परिपूर्ण है। यह स्नेहरस क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होकर ऊपर उठ रहा है, पर उसे प्रवाहित होने का अवसर नहीं मिलता क्योंकि सामने पर्वत के समान विघ्न-बाधायें खड़ी हैं। परन्तु प्राकृतिक नियम का उल्लंघन कदापि नहीं होता, वह किसी के टाले नहीं टलता। जब इस हृदयगह्वर का स्नेहरस धीरे धीरे और भी अधिक बढ़ जायगा, तब हृदयस्रोत अपने सामने स्थित पर्वत-सदृश विघ्न-बाधाओं को अतिक्रम करके वेग से प्रवाहित

होने लगेगा, बाधाओं का पहाड़ उस स्रोत की धारा के साथ ही साथ बहा चला जायगा।

अब से पहिले सावित्री को दिन-रात सिर्फ यही चिन्ता थी कि किस प्रकार पिता का प्रतिपालन करूं, किस प्रकार उन्हें सुखी रखूँ। यही चिन्ता उस वक्त सावित्री के जीवन का एकमात्र अवलम्बन थी। परन्तु पिता का प्राणान्त हो गया, वह चिन्ता दूर हो गई। बाद में उसे यह चिन्ता लगी कि किस प्रकार पिता का श्राद्ध करूं, श्राद्ध किये बिना उनके नरक-मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं। यह चिन्ता उसकी द्वितीय चिन्ता थी, और उस वक्त यही उसके जीवन का एकमात्र अवलम्ब थी। श्राद्ध हो गया, वह चिन्ता भी चली गई। अब,—क्या करूंगी ?—यह प्रश्न उसके मन मे उत्पन्न हुआ। यदि सावित्री हृदय-हीना होती तो उसका मन इस प्रश्न का उत्तर देता — "अब क्या करोगी, तुम स्त्री हो, कर ही क्या सकती हो ? जबतक जिन्दगी है, आराटून साहब के यहा रहो। आराटून साहब की दयालु स्त्री तुम्हारे भोजन वस्त्र का प्रबन्ध कर ही रही हैं, भविष्य में भी करती रहेंगी।" परन्तु सावित्री हृदयहीना नहीं थी, अतएव उसके मन ने उसे यह उत्तर नहीं दिया। अठारहवीं शताब्दी की यह नीच कुलोद्भवा अशिक्षिता रमणी हृदयावेग से प्रेरित हो जैसे दुःसाध्य कार्य में प्रवृत्त हुई, जैसे कष्ट और त्याग स्वीकार को उसने सहन किया, जैसे असाधारण साहस और वीरत्व को प्रकट करके उसने अपने हार्दिक उच्च भावों का परिचय दिया, आज इस बीसवीं शताब्दी के शिक्षाभिमानी युवकों में से कितनों के जीवन में ऐसे उच्च भावों का परिचय मिलता है ?

तब क्या यह समझना चाहिये कि शिक्षित अवस्था की अपेक्षा अशिक्षित अवस्था ही अच्छी ? परन्तु सो बात नहीं । बात यह है कि जो शिक्षा हृदय को स्पर्श नहीं करती, जिस शिक्षा के द्वारा हृदय समुन्नत नहीं होता, वरन् जिसके द्वारा मानवहृदय मे क्रमशः स्वार्थपरता का बीज अकुरित होता रहता है, उस शिक्षा से अशिक्षा कहीं अच्छी । जिसके हृदय नहीं है, जो हृदयहीन है, उसके जीवनोद्यान मे शिक्षा के द्वारा कोई सुफल नहीं फलता ।

इस अशिक्षित सहृदया रमणी, सावित्री का हृदयावेग ही एकमात्र प्रेरक और नेता होकर इसे कर्तव्य के मार्ग मे परिचालित कर रहा है । पिता की चिन्ता दूर होते ही वह अपने स्वामी और बडे भाई की विपत्ति के विषय का चिन्तन करने लगी । रात दिन इसी का उपाय सोचने लगी कि किस प्रकार अपने स्वामी और बडे भाई को देख सकू । यह सुन चुकी थी कि मेरे स्वामी और बड़े भाई कलकत्ते की जेल मे भेज दिये गये हैं । अतएव मन ही मन विचार करने लगी कि यदि किसी तरह कलकत्ते पहुच पाऊ तो अवश्य ही उनसे मिल सकूगी । यह विचार कर अब वह एकात मे इन बातों की चिन्ता करने लगी कि 'कलकत्ता' न जाने यहा से कितनी दूर है; वहा जाऊगी कैसे, किसके साथ जाऊंगी ? दिन पर दिन जाने लगे, प्राय, पाच छः महीने बीत गये । हेमन्त ऋतु व्यतीत हुई, शिशिर का आगमन हुआ । सावित्री अहर्निशि परमेश्वर से प्रार्थना करने लगी—"हे परमेश्वर ! मुझे किसी तरह कलकत्ते पहुचा दीजिए।" इस चिन्ता में सावित्री का शरीर बिलकुल जीर्ण होगया, तनिक भी शक्ति न रही।

परन्तु हृदय में इतना साहस है कि वह सोचती है—पैदल चल कर अनायास ही कलकत्ते पहुँच जाऊंगी। बस कलकत्ते जाने में यदि कोई बाधा दिखाई देती थी तो एक मात्र भय। सोचती थी मार्ग में कहीं मुझे असहाय देख कर कोई दुष्ट व्यक्ति मेरा धर्म नष्ट करने की चेष्टा न करे। यहां आराट्न साहब की मेम ने मुझे आश्रय दे रक्खा है; अतएव जब तक यहां हूं तब तक कोई मेरे धर्म को नष्ट करने का साहस नहीं कर सकता।

बहुत कुछ सोच-विचार के अनन्तर उसने स्थिर किया कि असहाय स्त्रियों के धर्म की रक्षा भगवान् स्वयम् करते हैं। भगवान् के चरणों में भक्ति रखने पर वे अवश्य ही मेरे धर्म की रक्षा करेंगे। सावित्री ने रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में अनेकानेक उपाख्यानों का पाठ किया है। उसने सोचा, कितनी ही साध्वी स्त्रियां कामासक्त दुराचारियों के पंजे में फँस कर भी भगवान् के अनुग्रह से अपने अपने सतीत्व धर्म की रक्षा करने में समर्थ हुई हैं। भगवान् ने स्वयम् उनके धर्म की रक्षा की है। उसने निश्चय समझ लिया कि असहाय स्त्रियों के सतीत्व धर्म की रक्षा का भार ईश्वर के हाथ है। जब ऐसा है तो फिर कलकत्ता जाने में डर काहे का? निदान सावित्री ने कलकत्ता जाने का दृढ़ सङ्कल्प किया और तुरन्त ही आराट्न साहब की स्त्री और बड़कन्निमा के पास जाकर अपना अभिप्राय प्रकट किया।

एयार बीबी ने कहा—"बेटी, कलकत्ता यहाँ से छः सात मञ्जिल है, तुम्हारी अठारह-उन्नीस बरस की अवस्था ठहरी, अकेली कैसे जाओगी? रास्ते में बड़े चोर-डकैत लगते हैं।"

सावित्री—मेरे पास कुछ रुपया पैसा होगा नहीं, फिर चोर-डकेत मेरा क्या करेंगे?

बदरुन्निसा—चोर डकैत यदि तुम्हारा धर्म नष्ट करें?

सावित्री—असहाय जनों की धर्म रक्षा का भार परमेश्वर के हाथ है, हमारा शास्त्र यही कहता है। यदि वैरागिनी के वेश में जाऊं तो अच्छा होगा न?

बदरुन्निसा—नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं। चोर-डकैत तो प्राय: किसी का धर्म नष्ट करते भी नहीं हैं। वे तो सिर्फ धन के भूखे होते हैं, धन ही छीनते हैं। परन्तु हिन्दू वैरागी तो बड़े दुष्ट होते हैं।

सावित्री—नहीं, नहीं, आप ऐसा न कहें। धर्म के लिए जो सब कुछ छोड़ कर वैरागी हो जाते हैं, वे क्या फिर किसी प्रकार का कुकर्म भी कर सकते हैं?

बदरुन्निसा—सम्भव है, कोई कोई धर्म के लिए भी वैरागी होते हों, पर तुम्हारे प्राय हिन्दू लोग तो जहां अपने जातिच्युत होने की सूरत देखते हैं वहां झट से वैरागी हो जाते हैं। आज लगभग दो बरस हुई, जगन्नाथ विश्वास की भौजाई, छिदाम विश्वास की विधवा स्त्री, वैष्णवी हो गई है। मैं पूछती हूं, वह क्या धर्म के लिए वैरागिनी हुई है? जगन्नाथ विश्वास के जातिच्युत होने का उपक्रम हुआ था, इसलिए उन्होंने अपनी भौजाई को झट वैरागियों के अखाड़े में भेज दिया।

एस्थार—मा! उन वैरागी वैष्णवों की बात जाने दो। सावित्री किस प्रकार कलकत्ते पहुंच सकती है, मैं इसी का उपाय सोच रही हूं। देखो, नमकवाले मुकदमे के लिए साहब कलकत्ते जानेवाले हैं। उस दिन उनका जो पत्र

आया है, उसमें लिखा है कि चैत्र मास में वे दीनाजपुर से यहां आनेवाले हैं, और बाद को वैसाख के आरम्भ ही में वे कलकत्ते जाना चाहते हैं। साहब के साथ हमारे कई एक हिन्दू कर्मचारी भी जायँगे। न होगा, मैं किसी एक हिन्दू वृद्धा स्त्री को सावित्री के साथ कर दूंगी। कहो तो साहब के साथ सावित्री का कलकत्ते जाना अच्छा होगा न?

सावित्री—श्रीमती, ऐसा हो तब तो बहुत ही अच्छा।

बदरुन्निसा—हां, यह बहुत ठीक कहा। (पत्थार बीबी के कन्धे पर हाथ रख कर) आप तो सोच-विचार कर सभी बातों का कोई न कोई उपाय निकाल ही लेती हैं।

यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि आराट्टून साहब का दीनाजपुरवाला नमक-गोदाम, बेरेलस्ट तथा साइक साहब के गुमाश्तों ने लूट लिया था। आराट्टून साहब इसी कारण कुछ दिन हुए दीनाजपुर गये हैं। कई दिन हुए, दीनाजपुर से उन्होंने एक पत्र भेजा है, उसमें लिखा है कि चैत्र मास में मैं मुर्शिदाबाद आकर वैसाख में वहां से कलकत्ते जाऊंगा, और वहां के मेयर कोर्ट में मुकदमा दायर करूंगा। अभी तक कलकत्ते में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना नहीं हुई थी। मेयर कोर्ट के जज थे विलियम बोल्ट्स। अब से पहिले तीन बरस तक कासिमबाजार की फैक्टरी में रह कर उन्होंने देशी लोगों का रक्त चूस चूस कर केवल अपने निज के व्यापार से नौ लाख रुपया कमाया था।

ईसवी सन् १७६५ की मार्च महीने भर सावित्री आराट्टून साहब के लौटने की राह देखती रही। परन्तु इसी महीने के अन्त में आराट्टून साहब का एक और पत्र आया। इस

Vide Note (14) in the appendix.

पत्र में उन्होंने लिखा कि हम दीनाजपुर ही से मालदह, राजमहल होते हुए कलकत्ते चले जावेंगे, और मुक़द्दमा फ़ैसल न होने तक मुर्शिदाबाद नहीं लौटेंगे । इस मुक़द्दमे के लिए सम्भवत एक साल से अधिक कलकत्ते में रहना पड़ेगा ।

इस खबर को सुन कर सावित्री एकदम निराश हो गई । परन्तु अपना निश्चय उसने नहीं बदला, एकाकिनी कलकत्ते जाना स्थिर किया । आराट्न साहब की स्त्री ने बहुतेरा समझाया-बुझाया, परन्तु सावित्री से अब न ठहरा गया । बदरुन्निसा ने कहा कि मैं आराट्न साहब को लिखूँगी कि वे ऐसा उपाय करें, जिस से तुम्हारे पति और बड़े भाई जेल से मुक्त हो सकें । तुम स्त्री हो, वहाँ जाकर कुछ नहीं कर सकोगी । दूसरे, कलकत्ते का रस्ता बहुत खराब है, स्थान-स्थान पर विपत्ति की आशंका रहती है । परन्तु सावित्री ने यह कुछ नहीं सुना । अन्तत एस्थार बीबी ने पचास रुपये राह-खर्च के लिए सावित्री के हाथ में दिये ।

सावित्री ने कहा—माँ इतना रुपया साथ लेकर चलने पर सम्भव है, रास्ते में कोई विपत्ति आ पड़े ।

उसने सिर्फ दस रुपये अपने पास रख कर बाकी रुपये एस्थार बीबी को लौटा दिये । यह सोच कर कि कपड़ों के अभाव में सावित्री को कोई कष्ट न हो, एस्थार बीबी ने अपने पास से उसे कई एक कपड़े दिये ।

पति और भाई के उद्धारार्थ उन्नीसवर्षीया युवती सावित्री एकाकिनी कलकत्ते को रवाना हुई । बन्धु नहीं, बान्धव नहीं, धन नहीं, सम्पत्ति नहीं, सहाय नहीं, सामान नहीं, है तो सिर्फ एकमात्र भगवान् के श्रीचरणों का भरोसा । परन्तु

विपत्ति के समय धन, सम्पत्ति, बन्धुवान्धव कोई भी काम नहीं आते। उस वक्त एक मात्र विपद्भजन भगवान् के अतिरिक्त जीव की दूसरी गति नहीं। अतएव पाठक! सावित्री को हम एकदम निराश्रय, एकदम असहाय कदापि नहीं कह सकते। निर्धन के धन, अनाथ के नाथ, अशरण-शरण भगवान् उसके सदा सहाय हैं; संसार के स्वामी, जगन्मन्डल के राजाधिराज, भयभंजन विश्वम्भर जब उसके साथी हैं, तब उसे भय किस का?



गुरुगोविंद भक्त।

चैत्र का महीना है। दुपहर का वक्त है। बड़ी तेज धूप है। पथिकगण, सम्मुख-स्थित एक छोटे से बाजार में जा-जा कर अपने-अपने भोजनों का प्रबन्ध कर रहे हैं। बाजार में सिर्फ तीन दूकानें हैं, पथिकों के ठहरने के लिए चार-पांच छप्पर पड़े हुए हैं। जो पथिक पहले आ गये, उन्होंने किसी न किसी छप्पर के नीचे चूल्हा खोद कर भात राधना शुरू कर दिया। जो ज़रा देर में आये, उन्हें रसोई बनाने के लिए छप्परों में जगह नहीं मिली, अतएव वे बाजार के बीचों बीच में स्थित वट-वृक्ष के नीचे अपना अपना चूल्हा तैयार कर रहे हैं। बाजार में

तीन चार बट-वृक्ष हैं। पथिकों का एक-एक दल एक-एक बट वृक्ष के नीचे अपनी अपनी रसोई बना रहा है, सब लोग परस्पर विविध वार्तालाप कर रहे हैं।

सावित्री से चला नहीं जाता समस्त पथिकों के पीछे पड़ी है। वह बहुत थक गई है, और इस लिए बहुत धीरे धीरे इस बाजार की तरफ आरही है। उसका गला सूख गया है। बाजार के भीतर घुस कर वह चारों तरफ ताकने लगी। बैठ कर ज़रा दम लेने के लिए किसी वृक्ष की छाया देख रही है। सामने के दो बट वृक्षों के नीचे कितने ही अपरिचित आदमी बैठे हुए हैं कोई-कोई अपने-अपने भोजनों का प्रबन्ध कर रहे हैं। इनके पड़ोस में जाकर बैठने का साहस न हुआ। कुछ दूर पर एक दूसरा बट-वृक्ष दिखाई दिया। उसके तले एक वैष्णव पुरुष और दो स्त्रियां बैठी हैं। स्त्रियां रसोई की तैयारी कर रही हैं, और बीच-बीच में परस्पर एक दूसरी को भला बुरा कहती जाती हैं। बाबा जी महाराज पार्श्व मे बैठे हुए तम्बाकू पी रहे हैं। वैष्णवों के प्रति सावित्री को बड़ी श्रद्धा थी। विशेषतः वैष्णव महाराय के निकट दो स्त्रियां भी दिखाई दीं, अवश्य सावित्री इसी वृक्ष के तले जा बैठी। बाबाजी महाशय ने सावित्री को देख कर हुक्का हाथ मे लिया और अपनी जगह से उठकर उसके पास आ बैठे, पुन हुक्के में दम लगाने लगे व बहुत देर तक सावित्री के मुँह की तरफ ताकते रहे, बाद में उसे सम्बोधन करके बोले—"बेटी! तुम कहां जा रही हो? मैंने पहिले तुम्हें कहीं देखा है।"

सावित्री—महाराज, मैं कलकत्ते जाऊंगी।

बाबा जी—तुम किसी गृहस्थ की कन्या जान पड़ती हो, कलकत्ते क्यों जा रही हो ?

सावित्री—महाराज हम लोग बड़ी विपत्ति में फसे हैं। कम्पनी के आदमियों ने मेरे भाई को कलकत्ते की जेल में भेज दिया है।

बाबा जी—तुम तन्तुकारों की लड़की हो क्या ?

सावित्री—हां महाराज।

बाबा जी—तुम्हारे कोई नहीं है ?

सावित्री—महाराज, मां बाप, भाई भौजाई सभी थे, पर अब कोई नहीं।

बाबा जी—तुम्हारे पति नहीं हैं, क्या विधवा हो ?

सावित्री—महाराज, मेरे पति भी जेल में हैं।

बाबा जी—आज कल ऐसा समय आ गया कि आचार-विचार तो कतई रहा नहीं। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण! तुम्हारे पिता का नाम क्या था ?

सावित्री जरा ठिठक रही। सोचने लगी कि अपना परिचय देना उचित नहीं। अन्त में सोचा कि वैष्णव महाराज बड़े धार्मिक हैं, इन्हें अपना परिचय देने में कोई हानि न होगी। ऐसा निश्चय कर कहा—

महाराज, मैं सभाराम बसाक की बेटी हूं।

बाबाजी—ओह! सभाराम का नाम देश के छोटे बड़े सभी जानते हैं। ऐसा कारीगर अब कहां पैदा होगा! बाबा प्रेमानन्द अधिकारी ही तो तुम लोगों के गुरू थे न ? (प्रेमानन्द का नाम लेते समय बाबाजी महाराज ने प्रणाम किया) मैं पहिले उन्हीं के अखाड़े में था। मेरे भी वही गुरू थे। हम लोगों के अखाड़े के

पास ही उनका अखाड़ा था। परन्तु श्रीवृन्दावन धाम से लौटने पर उनका स्वर्गवास हो गया।

सावित्री—महाराज, उनका अखाड़ा तो काटोया में था न ? इधर दो बरस से उनकी कोई खबर नहीं मिली।

बाबाजी—हां, हमारा भी अखाड़ा काटोया में है। मैं इस वक्त बाबा भक्तदास के अखाड़े में हूं। फ़िलहाल तुम्हारे गाव के पड़ोस ही उदयचद घोष के यहां गया था। उदयचंद मेरा शिष्य है। तुमने क्या काटोया के रास्ते से ही कलकत्ता जाने का निश्चय किया है ?

सावित्री—महाराज, मैं रास्ता वास्ता तो कुछ जानती नहीं पर सुना है, काटोया होकर जाने में सुभीता रहेगा।

बाबाजी—तो फिर हमारे साथ ही साथ चलो। तुम्हारा मुह तो सूख रहा है, यहा कुछ भोजनों का प्रबन्ध नहीं करोगी ? देखो उस दूकान पर नारियल बिकते हैं। पहिले थोड़ा सा जल-पान करके चित्त को शान्त कर लो, पीछे रसोई का प्रबन्ध कर लेना। इस धूप में नहीं चला जायगा। दिन ढलने पर हमारे साथ ही साथ चलना।

बाबाजी के सग दो स्त्रियां हैं। उनमें से एक की अवस्था प्राय पैंतालीस बरस से अधिक है। दूसरी की अवस्था पच्चीस बरस से ज्यादा न होगी। वयोधिका स्त्री भात बनाती है। दूसरी स्त्री बाहर से रसोई के लिए सारा सामान जुटा रही है, जल वगैरह लेकर आती है। दूसरी स्त्री के किसी काम में यदि कोई तनिक भी

त्रुटि हो जाती है तो, वयोधिका स्त्री उसे बहुत ही कड़े शब्दों में डाटने लगती है। परन्तु बाबाजी महाराज जिस वक्त सावित्री के साथ बात चीत कर रहे थे, उस वक्त यह वयोधिका स्त्री बड़े ध्यानपूर्वक टकटकी बांधे बाबाजी तथा सावित्री की तरफ देख रही थी। उसके चूल्हे की आग बुत गई है पर इस ओर उसका कतई ध्यान नहीं है। दूसरी स्त्री इस वक्त तालाब से पानी लाने गई थी; लौटने पर उसने देखा, कि चूल्हे की आग बुत गई है, उसकी सगिनी बड़े गौर से बाबाजी महाराज की तरफ ताक रही है। इसने तब वयोधिका स्त्री से कहा — "अरे, देखो तो, चूल्हे की आग बुत गई।" वयोधिका स्त्री ने झल्ला कर कहा — "बुत जाने दे।" यह कह कर फिर से चूल्हा जलाने की चेष्टा करने लगी।

सावित्री ने तालाब पर जा कर स्नान किया। बाद में दूकान से एक नारियल ले आई। जलपान कर के तनिक शांत हुई।

बाबाजी ने कहा — "तुम्हें अलग भोजन बनाने की कोई जरूरत नहीं, हमारी ही रसोई में पा लेना। तुम्हारे घराने के लोग तो हमारे शिष्य ही थे, हमारे साथ एकत्र भोजन करने में कोई दोष नहीं।"

बाबाजी की यह बात सुन कर, वयोधिका स्त्री की देह सुलग गई। वह, सावित्री के कुछ उत्तर देने के पहिले ही कह उठी — "यहां भी भडारा है क्या? तीन ही खुराक तो चावल मगाए हैं।"

बाबाजी ने कहा — "छि छि! ऐसी बात जबान

न निकालो । ठाकुरजी ने दया करके रास्ते में एक तिथि जुटा दिया, सो अतिथिसेवा करके पुण्य नहीं माओगी, क्या ?"

धेर्योधिका स्त्री बोली — "हां, हां, मैं जानती हूं। गह-जगह से तुम ऐसा ही पुण्य कमाया करते हो ।"

बाबाजी का आचरण देख कर सावित्री को उन के ति विशेष श्रद्धा हुई। परन्तु बाबाजी के संग की दोनो त्रयों जब बारम्बार रिसाने चिढ़ाने लगीं तो मन ही मन से बड़ा क्रोध आया। भोजनों के बाद बाबा जी पुन वित्री के पास आ बैठे, और विविध वार्तालाप करने गी। परन्तु वे दोनो स्त्रियां सावित्री को बड़ी द्वेष-पूर्ण ष्टि से देखने लगी। सरला सावित्री इस मामले के गूढ हस्य को न समझ सकी।

बाबाजी — बेटी कलकत्ता बहुत दूर है। रास्ते में हैं चोर डकैत लगते हैं। मैं यह सोचता हूं कि तुम टोयों से अकेले कैसे जाओगी। यदि किसी तरह तुम हां पहुंच भी गई तो तुम अपने आत्मीय जनों से न मल सकोगी, बड़ी आफत में फंस जाओगी।

सावित्री — महाराज, हमारे सैदाबाद के आराट्न साहब आजकल कलकत्ते ही में हैं। उनके पास जाऊंगी, वे रा सब इन्तजाम कर देंगे।

बाबाजी — नहीं, बेटी, देखो ऐसा काम न करना। लेछ जाति के आदमी का कोई विश्वास नहीं। वह तुम्हें जाति भ्रष्ट कर सकता है।

सावित्री — नहीं महाराज, ऐसा न कहिये। मैं उनको

स्त्री को मां कह कर पुकारती हूँ। बचपन से वे इ
लोगों पर सन्तान का सा स्नेह रखते हैं।

बाबाजी — म्लेछ-जाति के धर्म का कुछ ठीक है
तुम श्रीकृष्ण के चरणों में ध्यान लगाओ। घर ही
पति-पुत्र सब कोई मिल जायँगे। ठाकुर जी की दया
कौन सी बात दुर्लभ है? कृष्ण ही सब के स्वामी हैं
कृष्ण ही जगत के पति हैं। उन्हीं नवदूर्वादल श्
श्रीकृष्ण को जान कर जिन्हें अपना पति मान लोगी
ही तुम्हारे पति होंगे।

बाबाजी के इन अन्तिम वाक्य का अर्थ सावित्री
समझ में रत्ती भर भी न आया। "नवदूर्वादल श्
श्रीकृष्ण को जान कर जिन्हें अपना पति मान लो
वही तुम्हारे पति होंगे।" — इस बात का
क्या हुआ? सोचते-सोचते सावित्री ने स्थिर किया
यह धर्म-शास्त्र की कोई भक्ति-वार्ता होगी। इधर इस ब
को सुनते ही बाबाजी के हार्दिक अभिप्राय के सम्बन्ध
उनके साथ की दोनों स्त्रियों को अब कोई सन्देह न
गया। अत्यन्त क्रोधपूर्ण दृष्टि से दोनों बाबा जी
तरफ देखने लगीं।

बाबाजी ने पुनः सावित्री से कहा — "बेटी,
कलकत्ता जाने का इरादा छोड़ दो। जिससे भक्त
साथ रह कर सत्सग प्राप्त कर सको और विविध पुण्य
सुन सको, उसकी चेष्टा करो। श्रीकृष्ण की कृ
क्या नहीं हो सकता। घर बैठे पति पाओगी। तुम
की बेटी ठहरीं — इस दुर्गम मार्ग में बड़ी विपत्तियों
आशंका है।"

सावित्री — महाराज, मेरे मा बाप कोई न रहे। अब मेरे भाई ही मेरे धर्म हैं, वहीं मेरे सत्संग है।

लज्जा के मारे सावित्री ने पति के नाम का उल्लेख नहीं किया।

बाबाजी — अच्छा, हम लोगों के साथ-साथ काटोया का तो चलो; बाद में जैसा समझना वैसा करना। हमारे अखाड़े में दो चार दिन रहने पर सत्संग के द्वारा ठाकुर जी महाराज तुम्हारे मन की प्रवृत्ति को बदल भी सकते हैं। यदि श्रीकृष्ण के चरणों में तुम्हारा प्रेम है, और ठाकुर जी महाराज तुम्हें धर्म के रास्ते पर ले जाने की इच्छा रखते हैं तो अवश्य ही धर्म-लाभ होगा।

दिन ढल आया। धूप की तेजी जाती रही। पथिक गण अपना-अपना सामान ले लेकर आगे को रवाना हुए। सावित्री भी इन बाबा जी के साथ साथ चल दी, दो दिन के बाद बाबा भक्तदास के अखाड़े में आ पहुची।

बाबा भक्तदास के मस्तक और छाती पर मिट्टी का लेप है। सिर पर बाल नहीं हैं, बिल्कुल घुटा हुआ है। अखाड़े के बीचोंबीच में एक बड़ा सा घर है। इस घर में बाबा भक्तदास तथा उनकी तीन चार सेवा दासी रहती हैं। आसपास आठ नौ छोटे छोटे घर हैं, जिनमे एक एक वैष्णव अपनी अपनी सेवा-दासी के सहित रहता है। बाबा गुरुगोविंद के साथ की वयोधिका स्त्री पहिले ही से इस अखाड़े में रहती थी। यह बाबा गुरुगोविंद जी की सेवा-दासी है। इसका नाम है, कुञ्जेश्वरी। अखाड़े के सब लोग इससे परिचित हैं। परन्तु सावित्री तथा बाबाजी के साथ की दूसरी स्त्री आज पहिले पहिल इस अखाड़े में आई

हैं। जब बाबा भक्तदास ने इन दोनों का परिचय पू
तो बाबा गुरुगोविंद ने अपने साथ की दूसरी स्त्री की तर
इशारा करके कहा — "यह आपके शिष्य उदयचंद के छ
भाई हरेकृष्ण की पत्नी है। हरेकृष्ण की मृत्यु के बाद से
सदा ही नामामृत-पान में प्रमत्त रहती थी, सांसारिक काम
धन्धों में इसका तनिक भी मन नहीं लगता था। इस बार
जब मैं उदयचंद के यहां गया तो इसने एकदम संसार को
छोड़ देने और वैराग्य लेकर साधु संग में दिन बिताने एवं
भक्तों की चरण-सेवा करने का मनोरथ प्रकट किया।
उदयचद इसकी धर्मनिष्ठा को देख कर बड़े प्रसन्न हुए।
निदान अब यह वैरागिनी होने के लिए मेरे साथ आ
है। और यह जो दूसरी स्त्री है, यह मुर्शिदाबाद के सभा
राम बसाक की लड़की है। सभाराम का घर अंगरेजों ने
लूट लिया। सभाराम की मृत्यु हो गई। उसका पु
जेल में है। यह अभी अल्पवस्यका है। कुछ बुरे आद
मियों के बहकाने से यह कलकत्ते जाने को तैयार हो
थी, मुझे रास्ते में मिल गई, अपने साथ लेता आया।
सभाराम बाबा प्रेमानन्द के शिष्य थे।" (प्रेमानन्द
नाम उच्चारण करते समय बाबा जी ने इस बार
प्रणाम किया।)

बाबा भक्तदास इन नवागत दोनों स्त्रियों का परिच
सुन कर बोले—"अच्छा, इन्हें लिवाते लाये, यह अच्छा
ही किया। इनके रहने के लिए कोई अलग मकान
इस वक्त है नहीं, इस लिए फ़िलहाल इन्हें इसी घर
रख सकते हो।" बाबा भक्तदास की एक सेवा-दा
इस वक्त पास बैठी उनके पाव दाब रही थी, वह बो

इस घर में जगह कहां से आवेगी ? हमीं लोगों को काफी जगह नहीं है ।"

बाबा भक्तदास बड़े नाराज होकर बोले—"तुमने वैष्णव धर्म किस लिए ग्रहण किया है। ठीक नहीं समझती। कोई अतिथि, अभ्यागत आजाय तो उसे घर में जगह देकर स्वयम बाहर पड रहना चाहिए। घर में जगह नहीं काफी है, तो क्या हुआ, तुम में से कोई बाहर रहे। वैष्णव के लिए घर क्या और बाहर क्या ?"

भक्तदास की फटकार सुन कर वैष्णवी चुप हो रही।

सावित्री ने अखाड़े में आकर वैष्णव और वैष्णवियों के जैसे जैसे घृणित व्यवहार देखे, उन सब का उल्लेख करने से पुस्तक अश्लीलता से पूर्ण हो जायगी, पाठिकाओं के लिए अपाठ्य होगी, इसलिए हम उनका उल्लेख नहीं करना चाहते। सावित्री, बाबा गुरुगोविंद और बाबा भक्तदास के दुष्ट आशय को समझ कर बड़ी भयभीत हुई। "हा दयामय ईश्वर, हा दयामय ईश्वर ! मेरे धर्म की रक्षा करो"—यह कह-कह कर भगवान् को पुकारने लगी। क्या करूं—कुछ निश्चय न कर सकी। आराट्रून साहब की स्त्री ने जो दस रुपये उसे दिये थे उनमें से पांच रुपये बदरुन्निसा ने उसके कपड़ों की गठरी में बांध दिये थे, और पांच रुपये उसकी ओढ़नी के खूंट में बांध दिये थे। बाबा गुरुगोविन्द ने रास्ते में एक जगह सावित्री से कहा था कि तुम्हारे पास जो रुपया पैसा हो, वह मेरे पास रख दो, सम्भव है तुम से कहीं खो जांय। सावित्री ने उस वक्त ऊपर वाले खूट में बँधे हुए पांच रुपये बाबा

जी के हाथ से दे दिये । ये रुपये बाबा जी ने कोरे हजम कर लिये।

जिस दिन सावित्री इस अखाड़े में आई, उसके दूसरे दिन बाबा भक्तदास, सावित्री, तथा हरकृष्ण की विधवा से मूँड़ मुड़ा कर, भेष लेने का अनुरोध करने लगे । हरकृष्ण की विधवा भेष लेने को तैयार होगई । पर सावित्री ने रोते-रोते कहा कि मैं कदापि भेष नहीं लूँगी । आप लोग यदि यहा से मुझे जाने नहीं देंगे तो मैं इसी वक्त आत्म हत्या कर लूँगी।

यह बात सुन कर बाबा जी बहुत डरे । अखाड़े में कहीं इसने आत्महत्या कर डाली तो कत्ल की जिम्मेदारी सिर पड़ेगी । बाबाजी ने सोचा, कौन इस आफत में फँसे। वैष्णव लोग प्राय कायर और डरपोक होते हैं । उन्होंने सावित्री से कहा—"भई, तू जा यहा से ।" वह अपना कपड़ा-लत्ता उठा कर चट पट अखाड़े से बाहर निकली । बाबा गुरु गोविन्द के पास जो रुपये रख दिये थे, वह भी उसने नहीं मांगे । और मांगने पर बाबा जी शायद रुपये लौटाते भी, हर्गिज नहीं ।

हरेकृष्ण की स्त्री ने उसी दिन मूँड मुड़ा कर भेष धारण कर लिया । उसका पूर्व नाम था आदरमणि । अब बाबा भक्तदास ने उसका नाम रक्खा ललितमंजरी । विधवा होने के बाद, इस स्त्री का चरित्र बहुत ही दूषित हो चला था इसलिए इसके जेठ उदयचंद घोष इसे वैष्णवों के दल में दाखिल कर देने की चेष्टा कर रहे थे । इस साल उनके दौहित्र के नामकरणोत्सव के अवसर पर बाबा भक्तदास के प्रतिनिधि स्वरूप बाबा गुरुगोविन्द उनके यहा पधारे । यह

मौक़ा पाकर उदयचंद ने इसे, वैष्णवी बना लेने के लिए, बाबा गुरुगोविन्द के साथ बाबा भक्तदास के अखाड़े में भेज दिया।



छिदाम विश्वास की स्त्री।

बाबा भक्तदास के अखाड़े से बाहर होते ही सावित्री वहां से भाग चली। मन ही मन स्थिर किया कि अब मार्ग में किसी के साथ बातचीत न करूंगी, और पथिकगण जिस रास्ते से कलकत्ते जा रहे होंगे, चुपचाप उसी रास्ते से उनके पीछे-पीछे चलती रहूंगी। अपने धार्मिक विश्वासों के सम्बन्ध में भी उसके हृदय में विविध प्रकार के सन्देह उत्पन्न होने लगे। सोचने लगी, क्या जो जो मैंने देखा वही वैष्णवधर्म है? वैरागी लोग ऐसे ऐसे कुकर्म करते हैं? बदरुन्निसा ने जो कुछ कहा था, उसमें रत्ती भर भी झूठ नहीं। पाठकों को याद ही होगा कि बदरुन्निसा ने सावित्री से कहा था—"हिंदू वैरागी बड़े दुष्ट होते हैं।"

क्रमशः दो कोस तक चलने के बाद सावित्री बहुत थक गई। कुछ देर दम लिए बिना आगे न चला गया। रास्ते के किनारे पर सामने एक वट-वृक्ष दिखाई दिया। उसी के तले बैठ कर सस्ताने का विचार किया। परन्तु

वृक्ष के पास आकर देखा कि एक वयोधिका स्त्री भिखारिणी के वेश में वहां वैठी है। वहुत ही फटे पुराने और मैले वस्त्र पहिने है। स्त्री की अवस्था अभी पूरे चालीस बरस की भी न होगी। परन्तु वात-जनित विकार के कारण उसमें चलने फिरने की भी शक्ति नहीं है। दोनों हाथों में एक एक लाठी है। खडे होने की ताक़त नहीं है। दोनों लाठियों के सहारे, बैठे-बैठे, बडे कष्टपूर्वक, एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती है। नाक के नथुनों और होठों से रक्त वह रहा है। सावित्री को देखते ही यह स्त्री कह उठी—"वचा एक पैसा दे—दया कर के एक पैसा दे—कल से लघी हू, कुछ खाने को नहीं पाया। गला सूख रहा है। भूख के मारे प्राण निकलते हैं।"

स्त्री की दुर्दशा देख कर सावित्री को बड़ी दया आई। परन्तु उसके पास पैसा एक भी नहीं था, सिर्फ वही पांच रुपये थे। अतएव सावित्री ने कहा—"मेरे पास पैसा नहीं है, रुपया है। यदि यहा कही से रुपया भुना सकू तो तुम्हें पसा दे सकती हूं। तुम्हारा दुख देखकर मुझे बड़ा दुख होता है। यदि ज्यादा रुपये मेरे पास होते तो तुम्हें एक रुपया ही दे देती।"

भिखारिणी ने कहा— "मा लक्ष्मी, परमेश्वर तुम्हारा भला करें, तुम्हारी आशा पूरी करें। यह सामने बाजार दिखाई देता है, यहा रुपया भुनाया जा सकता है, तुम बैठो, मैं निताई को बुलाती हू वह तुम्हे रुपया भुना ला देगा।"

यह कहते हुए बड़े उत्साह के साथ भिखारिणी ने दोनों टेकनी हाथों में थाम, उन्हीं टेकनियों के सहारे, इस

पेड़ से कोई बीस-चालीस हाथ के फ़ासिले पर एक कुटी के पास जा "निताई, निताई" कह कर पुकारना आरम्भ किया। कुटी के पश्चिम एक दूसरी कुटी थी। एक दस-बारह बरस का बालक उस कुटी से बाहर निकला। भिखारिणी उस बालक को साथ ले पुन सावित्री के पास आई, और भुनाने के लिए इस बालक को रुपया देने को कहा। सावित्री ने बालक के हाथ में रुपया दिया। वह तुरन्त ही बाजार से रुपया भुनाने चला गया।

बालक के चले जाने पर भिखारिणी ने सावित्री से पूछा— "मा लक्ष्मी, तुम कहां जाओगी ?"

सावित्री—मै कलकत्ते जाऊंगी।

भिखारिणी—क्या। एकाकिनी कलकत्ते जाओगी ? कलकत्ता बहुत दूर है। मैं जानती हू, तुम घर में किसी से लड़ाई-झगड़ा कर के चली आई हो। ऐसा काम न करना। यह बुद्धि छोड़ो। मेरी यह दुर्दशा देखो। मेरे यहा बहुतेरा धन माल था। कोई पचास साठ हजार रुपये का गहना मेरे तन पर था। न जाने क्यों, बाहर निकल खड़ी हुई। अब आज जो दुर्दशा है, उसे भगवान ही जानते हैं। यह देखो, फटा पुराना लत्ता पहिने हू। इसके सिवाय दूसरा लत्ता पास नहीं है। मैं अन्यान्य सैकड़ों आदमियों को कितने ही कपड़े दे डाला करती थी। सभाराम तन्तुकार के बुने हुए बत्तीस रुपये वाले रेशमी जोड़े के सिवाय मैंने कभी सूती कपड़ा हाथ से नहीं छुआ।

स्त्री के मुह से अपने पिता का नाम सुन कर सावित्री बड़ी चकित हुई। मन ही मन सोचने लगी कि इसका घर अवश्य ही हमारे गाव के पड़ोस में कहीं रहा होगा।

थोड़ी देर के बाद सावित्री ने स्त्री से पूछा — पहिले तुम्हारा घर कहां था ?

भिखारिणी — सदाबाद के कुछ दूर उत्तर — वि— टोला में।

सावित्री — हमारा घर भी सैदाबाद के पास ही जुलाहों के टोला में है।

भिखारिणी — तुम्हारे बाप का नाम क्या ?

सावित्री — सभाराम बसाक मेरे ही पिता का नाम था। उनकी मृत्यु हो गई।

भिखारिणी — तुम सभाराम की बेटी हो ? (चकित और लज्जित होकर) तब तो तुम मुझे पहिचान सकती हो। सैदाबाद के विश्वास-परिवार वालों का नाम सुना है ?

सावित्री — आपका मतलब किन विश्वासों से है ? सैदाबाद में तो बहुत विश्वास रहते हैं। छिदाम विश्वास, जगन्नाथ विश्वास इत्यादि।

भिखारिणी — (रोते रोते) यह जो तुमने पहिला नाम लिया, वही मेरे स्वामी थे।

सावित्री — (बहुत ही चकित होकर) आप छिदाम विश्वास की स्त्री हैं ? अह ! आपकी य दुर्दशा ! आप फौरन अपने घर को खबर भेजें, जगन्नाथ विश्वास के पुत्र यादवेन्द्र बाबू तुम्हें पालकी मे बिठाल कर लिवा ले जायगे उनके यहां क्या कमी है ? मैंने तो सुना था, आपने संसार छोड़ कर वैराग्य ले लिया है।

भिखारिणी — वैराग्य नहीं, अपना सर ले लिया है। हा परमेश्वर ! इस संसार में कोई वैरागी न हो। वैरागियों के समान अधर्मी, वैरागियों के समान दुष्ट इस संसार में

और कहां है ? बेटी । पचास हजार रुपये का गहना और पचास हजार रुपया नक़द अपने साथ लेकर मैं इस अखाड़े में आई थी । पर आज मेरी यह दुर्दशा है । चल फिर कर गृहस्थों के यहां भीख मांग खाने की भी सामर्थ्य नहीं है । इसी पेड़ के नीचे बैठी-बैठी पथिकों से भिक्षा मांगा करती हू । जिस दिन दो पैसे मिल जाते हैं, उस दिन इस बैष्णवी के लड़के के हाथ चावल-दाल मगाकर खा लेती हू । जिस दिन कुछ नहीं मिलता, उस दिन यों भूखी पड़ रहती हू । कल सारे दिन इस वृक्ष के नीचे बैठी रही, एक पैसा भी नहीं मिला ।

स्त्री की बातें सुन कर सावित्री की दोनों आखों से आसुओं की धारा वह निकली । विशेषत सावित्री इस स्त्री के पूर्व-कृत कुकर्मों के विषय में कुछ नहीं जानती थी । अतएव उसने मन ही मन स्थिर किया कि केवल धर्मानुराग ही से प्रेरित हो यह यहा आई होगी, पर यहा आकर विपत्ति में फस गई । सेदाघाट में रहनेवाली सावित्री के साथ की अन्यान्य लड़किया छिदाम विश्वास की स्त्री के कर्मों को अच्छी तरह जानती थीं । पर सावित्री अन्यान्य युवतियों की भाति दूसरे के घर की ऐसी वैसी बातों की चर्चा नहीं किया करती थी । यदि अन्य कोई स्त्री उस के सामने दूसरे के घरो की चर्चा छेड़ती भी तो वह उस पर कुछ ध्यान नहीं देती थी । तिस पर इस भिखारिणी ने सावित्री से बातें करते वक्त अपना पूर्व वृत्तात जिस रूप में वर्णन किया, उस से भी यही प्रमाणित हुआ कि वास्तव में इस का रत्ती भर भी दोष नहीं, वैरागियों ही ने इसे ठगा है । वस्तुत बहुकाल से जिसका हृदय पाप

वासनाओं से कलंकित होता रहा है, जो सदा ही कुकर्मों मे लिप्त रहे हैं, उनकी नजर अपने दोषों पर नही जाती। इस पापिनी के हृदय मे आज भी अपने किये हुए कुकर्मों के प्रति पश्चात्ताप की अग्नि प्रज्वलित नहीं हुई है। यदि ऐसा होता तो क्या यह सिर्फ वैरागियों ही की निन्दा करती? वैरागियों मे हजार दोष रहे हों सही, पर इस भिखारिणी के मामले मे वे विशेष अपराधी न थे। इसके नाश का कारण अनेक अंशों में इसी का चरित्र है।

यह भिखारिणी छिदाम विश्वास की स्त्री है। सम्भव है, हमारे पाठक इन बातों को जानने के लिए विशेष उत्सुक हों कि किस प्रकार इसकी ऐसी दुर्दशा हुई और इसके पति छिदाम विश्वास कौन थे, अतएव इससे आगे के परिच्छेद में हम सैदाबाद के विश्वास परिवार का वृत्तान्त संक्षिप्त रूप में लिखते हैं। पाठकों को स्मरण होगा, इससे पहिले लिखा जा चुका है कि छिदाम विश्वास की स्त्री के द्वारा ही तिरस्कृत हो, दुखिनी, निरपराधिनी, नवकिशोर की वृद्धा जननी ने फासी लगा कर आत्महत्या कर ली थी।



विश्वास-परिवार का पूर्व-वृत्तांत।

सैदाबाद में जगाई और छिदाम नाम के दो सगे भाई थे। साधारण खेती का काम करके ये अपना जीवन निर्वाह करते थे। बहुत गरीब आदमी थे। जगाई की अवस्था कोई तीस बत्तीस बरस की हो चुकी थी, पर धनाभाव के कारण उनका विवाह न हो सका। लोग इन्हे शूद्र करके जानते थे। बाल्यावस्था में ही इनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी। इनका पिता कौन था, यह भी शायद इन्हें नहीं मालूम था।

दोनों भाइयों में से जगाई घर पर रह कर खेती का काम करते थे, और छिदाम खेत में उत्पन्न होने वाली आलू, परवल इत्यादि तरकारियां बाजार में बेचने ले जाया करते थे। एक साल छिदाम ने आलू, परवल इत्यादि तरकारियों के बेचने का व्यवसाय छोड़ फेरीवाले के रूप में टोकनी सिर पर रख, क़ासिमबाजार में अङ्गरेज, फरासीस, अरमीनियन आदि विदेशी व्यापारियों के यहां नींबू बेचने शुरू किये। इससे छिदाम के साथ अनेकानेक अङ्गरेज व्यापारियों का परिचय हो गया। इसके कुछ समय बाद उन्होंने अङ्गरेजों की रेशम की कोठी में दलाली का काम करना शुरू किया। अङ्गरेजों की क़ासिमबाजार वाली रेशम की कोठी के असिस्टैन्ट वारन हेस्टिंग्स ने छिदाम को विशेष कार्यदक्ष आदमी समझ कर इन्हीं दिनों उन्हें रेशम

की कोठी में प्यादा के पद पर नियुक्त कर लिया। पलासी युद्ध के पहिले भी अङ्गरेज व्यापारी विविध कौशल चातुर्य से देशी जुलाहों तथा अन्यान्य व्यवसायियों को ठग ठगा कर धन संग्रह करते थे। परन्तु उस वक्त किसी के ऊपर अत्याचार करने का साहस उन्हें नहीं होता था। नवाब अलीवर्दी खा के भय से वह दबे रहते थे। उस वक्त सिर्फ एक मात्र प्रवञ्चना का द्वार उनके लिए खुला था। अधिकाधिक अर्थलाभ की आशा में अङ्गरेज व्यापारी किसी प्रकार का प्रवञ्चनामूलक कार्य करने में सकुचित नहीं होते थे। बगालियों में उस वक्त जो लोग बड़े पक्के धूर्त थे और चालाकी तथा धोखेबाजी के व्यवहार में दक्ष माने जाते थे वही अङ्गरेजों के प्रियपात्र होते थे। ऐसे लोग अङ्गरेजों के विविध अवैध आचरणों और निर्दय व्यवहारों में सहायता देकर सहज ही बहुत सा रुपया कमा लेते थे। धर्माधर्म ज्ञान से शून्य उस समय के वे दुष्ट धोखेबाज बगाली, अङ्गरेज व्यापारियों की तात्कालिक कुक्रियाओं में सहायता दे कर प्रभूत सम्पत्ति सचित करने में समर्थ हुए, अतएव उनके पौत्र-प्रपौत्र आदि वशजों में से कितने ही आदमी आजकल बङ्गाल के प्रतिष्ठित परिवारों में परिगणित हो रहे हैं।

रेशम की कोठी में प्यादे के काम पर नियुक्त होकर छिदाम कुछ ही दिनों में हेस्टिंग्स साहब के विशेष प्रीति पात्र बन गये। उस वक्त रेशम की कोठी के प्यादा लोगों को काफी आमदनी होती थी। कोठी में काम शुरू करने के बाद तीन ही महीने के भीतर छिदाम ने अपने भाई जगाई के विवाह का बन्दोबस्त किया। जगाई के विवाह

के एक महीने बाद उन्होंने खुद भी एक चौदह बरस की युवती कन्या का पाणिग्रहण किया। छिदाम की स्त्री का नाम था वदनमणि। उसके दोनों गाल जरा फूले हुए थे। आख और कान गालों की फुलावट से ढके थे। इसी कारण बाल्यकाल में लोग उसे 'वदनी' कह कर पुकारा करते थे। विवाह के बाद उसका नाम हुआ वदन-मणि। छिदाम का विवाह होने के सात-आठ बरस बाद मि० विलियम बोल्ट्स साहब कासिमबाजार के फैक्टरर (कोठी के प्रधान अध्यक्ष) नियुक्त हो कर आये। इन्होंने बंगालियों का रक्त चूस कर कुछ बरसों में प्राय बानवे लाख रुपया पैदा किया था। बाद में ये कलकत्ते के मेयरकोर्ट की जजी के पद पर भी नियुक्त हुए थे। छिदाम की कार्यदक्षता को देख कर विलियम बोल्ट्स साहब बड़े सतुष्ट हुए। मन ही मन उन्होंने विचार किया कि छिदाम को कोठी की दीवानी के पद पर नियुक्त करेंगे। परन्तु अन्त में न जाने क्या सोच कर उन्होंने छिदाम को ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारी दीवान के पद पर नियुक्त न करके अपने निजी व्यापार का दीवान बना लिया। पाठकों को याद होगा, अब तक कई बार इसका उल्लेख हो चुका है कि उस वक्त ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापार के सिवाय कम्पनी का प्रत्येक कर्मचारी अपना अपना व्यापार अलग भी करता था।

रेशम की कोठी के गुमाश्तों में छिदाम जैसे कार्यदक्ष आदमी बहुत थोड़े थे। छिदाम को किसी प्रकार का कुकर्म, किसी प्रकार का निन्द्य आचरण, करने में तनिक भी सकोच नहीं होता था। अतएव छिदाम को, बोल्ट्स साहब के निजी

गृहस्थों के यहाँ स्त्रियों को ऐसे रोग — काल्पनिक रोग — हुआ करते हैं। इसीलिए हम लोग सम्मिलित परिवार की प्रथा के विशेष पक्षपाती नहीं हैं।

छिदाम विश्वास के सिर्फ एक इकलौती कन्या है। इस वक्त उसकी अवस्था लगभग दस बरस की है। इस कन्या के बाद छिदाम की स्त्री के कोई औलाद नहीं हुई। वे इतना रुपया पैदा कर रहे हैं पर उनके पुत्र कोई नहीं है। जगन्नाथ विश्वास बड़ी-बड़ी दूर घूम-फिर कर कितने ही साधु-महात्माओं से जल पढ़ा-पढ़ा कर लाये, और छिदाम की स्त्री को पिलाया, कितने ही ज्योतिषी पण्डितों को उनका हाथ दिखाया, पर किसी से कुछ न हुआ। छिदाम की स्त्री के कोई औलाद न हुई। अन्तत जगन्नाथ विश्वास कहने लगे—परमेश्वर ने मुझे तीन पुत्र दिये हैं, एक पुत्र मैं अपनी भावज को दे दूंगा। परन्तु जगन्नाथ की स्त्री अपना पुत्र नहीं देना चाहती थी। कारण कि छिदाम की स्त्री उसकी औलाद से अत्यन्त घृणा करती थी।

छिदाम की स्त्री कोई काम-धधा नहीं छूती थीं, दिन-रात पलग पर पड़ी रहती थीं। उनका दैनिक काम सिर्फ एक था, और वह यह कि तीसरे पहर को जिस वक्त प्यारी की मा, दुलारी का मां, श्यामाकी मा इत्यादि स्त्रिया उनके पास आकर जमा होती थीं, उस वक्त वे गांव की युवती स्त्रियों विशेषत युवती विधवाओं के चरित्र की आलोचना के लिए कचहरी करने बैठती थीं। इस प्रकार दिन-रात बेकार पलग पर पड़े रहने के कारण धीरे-धीरे छिदाम की स्त्री का शरीर बहुत मोटा हो गया। यों तो उनके गाल बचपन ही से फूले हुए थे, पर अब तो उनकी फुलावट इतनी बढ गई कि आंखों और कानों

के आस पास दीवारे सी खडी हो गई। डाक्टरो का मत है कि जो स्त्रिया आलस्य-वश कुछ काम नहीं करती, और दिन-रात बेकार पडे-पडे बहुत मोटी हो जाती हैं, उनके औलाद नहीं होती। जान पड़ता है, छिदाम की स्त्री के भी औलाद न होने का यही कारण था।

छिदाम की कन्या हेमलता जब दस बरस की हुई तो छिदाम और जगन्नाथ, दोनो भाइयो, ने मन ही मन निश्चय किया कि किसी कुलीन कायस्थ के साथ कन्या का विवाह करके एक दम सर्वसम्मत, रजिस्टर्ड, कायस्थ बन जायगे, और उस वक्त फिर कोई हम लोगो को शूद्र कहने का साहस न करेगा। बङ्गाल के कायस्थों में घोष, वसु, मित्र, गुह—इन चार श्रेणियों के कायस्थ कुलीन माने जाते हैं। छिदाम और जगन्नाथ ने स्थिर किया कि चाहे कितना ही रुपया क्यों न खर्च हो, इन्हीं चार घरानो में से किसी एक मे कन्या का विवाह करना चाहिये।

रामसुन्दरदास उस समय वहा के एक प्रधान घटक थे। उन्हे बुलाकर छिदाम ने हेमलता का विवाह सम्बन्ध स्थिर करने के लिए कहा। राम सुन्दर ने पहले पहिल उसी गाव के एक कुलीन कायस्थ श्यामाकान्त घोष के निकट प्रस्ताव किया कि छिदाम की कन्या के साथ आप अपने पुत्र का विवाह करें। घोष महाशय इसे सुनते ही आगबबूला हो उठे, और घटक से कहने लगे—"महाशय, मुझे क्या अपनी कुल-मर्यादा को बेचना है? सात पीढ़ियों से हमारे यहा दत्तों के अतिरिक्त किसी अकुलीन घराने में ब्याह-शादी नहीं हुए। एक लाख रुपया मिलने पर भी मैं छिदाम विश्वास के साथ सम्बन्ध नहीं कर सकता।

छिदाम विश्वास के पास रुपया है जरूर, परन्तु रुपये से कोई कुलीन नहीं हो जाता। रुपया बढ़ जाने से क्या कुल भी बढ़ जायगा? सुना है छिदाम विश्वास सद्गोपों की सन्तान है।"

रामसुन्दर घटक ने कहा—"महाशय, आप नहीं जानते। छिदाम विश्वास मध्यम श्रेणी के कायस्थ हैं अवश्य, परन्तु बड़े अच्छे घराने में से हैं। इनके प्रपितामह अनूपनारायण विश्वास इस प्रदेश के एक प्रतिष्ठित आदमी थे। उनके यहां के रस्म-रवाज बड़े अच्छे थे, काम-काज बड़ी विधि से होते थे, बड़े-बड़े कुलीन कायस्थों में उनके नाते-रिश्ते थे। नवाब के दरबार में उनका बहुत आदर था। उन्होंने कितने ही बड़े बड़े अच्छे काम किये। अनूपनारायण विश्वास की मृत्यु के समय उनके पुत्र (छिदाम के पितामह) नाबालिग थे, अतएव उनकी रियासत सब जब्त हो गई, और इसी कारण धीरे-धीरे ये लोग बहुत गरीब हो गये। परन्तु अब छिदाम बाबू का तो कहना ही क्या, बहुत रुपया पैदा किया। आज कल हमारे देश के मानो राजा हैं। बंगला, फासी, दोनों इल्मों के उस्ताद हैं। छिदाम बाबू मध्यम श्रेणी के कायस्थ हैं अवश्य, परन्तु उनका घराना बहुत पुराना और प्रतिष्ठित है। मेरी राय में तो आप इस विषय पर खूब अच्छी तरह विचार कर के तब मुझे निश्चित उत्तर दें। एकाएक नाहीं न कीजिये।"

छिदाम और जगन्नाथ दो में से किसी ने आज तक कभी अपने प्रपितामह का नाम सुना था या नहीं इस में सन्देह है। रामसुदर घटक ने छिदाम के प्रपितामह का

नाम-धाम प्रकट कर, के मानो आज यह एक नूतन-आविष्कार किया।

रामसुन्दर की बात के प्रत्युत्तर में श्यामाकांत घोष ने कहा—"नहीं महाशय, ऐसा नहीं हो सकता। मेरे एक पुत्र है। मैं धन के लोभ में छिदाम विश्वास के यहा सम्बध नहीं करूंगा। यदि मैं उनकी लडकी के साथ अपने पुत्र का विवाह करूं तो मेरे भाई-ब द, रिश्तेदार कोई मेरे यहा नहीं आवेंगे।"

रामसुन्दर घटक निराश होकर वहा से चल दिये, और एक दूसरे गाव में लक्ष्मीकांत मित्र के पास गये। मित्र महाशय में गाजा पीने की लत थी, इसलिए वे मिजाज के जरा तीखे थे। रामसुन्दर घटक ने जैसे ही उन के लडके के साथ छिदाम की लडकी को ब्याहने का प्रस्ताव किया, वे आगबबूला हो उठे, और बोले—"साले घटक, तू मुझ से सद्गोपों के साथ रिश्तेदारी करने के लिए कहता है? साले इसी वक्त मेरे यहा से चला जा।"

यह कहते हुये रामसुन्दर को मारने दौडे। रामसुन्दर तनिक भी चीं-चपड़ न करके चुपचाप वहा से भाग खड़े हुये।

इस गाव से अपने घर को लौटते वक्त रास्ते में कृष्ण-मोहन दत्त के साथ रामसुन्दर का साक्षात् हुआ। कृष्ण-मोहन दत्त एक प्रधान तालुक़दार थे। पर इनके ताल्लुक़े की बहुत सी मालगुजारी इनके जिम्मे बाकी पड़ी थी। नवाब के सिपाही प्यादे हर रोज इनके घर पर धूम

मचाये रहते थे। उन दिनों बंगाल में सूर्यास्त* का आईन प्रचलित न था। मालगुजारी बकाया रहने पर नवाब के सिपाही प्यादे आकर जमींदारों और तालुकेदारों को पकड़ ले जाते थे। कृष्णमोहन दत्त अपना घर-बार छोड़ एक दूसरे गांव को भाग गये थे और अपने स्त्री पुत्रों के सहित आज-कल वहीं रहते थे। रामसुन्दर से इन्होंने पूछा—"घटक महाशय, कहां गये थे?"

रामसुन्दर—भाई, छिदाम विश्वास की कन्या के लिये वर खोजना है उसी के लिये आज कल परेशान हो रहा हूं। किसी कुलीन घराने का लड़का चाहिये।

कृष्णमोहन—सुनो तो, मेरे लड़के के साथ यह सम्बन्ध ठीक कराओ न? छिदाम अगर दस हज़ार रुपये देने को राजी हों तो मैं बराबर उनके यहां शादी कर लूंगा।

रामसुन्दर—वे तो कुलीन घराने का लड़का चाहते हैं, मध्यम श्रेणी वालों के यहां वे सम्बन्ध नहीं करेंगे।

कृष्णमोहन—हमारे यहां सम्बन्ध करने पर सब कुलीनों के साथ सम्बन्ध तो वैसे भी हो जायगा। कारण यह कि सभी कुलीनों के यहां हमारी रिश्तेदारी है। इन्हीं बातों में तो हमारा दिवाला निकला है, कुलीनों के यहां

* इस्तमरारी बन्दोबस्त होने पर बंगाल में जमींदारों के लिये यह कानून बनाया गया था कि वे अपनी अपनी मालगुजारी का रुपया अमुक तारीख तक जरूर अदा कर दें। इस निर्दिष्ट समय में या अमुक निश्चित तारीख की सन्ध्या (सूर्यास्त) तक मालगुजारी न अदा करनेवालों की जमींदारी नीलाम हो जाती थी।

सम्बन्ध ही करने में तो हमने अपना सब कुछ गवा दिया। आठ हजार रुपया मालगुजारी का बकाया है। नवाब से कम्पनी बहादुर का रुपया नहीं अदा होता है। मालगुजारी वसूल करने के लिये आज कल जमींदारों और ताल्लुकदारो पर बड़ी सख्ती हो रही है। आप छिदाम विश्वास को समझा कर कहें कि मेरे यहा सम्बन्ध करने पर देश भर के कुलीन बारात में उनके घर आवेगे और खान-पान में शामिल होंगे।

रामसुन्दर—अच्छा, छिदाम से बात चीत करके तब आपसे वैसा कहूगा।

रामसुन्दर घटक ने कोई दो तीन महीने लगातार मुर्शिदाबाद, हुगली, बर्द्धमान इत्यादि जिलों में रहने वाले कुलीन कायस्थो के यहा जा-जाकर छिदाम की कन्या के विवाह का प्रस्ताव किया। परन्तु जो कुलीन कायस्थ अपने घर के अच्छे खाते-पीते थे, मालदार थे, उनमे से किसी ने भी छिदाम के यहा सम्बन्ध करना स्वीकार न किया। हा, मध्यम श्रेणी वाले कायस्थों के यहा जरूर कई अच्छे-अच्छे लड़के मिले, और उनके घरवालों ने सम्बन्ध करना स्वीकार भी किया, परन्तु छिदाम और जगन्नाथ यह प्रण कर चुके थे कि चाहे जितना रुपया खर्च हो, शादी करेंगे तो कुलीनों के यहा।

लौटने पर रामसुन्दर ने छिदाम बाबू से कहा—"भाई देश भर के कुलीन कायस्थों में किसी ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। मैंने उन लोगों से कहा कि छिदाम बाबू के प्रपितामह अनूपनारायण विश्वास इस देश के एक बड़े प्रतिष्ठित आदमी थे। उनके पास बहुत ताल्लुका था।

नवाब-दरबार में उनकी बड़ी इज्जत थी। बड़े बड़े कुलीनों के यहां उनका सम्बन्ध था। परन्तु मेरी ये सब बातें सुन कर वे लोग कहने लगते हैं—"घटक तो ऐसा कहा ही करते हैं।"

जगन्नाथ और छिदाम, रामसुन्दर की यह बात सुन कर बोले—"हा हा अनूपनारायण विश्वास ही हमारे प्रपितामह थे। परन्तु आपको यह पता कहा से लगा ?"

रामसुन्दर ने कहा—सब के बाप दादों का नाम हमारी बही मे लिखा रहता है। इस देश में कोई ऐसा बड़ा आदमी न ी, जिसके बाप, दादे, परदादे का नाम मुझे न मालूम हो। रहे छोटे आदमी, सो उनके दादे-परदादे का नाम जानने की चेष्टा कौन करे, एक तरह से व्यर्थ ही है।

जगन्नाथ और छिदाम ने आज से अपने प्रपितामह का नाम याद कर रखा। परन्तु पितामह का नाम अभी तक नहीं मालूम हुआ, इधर पिता के नाम में भी कुछ सन्देह था। प्रपितामह का नाम जान कर इन नामों को भी जानने की फिक्र पड़ी। लज्जा के मारे घटक से पूछने का साहस न हुआ। सोच विचार कर निश्चय किया कि बातचीत में मौका लगने पर किसी बहाने घटक ही के मुह से ये दोनों नाम भी निकलवा लेंगे।

थोड़ी देर मे रामसुन्दर घटक फिर कहने लगे—"महाशय, इस देश के कुलीन कायस्थ तो आपके यहा सम्बन्ध नहीं करना चाहते। वे कहते हैं, छिदाम विश्वास सद्गोपों की औलाद हैं। हा कृष्णमोहन दत्त आपके यहा सम्बन्ध करने को राजी हैं, सो यदि आपके पसन्द हो तो उनके लड़के के साथ शादी करलें, नहीं तो मुझे खर्च-पात

देकर यशोहर, बाखरगंज की तरफ भेज दें। वहां बहुत कुलीन रहते हैं, और वे लोग यहां वालों की अपेक्षा अच्छे कुलीन भी हैं।"

छिदाम ने खर्च-पात देकर रामसुन्दर को यशोहर, बाखरगंज आदि पूर्वीय प्रदेशों की तरफ रवाना किया। रामसुन्दर यशोहर जिले के अन्तर्गत चाचड़ा गांव में आये। सौभाग्य से वहां एक उच्च कुलीन का लड़का मिल भी गया।

पांचकौड़ी मित्र नामक एक कुलीन कायस्थ बाखरगंज के अन्तर्गत 'राय की काठी' नामक गांव में रहते थे। उपर्युक्त घटना के लगभग बीस बरस पहिले पांचकौड़ी मित्र की मृत्यु हो चुकी थी। उनकी स्त्री अपने तीस बरस के बालक पुत्र, सुबलचन्द्र मित्र को साथ लेकर यशोहर जिले के अन्तर्गत चाचड़ा ग्राम में अपने पिता के यहां रहने लगी थीं। सुबल की अवस्था जब पन्द्रह बरस की हुई, तब उनकी माता का भी प्राणान्त हो गया। अब उनकी अवस्था कोई बाईस-तेईस बरस की है, और वे इसी चाचड़ा गांव में, अपने ननिहाल में रहते हैं।

रामसुन्दर घटक ने इन्हीं सुबल मित्र के साथ छिदाम की कन्या का सम्बन्ध स्थिर किया। सुबल का चरित्र बहुत बुरा नहीं कहा जा सकता। दूसरे, उस जमाने में कन्या का विवाह निश्चित करते वक्त वर का चरित्र अच्छा है या बुरा, इसे कोई नहीं देखता था। सिर्फ कुल देखा जाता था। चरित्र कैसाही हो, उससे कुछ मतलब नहीं, कुलीन होना चाहिये। आज कल वर्त्तमान समय में भी चरित्र के विषय में लोग विशेष पूछ-ताछ नहीं करते हैं।

सिर्फ यह देखते हैं कि लड़का बी० ए०, एम० ए० कुछ पास है या नहीं।

सुबल का चरित्र बुरा नहीं था, परन्तु वह कुछ गाँजा पीते थे, और बुरे आदमियों का संग साथ रहने के कारण उनमें तनिक ऐयाशी का दोष आ गया था। शराब वे बहुधा नहीं पीते थे, हां कभी-कभी पी लेते थे, परन्तु सो भी इतना हम निश्चय कह सकते हैं कि अपना पैसा खर्च करके उन्होंने कभी शराब नहीं पी। अन्यान्य लोगों के साथ बट्टे मे कभी कभी पी लेते थे। उस वक्त इस देश में सुरापान-निवारिणी अथवा मादक वस्तु निषेध-कारिणी सभाएं नहीं थीं। सुबल ने इस आशय के किसी प्रतिज्ञापत्र पर कभी हस्ताक्षर नहीं किये थे कि हम शराब हाथ से नहीं छुएंगे। अतएव ऐसी दशा में यदि कभी छठे छमाहे उन्होंने पी भी ली, तो उसके लिए हम उन्हें विशेष अपराधी नहीं समझते। सुबल ने पाठशाला में बंगला लिखना सीख लिया था, परन्तु छापे के अक्षर पढने में उन्हें दिक्कत होती थी। उस वक्त इस देश में छापेखाने नहीं थे, इस लिए छापे की पुस्तके देखने मे भी बहुत कम आती थीं।

रामसुन्दर घटक सुबल मित्र के साथ छिदाम विश्वास की कन्या का सम्बन्ध स्थिर करके मुर्शिदाबाद लौटे। बहुत बढिया कुलीन के यहा कन्या का विवाह सम्बन्ध निश्चित होने की बात सुनकर छिदाम को बडी खुशी हुई। पांच सौ रुपये की मोहरे और दो सौ रुपये के मूल्य की एक काश्मीरी शाल रामसुन्दर घटक को इनाम में दी। विवाह के बाद घटक महाशय का और भी बहुत कुछ देने-दिलाने का वचन दिया।

बड़े, समारोह के साथ छिदाम विश्वास, सुबल मित्र को नाव के रास्ते, यशोहर से मुर्शिदाबाद लिवा लाये। विवाह की तिथि पहिले ही से निश्चित हो चुकी थी। कन्या के विवाह में छिदाम ने कोई पचास हजार रुपया खर्च किया। पाधा-पुरोहितों की चढ़ बनी-खूब माल मिला। मुहल्ले की नाइन, प्यारी की मा, श्यामा की मा इत्यादि स्त्रिया घर-घर जाकर कहने लगीं—दस लाख रुपये का चिट्ठा तयार हुआ था, पर विवाह में क़रीब बीस लाख रुपया खर्च हुआ। परन्तु रूपा की मा कहती थी—पन्द्रह लाख खर्च हुआ। निदान इस विषय में इन स्त्रियों के बीच यावज्जीवन मतभेद ही रहा।

यह सोचकर कि मेरे कोई पुत्र है नहीं, भविष्य में मेरा दामाद ही मेरी प्रभूत सम्पत्ति का अधिकारी होगा—छिदाम ने इसके लिए विशेष उद्योग करना प्रारम्भ किया कि सुबल को विविध विषयों की शिक्षा दिलावें और शास्त्र का अध्ययन करावें। उनके पड़ोस में दो पाठशालाए थीं। एक रामदास शिरोमणि की, दूसरी हरिदास तर्क पचानन की। छिदाम स्वयम् इन दोनों पण्डितो के पास गये, ओर उनसे अपने दामाद को शास्त्र की शिक्षा देने का अनुरोध किया। परन्तु इन लोगों ने कहा कि ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी जाति को शास्त्राध्ययन का अधिकार नहीं। यदि कोई ब्राह्मण अध्यापक किसी अन्य जातीय पुरुष को शास्त्र का अध्ययन कराने तो शास्त्र की आज्ञानुसार उस ब्राह्मण को पतित होना पड़ता है।

यदि यह कहा जाय कि हिन्दूशास्त्र में छिदाम की बड़ी श्रद्धा थी, ओर इसी कारण उन्होंने अपने दामाद को

शास्त्र की शिक्षा दिलाने का विचार किया था, सो बात नहीं। बल्कि छिदाम का यह खयाल था कि शास्त्र की शिक्षा प्राप्त किये बिना भद्र-समाज में मनुष्य का आदर नहीं होता। भले आदमियों में बैठकर जो व्यक्ति संस्कृत के दो चार श्लोक जबानी सुना सकता है, उसी की वाह-वाह होती है, उसी की लोग तारीफ करते हैं। यही सोच कर छिदाम अपने दामाद को संस्कृत-पाठशाला* में भेजने की बहुत कोशिश कर रहे थे। विशेषत छिदाम जब कभी स्वयम्, भले आदमियों की किसी सभा-सोसाइटी में जाते थे तो मन ही मन बड़े कुण्ठित होते थे। सभा में उन्हें चुप बैठा रहना पड़ता था। संस्कृत का एक भी श्लोक उन्हें नहीं आता था। उनके पास रुपया पैसा सब कुछ था, किसी बात की कमी नहीं थी, परन्तु पढ़े लिखों की समाज में उन्हें कोई नहीं पूछता था। सभा में बोलने की उनमें रत्ती भर भी ताकत नहीं थी। इसी मारे किसी सभा समाज में प्राय वे जाते ही नहीं थे।

छिदाम कुछ लिखना पढना नहीं जानते थे। ज्यों त्यों सिर्फ अपना नाम लिखना सीख लिया था। सो भी सौभाग्य से नाम 'छिदाम' था, तब सीख भी लिया, पर यदि कहीं नाम उनका मृत्युञ्जय अथवा गङ्गागोविन्द होता तो बड़ी आफत होती। परन्तु जिस के पास धन हो, वह चाहे मूर्ख ही हो, पर उसे मूर्ख कहता कोई नहीं। गाव के अशिक्षित आदमी कहा करते थे—छिदाम बाबू

* बगाल में 'ञ' और 'ङ्ग' आदि अक्षरों की लिपि विशेष कठिन है। अनुवादक।

गला, फारसी, नागरी तीनों कलम के उस्ताद हैं । इधर बवाह के मामले में एक बरस तक चारों ओर चक्कर लगाने पर रामसुन्दर घटक ने हजारों आदमियों में यह सिद्ध कर दिया कि छिदाम विश्वास बगला और फारसी दो भाषाओं पर पूरा अधिकार रखते हैं । फारसी जबान में तो उनकी लियाक़त बहुत ही बढी चढी है । ठीक मौलवियों की तरह फ़ारसी किताबे पढ सकते है ।

तर्क पचानन और शिरोमणि ने यद्यपि अपनी पाठ शालाओं में छिदाम के दामाद को शास्त्राध्ययन कराना अस्वीकार किया, तथापि छिदाम ने अपने सकल्प को नहीं त्यागा । छिदाम वोल्टम साहब के गुमाश्ता ठहरे, चालाकी और होशियारी से काम निकाल लेने में खूब दक्ष थे । उन्होंने एक दिन चुपचाप हरिदास तर्क पचानन को बुला-कर कहा—"पण्डित जी । आपको दो सौ रुपया मासिक दूगा, आप गुप्त रूप से मेरे दामाद को संस्कृत पढाना शुरू करदे ।" इतने रुपये का लाभ तर्क पचानन जी से न छोड़ा गया । सुबल को उन्होंने मुग्धबोध व्याकरण पढाना आरम्भ कर दिया ।

छिदाम जब कभी अपने दामाद से पूछते थे—"बेटा ! आज कल क्या पढते हो ?" सुबल कहते थे—'आज कल मुग्ध रस व्याकरण पढ रहा हू ।' इससे ज्यादा बात चीत करने में छिदाम यह सोचते थे कि कहीं दामाद को इसका पता न लग जाय कि मैं (छिदाम) सस्कृत नहीं जानता हू । अतएव इस सम्बन्ध में अधिक बातचीत न कर के छिदाम सिर्फ इतना ही कह कर चुप हो जाते थे कि "हा बेटा, खूब मन लगा कर पढा करो । मुग्धरस

थे, आज उनके पौत्र प्रपौत्र आदि वंशजों में से बहुतेरे बंगाल के प्रतिष्ठित (Aristocracy,) पुरुषों में गिने जाते हैं। हम इन प्रतिष्ठावानों को एक बार स्मरण दिलाते हैं कि बंगाल के तत्कालीन कारीगरों, किसानों, व्यवसायियों और विविध प्रकार के श्रमजीवियों का श्रोणित इनके शरीर का परिपोषण कर रहा है। उस जमाने के उन निरपराध मनुष्यों के सर्वनाश के ऊपर इनके प्रतिष्ठा सम्बन्धी गौरव की नींव सस्थापित है। परन्तु पाठक! आप अंगरेजी कवि गोल्डस्मिथ की इस बात का स्मरण करें—

Princes and Lords may flourish, or may fade,
A breath can make them, as a breath has made;
But a bold peasantry, their country's pride,
When once destroyed, can ne'er be *supplied*



बाबा प्रेमानन्द और भक्तानन्द वैरागी।

छिदाम की मृत्यु के बाद जगन्नाथ विश्वास और उनके बड़े लड़के यादवेन्द्र बाबू छिदाम के ताल्लुके तथा अन्यान्य जायदाद की देख-भाल करने लगे। इस घटना के प्राय तीस बरस बाद यही यादवेन्द्र बाबू महाराजा यादवेन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हुये थे।

सुबल मित्र छिदाम ही के घर में रहने लगे। छिदाम

का, स्त्री पहले भी कोई काम धधा नहीं करती थीं, फिर आज कल तो वह स्वामी के शोक में व्याकुल पड़ी रहती हैं। अतएव इस वक्त कोई उनसे किसी काम के लिए कहने का साहस ही कैसे कर सकता था। दूसरे एक बात यह थी कि छिदाम की छोड़ी हुई नक़दी सब उन्हीं के पास थी। छिदाम के पास कोई पचास लाख रुपया नक़द था। जिसमें से चालीस लाख रुपया दादनी में बटा हुआ था। इन सब रुपयों क दस्तावेज़ और इक़रारनामें छिदाम ने अपनी स्त्री ही के नाम लिखवाए थे। परन्तु ये सब कागजात रखे जगन्नाथ के पास थे। जगन्नाथ अपनी स्त्री आह्लादी से छिदाम की स्त्री की सेवा-टहल करने का अनुराध करते रहते थे। आह्लादी बडी सीधी सादी और शान्त स्त्री थी। कभी जोर से बातें भी नहीं करती थी। बेचारी प्राणपण से छिदाम की स्त्री की सेवा-शुश्रूषा करती रहती थी। अब उसे घर का बहुत काम-धधा नहीं करना पडता था। उसके पुत्र यादवेन्द्र बाबू घर के मालिक थे, इसलिए नौकर-चाकर सब उन से दबने लगे थे। दूसरे उसकी बहू और कन्यायें सयानी हो आई थीं, वही सब घर का काम-धँधा सभालने लगीं। आह्लादी छिदाम की स्त्री को स्नान करवाती थी, उनके लिए रसोई का प्रबन्ध करती थी। कभी कभी अपने ही हाथों भोजन भी तैयार कर देती थी। छिदाम की स्त्री स्वामी के शोक में प्राय रात-दिन चारपाई पर पड़ी रहती थीं। तथापि अपना पुराना दैनिक कार्य अब भी निबाहे जाती थीं — तीसरे पहर जिस वक्त मुहल्ले की भिन्न भिन्न स्त्रियां उनके पास आकर जमा होतीं, उस वक़ उनके

साथ बैठ कर पास-पडोस की युवती विधवाओं तथा अन्यान्य स्त्रियों के चरित्र की आलोचना बडे चाव से किया करती थीं।

छिदाम की मृत्यु के पहिले ही गाव के लोग छिदाम की स्त्री के चरित्र के सम्बन्ध मे कानाफूँसी करने लगे थे। छिदाम की मृत्यु के बाद उस कानाफूसी ने जोर पकडा। चारो ओर उनकी स्त्री के दुष्कर्मों की चर्चा फैलने लगी।

सुबल मित्र ने अब मुग्धबोध व्याकरण पढना छोड दिया। हर रोज अपनी सास से दस बारह रुपये माग ले जाते है, और मजे में गाजा-शराब उडाते हैं। गाव के चार-पाच नौजवान उनके यार-दोस्त बन गये हैं।

छिदाम की कन्या हेमलता इस समय ग्यारह बरस की है, और सुबल मित्र की अवस्था लगभग चौबीस बरस की होगी। कभी-कभी जब वे शराब पी कर आते है तो हेमलता को पीटने लग जाते है। हेमलता मार के डर से अपने स्वामी के पास नहीं फटकती। रात को अपनी बडी अम्मा (जगन्नाथ की स्त्री) के पास लेटा करती है। जगन्नाथ की स्त्री उसे बहुत ही प्यार करती थी। अपनी कन्या से भी अधिक स्नेह के साथ उसका लालन पालन करती थी।

एक दिन हेमलता को न जाने क्या सूझा। इस से पहिले वह सुबल को देखते ही डर के मारे किसी कोने में जा छिपती थी। परन्तु आज उसने बडी निर्भीकतापूर्वक सुबल के पास जाकर उन्हें डांटना शुरू किया। चिल्लाकर

कहने लगी—"अच्छा हो, तू मर जाय, मैं सदा के लिए विधवा हो जाऊं।"

हिन्दू स्त्रिया अपने स्वामी से और चाहे जो कुछ कहें, पर ऐसा दुर्वाक्य कभी नहीं कहती। तिस पर भी हेमलता बड़े सीधे स्वभाव की लड़की थी। किस लिए हेमलता को सुबल पर इतना गुस्सा आया, नहीं मालूम। आज तीन चार दिन से वह अपनी माता के पास नहीं जाती थी और न उन से बातचीत करती थी। सुबल मित्र और दिन तो हेमलता को पीटते थे, परन्तु आज उनके स्वभाव में न जाने क्या परिवर्तन हो गया कि हेमलता की फटकार को सुनकर वे बिल्कुल खामोश हो रहे। तीसरे पहर की यह बात थी। इस के बाद शाम को हेमलता ने कुछ नहीं खाया-पिया। शरीर अस्वस्थ बतला कर चुपचाप पड़ रही। अब से पहिले वह हर रोज जगन्नाथ की स्त्री के पास लेटती थी। परन्तु आज वह अपने कमरे में अलग बिछौने पर जा लेटी। जगन्नाथ की स्त्री ने ख्याल किया कि शायद आज वह अपने पति के पास लेटेगी। इस लिए उसने उसे अपने पास सोने के लिए नहीं बुलाया। परन्तु कैसे आश्चर्य की बात! रात बीती, सवेरा हुआ, दिन चढ आया, दुपहर होगया, हेमलता अभी तक अपने कमरे से बाहर नहीं निकली। कमरे का दरवाजा बन्द है। जगन्नाथ की स्त्री सवेरे से अब तक कोई तीन दफे हेमलता को दरवाजा खोलने के लिये पुकार चुकी है। पर किसी दफे कोई उत्तर नहीं मिला। चौथी दफे आकर वह जोर से किवाड़ खटखटाने लगी, पर कोई उत्तर न पाया। अब वह मन ही मन

विविध आशंकाए करने लगी। कल शाम को हेमलता ने कुछ भोजन नहीं किया, शरीर अस्वस्थ बतलाती थी यह सोचकर जगन्नाथ की स्त्री ने अपने पुत्र यादवेन्द्र से यह हाल कहा। उन्होंने किवाड़ों को जजोर तोड़कर दरवाजा खोला। क्या भयानक दृश्य। क्या भीषण व्यापार। हेमलता का मृत शरीर सामने रस्सी में लटक रहा है। निर्मल-हृदया बालिका हेमलता ने फांसी लगा कर आत्महत्या कर ली है। प्रतिष्ठित घराने में यदि कोई स्त्री इस प्रकार आत्महत्या कर ले तो उसके घर-वाले आत्महत्या की बात को यथाशक्ति गुप्त रखने की चेष्टा करते हैं। हेमलता के घरवालों ने प्रगट किया कि अतीसार से उस की मृत्यु हो गई। इधर चटपट उसके मृत शरीर का दाह संस्कार कर डाला।

परन्तु ऐसी बाते कभी गुप्त नहीं रह सकतीं। हेमलता की आत्महत्या की चर्चा गाव में चारों ओर फैल गयी, और उसके साथ ही साथ छिदाम की स्त्री के सम्बन्ध में विविध प्रकार के अपवाद उड़ने लगे। सुबल मित्र अपनी स्त्री की मृत्यु के बाद भी ससुराल ही में बने रहे। जगन्नाथ विश्वास ने अपनी मृत भतीजी (सुबल की स्त्री) के आभूषणों की कीमत के तौर पर पचीस हजार रुपया नकद सुबल को देना चाहा, और इस बात की चेष्टा की कि वह हमारे यहा से चला जाय। परन्तु सुबल हर्गिज वहा से टलने को राजी न हुए। इधर जगन्नाथ के पुत्र यादवेन्द्र बाबू जब कभी सुबल से चले जाने के लिए कहते थे, तो छिदाम की स्त्री कन्या के शोक में रोना पीटना शुरू कर देती थीं। सुबल से कोई तनिक भी कुछ कहता, वह

तुरन्त ही, वे कन्या के शोक में वेकल हो उठती थीं।

एक दिन जगन्नाथ और यादवेन्द्र ने एकान्त में सुबल को बुलाकर कहा कि तुम यहां से नहीं जाओगे तो हम तुम्हें गरदनिया देकर घर से बाहर निकाल देंगे। परन्तु सुबल का जन्मस्थान बाखरगज ठहरा, यशोहर की पाठशाला में उन्होंने शिक्षा पाई थी। अतएव वे कोई ऐसे-वैसे आदमी नहीं थे। उन्होंने इसके जवाब में जगन्नाथ और यादवेन्द्र से कहा—"तुम लोग चौबिस घण्टे के भीतर इस घर से निकल जाओ। यह सारी सम्पत्ति मेरे ससुर की पैदा की हुई है। वे अपनी सारी जायदाद अपनी जिन्दगी ही में अपनी कन्या को दान कर गये हैं। उनका दानपत्र मेरे बक्स में रक्खा है। मेरी स्त्री की मृत्यु के बाद यह सब जायदाद और सम्पत्ति मेरे सिवाय और किस की हो सकती है?"

जगन्नाथ विश्वास सुबल की यह बात सुन कर डर के मारे कांपने लगे। आज के बाद फिर कभी उन्होंने सुबल से घर छोड़ जाने के लिए नहीं कहा। कुछ दिन इसी तरह बीते। सुबल मित्र बाखरगज के आदमी थे, यशोहर में उन का ननिहाल था। इसलिए चालबाजी में किसी से कम नहीं थे। जिस वक्त चाहते, एक जाली दानपत्र तैयार कर सकते थे। परन्तु सोचते यह थे कि यदि एक बार दो चार दिन के लिए भी इस घर को छोड़ कर कहीं गये तो फिर हमारा घुसना दुश्वार हो जायेगा। इसी कारण वे दानपत्र का संग्रह न कर सके। उसके लिए जरा दौड़धूप की जरूरत थी।

इधर छिदाम की स्त्री के चरित्र के सम्बन्ध में लोगों ने विविध प्रकार के अपवाद उड़ाने शुरू किये। जगन्नाथ विश्वास को यह चिन्ता लगी कि हमें जातिभ्रष्ट न होना पड़े

छिदाम की स्त्री को इस पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं होता था कि मेरे सम्बन्ध में गांव में तरह तरह की बदनामी फैल रही है। नित्यप्रति गंगा स्नान को जाने के अतिरिक्त, वे कभी घर से बाहर नहीं निकलती थीं। सो वहां भी पालकी पर चढ़ कर जाती थीं। अतएव यह जानने का मौका ही उन्हें नहीं मिलता था कि गांव में हमारे सम्बन्ध में कौन क्या कह रहा है। टोला-मुहल्ला की जो स्त्रियां उनके पास आती जाती थीं, वे सभी उनसे खुशामद का बर्ताव रखती थीं, उन्हें खुश करने की चेष्टा में लीन रहती थीं। वे कभी किसी को कोई कपड़ा दे देती थीं, कभी किसी को दो चार पैसे दे डालती थीं। निदान उनके पास से कोई स्त्री खाली हाथ घर को नहीं लौटती थी। इसलिए आने जाने वाली सभी स्त्रियां मुंह पर उनकी खूब तारीफ किया करती थीं।

कोई-कोई कहतीं — "छोटी मालकिन, आप तो साक्षात् अन्नपूर्णा हैं। आपकी बदौलत हम कितने ही गरीबों का पालन हो रहा है।"

कोई कोई कहतीं — "देश के सब लोग आप को धन्य-धन्य कह रहे हैं। इस देश में भला आप जैसी सती साध्वी, पुण्यवती स्त्रियां कितनी हैं?" मुहल्ले की नाइन कहती — "श्रीमती, रात-दिन कितनी ही विधवाओं की बदनामियां सुना करती हूं। परन्तु आप जब से विधवा हुई, चन्द्र-सूर्य ने भी आपका मुंह नहीं देख पाया।"

इन स्त्रियों की जबानी अपनी ऐसी प्रशंसा सुन छिदाम की स्त्री बहुधा कहा करती थीं — "स्वामी की मृत्यु हो गई, उनके बाद मेरे एक-मात्र इकलौती कन्या

वह भी चल बसी। अब एक मात्र भगवान् ही के श्री-चरण मेरी गति हैं।"

इस संसार में आत्माभिमानिनी दुश्चरित्रा स्त्रियां प्राय नितान्त निर्बोध देखी जाती हैं। छिदाम की स्त्री इन स्त्रियों की बातें सुन कर वास्तव में यही समझती थी कि देश के सब लोग मुझे सती-साध्वी और पुण्यवती समझते हैं। वह इन स्त्रियों की बातों पर पूरा विश्वास करती थी।

पुरोहित महाशय जब-तब आकर छिदाम की स्त्री को चण्डी का पाठ सुनाया करते थे। पूर्व में बगाल की स्त्रिया चण्डी श्रवण को एक व्रत के तौर पर मानती थीं। पुरोहित महाशय अधिक अर्थ-लाभ की आशा में जल्दी-जल्दी चण्डीपाठ समाप्त करके छिदाम की स्त्री को प्रशसा के पुल बाधने लगते थे। कहते थे—"मा लक्ष्मी! प्रात काल को आपका नाम लेने से दरिद्र को भी अन्न मिलता है।"

चण्डी-पाठ के समय छिदाम की स्त्री कुछ निरपेक्ष सी बैठी रहती थीं। चण्डी का एक शब्द भी उनकी समझ में नहीं आता था, बल्कि वे शब्द उनके कानों मे भी प्रवेश नहीं करते थे। परन्तु पुरोहित महाशय जब उनकी प्रशसा आरम्भ करते, तब उनके कानों में अविराम अमृत का मेंह बरसता था।

छिदाम की मृत्यु के बाद कोई सात आठ महीने इसी तरह बीत गये। एक दिन जगन्नाथ विश्वास की स्त्री ने एकान्त मे अपने पति से कहा—"तुम्हारी भौजाई का हाल अच्छा नहीं है। जहा तक हो सके, शीघ्र ही कोई उपाय करो। नहीं तो जात-पांत और इज्जत-आबरू सब से हाथ धोना पडेगा।"

जगन्नाथ ने कहा—"मुझे इस का कोई उपाय सुझाई नहीं देता।" जगन्नाथ की अपेक्षा उनकी स्त्री अधिक होशियार थी। उसने कहा—"गुरु जी को बुलाकर यदि शीघ्र ही इन्हे उनके साथ वृन्दावन या काशी को नहीं भेज दोगे तो एकदम सर्वनाश हो जायगा। गांव-बस्ती में मुह दिखाने योग्य नहीं रहोगे। चारो ओर बदनामी फैल रही है। सब इसकी चर्चा कर रहे हैं।"

जगन्नाथ कुछ नाराज होकर बोले—"घर की ये सब गोपनीय बाते बाहर प्रकट कौन करता है?" उनकी स्त्री ने कहा—"ये बाते कहीं गुप्त रह सकती हैं। विशेषत. ये श्यामा की मा, रूपा की मा, नाइन, कहारिन इत्यादि हर रोज हमारे यहा आती जाती हैं। तुम्हारी भौजाई के पास बैठ कर विविध वार्त्तालाप किया करती हैं। मुह पर तो इनकी प्रशसा करती हैं, परन्तु पीठ पीछे घर-घर निन्दा करती हैं। एक घर की बात दूसरे घर में कहना यही इनका काम है।"

उन दिनों बगाल में बगवासी इत्यादि बगला समाचारपत्र नहीं थे। परन्तु समाचार पत्रों के न रहते हुए भी, गांव के लोग स्थानीय समाचारों को क़तई न जान सकते हों यह मानने के लिए हम तयार नहीं। उस वक्त रामा की मा, श्यामा की मा, मोहिनी की मा, नाइन, कहारिन इत्यादि देश हितैषिणी स्त्रिया स्थानीय समाचारों को अपने अपने मुख से घर-घर में प्रचारित कर के आज के बंगवासी आदि समाचार पत्रों का अभाव दूर किये रहती थीं।

स्त्री के मुह से ये सब बातें सुन कर जगन्नाथ को

बड़ी चिन्ता हुई। जगन्नाथ बेचारे निम्न श्रेणी के शूद्र थे। अभी दस बरस भी नहीं हुए कि वे शूद्र से कायस्थ बने हैं। दिन रात इसी की चिन्ता में लीन रहते थे, दिन-रात इसी पर लक्ष्य रखते थे कि किस प्रकार प्रतिष्ठित समाज में सम्मान प्राप्त करें, किस प्रकार कुलीन कायस्थों के यहा रोटी-बेटी का व्यवहार करें। यही उनके जीवन का एक मात्र उद्देश था। गाव के अन्यान्य शूद्र एकाएक उन्हें कायस्थों के समाज में सम्मिलित होते देख कर, उनसे बहुत जलते थे और सदा ही उन्हें विद्वेष की दृष्टि से देखा करते थे। अतएव इस सोच में जगन्नाथ को रात भर नींद नहीं आई कि ये लोग जब मेरे घर की कोई बदनामी सुनेंगे तो बड़े आनन्द के साथ चारों ओर उसकी घोषणा कर देंगे।

सवेरे उठते ही उन्होंने अपने गुरु जी को बुलवाने के लिए काटोया को एक आदमी भेजा। काटोया के बाबा प्रमानन्द उनके गुरु थे। इधर छिदाम की स्त्री को बहुत कुछ समझाने-बुझाने लगे — "भौजाई, तुम अब तीर्थ-वत्त करो, धर्म कर्म में मन लगाओ। श्री वृन्दावन जाकर धर्मानुष्ठान में लीन होजाओ। श्री वृन्दावन धाम से निश्चय ही तुम्हें स्वर्ग लाभ होगा।"

छिदाम की स्त्री इस रियासत-जायदाद, धन-माल महल-मकान को छोड़ कर तीर्थ-गमन के लिए राजी न हुई। परन्तु बाद में जब जगन्नाथ के पुत्र यादवेन्द्र बाबू ने उसे बहुत कुछ डराया धमकाया और जबरदस्ती वृन्दावन भेज देने की धमकी दी, तब अनन्योपाय हो छिदाम की स्त्री को वृन्दावन जाने के लिए बाध्य होना पड़ा। कुछ ही समय

में गांव भर में यह खबर फैल गई कि छिदाम विश्वास की विधवा स्त्री अपनी सब जायदाद और घर-बार छोड़ छाड़ कर श्री वृन्दावन-वास के लिए जाने वाली हैं।

रामा की मा, श्यामा की मा, रूपा की मा, नाइन, कहारिन इत्यादि छिदाम की स्त्री के पास आई और रोते रोते कहने लगीं — "आहा! मा लक्ष्मी! तुम्हारे चले जाने से इस देश मे अन्धकार छा जावेगा। इन सैकड़ों गरीब कंगालों की बात कौन बूझेगा? तुम साक्षात अन्नपूर्णा ही थीं।"

छिदाम की स्त्री ने कहा — "इस संसार में अब मेरे लिए कोई सुख नहीं। पति ही स्त्री का सुख है, पति ही स्त्री का धर्म है — पति ही स्त्री का स्वर्ग है। वे इतना रुपया पैदा करके रख गये, परन्तु आज की घड़ी तक गया में उनकी पिण्ड-क्रिया नहीं हुई। अप-मृत्यु से मरने पर, सुना है, जब तक गया में मृतक की पिण्ड-क्रिया नहीं होती, तब तक उसकी मुक्ति नहीं होती। इस वक्त एक मात्र इसी की चेष्टा करना मेरा प्रधान कर्त्तव्य है कि जिससे उन्हें मुक्ति प्राप्त हो और परलोक में वे सुख से रहें। मैं अपनी सारी जायदाद अपने जेठ और भतीजे के नाम लिख कर दो ही चार दिन के भीतर यहां से चली जाऊंगी।"

छिदाम की सारी जायदाद उनकी स्त्री के नाम थी। जगन्नाथ इससे पहिले ही मन में निश्चय कर चुके थे कि सब जायदाद की लिखा पढ़ी अपने नाम करा लेंगे। परन्तु उस समय इस देश में वकील, आटर्नी आदि नहीं थे। अतएव जगन्नाथ अपने गांव के प्रधान मसविदा-लेखक

रामगति मुंशी को बुला लाये। रामगति घोष को लोग रामगति मुंशी कहा करते थे। उस जमाने में जो कोई भी फारसी जानता था, उसे लोग मुंशी कहा करते थे। परन्तु रामगति स्वयम फारसी नहीं जानते थे, बल्कि उनके पितामह किशोरनारायण घोष दस बारह दिन एक मौलवी के पास फारसी पढ़े थे। इसी कारण किशोरनारायण घोष के पुत्र-पौत्र सभी मुंशी कहलाये। इनके सिवाय रामगति की जबान से फार्सी के दो एक जुमले भी कभी-कभी सुने जाते थे। किसी के यहां निमन्त्रण हो अथवा कोई सभा हो तो उसके प्रारम्भ में रामगति "बिच मोल्ला अर रहेमानर रहीम"— इत्यादि दो चार फारसी लफ्ज बोल दिया करते थे। अतएव रामगति के मुंशीपने में कोई कसर नहीं थी।

जगन्नाथ ने रामगति मुंशी से कहा—"मुंशी जी! सैकड़ों आदमियों के दस्तावेजात का मसविदा आप तैयार करते हैं। जब तक आपके हाथ का मसविदा न होगा, मेरे मन का सन्देह दूर नहीं हो सकता। कृपा करके मेरी छोटी भावज के त्यागपत्र का मसविदा बना दीजिये।"

रामगति मुंशी कबल पट्टा, कबूलियत, किबाला, दान-पत्र इत्यादि कागजों का मसविदा ही नहीं करते थे, बल्कि बंगला भाषा में वे अनेकानेक भजनों की रचना भी किया करते थे। यहां तक कि उनके लिखे हुए पट्टा, कबूलियत में भी कभी कभी उनके स्वरचित भजनों की कोई कोई कड़ी आ जाती थी। निदान रामगति मुंशी ने चश्मा नाक पर रक्खा और क़लम की परीक्षा करने के लिए एक रद्दी कागज के टुकड़े पर दो दफे 'दुर्गानाम' लिखा। बाद में एक लम्बा चौड़ा मसविदा तैयार करके पढ़ने लगे। इस

रामगति मुंशी के इस पूरे मसविदे को यहां पर उद्धृत करने में असमर्थ हैं, पाठकगण इसके लिए हमें क्षमा करें। मसविदा बहुत बड़ा है। पूरा उद्धृत करने के लिए बहुत स्थान चाहिए। तथापि उस समय इस देश में जिस ढंग से दस्तावेजात लिखे जाते थे, उस ढंग का नमूना दिखाने के लिए उक्त मसविदे के कुछ अंशों को हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"लिखित श्री स्वर्णलता उर्फ वदनमणि जौजा मृत छिदाम चन्द्र विश्वास साकिन सैदाबाद × × × कस्य त्यागपत्र मिद, आगे यह कि मेरे परलोकगत स्वामी मजकूर की सारी स्थावर तथा अस्थावर सम्पत्ति आज तक मेरे दखल में थी। चूंकि इस असार संसार में एक मात्र श्री गोविन्द भगवान के चरण ही मनुष्य के लिए सार हैं, और इस नाशवान् शरीर का किस समय अन्त हो जाय, इसका कोई ठौर ठिकाना नहीं है इसलिए मैंने सांसारिक धर्म को छोड तीर्थ वास का सकल्प कर के श्री श्री वृन्दावन धाम को चले जाने का निश्चय किया है। मैं पति पुत्रीहीना लावारिस स्त्री हू, तुम्हीं (जगन्नाथ और यादवेन्द्र) मेरे ससुर के एकमात्र पिण्डाधिकारी और मेरे स्वामी मजकूर के उत्तरकालीन वारिस हो। अतएव स्वामी मजकूर की छोड़ी हुई सारी स्थावर और अस्थार सम्पत्ति — धन माल रियासत, जायदाद, तालुका, जिमींदारी — के ऊपर मेरा जो जीवन-स्वत्व है, वह मैं तुम्हारे लिए छोड़ती हू। मेरे नाम की जगह तुम लोग, श्री श्रीयुक्त मन्सूरुल्मुल्क हैरत जंग जहानी सिकंदर शाहकुली मुल्के बंगाल सूबेदार नवाब नाजिमउद्दौला बहादुर की सरकार में अपना नाम जारी

करवाओ। परम्परा क्रम से यह सारी जायदाद तुम्हारे दखल और क़ब्ज़े में रहे, तुम्हारे पुत्र पौत्रादि सन्तान इसका भोग करें ।"

उपर्युक्त त्यागपत्र की लिखा पढ़ी हो जाने के दो ही चार रोज बाद विश्वास परिवार के गुरु बाबा प्रेमानन्द जी आ उपस्थित हुए। छिदाम की स्त्री की इन्होंने बड़ी प्रशंसा की। बारम्बार उससे कहने लगे—"मां! तुमने बड़े अच्छे मार्ग का अवलम्बन किया है। तुम जैसे उच्च वंश की कन्या थीं, और जैसे उच्च कुल की वधू थीं, उसे देखते हुए मैं पहिले ही यह समझ चुका था कि एक न एक दिन श्रीगोविन्द भगवान के चरणों में तुम्हारा चित्त रमेगा। इस असार संसार में प्रभु के चरण ही एक मात्र सार हैं। श्री गोविन्द के चरणों के अतिरिक्त सभी कुछ निस्सार है। तुम्हारे लिए अब यही उचित है कि साधु-महात्माओं का सत्सग करो, भक्तिकथायें सुनो और नामामृत-पान में प्रमत्त रहो। लो बस, अब तुम यही भेष ग्रहण करलो। भेष लेकर मेरे साथ चलो। कुछ दिन मेरे आश्रम में रह कर सत्सग का सौभाग्य प्राप्त करना। बाद में बैसाख के महीने मे मैं तुम्हें साथ लेकर श्री श्री वृन्दावन धाम को प्रस्थान करूंगा।"

छिदाम की स्त्री ने मूड़ मुड़ा कर भेष ग्रहण किया। वैष्णव धर्म की दीक्षा देते समय बाबाजी सोचने लगे, इनका नाम क्या रक्खें। छिदाम विश्वास एक प्रतापी आदमी थे। दैत्यराज रावण जैसा उनका प्रताप था। बल्कि उन्हें कलियुग का रावण ही कह दिया जाय तो कोई विशेष अत्युक्ति नहीं। अतएव बाबाजी ने सोचा

कि भला, जब इतने बड़े आदमी की स्त्री ने भेष धारण किया है तब उसे किसी लटे-मोटे नाम से अभिहित करना उचित नहीं। दो घंटे की सोचा विचारी के बाद बाबा प्रेमानद ने छिदाम की स्त्री को "ब्रजेश्वरी राय किशोरी"—इस लम्बे चौड़े नाम से विभूषित किया। बाबाजी ने सोचा कि ये जिस अखाड़े में रहेंगी, उस अखाड़े की अन्यान्य वैष्णवियो के ऊपर अवश्य ही इन का सिक्का जमा रहेगा। इनके पास बहुत सा रुपया है। रोज भण्डारा किया करेगी। अतएव इनकी प्रधानता के चिह्न-स्वरूप इनका नाम जरा बढ़ा-चढ़ाकर न रखा जाय तो सर्वथा अनुचित होगा।

इस प्रकार जब छिदाम की स्त्री वैष्णव धर्म में दीक्षित हो चुकी तो उसके दामाद सुबल मित्र बाबा प्रेमानद के पास आकर बोले—"गुरुदेव! मुझे भी अब इस असार ससार में रहने की इच्छा नहीं है। बाल्यावस्था में ही माता पिता की मृत्यु होगई थी। बाद में मेरे ससुर, जो मेरे लिए पिता ही के समान थे, वे भी चल बसे। अब जो कुछ हैं सो मेरी सास ही हैं। सतान की भाति ये मुझ पर स्नेह रखती हैं। अतएव, ये जब भेष धारण कर तीर्थवास को जा रही हैं, तो मैं भी भेष धारण कर इन्हीं के साथ रहूगा। ये बड़े घर की स्त्री हैं, किसी प्रकार की तकलीफ इन से सहन नहीं होती। तीर्थ-भ्रमण के समय रास्ते में तरह-तरह की तकलीफे होती हैं। मैं साथ रहूगा तो इनकी सेवा शुश्रूषा होती रहेगी।"

बाबा प्रेमानद की इच्छा कतई नहीं थी कि सुबल को वैष्णव धर्म में दीक्षित करें। उन्होंने बारम्बार सुबल को मना करते हुए कहा—बेटा 'तुम्हारी अवस्था

अभी थोड़ी है, दूसरा विवाह करके तुम गृहस्थ धर्म का अवलम्बन करो।"

परन्तु सुबल अपने साधु संकल्प से रत्ती भर भी विचलित नहीं हुए। अंतत बाबा प्रेमानद ने सुबलचद्र मित्र को भेष प्रदान किया और उनका नाम रखा भक्तानद।

इसके दूसरे दिन बाबा प्रेमानद ने ब्रजेश्वरी राय किशोरी और भक्तानद को साथ ले अपने आश्रम की यात्रा की। दो-तीन दिन बाद ये लोग काटोया के अखाड़े में आ पहुचे।

अन्यान्य वैष्णवी अखाड़ो की तरह इस अखाड़े में भी कितनी ही छोटी-छोटी कुटिया थी। एक-एक कुटी में एक एक वैष्णव अपनी सेवादासी के सहित रहता था। जिन उच्च श्रेणी के बाबाओं के पास एक से अधिक सेवादासिया थीं, उनकी कोई निज की एक कुटी नहीं थी, बल्कि उनकी सेवादासियो में से प्रत्येक सेवादासी की एक-एक स्वतन्त्र कुटी थी। बाबाजी कभी इसकी कुटी में और कभी उसकी कुटी में रहा करते थे।

बाबाजी प्रेमानद अखाड़े के अधिकारी थे। जैसे ही वे अखाड़े में पहुचे, वहा के अन्यान्य वैष्णवो और वैष्णवियो ने आ-आकर उनके चरणों मे प्रणाम किया। बाबा जी ने सादर और सस्नेह सब से कुशल प्रश्न पूछा। बाद में ब्रजेश्वरी राय किशोरी और भक्तानद के वैराग्य धर्म ग्रहण का आद्योपात सारा वृत्तात इन लोगो को कह सुनाया। आश्रम में रहनेवाली वैष्णवी स्त्रिया ब्रजेश्वरी राय किशोरी का हाथ पकड कर बड़े आदर-पूर्वक उन्हें अधिकारी

बाबा की कुटी में लिवा ले गई। बाबा प्रेमानन्द ने अपनी प्रधान सेवादासी को सम्बोधन करके कहा—"प्रेमेश्वरी ! तुम और वृन्देश्वरी विशेष आदर के सहित बृजेश्वरी रायकिशोरी की शुश्रूषा करो। ये कोई सामान्य वैष्णवी नहीं हैं। हृदय में विशेष धर्मानुराग और भक्तिभाव न रहने की दशा में कोई व्यक्ति इतनी अधिक सम्पत्ति, जायदाद, माल-असबाब और महल-मकान को छोड़ तीर्थ पर्यटन का कष्ट सहने के लिए तैयार नहीं हो सकता। ये मेरे शिष्य अद्वितीय प्रतापशाली बाबू छिदामचन्द्र विश्वास की पत्नी हैं। केवल साधु सं[ग] का लाभ लेने के लिए ही ये हमारे अखाड़े में आई हैं। मेरे निज के कुटीर में इनके रहने का प्रबन्ध करो।" प्रे[मे]श्वरी अच्छी तरह जानती थी कि गुरु के वचनों का प्रति[]पालन करना ही पड़ेगा। इस लिए किसी प्रकार का हील[ा] हवाला न करके कहने लगी, "जो आज्ञा महाराज" पर[न्तु] यह कहते वक्त उसने एक गहरी सांस ली थी, और उ[स] के मुख पर विमर्षता का भाव दिखाई दिया था।

भक्तानन्द नामधारी सुबल मित्र ने अखाड़े में पहु[ँच]ते ही अपना हुक्का निकाला। चिलम में तमाखू र[खी] और कोई पन्द्रह मिनट तक हुक्के में दम लगाई। इत[नी] देर में एक चिलम तमाखू भस्मीभूत हो गई। दूसरी चिल[म] तैयार की। बेचारे बहुत दूर से पैदल चले आ रहे थे, एक चिलम-तमाखू से थकावट दूर नहीं हो सकती थी। सुबल जिस वक्त दूसरी चिलम भर कर हुक्के में [दम] लगाने लगे थे, उसी वक्त बाबा प्रेमानन्द ने प्रेमेश्वरी [से] कहा था कि 'मेरे निज के कुटीर में ब्रजेश्वरी राय किशो[री] के रहने का प्रबंध करो।' सुबल जरा दूर बैठे थे, पर बा[बा]

जो की बातें उनके कानों में पहुच गईं । हुक्का हाथ में थाम कर फौरन वहा से उठ खडे हुए, और बाबा प्रेमानद के पास आकर बोले — " गुरुदेव ! हमलोगों के लिए तो एक स्वतन्त्र कुटीर की जरूरत है । आप के अखाडे में काफी कुटीर न हों तो मैं आज ही मजदूरों को लाकर एक नई कुटीर का बन्दोबस्त कर लूँगा । ये बडे घर की स्त्री हैं, दूसरे के घर मे इन से नहीं रहा जायगा ।"

बाबा प्रेमानद ने कहा— " अच्छा, धीरे धीरे स्वतत्र कुटीर भी तय्यार हो जायगी । फ़िलहाल ये मेरी कुटीर मे रह सकती हैं । इन्हें कोई तकलीफ न होने पावे, इस पर विशेष लक्ष्य रक्खा जावेगा ।"

भक्तानन्द— " नहीं महाराज, कुटीर तो मुझे आज ही तय्यार करानी पडेगी । खड़-फूस के ऐसे छोटे-छोटे छप्पर तो एक दिन में चार पांच तक तय्यार कराये जा सकते हैं । न होगा, दस रुपये ज्यादा खर्च हो जायंगे । बात ही कौन सी ।"

बाबा प्रेमानद ने फिर कोई आपत्ति नहीं की । भक्तानन्द इस तरह के कामों मे बहुत होशियार थे । मजदूरों को जुटा कर उन्होंने उसी दिन कुटीर तय्यार करवा ली । ब्रजेश्वरी राय किशोरी इस प्रकार बाबा प्रेमानन्द के अखाडे में रहने लगीं ।

भक्तानन्द को बचपन ही से गाजा पीने की लत थी । अखाडे में उन्हे दिन भर बेकार बैठा रहना पडता था, इसलिए गाजा की मात्रा कुछ विशेष बढने लगी । रुपये पैसे की कमी थी नहीं । छिदाम की स्त्री घर से

चलते वक्त कोई पचास-साठ हजार रुपया नकद और अपने तथा अपनी कन्या के सारे आभूषण अपने साथ लाई थी। यह सब रुपया और गहना-पाता सुबल ही के पास था। ब्रजेश्वरी राय किशोरी की तरफ से अखाड़े में रोज भण्डारे होने लगे। इधर भक्तानन्द की तरफ से प्रतिदिन गांजे का भण्डारा होने लगा। केवल इसी अखाड़े के नहीं, बल्कि आस पास के अन्यान्य दो चार अखाड़ों के सैकड़ो वैरागी गाँजा पीना सीख गये। जो वैरागिनी स्त्रियाँ पहिले सिर्फ तमाखू पीती थी, भक्तानन्द की बदौलत अब वे भी दिन में तीन चार दफे गाँजे का दम उड़ाने लगी।

बाबा प्रेमानन्द थोड़ी बहुत संस्कृत जानते थे। प्राय प्रतिदिन वह ब्रजेश्वरी राय किशोरी के पास बैठकर उन से श्रीमद्भागवत तथा चैतन्यचरितामृत आदि धर्म-ग्रंथों को सुनने का अनुरोध किया करते थे। परंतु भक्तानन्द अपनी सास को बहुधा बाबाजी के पास नहीं जाने देते थे। वे कहते थे— "हम लोग श्रीमद्भागवत को सुन कर क्या करें? सात काण्ड श्रीमद्भागवत हमें जबानी याद है। हमारे ससुर के यहा पण्डित लोग हर साल श्रीमद्भागवत का पाठ किया करते थे। हजारो आदमी हमारे घर श्रीमद्भागवत सुनने आते थे। सो अब क्या हम किसी दूसरे के निकट श्रीमद्भागवत सुनने जायँ?"

अधिकारी महाशय, भक्तानंद के ऐसे आचरण को वैष्णवोचित नहीं समझते थे। मन ही मन वे भक्तानंद के प्रति बहुत ही द्वेष रखने लगे। कभी-कभी तो वे स्पष्ट शब्दो में कह बैठते थे कि यदि भक्तानन्द यहा से नहीं

चले जायँगे तो ब्रजेश्वरी राय किशोरी को धर्म-लाभ का सौभाग्य न प्राप्त होगा। इधर भक्तानन्द के हृदय में भी बाबाजी के प्रति तीव्र विद्वेषानल प्रज्वलित होने लगी। ब्रजेश्वरी राय किशोरी खुद भी बाबा प्रेमानन्द के पास बैठकर श्रीमद्भागवत या चैतन्यचरितामृत सुनने में कोई रुचि नहीं रखती थीं। बात यह थी, बाबा जी के दांत प्राय सब हिल चुके थे। मुंह धोते समय, पीड़ा के मारे, दांतों को अच्छी तरह साफ़ नहीं कर पाते थे। इस कारण उनके मुंह से बड़ी दुर्गन्ध निकलती रहती थी, और श्रीमद्भागवत अथवा चैतन्यचरितामृत का पाठ करते वक्त उनके मुख से श्रोताओं के शरीर पर लगातार सुधामृत की वर्षा होती थी। ब्रजेश्वरी राय किशोरी को पहिले ही से, ज़रा सफाई से रहना पसन्द था। इस लिए बाबा जी के पास बैठने में उन्हें बड़ी अरुचि होती थी।

एक दिन दोपहर के बाद बाबा भक्तानन्द निकटस्थ बाज़ार में गांजा खरीदने के लिए गए हुए थे। आज कल उनके यहां कोई सेर डेढ सेर गांजा रोज़ खर्च होता था। इस अखाड़े के सात-आठ वैरागी और तीन चार वैरागिनियां बहुत अधिक गांजा पीने लगी थीं। पास पड़ोस के अन्यान्य अखाड़ों से भी अनेकों वैरागी भक्तानद के यहां गांजा पीने आया करते थे। एक दिन भक्तानद ने सोचा कि हर रोज़ बाज़ार जा कर गाँजा खरीदने में दिक़्क़त ज़्यादा पड़ती है, इसलिए आज एकदम बीस सेर गाँजा खरीद लावें तो कम से कम पन्द्रह दिन चलेगा। यह सोच कर, भक्तानन्द, अन्य दो वैरा-

गियों को साथ ले बाजार से गांजा खरीदने गये। बीस सेर गांजा एक दूकान पर मिला नहीं। बाजार में जितनी गांजे की दूकानें थीं, उन सब दूकानों पर घूम घाम कर कोई सोलह सेर गांजा इकट्ठा कर पाया। बाजार में एक पैसे का गांजा भी बाकी नहीं रह गया। पास पड़ोस के गाओं के अन्यान्य गांजा-खोर बेचारे बड़ी मुसीबत में फसे, क्योंकि एक हफ्ते से पहिले गांजे का नया चालान आने की आशा न थी। अस्तु। इस प्रकार सोलह सेर गांजा, इकट्ठा करने मे रात कुछ अधिक हो गई। भक्तानन्द को पहिले थोडी बहुत शराब पीने की आदत भी थी। परन्तु इधर उन्होंने बहुत दिनों से नहीं पी थी। आज सोलह सेर गांजा इकट्ठा कर के उनका मन बहुत ही प्रफुल्लित हुआ। हर्ष के आवेग मे यह भूल गये कि हम वैराग्य धर्म का अवलम्बन कर चुके हैं। अतएव बाजार से लौटते वक्त भक्तानन्द ने थोडी सी शराब भी चढा ली। बाद में बड़ी हंसी खुशी के साथ सोलह सेर गांजा लेकर अखाडे मे आये। अपनी कुटीर के भीतर घुस कर देखा कि ब्रजेश्वरी रायकिशोरी वहा नहीं हैं, बाबा प्रेमानन्द के पास बैठी चैतन्यचरितामृत सुन रही हैं। अकस्मात् भक्तानन्द के हृदय में न जाने कौन से भाव का उदय हुआ, आगबबूला होकर वे बाबा प्रेमानन्द के कुटीर मे घुस गये। और बडे जोर-जोर से उनके मुह पर तमाँचे जमाने लगे। बाबा जी के तीन चार दांत गिर पडे। बाद में चोटी पकडकर बाबा जी को घसीटते-घसीटते कुटीर के बाहर निकाल लाये, और खुले मैदान में लगातार उन्हें लात घूँसों से पीटने लगे। प्रेमेश्वरी और वृन्देश्वरी भी बाबाजी

के पास बैठी थीं। चिल्लाकर भाग खड़ी हुई। उनके चीत्कार का शब्द सुनकर अन्यान्य वैरागी वहां आ पहुचे, और भक्तानन्द से कहने लगे—"ठहरो, ठहरो, धीरज धरो, धीरज धरो।"

ये वैरागी लोग इतने ज्यादा डरपोक थे कि इनमें से किसी ने आगे बढ़कर भक्तानन्द को पकड़ने का साहस न किया। भक्तानन्द ने मारते-मारते प्रेमानन्द को अधमरा कर डाला, बाद में व्रजेश्वरी राय किशोरी का हाथ पकड़ कर अपनी कुटीर में लिवा ले गये।

इधर प्रेमेश्वरी और वृन्देश्वरी के चीत्कार का शब्द सुन कर पास-पड़ोस के अन्यान्य अखाड़ों के वैरागी तथा गावों के गृहस्थ वहां दौड़े आये। सब लोग पूछने लगे—"क्या हुआ, क्या हुआ?" बावा प्रेमानन्द अभी तक बेहोश पड़े थे। पिछले परिच्छेद में हम जिन बाबा गुरु गोविंद का जिक्र कर चुके हैं, वे भी आज कल इसी अखाड़े में थे। इस वक्त वे बावा प्रेमानन्द के ऊपर पंखा हाक रहे है। ये बड़े चालाक आदमी थे, इन्होंने सोचा कि यदि यह रहस्य प्रकट हो जायगा तो बड़ी बदनामी होगी। इसलिए बड़ी होशियारी के साथ इन्होने चटपट बात बना ली और कहने लगे—"चैतन्यचरितामृत का पाठ करते-करते गुरुदेव के हृदय में भक्ति स्रोत बड़े प्रवल वेग से प्रवाहित होने लगा, इसी कारण भक्ति-रस में प्रमत्त होकर अचैतन्य होगये हैं। ये स्त्रिया हैं, इस रहस्य को कुछ समझ न सकीं इसलिए एकाएक चिल्ला उठीं।"

यह बात सुनकर सब किसी को निश्चय होगया—बावा प्रेमानन्द सच्चे भक्त हैं, उनकी प्रशंसा करते-करते सब अपने

अपने स्थान को लौट गये।

बहुत देर के बाद बावा प्रेमानन्द होश में आये। इसके दूसरे दिन उन्होंने गुरु गोविन्द के साथ मिलकर इस सम्बन्ध में परामर्श किया कि भक्तानन्द से कैसे पिण्ड छुड़ाऊं।

गुरु गोविन्द ने कहा कि इस वक्त भक्तानन्द को अखाड़े से निकालने की चेष्टा करने पर बहुत गड़बड़ मचने की सम्भावना है। इस लिए चलो हम लोग कुछ दिनों को तीर्थ पर्यटन के लिए निकल चलें। भक्तानन्द इतना अधिक खर्च कर रहा है कि उसके हाथ में बहुत दिन पैसा नहीं टिकेगा। खाली हाथ हो जाने पर वह अपने आप ही चला जायगा।

बाबा प्रेमानन्द ने गुरुगोविन्द की राय को मान लिया। शीघ्र ही उन्होंने गुरु गोविन्द और कुञ्जेश्वरी तथा अपनी दोनों सेवादासियों—प्रेमेश्वरी और वृन्देश्वरी—को साथ ले श्रीक्षेत्र की यात्रा की।

इनके चले जाने के बाद इस अखाड़े के गांजाखोर वैष्णव भक्तानन्द के साथ मिल कर चैन की बंसी बजाने लगे। भक्तानन्द के पास बहुत रुपया था। उनकी खास ब्रजेश्वरी राय किशोरी हर महीने भंडारा करके बहुत रुपया खर्च करती थीं। इधर भक्तानन्द के यहां हर रोज दो सेर गांजा फुकता था। आज कल बाबा भक्तानन्द ही अखाड़े के अधिकारी बन रहे थे। अन्यान्य वैष्णव यद्यपि उन्हें अपना गुरु मानने के लिए तैयार नहीं थे, तथापि अधिकांश उनकी अधीनता स्वीकार करते थे। अखाड़े के वैष्णव और वैष्णवियों में से कोई बाहर भिक्षा मांगने नहीं जाता था। सब का खर्च भक्तानन्द चला रहे थे। समस्त वैरागी अखाड़े में बैठे-बैठे दिन-रात गांजे की दम में मस्त रहते थे।

इस अखाड़े के पास ही बाबा अद्वैतानन्द का अखाड़ा था, यहा के एकअल्पवयस्क वैरागी, बाबा ललितानन्द कभी-कभी भक्तानन्द के यहाँ गांजा पीने आया करते थे। एक दिन उन्होंने भक्तानन्द से कहा—"महात्मा भक्तानन्द! अन्यान्य अखाड़ों के वैष्णव तुम्हारे अखाडे के वैष्णवों की बड़ी निन्दा करते हैं। हमारा ख्याल है, भविष्य में तुम्हारे अखाडे के भंडारे में एक भी वैरागी नहीं शामिल होगा। तुमने वैष्णवों का आचार विचार एक दम छोड रक्खा है। बाबा प्रेमानन्द जब से तीर्थ-पर्यटन को गये हैं, तब से आज तक किसी दिन तुम्हारे अखाडे में भक्तिकथाओं की चर्चा नहीं हुई। एक दफे भी तुमने श्रीमद्भागवत अथवा चैतन्य-चरितामृत का पाठ नहीं कराया। नामसंकीर्तन तथा नामामृत पान में तुम्हारी तनिक भी रुचि नहीं है।"

भक्तानन्द इस वक्त हुक्का हाथ में लिए गाजे में दम लगा रहे थे। इस लिए बात करने की फुर्सत न थी। यदि ऐसा न होता तो ललितानन्द को इतनी बातें करने का मौका ही न मिलता। ललितानन्द की बातों के समाप्त होते ही भक्तानन्द ने हुक्का उनके मुह के पास रक्खा और कहने लगे—"अरे ले, नामामृत-पान पीछे करना, इस वक्त इस गांजा-अमृत में एक दम लगा ले। इस अमृत के सामने और कोई अमृत अच्छा नही लगता।"

ललितानन्द गांजे की चिलम में दम लगाने लगे। डट कर पी चुकने के बाद बोले—"भाई, तुम्हारे अखाडे में श्रीमद्भागवत अथवा चैतन्यचरितामृत की पोथी न हो तो और किसी अखाड़े से मांग लाओ। प्रत्येक वैष्णव को

दिन मे एक बार श्रीमद्भागवत के दो-चार श्लोकों का पाठ करना उचित है।"

भक्तानन्द ने कहा — श्रीमद्भागवत को मांग लाने की क्या जरूरत, सातो काण्ड श्रीमद्भागवत मुझे जबानी याद है। मेरे ससुर मुझे शास्त्र की शिक्षा दिलाने के लिए हरिदास तर्क पचानन को दो-सौ रुपया महीना देते थे। मैं क्या शास्त्र का कुछ थोड़ा ज्ञान रखता हू ? परन्तु हरिदास तर्क पचानन ऐसा पाजी कि उसने व्यर्थ ही मेरे ऊपर सन्देह करके अपनी विधवा कन्या को विष देकर मार डाला।

ललितानन्द — अच्छा तो जब श्रीमद्भागवत के सारे श्लोक तुम्हें जबानी याद हैं तो सब लोगों को इकट्ठा करके रोज सवेरे सन्ध्या को दो चार श्लोक क्यों नहीं कहा करते ?

भक्तानन्द — अरे बेटा मूर्ख वैरागी ! श्रीमद्भागवत में श्लोक कहा से आये ? मेरे ससुर के यहा साल में तीन दफे श्रीमद्भागवत के सातों काण्डों का पाठ होता था। पाठ करने वाले पण्डित लोग रागरागिणी गाते थे, बाद में कथक लोग मूल बाते समझाते थे। मैं क्या श्रीमद्भागवत जानता नहीं ? श्री मद्भागवत में बातें ही कितनी हैं — हनूमान तीन छलाग में समुद्र पार हो लका को गये — वहा चोरी करके फल तोड़े खाये, इस पर रावण ने उनकी पूछ में आग लगा दी। अन्त में हनूमान ने कूद कूद कर बहुत से घर जला दिये — बस, यही तो तुम्हारा श्रीमद्भागवत, कि और कुछ ? मानों मैं यह सब कुछ जानता नहीं!

ललितानन्द — तुम भूलते हो। यह तो रामायण है।

श्री मद्भागवत में अनेकानेक भक्ति-कथाएं हैं।

भक्तानन्द — अरे बेटा, तू चुप रह । भागवत में और दो चार कथाएं हैं, वे भी मुझे मालूम हैं । हरिदास तर्क पचानन के पास मैंने आस्त्र (शास्त्र) पढ़ा है । मैं क्या जानता नहीं कि कुभकरण और मदोदरी ने सलाह करके बाली बेचारे को विष देकर मारडाला था ।

ललितानन्द — तुम जाने क्या बक रहे हो ?

भक्तानन्द—अरे हा, जरा सी भूल हो गई । विष नहीं दिया था । हरिदास तर्क पचानन ने अपनी कन्या को विष देकर मारा था, मुझे उसी का भ्रम रहा । सुन, अब याद आ गई — राम और कुम्भकर्ण ने युद्ध करके बाली को मारा था ।

ललितानन्द — तुम खाक नहीं जानते । श्री मद्भागवत मे केवल भक्ति की कथाएं हैं ।

भक्तानन्द — और मैं क्या अभक्ति की कथा कह रहा हू ? भक्तिवाली कथा क्या मुझे मालूम नहीं ? बाली की मृत्यु के बाद अङ्गद ने भक्ति पूर्वक पितृ-श्राद्ध किया । वानरों के आनन्द की सीमा न रही । मानो उनके यहा मेरी सास का सा भण्डारा हो । जितने वानर थे, सब पूछ पसार कर बैठे और, वाली के श्राद्ध में, खूब पेट भर कर दही भात खाया । मेरे ससुर के यहा कत्थक लोगों ने कई बार यह कथा कही थी ।

ललितानन्द—तुम रामायण भी नहीं जानते । कुम्भकर्ण ने बाली को कब मारा था ?

भक्तानन्द—अरे मूर्ख वैरागी, तुझे शास्त्र का रत्ती भर ज्ञान नहीं । तू शास्त्र को समझ ही नहीं सकता । हरिदास

तर्कपचानन जैसा पडित इस देश भर में नहीं है । महाराज नन्दकुमार जिस वक्त नवाब के दीवान थे, उस वक्त हरिदास तर्कपचनन एक दफे उनके पास गये, और बातचीत में शास्त्र की पोथियाँ खोलकर महाराज से कहने लगे—"महाराज ! शास्त्र में जिनकी वृहतपत्ति (व्युत्पत्ति) है, उनके निकट सभी एक हैं । 'एक भिन्न द्वितीय नास्ति ।' । जो कृष्ण वही परमेश्वर, वही हरि वही खुदा ।" अरे मूर्ख वैरागी ! तर्कपंचानन ने अपने मुह से यह बात महाराज नन्दकुमार से कही थी कि जिन्हें शास्त्र का ज्ञान है, उनके निकट सभी एक हैं । बेटा वैरागी, तुझे शास्त्र का खाक भी ज्ञान नहीं । इसी लिए तेरा खयाल है कि कुम्भकर्ण कोई और, और सुग्रीव कोई और । अरे, जो कुम्भकर्ण वही सुग्रीव । जो राम — वही लक्ष्मण — वही सुमित्रा । एक ही तीनो, तीनों ही एक । यह तो शास्त्र का स्पष्ट सिद्धान्त है । शास्त्र ज्ञान होने पर तुझे ज्ञात हो जायगा कि सब एक हैं । 'एक भिन्न द्वितीय नास्ति' ।

ललितानन्द — भाई, तर्क में तुमसे कोई पार नहीं पा सकता ।

भक्तानन्द — जब तुझे शास्त्र का ज्ञान होगा तब तर्क करना भी आ जायगा । अच्छा, तो इस वक्त ये सब बातें जाने दे । मुझे सब शास्त्र मालूम हैं । ऐसा कोई नहीं जो मुझे न मालूम हो । हरिदास तर्कपचानन के साथ मैं दो दफे महाराज नन्दकुमार के यहा गया था । मेरे ससुर तर्कपचानन जी से कहा करते थे—"पण्डित जी ! आप जब बड़े-बड़े आदमियों के यहां जाया करें, तो मेरे दामाद को भी साथ लिवाते जाया करें । ऐसा करने

पर बसे बड़े आदमियों के यहाँ बैठने-उठने और बात-चीत करने का ढँग मालूम हो जावेगा।" इसी कारण मैं तर्क-पचानन जी के साथ प्राय बड़े आदमियों की सभाओं में जाया करता था।

ललितानन्द—भाई, इस विषय में तुम्हारे साथ तर्क करने से कोई लाभ नहीं। मैं तो यह पूछता हू,—तुम नाम-गान, नाम-सकीर्तन तथा नामामृत-पान में श्रद्धा क्यों नहीं रखते ?

भक्तानन्द इस वक्त गाजे की दूसरी चिलम तैयार कर रहे थे। तैयार करके पहिले खुद दो दम लगाई और बाद में ललितानन्द के मुँह के पास चिलम ले जा कर बोले—"ले बेटा बैरागी, लगा दम। एक दफे और यह अमृत पी ले, तब अपने अखाड़े को जाना। जब पीने की इच्छा हो और तुझे और कहीं न मिले तो फौरन् मेरे पास आना खूब पेट भर कर अमृत पिलाऊँगा। तेरे नामामृत की अपेक्षा मेरा यह अमृत कहीं अच्छा है।"

ललितानन्द अपने अखाड़े को चले गये। भक्तानन्द नामधारी सुवल मित्र ने इसी प्रकार हर रोज सेरों गाजा फूँकने और भडारा करने में छ सात महीने के भीतर सारा रुपया खर्च कर डाला। अपनी मृत स्त्री और सास के जो आभूषण उनके पास थे, वे भी सब बेच-बाच कर ठिकाने लगा दिये। अब न गांजा चले, न भोजन चले। सास से रोज रोज लड़ने-झगड़ने लगे। कुछ दिन बाद वे अपनी सास को अन्यान्य वैरागिनियों के साथ गृहस्थों के यहाँ भीख मागने के लिए भेजने लगे। परन्तु ब्रजेश्वरी राधकिशोरी बेचारी भीख मांग कर जो अन्न लातीं, भक्तानन्द

उसे बेच कर गाजा खरीदते। सास यदि इसमें कुछ आपत्ति करती तो उसे मारते-पीटते। एक दिन सास को कड़ी मार दी, बेचारी अचेतन्य हो गिर पड़ी। भक्तानन्द ने सोचा कि 'चोट बहुत लगी है,—जियेगी नहीं, मर जायगी।' निदान कत्ल की जिम्मेदारी ऊपर आ पड़ने की आशंका से वे उसी क्षण यशोहर को भाग खड़े हुए।

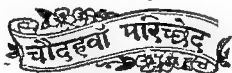
उनके भाग जाने के बहुत देर बाद उनकी सास को होश हुआ। निताई की मां ने कई दिन लगातार सेवा-शुश्रूषा करके उन्हें अच्छा किया। परंतु उस दिन की कड़ी मार के कारण ब्रजेश्वरी रायकिशोरी को सदा के लिए वात-व्याधि ने आ घेरा, चलने फिरने की शक्ति न रह गई। आज कल वे इस वृक्ष के नीचे बैठी-बैठी पथिकों से भीख माँगा करती हैं। उपर्युक्त घटना के दो बरस बाद आज इस पेड़ तले सावित्री के साथ उनका साक्षात् हुआ है।

इधर श्री क्षेत्र से लौटते वक्त रास्ते में बाबा प्रेमानन्द और उनकी सेवा-दासी प्रेमेश्वरी का देहान्त हो गया। बाबा गुरुगोविन्द जब कुञ्जेश्वरी और वृन्देश्वरी को साथ ले काटोया पहुचे तो देखा कि बाबा प्रेमानन्द के अखाड़े के कितने ही वैरागी अन्यान्य अखाड़ों मे चले गये हैं, भक्तानन्द भी नहीं हैं, वे भी भाग गये। सिर्फ निताई की मा, और ब्रजेश्वरी-रायकिशोरी अखाड़े में मौजूद हैं। गुरु गोविन्द-कुञ्जेश्वरी और वृन्देश्वरी को साथ ले बाबा भक्तदा[स] के अखाड़े में रहने लगे।

निताई की मा बाबा प्रेमानन्द के अखाड़े की ए[क] वैष्णवी थी। इस अखाड़े में आने के बाद उसके ग[र्भ] से निताई का जन्म हुआ था। पुत्र संग में होने के कार[ण]

अन्य किसी अखाड़े के वैष्णवों ने उसे अपने अखाड़े मे स्थान न दिया। इसलिए वह और व्रजेश्वरी रायकिशोरी दोनों इसी सूने अखाड़े में रहीं। व्रजेश्वरी-रायकिशोरी के कुटीर से पश्चिम ओर एक छोटे से कुटीर में निताई और उसकी मा रहती है। दोनों माता पुत्र कभी तो भिक्षा मागकर अपना दिन काटते हैं, और कभी निताई बाजार मे दूकानदारों के यहां मजदूरी वगैरह करके जो दो-चार पैसे कमा लाता है, उन्हो से भोजनों का निर्वाह होता है।

जिन छिदाम विश्वास की स्त्री के सिर में जरा सा दर्द होने पर छ-सात दासिया उनकी सेवा-शुश्रूषा में लग जाती थीं, आज वे इस कड़ी धूप में रास्ते के किनारे बैठी-बैठी बटोहियों से भीख मागती हैं। इस ससार में अपने पापों का समुचित दण्ड सभी को भुगतना पड़ता है। कर्मों के फलभोग से कोई नहीं छूट सकता।



बाल-विधवा की मृत्यु-शय्या।

पाठकों को याद होगा, अब से पहिले कई बार इसका जिक्र आ चुका है कि हरिदास तर्कपचानन और रामदास शिरोमणि में परस्पर विशेष शत्रुता थी। यहा पर, हम इस

बात का उल्लेख करते हैं कि किस प्रकार इन दोनों में पारस्परिक शत्रुता का सूत्रपात हुआ था।

हरिदास तर्क-पंचानन समाज के एक प्रधान पुरुष थे। देश में वे बड़े धार्मिक और शास्त्रज्ञ माने जाते थे। तर्क-पंचानन के तीन सन्ततियां थीं। तीनों में सुदक्षिणा नाम की कन्या सब से बड़ी थी। नौ बरस की उमर में एक अच्छे कुल के ब्राह्मण-बालक के साथ सुदक्षिणा का पाणिग्रहण हुआ। विवाह के उपरान्त तीन बरस न बीतने पाये, कि सुदक्षिणा विधवा हो गई। मृत्यु के समय सुदक्षिणा के स्वामी की अवस्था सिर्फ उन्नीस बरस की थी। इसी अवस्था में उन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था, वे बड़े दयावान और स्नेहशील पुरुष थे।

विधवा होने पर सुदक्षिणा अपने पिता के घर रहने लगी। क्रमशः तीन-चार बरसें बीत गईं, सुदक्षिणा की अवस्था सोलह बरस की हुई। सर्व सुलक्षण सम्पन्ना सुदक्षिणा के भाग्य में परमेश्वर ने वैधव्य का क्लेश क्यों लिखा था, यह मनुष्य के जानने की बात नहीं। अत्यन्त कठोर हृदय भी उसकी इस दशा को देखकर विदीर्ण होता था। सुदक्षिणा बड़ी रूपवती थी। शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा उसके हृदयस्थित सद्गुण कहीं अधिक प्रशंसनीय थे। प्रत्येक कार्य और प्रत्येक व्यवहार में उस के हृदय की पवित्रता, चरित्र की निर्मलता, पितृवत्सलता एवं गुरुजनों के प्रति भक्ति और श्रद्धा के भाव झलकते रहते थे। परन्तु जिस प्रकार एक दरिद्र व्यक्ति में हज़ार-हज़ार गुण रहते हुये भी एक मात्र दरिद्रता दोष ही उसके सारे गुणों पर पर्दा डाले रहता है; इसी प्रकार एक मात्र

वैधव्यावस्था ही भारतीय विधवाओं के समस्त गुणों का तिरस्कार कर डालती है।

यौवन-प्राप्ति के बाद सुदक्षिणा एक दिन भी कभी घर से बाहर नहीं निकली। पिता के घर रहते हुये हिंदू स्त्रियों में पर्दे का वैसा बंधन नहीं होता। वहां रह कर वे कुछ स्वाधीनतापूर्वक बाहर निकल पैठ सकती हैं। परन्तु बाल-विधवा सुदक्षिणा स्वयम् अपनी इच्छा से अपने को इस अधिकार से भी वञ्चित रखती थी।

सुदक्षिणा की माता ने एक दिन उससे कहा,—"बेटी! तुम सदा घर के भीतर ही बैठी रहती हो, कभी बाहर निकलने की इच्छा तुम्हें नहीं होती?"

सुदक्षिणा ने कहा,—"मा तुम नहीं जानतीं, विधवा हो जाने पर स्त्रियों के सम्बन्ध में लोग व्यर्थ ही तरह-तरह के झूठे अपवाद उड़ाया करते हैं। हमारे ग्राम के निवासियों में परस्पर अच्छे-अच्छे विषयों पर वार्तालाप तो कभी होता नहीं, सर्वदा इन्हीं विषयों की चर्चा छिड़ी रहती है कि अमुक विधवा का आचार-विचार कैसा है, वह कैसे रहती है, क्या खाती है, क्या पहनती है, किसके साथ बैठती उठती है, किसके साथ बातचीत करती है, इत्यादि। इन चिर-दुःखिनी विधवाओं के नाम पर वे समय-समय में कितने ही मिथ्या कलंक प्रचारित करते रहते हैं। मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे रहूं कि मैं संसार में हूं—यह भी कोई न जाने। मेरा जीवन वृथा है। मेरे लिए जीना और मरना दोनों समान ही हैं। लोग यदि व्यर्थ ही मेरे नाम पर कोई बात उड़ावेंगे तो पिता के अपमान की सीमा न रहेगी, ससुर भी सभ्य-समाज में सिर उठाने योग्य न

रहेंगे । तुम नहीं जानती कि मैं इस समय दो कुलों की शत्रु हो रही हू ?

सुदक्षिणा की माता उस के मुह से ये बातें सुनकर, आंखों के आंसू पोंछते-पोंछते वहां से चली गई । इसके बाद फिर कभी उसने सुदक्षिणा से बाहर जाने के लिए नहीं कहा ।

जिस गांव में सुदक्षिणा का विवाह हुआ था, उसी गांव में और उसी परिवार के एक अन्य ब्राह्मण व्यक्ति के साथ रामदास शिरोमणि की कन्या श्यामा का भी विवाह हुआ था । श्यामा की अवस्था इस समय चौबीस-पचीस बरस की है । वह अठारह बरस की अवस्था में विधवा हो गई थी । श्यामा बड़ी सच्चरित्रा थी । वह भी इस समय पिता के घर रहती है । श्यामा, सुदक्षिणा को बहुत प्यार करती थी। परन्तु वह भी प्राय घर से बाहर नहीं निकलती थी, अतएव दोनों को परस्पर एक दूसरे से मिलने जुलने का मौक़ा बहुत कम मिलता था । विधवाओं के विरुद्ध गाव के लोग व्यर्थ ही नाना प्रकार के मिथ्या अपवाद उड़ाया करते हैं, अल्पवयस्का सुदक्षिणा पहिले इसे बिल्कुल नहीं जानती थी । श्यामा ने ही उसे ये सब बातें बतलाई थीं, और श्यामा की शिक्षा के अनुसार ही सुदक्षिणा ने यौवन-प्राप्ति के बाद घर से बाहर निकलना पैठना कतई बन्द कर रक्खा था। सुदक्षिणा सदा ही बड़ी बहिन के समान श्यामा को आदर सम्मान करती थी, और उस पर अत्यन्त स्नेह रखती थी । कभी-कभी दो-तीन महीने के बाद श्यामा अपनी माँ के साथ तर्कपंचानन के घर आकर सुदक्षिणा को देख जाती थी । उस समय वे दोनों परस्पर एक दूसरे

पर अपने अपने मनका दुख प्रकट करती थीं। श्यामा ने विधवा होने के पहिले ही वगला पुस्तकें पढने में अच्छा अभ्यास कर लिया था । श्यामा की शिक्षा के अनुसार सुदक्षिणा ने भी वगला पुस्तकें पढना सीख लिया । उस समय बहुत थोडी स्त्रिया लिखना पढना जानती थीं । पाठ्य पुस्तकें भी बहुत कम थीं । बहुतों के घर सिर्फ हस्त-लिखित कृत्तिवास रामायण और काशीराम दास का महाभारत रहता था । रामायण और महाभारत ही उस समय के एक मात्र पाठ्य ग्रन्थ थे । परन्तु उन दिनों वङ्गीय स्त्रिया सिर्फ इन्हीं दो ग्रन्थों के पाठ करके—जो पढना नहीं जानती थीं, वे इन्हें सुनकर-जिस पवित्र चरित्र को प्राप्त करती थीं, आज-कल की इन ढेर की ढेर पुस्तकों को पढ कर वङ्ग महिलाएं उस पवित्र चरित्र को प्राप्त करती नहीं देखी जातीं । बल्कि हम सदा ही यह सुना करते हैं कि नव्य वगला ग्रन्थकारों के रचेहुए नाटकों को पढने के कारण ही कलकत्ते की युवतियों में हिस्टीरिया रोग का विशेष संचार हुआ है ।

चैत के महीने में एक दिन दुपहर से कुछ पहिले तर्कपचानन की स्त्री रसोई बना रही थी, उस समय वह स्वयं बाहर न निकल सकी, इसलिए सुदक्षिणा को बुला कर उसने कहा — "बेटी । उन्होंने (तर्क-पचानन ने) कल आम की चटनी खाने के लिए कहा था, वह देखो, उस पेड के नीचे बहुत से आम पडे होंगे, जाकर बीन लाओ ।"

रसोईघर से पचीस-तीस हाथ की दूरी पर एक आम का पेड था । सुदक्षिणा उस पेड के नीचे आम बीनने गई । इस पेड से पांच छ हाथ के फासिले पर गाव की

स्त्रियों के आने जाने के लिए एक छोटा सा रास्ता था। स्त्रियां इसी रास्ते से होकर तर्क-पचानन के घर आती-जाती थीं। परंतु कभी-कभी, गाव के कोई-कोई अच्छी तरह जाने-पहिचाने पुरुष भी, सीधे मार्ग से तर्क-पचानन के घर आने के लिए, इसी रास्ते से निकल आते थे। सुदक्षिणा जिस समय आम बीन रही थी, उस समय छिदाम विश्वास का दामाद सुबल मित्र इसी रास्ते मे होकर तर्क-पञ्चानन के घर आ रहा था। सुबल मित्र की एक यह आदत थी कि चाहे कुछ जान-पहिचान हो अथवा न हो—उसे किसी व्यक्ति को देखते ही वे किंचित् मुस्कराते हुए उसे बुलाकर कोई न कोई बात कहने लगते थे। सुदक्षिणा को आम बीनते देख कर सुबल हँसते हुए बोले — "क्यों, क्या आम बीन रही हो ? ये इस ओर बहुत से आम पड़े हैं।"

सुदक्षिणा सुबल को पहिचानती भी नहीं थी। उसने सुबल की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। हिंदू महिलाए एक अपरचित पुरुष को देख कर जिस प्रकार लज्जा से सिर झुका कर मौन हो रहती हैं, सुदक्षिणा भी उसी प्रकार मौन रहकर नीचे की ओर देखने लगी। सुबल मित्र भी और कुछ न कहकर उसी क्षण तर्क-पचानन के घर चले गये।

परन्तु दुर्भाग्य-वश तर्क-पचानन उस समय रसोई घर के पास स्त्री से कुछ बातचीत करते बाहर आ रहे थे। वहा से उन्होंने देखा कि सुबल मित्र उनकी कन्या को बुला कर हँसते-हँसते उससे कुछ बात कर रहा है। तर्क-पञ्चानन महाशय सुबल को एक बड़ा नीच आदमी समझते थे

परन्तु सुबल ने सुदक्षिणा से जो बात कही थी, सो उन्होंने न सुन पाई। सिर्फ यही देखा कि सुबल हँसते हुए उससे कुछ बात कर रहा है। दुष्ट-बुद्धि तर्क-पचानन के मन में कन्या के प्रति सन्देह उत्पन्न हुआ। वे मन ही मन सोचने लगे कि हमारी कन्या विधवा है, इस समय उसका यौवन-काल है, अतएव इस के द्वारा पितृ-कुल और श्वसुर-कुल दोनों ही कलङ्कित होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

दो-तीन दिन बराबर तर्क पचानन सिर्फ इसी विषय की चिन्ता करते रहे। बाद में एक दिन रात में अपनी स्त्री से कहा—"कन्या के चरित्र के विषय में मुझे सदेह होता है, मैंने अपनी आखों से सुबल मित्र को उसके साथ बातचीत करते देखा है।"

स्त्री ने कहा—"तुम कन्या के हार्दिक भाव को नहीं जानते, वह प्राण जाने पर भी घर से बाहर निकलने की इच्छा नहीं करती, और सर्वदा ही कहा करती है कि मैं दो कुलों की शत्रु हो रही हू, किसी समय मेरे सम्बन्ध में कोई कुछ बात कह बैठेगा तो दोनो कुल कलङ्कित होंगे।"

स्त्री के मुह से यह बात सुन कर तर्क-पचानन को रोमाञ्च हो आया। बारम्बार स्त्री से पूछने लगे—"क्या सचमुच ही सुदक्षिणा इसी प्रकार कहा करती है?"

स्त्री ने कहा—हा, उसने कई बार मुझ से कहा—"मा। मैं मर जाऊ तो अच्छा हो।" उफ! मेरी बेटी जिस समय मृत्यु की कामना करती है तो मेरी छाती टूक-टूक होने लगती है। न जाने पूर्व-जन्म में मैंने कितने घोर पाप किए थे, जो अपनी आखों से अपनी प्यारी सन्तान

को ऐसे दारुण दुख में देख रही हूं।

स्त्री के मुह से ये सब बातें सुन कर तर्क-पचानन का सन्देह सौगुना बढ़ गया। पहिले उन्हें यह सन्देह हुआ था कि हो न हो, सुबल मित्र मेरी कन्या को कुपथगामिनी करने की चेष्टा कर रहा है, परन्तु अब उन्हें कतई यह विश्वास हो गया कि सुबल मित्र ने सर्वनाश कर डाला, वह निश्चय ही मेरी कन्या को कुपथगामिनी बना चुका है। यदि ऐसा न होता तो—"लोग मेरे सम्बन्ध में किसी दिन कुछ कह बैठेंगे।"—इस प्रकार की आशंका ही सुदक्षिणा को क्यों होती? वह मृत्यु की कामना ही क्यों करती?

कुटिल स्वभाव के आदमी किसी विषय के सत्यासत्य का विवेचन करते हुए इसी प्रकार की युक्ति का अवलम्बन करते हैं। वे लोगों के प्रत्येक कार्य और प्रत्येक बात के भीतर कोई न कोई कूट अर्थ समझ बैठते हैं।

तर्कपचानन को निश्चय हो गया कि अवश्य ही हमारी कन्या कुपथगामिनी हो चुकी है। समाज में कलंकित होने की आशंका के कारण वह पहिले ही से उपर्युक्त कपटपूर्ण वाक्यों के द्वारा माता-पिता को भुलावा देती रही है। ऐसा निश्चय कर तर्क-पचानन चुपचुपाते हुए, अपनी स्त्री से कहने लगे। × × × ×

स्त्री उनकी बातें सुनकर क्रोधाग्नि में प्रज्वलित हो उठी और अत्यन्त कर्कश वाक्यों से स्वामी से कहने लगी—"तुम पिता होकर निरपराधिनी कन्या के सम्बन्ध में ऐसा कह रहे हो?"

सन्तान-वत्सला ब्राह्मणी अधिक न सह सकी। वह क्रोध में आकर अन्तत रोने लगी। रोते-रोते कांपती हुई आवाज में उसने कहा— "मैं तुम्हारा घर छोड कर चली जाऊंगी, अपनी चिरदुखिनी बेटी को साथ ले मैं द्वार-द्वार भिक्षा मांगकर अपने दिन काटूंगी। आह! मेरी बेटी ने संसार का कोई सुख न जाना, रोते-रोते ही दिन बिताती है, मुंह से बात तक नहीं कहती। बाहर निकलने के लिए कहने पर भी वह घर से बाहर पांव देने की इच्छा नहीं करती। हा, परमेश्वर! न जाने पूर्व जन्म में कैसे-कैसे घोर पाप किये थे, जो आप ने मुझे यह कठोर दंड दिया? यमराज! क्या तुम मुझे नहीं देख रहे हो? मुझे इस संसार से उठा लो। हा ईश्वर! क्लेश पर क्लेश, दुख पर दुख!"

ब्राह्मणी को सारी रात नींद नहीं आई। कन्या के दुख में रोते रोते भोर हुआ।

तर्क-पचानन सोचने लगे कि हमारी पत्नी पुराने विचारों की स्त्री है, उसकी बुद्धि मारी गई है, कन्या की चतुरता ने उसे धोखा दे रखा है। परन्तु इस समय क्या करना चाहिए, तर्क-पचानन इसका कुछ निश्चय न कर सके। हिन्दू विधवाओं के कुचरित्रा होने पर उनके आत्मीय स्वजन अपनी लोकलज्जा को दूर करने के लिए उन्हें वृन्दावन अथवा काशी को भेज देते हैं। परन्तु तर्कपचानन अच्छी तरह जानते थे कि हमारी स्त्री कन्या को इतना अधिक प्यार करती है कि यदि मैं उसे किसी तीर्थ स्थान में भेजना चाहूं तो वह कदापि न भेजने देगी। वह प्राण रहते किसी तरह कन्या को अपने से अलग

करने के लिए राज़ी न होगी।

दो-तीन दिन बराबर इसी प्रकार सोचते-साचते अन्त में मन ही मन कहने लगे—"कुल की मान प्रतिष्ठा के चले जाने पर मनुष्य का जीवन ही वृथा है। छिपे-छिपे मनुष्य कितने ही पाप क्यों न करे, जब तक उसे समाज के सामने लज्जित और कलंकित न होना पड़े, तभी तक खैर है। मेरी यह विधवा कन्या वास्तव में दो कुलों की शत्रु हो रही है। इसके जीते रहने से लाभ ही क्या है। यह सिर्फ क्लेश का कारण बन रही है। अतएव समाज में इसका कलंक प्रचारित होने के पहिले ही इसे विष देकर मार डालने पर लोक-लज्जा से सहज ही मुक्ति मिल जायगी, और समाज में किसी प्रकार की बदनामी न उठानी पड़ेगी।

मन ही मन ऐसा निश्चय कर कन्या के प्राणों का नाश करने के अभिप्राय से तर्कपचानन ने एक दिन विष लाकर घर में रख छोड़ा। स्त्री पर यह कुछ हाल प्रकट नहीं किया, और इस आशंका से कि यदि भोजनों के साथ विष मिलाने की चेष्टा करूंगा तो स्त्री को पता चल जायगा,—उन्होंने औषधि के बहाने कन्या को विष खिला देने का निश्चय किया।

सुदक्षिणा धर्म के प्रति बड़ी श्रद्धा रखती थी। एकादशी व्रत के दिन एक बूंद जल भी नहीं पीती थी। आज एकादशी का व्रत है। आज वह भोजन नहीं करेगी। आज का दिन उसके लिए फुर्सत का दिन है। वह महाभारत के अन्तर्गत नल-दमयन्ती की कथा का पाठ कर रही है। हस्त-लिखित पुस्तक का पाठ धीरे धीरे कर मिलता है।

नल-दमयती की कथा का पाठ करते-करते दोपहर हो गयी । इस के बाद वह राजा श्रीवत्स की कथा का पाठ करेगी । मन ही मन वह निश्चय कर चुकी है कि आज सारे दिन महाभारत पढ़ेगी । महाभारत के पाठ से मन को सुख और शांति प्राप्त होती है, केवल इतना ही नहीं, किन्तु उसका विश्वास है कि महाभारत के पाठ से पुण्य होता है, पापी को स्वर्ग लाभ होता है । पहिले स्त्रियों का ऐसा ही विश्वास था । वे पुण्य-सञ्चय के लिए महाभारत का पाठ किया करती थी ।

सुदक्षिणा ने विना कुछ खाए पिये सारे दिन महाभारत का पाठ किया । इससे रात्रि के समय उसके सिर में जोर की पीड़ा होने लगी । दिन में दमयन्ती के चरित्र का पाठ किया था, अतएव रात्रि में नल और दमयन्ती के चरित्र की घटनाओं का स्मरण करते-करते मन ही मन चिन्ता का स्रोत प्रवाहित होने लगा । सारी रात नींद नहीं आई । बिछौने पर पड़ी-पड़ी करवटें बदलती रही । उसकी मा भी प्राय नहीं सोई । सुदक्षिणा के एकादशी-व्रत के दिन वह प्राय सारे दिन रोती रहती थी, और किसी किसी एकादशी को वह स्वय भी कुछ भोजन नहीं करती थी । यदि कोई उस से भोजन करने के लिए कहता तो वह कहती थी—"मेरी प्यारी बेटी सारे दिन उपवास करेगी, मैं किस जले मुह से रोटी खाऊ ।"

सुदक्षिणा को बिछौने पर पड़े-पड़े करवटें बदलते देखकर उसकी मा ने खयाल किया, कि हो न हो, बेटी भूक के मारे छटपटा रही है ।

कन्या का दुख देख कर उसकी आखों से आंसुओं की धारा वहने लगी, और वह विविध प्रकार से विलाप करने लगी ।

स्त्री को रोते चिल्लाते देख कर तर्क-पचानन पूछने लगे—"क्या हुआ ?" स्त्री किंचित् क्रोध प्रकट करके बोली—"और नया क्या होगा, जो आग हृदय में लगी हुई है, वही भभक रही है । जान पड़ता है, बेटी भूक से व्याकुल है, इसलिए उसे नींद नहीं आती ।"

तर्क-पचानन उस समय कन्या के पास जाकर पूछने लगे—"सुदक्षिणा तुम्हें क्या हुआ ?"

सुदक्षिणा ने कहा — "पिता, मेरा सिर दर्द कर रहा है, इससे नींद नहीं आती ।"

तर्क-पचानन कन्या के माथे पर हाथ रख कर बोले—"बेटी तुम्हें कुछ ज्वर हो आया है । सवेरा होते ही वैद्य के पास जाकर कुछ दवा ला दूंगा ।"

सवेरा हुआ तर्क पचानन की स्त्री ने रात ही में थोड़े से चने भिगोकर रख छोड़े थे, सवेरे उठते ही कन्या से स्नान करने के लिए कहा । वह स्नान करने गई । मा उन चनों को साफ करके कन्या के लिए जल पान तैयार करने लगी । सुदक्षिणा स्नान करके आई, जलपान किया । उसकी मां तत्काल जल्दी जल्दी भोजन बनाने में लग गई । कल सारे दिन और सारी रात कन्या ने कुछ भी न खाया-पिया था । भला जननी का हृदय सन्तान के इस कष्ट को कैसे सह सकता ?

इस ओर तर्क पचानन महाशय ने प्रातः क्रिया से निपट-निपटा कर स्तोत्र-पाठ ... किया,

। एक प्रधान शास्त्रज्ञ और धर्मानुरागी पुरुष प्रसिद्ध थे, इसलिए स्तोत्र-पाठ आदि के सम्बन्ध में उन्हें कुछ अधिक आडम्बर रखने पड़ते थे ।

प्रातःकाल की सारी क्रियाएं—पूजा पाठ इत्यादि—समाप्त करके सुदक्षिणा को बुलाकर कहा—"बेटी ! कल तुम्हें कुछ ज्वर हो आया था, मैं तुम्हारे लिए दवा लाया हूं, इसे थोड़े से पानी के साथ निगल लो।"

सुदक्षिणा ने कहा "पिता दवा खाने को मेरा जी नहीं चाहता, मैं मर जाऊं यही अच्छा। दूसरे, ज्वर मुझे है ही कहां ?"

तर्क-पचानन ने कहा—"नहीं बेटी, यह क्या कहती हो, दवा क्यों नहीं खाओगी ? लो इसे पानी के सहारे निगल लो।"

पितृवत्सला सुदक्षिणा पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करती थी। अपने प्राण देकर भी यदि वह पिता को सन्तुष्ट रख सके तो वैसा करने में भी उसे कोई उज्र न था। अतएव पिता की दी हुई औषधि को मुंह में डाल कर उसने पानी के साथ उसे लील लिया। तर्कपचानन की स्त्री ने इस औषधि-प्रयोग की बात कुछ भी न जान पाई। वह रसोईघर में कन्या के लिए अच्छे-अच्छे भोजन तैयार करने में लगी थी।

हा, सन्तान-वत्सला माता ! तू किस के लिए भोजन बना रही है। विविध प्रकार के कुत्सित आचार-विचारों के द्वारा यह नरक तुल्य देश नर-पिशाचों से पूर्ण हो रहा है। आत्माभिमान को स्थिर रखने के लिए आज पिता अपने हाथों से अपनी सन्तान के प्राणों का विनाश कर रहा है।

कन्या का दुःख देख कर उसकी आँखों से आंसुओं की धारा बहने लगी, और वह विविध प्रकार से विलाप करने लगी।

स्त्री को रोते-चिल्लाते देख कर तर्क-पचानन पूछने लगे—"क्या हुआ?" स्त्री किंचित् क्रोध प्रकट करके बोली—"और नया क्या होगा, जो आग हृदय में लगी हुई है, वही भभक रही है। जान पड़ता है, बेटी भूक से व्याकुल है, इसलिए उसे नींद नहीं आती।"

तर्क-पचानन उस समय कन्या के पास जाकर पूछने लगे—"सुदक्षिणा तुम्हें क्या हुआ?"

सुदक्षिणा ने कहा—"पिता, मेरा सिर दर्द कर रहा है, इससे नींद नहीं आती।"

तर्क-पचानन कन्या के माथे पर हाथ रख कर बोले—"बेटी तुम्हें कुछ ज्वर हो आया है। सवेरा होते ही वैद्य के पास जाकर कुछ दवा ला दूंगा।"

सवेरा हुआ तर्कपचानन की स्त्री ने रात ही में थोड़े से चने भिगोकर रख छोड़े थे, सवेरे उठते ही कन्या से स्नान करने के लिए कहा। वह स्नान करने गई। मां उन चनों को साफ़ करके कन्या के लिए जल पान तैयार करने लगी। सुदक्षिणा स्नान करके आई, जलपान किया। उसकी मा तत्काल जल्दी जल्दी भोजन बनाने में लग गई। कल सारे दिन और सारी रात कन्या ने कुछ भी न खाया-पिया था। भला जननी का हृदय सन्तान के इस कष्ट को कैसे सह सकता?

इस ओर तर्कपचानन महाशय ने प्रातः क्रिया से निपट-निपटा कर स्तोत्र-पाठ करना प्रारम्भ किया। देश में

लगे—"कल रात ही से सुदक्षिणा को जोर का ज्वर चढ़ा था। यह ज्वर अच्छा नहीं होता। विकारयुक्त ज्वर जान पड़ता था—आज भी ज्वर का विकार ही होगा—तुम्हें तो रत्ती भर भी ज्ञान नहीं, इतने तड़के उसे नहाने क्यों दिया ?"

ब्राह्मणी बोली—"विकार नहीं तुम्हारा सिर है ?"

देखते-देखते सुदक्षिणा की यातना बढ़ती गई। ब्राह्मणी सिर पीट-पीट कर रोते-रोते कहने लगी—"तुम्हारा हृदय क्या ईश्वर ने पत्थर का बनाया था ? क्या सचमुच तुमने कन्या को विष दिया है ?"

तर्क-पचानन ने चटपट अपने हाथों से स्त्री का मुह दाब दिया। सुदक्षिणा एकाएक आश्चर्यभरी दृष्टि से पिता और माता के मुंह की ओर ताकने लगी। उसने कुछ समझ नहीं पाया। अन्त में धीरे-धीरे उसने मा की बात का आशय समझ लिया। उसने पहिले भी बहुतों की जबानी यह सुन रखा था कि हिन्दू विधवाओं के दुश्चरित्रा होने पर उनके पिता एवं ससुर अथवा आत्मीय-स्वजन लोग लज्जा के निवारणार्थ उन्हें विष देकर मार डालते हैं। अतएव इस समय उसकी समझ में आया कि पिता ने मुझे विष दिया है। परन्तु कैसे आश्चर्य की बात कि यह जानकर भी उसकी पितृ-भक्ति में रत्तीभर भी कमी न हुई। उसके पिता वैद्य को बुलाने के लिए आदमी भेजने लगे, परन्तु उसने इसके लिए पिता को मना करते हुए कहा—"वैद्य की आवश्यकता नहीं। मेरा मरना ही अच्छा।"

मा के मुह से बात न निकलती थी। कन्या की दशा

यह औषधि खाने के प्राय एक घंटे के बाद ही सुदक्षिणा का शरीर छटपटाने लगा। न खड़ा हुआ जाता था, न बैठे रहा जाता था। अञ्चल गिरा कर पृथ्वी पर लोट गई। मा ने रसोई तयार करके उसे भोजन करने के लिए बुलाया। परन्तु सुदक्षिणा को उठने की शक्ति न रह गई थी। ब्राह्मणी बारम्बार रसोईघर से कन्या को आवाज़ देने लगी। देर होते देख कर वह स्वयं ही अपने भाग्य को धिक्कारती हुई कन्या के पास आई। उसे पृथ्वी पर पड़ा देख घबड़ा कर कहने लगी—"अब मुझे और कितना दुख देना चाहती है। कल सारे दिन तूने कुछ खाया नहीं, मैंने सबेरे ही उठ कर तेरे लिए भोजन तैयार किया। जब तक तू थोड़ा सा नहीं खा लेगी, तब तक मेरे हृदय का दुख दूर नहीं होगा।"

सुदक्षिणा ने कहा—"मा! पिता ने न जाने कैसी दवा खाने के लिए दी, खाते ही मेरा शरीर लथर-पथर हो गया। मुझसे उठा नहीं जाता। व्याकुल हो रही हूं। उठने की सामर्थ्य नहीं है। मैं इस समय भोजन न कर सकूँगी। तुम मेरे ऊपर पखा हांको।"

कन्या के मुह से यह बात सुनते ही मा के होश उड़ गये। तत्काल ही उसके मन मे यह सन्देह पैठ गया कि, हो न हो, तर्क-पचानन ने कन्या को विष दे दिया है। तर्क-पचानन उस समय घर के बराडे में बैठे थे। ब्राह्मणी ने शीघ्र ही उन्हें बुलाकर कहा—"सुदक्षिणा को कौन सी दवा दी है, वह तो छटपटा रही है?"

तर्क-पचानन घर के भीतर आकर धीरे-धीरे कहने

जाकर मैं उन्हें देख सकूं। मैं पापिनी थी. अत्यन्त भागिनी थी, इसी से वे मुझे छोड़कर चले गये —इसी लए मैं उस अमूल्य रत्न को खो बैठी। पिता ! इस सार में मैंने कोई सुख न जाना। वयस्क होने के बाद ा एक दिन भी सुख से नहीं बीता। संसार क्या है ने न जान पाया। मेरे लिए यह संसार अन्धकारमय रहा।

यही कहते-कहते कण्ठावरोध हो आया। जिह्वा और ण्ठ दोनों सूख गये। टकटकी बांधकर ऊपर की ओर खने लगी। ऐसा जान पड़ा, मानों इस समय वह अपने र्गीय-स्वामी को देख रही है। उस समय वह अत्यन्त तर-स्वर से धीरे-धीरे स्वामी को सम्बोधन करके लड़खड़ाती ई आवाज में कहने लगी —"नाथ ! मेरा परित्याग न रना। मुझे इस नरक से निकाल कर अपने पास ले लो। मैंने तुम्हारी सेवा में अनेक त्रुटियां की हैं, दासी अपराध क्षमा करो। मुझे अपनी चिर-दासी बनाओ, मुझे ग्रहण करो।"

बड़े कष्ट से हाथ फैलाने की चेष्टा की, परन्तु रीर क्रमश प्राण-हीन होता आ रहा था। हाथ न उठा की।

"मुझे लो- ग्रहण करो-ग्र-ह-"

बस, दूसरी बार 'ग्रह- कहते ही कण्ठावरोध हो या। मुंह से तेजी के साथ सांस निकलने लगी। लविधवा की निर्मल आत्मा ने देह का परित्याग कर मरत्व को प्राप्त किया, वैधव्य की दारुण यन्त्रणा दूर ई। मृत्यु के समय एक बार फिर हाथ उठाने की

देख कर शोक और दुख के आवेग से। वह एक दम बेहोश होकर गिर पड़ी । पृथ्वी पर पड़ी हुई कन्या का सिर अपनी गोद में रखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसके निष्कलंक एव सरलता-पूर्ण मुंह की ओर टकटकी बांधकर देखने लगी । तर्क-पचानन कन्या के पार्श्व में खड़े थे।

थोड़ी ही देर के भीतर सुदक्षिणा का क्लेश और भी अधिक बढ़ गया । उस समय उसने अपने को आसन्नमृत्यु समझकर हृदय-कपाटो को एकदम खोल दिया ।

चिर-प्रचलित निन्दनीय देशाचार के कारण हिन्दू युवतिया अपने माता-पिता के सामने अपने पति के सम्बन्ध की कोई बात जबान पर नहीं लाती । उनके हृदय की आग चुपके-चुपके हृदय के भीतर ही भीतर जला करती है । परन्तु सुदक्षिणा का इस समय मृत्युकाल उपस्थित है । अब उसे लज्जा नहीं रही । विशेषत अत्यधिक शारीरिक यन्त्रणा के कारण वह प्राय' उन्मत्त सी होगई है । इस समय वह केवल हृदयावेग से परिचालित होकर बिना किसी छल-कपट के खुले शब्दो मे अपने मन की बातें कह रही है । पाठक और पाठिकाए एक बार उसकी बातें सुनें और देखें कि एक हिन्दू बालविधवा मृत्यु के समय क्या कहती है । और क्या कहेगी ? वैधव्य-यन्त्रणा के कारण प्रतिक्षण जिसका चिन्तन करती रही है, वही कहती है—

'पिता ! मेरे जीने से कोई लाभ नहीं । मेरा मरना ही अच्छा । पिता ! मुझे विदा दीजिये– (हाथ फैलाकर पिता के पाव पकड कर) पिता ! अपने श्री चरणों को मेरे सिर पर रखिये और आशीर्वाद दीजिये कि परलो

। जाकर मैं उन्हें देख सकूं। मैं पापिनी थी, अत्यन्त भागिनी थी, इसी से वे मुझे छोड़कर चले गये —इमी लिए मैं इस अमूल्य रत्न को खो बैठी। पिता! इस संसार में मैंने कोई सुख न जाना। वयस्क होने के बाद रा एक दिन भी सुख से नहीं बीता। संसार क्या है मैंने न जान पाया। मेरे लिए यह संसार अन्धकारमय ही रहा।

यही कहते-कहते कण्ठावरोध हो आया। जिह्वा और कण्ठ दोनों सूख गये। टकटकी बांधकर ऊपर की ओर देखने लगी। ऐसा जान पड़ा, मानों इस समय वह अपने स्वर्गीय-स्वामी को देख रही है। उस समय वह अत्यन्त कातर-स्वर से धीरे-धीरे स्वामी को सम्बोधन करके लड़खड़ाती हुई आवाज में कहने लगी —"नाथ! मेरा परित्याग न करना। मुझे इस नरक से निकाल कर अपने पास ले चलो। मैंने तुम्हारी सेवा में अनेक त्रुटियां की हैं, दासी के अपराध क्षमा करो। मुझे अपनी चिर-दासी बनाओ, मुझे ग्रहण करो।"

बड़े कष्ट से हाथ फैलाने की चेष्टा की, परन्तु शरीर क्रमश प्राण-हीन होता आ रहा था। हाथ न उठा सकी।

"मुझे लो- ग्रहण करो-ग्र-ह-"

बस, दूसरी बार 'ग्रह- कहते ही कण्ठावरोध हो गया। मुंह से तेजी के साथ सांस निकलने लगी। बालविधवा की निर्मल आत्मा ने देह का परित्याग कर अमरत्व को प्राप्त किया, वैधव्य की दारुण यंत्रणा दूर हुई। मृत्यु के समय एक बार फिर हाथ उठाने की

चेष्टा करती दिखाई दी। परन्तु दोनों हाथ उससे पहिले ही शक्तिहीन होचुके थे। ऐसा प्रतीत हुआ, मानों वह स्वर्गीय स्वामी को सामने खड़ा देख कूद कर स्वामी की फैली हुई गोद के भीतर जा छिपी।

मृत्यु से पहिले सुदक्षिणा ने श्यामा को बुला देने के लिए कहा था। परन्तु सुदक्षिणा के पिता ने श्यामा को इसकी खबर नहीं भेजी। श्यामा अन्यान्य लोगों के मुं से सुदक्षिणा के आसन्न-मृत्यु होने का समाचार सुनक तर्क-पचानन के घर दौड़ी आई। श्यामा प्राय. घर बाहर नहीं निकलती थी। परन्तु आज श्यामा को लो लज्जा का भय नहीं रहा था। अपने पिता की अनुम की प्रतीक्षा न करके दौडती हुई हापते-हांपते तर्क-पचान के घर पहुची। सुदक्षिणा के पास जाकर देखा, स्वर्णप्रतिमा की तरह उसका निश्चल शरीर माता गोद में सो रहा है। कन्या के सिर को गोद में चिपट हुए उस की माता विविध प्रकार से विलाप कर रही है श्यामा का हृदय स्नेह, दया और पवित्र भावों से परि था। वह उन्मत्त की तरह सुदक्षिणा के मूँह के उ मुह रख कर रोते-रोते कहने लगी– " मेरी प्राणप सखी! हतभागिनी! मुझ से बिना कहे ही चली मुझे भी अपने साथ लेती चल।"

तर्क-पचानन श्यामा को इस प्रकार रोते-चिल देख कर कुछ क्रुद्ध हुए, और अत्यन्त रोष प्रकट क उसे सुदक्षिणा के पास से खींचकर दूर बैठाल दिया। प वह बारम्बार उठ कर सुदक्षिणा के मृत-शरीर के जाने लगी, और बारम्बार उसके मुह के मह

ले में हाथ डाल-डाल कर आर्त्तनाद करने लगी।

इस ओर वैद्य महाशय आ उपस्थित हुए। तर्क-पचानन वैद्य से कहा– " कल रात ही ज्वर-विकार के लक्षण दिखाई दिये थे। सवेरे कुछ अच्छी हालत देख कर आपको नहीं बुलाया, परन्तु चार घड़ी के भीतर ही इसने पुन: प्रलाप आरम्भ किया, देखते ही देखते यह दशा उपस्थित हुई।"

वैद्य महाशय ने सुदक्षिणा के मृत-शरीर की हालत देख कर सहज ही रोग का निर्णय कर लिया। यह महाशय एक वैद्य के बेटे थे। चिकित्सा-शास्त्र मे अच्छे पारङ्गत नहीं थे, तथापि ग्रामीण-जनों को सदा ही सभी तरह के कुकर्मों में सहायता पहुचाने की काफी योग्यता रखते थे। यही इनका काम था। शास्त्र में लिखा है— 'शत मारि भवेत् वैद्य, सहस्र मारि चिकित्सक "। वैद्य महाशय के पास सम्भवत आज तक एक सौ रोगी तो कुल आए भी नहीं थे। इसलिए जब इन्होंने देखा कि बिना एक सौ मनुष्यों का प्राण-नाश किये हम वैद्य नहीं कहला सकते, तो उस समय विवश हो इन वैद्य महाशय को एक सौ नर-हत्या पूर्ण करने के उद्देश्य से उपर्युक्त युक्ति से भी बहुतों का प्राण नाश करना पड़ा। तर्क-पचानन के घर से चलते समय वैद्य महाशय ने कहा— "महाशय" जल्दी जल्दी दाह-क्रिया का प्रबन्ध करो। आज कल यह एक नया ज्वर फैल रहा है। यह रोग सक्रामक है। जिस घर में एक आदमी को होता है, वहा औरों में भी फैल जाता है।

यह सुनते ही तर्क-पंचानन ने तत्क्षण पाठशाला में से

शिष्यों को बुलाया और सुदक्षिणा की अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिए कहा। पाठशाला के कई एक छात्रों ने मिल कर उस निर्मलात्मा सुदक्षिणा के स्वर्ण-सदृश शरीर को दो घंटे के भीतर जला कर भस्मीभूत कर डाला।

सन्तान-वत्सला ब्राह्मणी सारे दिन और सारी रात पृथ्वी पर पड़ी-पड़ी सिर धुनती रही। कन्या की मृत्यु के समय घर के भीतर बैठे हुए अन्यान्य लोग गंगा जी में स्नान करके लौट आये। परन्तु घर के जिस स्थान पर सुदक्षिणा लेटी रही थी, ब्राह्मणी उसी स्थान पर पड़ी पड़ी रोती रही। आत्मीय स्वजनों तथा पड़ोसियों ने आकर उसे स्नान कराने की बहुतेरी चेष्टा की, परन्तु उसने स्नान भोजन कुछ नहीं किया। हिन्दू-समाज के नियमानुसार मृत-शव के स्पर्शमात्र से स्नान करना पड़ता है, अतएव आत्मीय-स्वजन इकट्ठे हो कर ब्राह्मणी को हाथोंहाथ बाहर निकाल लाये। तर्कपंचानन ने पाठशाला के दो छात्रों के द्वारा गंगा जी से दो घड़े जल मंगाया। पड़ोसिनी स्त्रियों ने उसी जल से उसका शरीर धो दिया। पहिने हुए वस्त्र उतार कर ब्राह्मणी ने अन्य वस्त्र तन पर लपेट लिये और घर में घुसकर पुनः वह पृथ्वी पर लेट रही। आई हुई स्त्रियों ने जैसे तैसे उठा कर उसे बिछौने पर लिपटाया।

जिस दिन सुदक्षिणा की मृत्यु हुई, उस दिन सारे दिन और सारी रात उसकी माँ ने भोजन करना तो दूर रहा, पानी भी नहीं पिया। दूसरे दिन आत्मीय स्वजनों तथा पास पड़ोस की स्त्रियों ने आकर उसे भोजन कराने की चेष्टा की। परन्तु भोजनों के लि

अनुरोध करते ही वह हाहाकार करती हुई कह उठती—"हा ! मैं अब भोजन करूगी—मेरी प्यारी कन्या एकादशी व्रत के दूसरे दिन भी भोजन न कर गई—उपवासिनी ही चली गई—मैंने प्रात काल ही उठकर उसके लिए भात बनाया था—" इसी प्रकार विलाप करते-करते ब्राह्मणी अचेतन हो गई ।

क्रमश दो-तीन दिन बीत गये । तर्क-पचानन की स्त्री ने इस वक्त तक एक बूँद पानी भी नहीं पिया । तर्क-पचानन यदि स्वय किसी समय उस से भोजनों के लिए अनुरोध करने लगते तो उसकी शोकाग्नि सौ गुनी बढ़ जाती थी । उस समय वह उन्मत्त का तरह कुपित होकर रोते-रोते कहती थी—'यह चाण्डाल का अन्न—प्राण जाय तो जाय, मैं अब चाण्डाल के अन्न का स्पर्श नहीं करूगी । इस चाण्डाल के घर से मेरी प्राण-प्यारी पुत्री उपवासिनी ही चली गई । हा ईश्वर ! निर्जला एकादशी के व्रत के दूसरे दिन मेरी प्यारी बेटी भूखी ही चली गई -मैंने किसके लिए भात बनाया था ?"

तर्क-पचानन ने कुछ डरकर इसके बाद फिर ब्राह्मणी से भोजनों के लिए अनुरोध नहीं किया । इसी प्रकार पाच दिन बीत गये । पाचवें दिन के बाद ब्राह्मणी शक्तिहीनता के कारण अचैतन्य हो गई । उस समय आत्मीय-स्वजनों ने उसके मुँह में एक-एक बूद करके दूध डालना शुरू किया । ब्राह्मणी जिस समय बेहोश होती थी, उस समय दूध का कोई-कोई बूद गले के भीतर उतर जाता था, परन्तु होश आते ही कोई भी उसके मुह में दूध नहीं डाल पाता था । छठे दिन वह पहिले की अपेक्षा अधिक

दुर्बल हो गई। उस समय वैद्य ने आकर कहा—"इनके जीने की आशा कतई नहीं है। सम्भवतः आज सन्ध्या तक इनकी मृत्यु होजायेगी।"

वैद्य की यह बात जैसे ही ब्राह्मणी के कानों में पहुंची, वैसे ही वह अपने को आसन्न-मृत्यु समझकर बारम्बार कहने लगी—"हे परमेश्वर! इस जीवन में मेरे लिए अब कोई दुख शेष नहीं रहा। यदि पुनः मुझे इस पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करना पड़े तो मेरे गर्भ से कभी कन्या-सन्तान न जन्मे।" यह कहते कहते ब्राह्मणी किंचित् उत्तेजित हो उठी, और जोश के साथ बारम्बार कहने लगी-"हे विधाता! ब्राह्मणकुल में कभी किसी के यहाँ कन्यासन्तान का जन्म न हो— ब्राह्मणकुल में कन्या न जन्मे— ब्राह्मण-कुल में कभी कन्या न जन्मे—यह दारुण यन्त्रणा भला कौन सह सकता है?— कौन सह सकता है?— क्यों कर सह सकता है?—देखो, देखो, एक बार मेरे हृदय पर हाथ रख कर देखो, छाती जल कर राख होचुकी है—" यह कहते कहते छाती के ऊपर हाथ पीट-पीट कर ब्राह्मणी बेहोश हो गई। उसका शरीर पहिले की अपेक्षा भी निस्तेज हो गया।

वैद्य ने कहा— वात का जोर कुछ विशेष बढ़ गया था, इसीलिए इस प्रकार जोर से प्रलाप करने लगी थी। अब वह जोर जाता रहा। ब्राह्मणी-जी को शीघ्र ही नारायण क्षेत्र में पहुचाने की व्यवस्था करो। अब अधिक समय नहीं है।

तर्क-पचानन ने उस समय स्त्री के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—"अन्त समय है, दुर्गति-नाशिनी-दुर्गा के

नाम का स्मरण करो।" स्वामी की यह बात सुनते ही ब्राह्मणी को होश हुआ— वह पुनः जोश में आकर कहने लगी— "चूल्हे में पड़े तुम्हारा दुर्गा नाम—एक लक्ष दुर्गा नाम का जप किये बिना किसी दिन पानी नहीं पिया— क्या उसी दुर्गा नाम के जप का यह फल हुआ?— मेरी छाती फटी जाती है— बेटी उपवासिनी ही चली गई—हे परमेश्वर— हे परमात्मन! यदि फिर कभी संसार में जन्म हो तो म्लेच्छकुल में हो, जिस से सन्तान का यह दारुण दुःख आखों न देखना पड़े। ब्राह्मणकुल में मेरा जन्म न हो। कलियुग के ब्राह्मण चाण्डाल हैं बल्कि चाण्डाल से भी गये बीते हैं, चाण्डाल से भी अधम हैं, चाण्डाल से भी निठुर हैं— अधम—निठुर—अधम—निठुर—अ—ध—।"

यही कहते कहते कण्ठावरोध हो गया। देखते ही देखते सन्तानवत्सला साध्वी ब्राह्मणी ने कुत्सित कुरीतियों से परिपूर्ण नरक सदृश बङ्गभूमि का परित्याग कर अमृतमय की अमृतमयी गोद में आश्रय लिया।



बङ्ग विधवाओं के चरित्र की आलोचना।

वैद्य महाशय सुदक्षिणा के मृत शरीर को देखकर लौटते वक्त रास्ते मे दो एक गृहस्थों के यहा तमाखू पीने को बैठे। गृहस्थ लोग पूछने लगे – "वैद्य महाशय, तर्क पचानन की लडकी को कैसा ज्वर हुआ था ?" वैद्य महाशय पहिले तो बोले, "हा, ज्वर विकार ही था। परन्तु बाद में चुपके चुपके कहने लगे—"अरे ज्वर किसे था ? — सम्भवत कुचरित्रा थी, इस लिए खुद ही विष खा लिया होगा, अथवा किसी आत्मीय स्वजन ने खिला दिया होगा।"

तर्क पचानन महाशय यदि इन्हीं वैद्य जी के यहा से विष खरीद कर लाते तो शायद वैद्य जी इस भेद को कहीं न प्रकट करते। परन्तु विष खरीदा गया था रूपनारायण सेन कविरञ्जन के यहा से। इस ओर पाठशाला का छात्र श्यामापद भट्टाचार्य भ्रम से इन रामरूप सेन कविरत्न को चिकित्सा के लिए बुला लाया था। बस, इसी में गडबड हो गया।

दो ही दिनों के भीतर गाव भर मे यह खबर उड़ गई कि तर्क-पचानन की कन्या विष खाकर मर गई। दुपहर के बाद तीसरे पहर गृहस्थों के यहा जिस समय पास पडोस की स्त्रिया आकर बैठतीं तो परस्पर इस प्रकार

की बातचीत करतीं—"बाबा! कलिकाल की स्त्रियों की माया किसी के जानने की नहीं। तर्क-पचानन की बेटी सुदक्षिणा के पेट में ऐसे ऐसे गुन भरे थे, हम तो यह स्वप्न में भी नहीं जानती थीं। देखने में ऐसी सीधी और भोली-भाली जान पड़ती थी कि उस पर कभी किसी को तनिक भी सन्देह नहीं हुआ। उसके मुंह की बात तक कभी किसी ने नहीं सुनी। कभी घर के बाहर नहीं निकलती थी। पुरुषों की बात तो दूर रही हम बूढ़ी-बूढ़ी स्त्रियों तक ने भी उसका मुंह सम्भाल कर नहीं देख पाया। उसके पेट में ये औगुन! इन कलिकाल की स्त्रियों की गति जानना हमारे लिए सर्वथा दुःसाध्य है।"

वैद्य महाशय के द्वारा ही यह भेद प्रकट हुआ था। परन्तु कुटिल-प्रकृति के मनुष्यों में सत्यासत्य के निर्णय की शक्ति नहीं होती। तर्क-पचानन मन ही मन सोचने लगे कि शिरोमणि की कन्या श्यामा ने ही यह सब रहस्य प्रकट कर दिया है। निरपराधिनी श्यामा के विरुद्ध तर्क-पचानन महाशय तीव्र क्रोधाग्नि में प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने द्वेषपूर्वक बेचारी श्यामा के नाम पर तरह तरह के झूठे अपवाद उड़ाने शुरू किये, और दिन-रात इस चेष्टा में रहने लगे कि किस प्रकार वे श्यामा के चरित्र को कलंकित कर के उसके वृद्ध पिता शिरोमणि जी को समाज में निरादृत करें। बस, इसी घटना से तर्क-पचानन और शिरोमणि, दोनों के बीच घोर शत्रुता का सूत्रपात हुआ था।

पाठकों को याद होगा कि शिरोमणि के पास जिस समय उनका छात्र वामाचरण दौड़ता हुआ आया था,

और नवकिशोर के विरुद्ध मिथ्या अपवाद उड़ाने की भूमिका बांध रहा था, उस समय शिरोमणि महाशय पहिले तो बड़े चकित हुए थे, उन्हें यह आशंका हुई थी, कि हमारी कन्या के विरुद्ध तर्कपंचानन जी पुनः कोई नया अपवाद उड़ावेंगे। परन्तु वामाचरण ने जिस समय नवकिशोर के विरुद्ध अपवाद की बात कही, उस समय उन्होंने बड़े उत्साह के साथ उस के सङ्ग जा कर नवकिशोर का सर्वनाश किया।

शिरोमणि की कन्या श्यामा का चरित्र बहुत ही उज्वल था। वह कैसी पवित्र चरित्रा थी, और उसका अन्तरात्मा कैसे निर्मल धर्म-भावों से परिपूर्ण था, पाठकों को आगे इसका परिचय मिलेगा। परन्तु ईर्ष्या द्वेष से परिपूर्ण इस नरक-तुल्य बंगदेश में पवित्र से पवित्र चरित्र को भी मिथ्या कलंक से कलंकित करने में किसी को तनिक भी संकोच नहीं होता।

तर्कपंचानन महाशय ने निरपराधिनी बंग विधवा श्यामा के विरुद्ध स्वेच्छापूर्वक जहां तहां अपवाद उड़ाने शुरू किये। गांव में सब किसी को निश्चय हो गया कि वास्तव में श्यामा कुपथगामिनी है। परन्तु किसने श्यामा को कुपथगामिनी बनाया, यह आज तक किसी को ज्ञात नहीं हुआ। इस लिए शिरोमणि के ऊपर अन्य कोई सामाजिक दण्ड तो डाला नहीं जा सकता, सिर्फ उनकी कन्या दुराचारिणी प्रसिद्ध हो गई, और इस से समाज में उनकी निन्दा होने लगी। हा बंगकुलाङ्गारो! हा हीनबुद्धि बंग-महिलाओ! इस प्रकार के मिथ्या अपवादों को उड़ाने के कारण ही यह बंग समाज दिनों दिन अध:पतित होता जाता है, तथा

कभी यह तुम्हारे ध्यान में नहीं आया ?

एक दिन तीसरे पहर मुहल्ले की नाइन, रूपा की मा, जगाई की मां इत्यादि गाँव की विशेष प्रतिष्ठित रमणियां कासिमबाजार की रेशम की कोठी के दीवान हरगोविंद मुकर्जी की विधवा बहिन, राधामणि ठाकुरानी के दरबार में आ उपस्थित हुई। ठाकुरानी जी के इजलास में, आई हुई समस्त स्त्रियों के बैठ जाने के बाद, जगाई की मा ने श्यामा की बात उठाई। राधामणि ठाकुरानी ने कहा—"इन अभागिनियों को बिष देकर मार डालना ही अच्छा। मैं भी आठ बरस की अवस्था में विधवा हो गई थी। परन्तु मेरे तीन पन बीत गये, अब एक पन रह गया है, भला कोई बता दे कि आज तक मेरे सम्बन्ध में गाँव भर में किसी ने कोई बात कह पाई हो।"

यह बात सुन कर रूपा की मा बोली—"यदि आप ही के समान सब सती साध्वी होतीं तो फिर कहना ही क्या था। ठाकुरानी दीदी। यही कारण है कि फुर्सत के वक्त आप के पास तनिक बैठ जाती हूं। और किसी के घर में साल में एक दिन भी तो नहीं जाती।"

राधामणि ठाकुरानी बड़े घर की स्त्री थीं। उनके बड़े भाई हरगोविन्द बाबू रेशम की कोठी के दीवान थे। उन का मासिक वेतन पचीस ही रुपया था, पर ऊपर की आमदनी बहुत थी। हर साल कोई डेढ लाख रुपया पैदा करते थे। कम्पनी के साहब लोग उन पर विशेष श्रद्धा रखते थे। हरगोविन्द बाबू के छोटे भाई राधागोविन्द बाबू रेशम की कोठी के क्लर्क थे। मासिक वेतन १२) था। परन्तु उन की भी सालाना आमदनी सोलह, सत्तरह हजार से कम

नहीं थी । यदि वे चाहते तो सहज ही ढाके की नमक की गोदाम का दीवानी पद प्राप्त कर सकते थे । उस में प्राय लाख डेढ-लाख रुपया सालाना आमदनी होती । परन्तु घर छोड़ कर बाहर रहने से घर की जमींदारी इत्यादि का ठीक इतजाम न हो सकता , इस लिए वे उपर्युक्त दीवानी प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते थे ।

राधामणि ठाकुरानी के दो भाई मानो दो इन्द्रजीत थे। इस लिए वे बडे घर की स्त्री गिनी जाती थीं । इन की बाते कुछ अधिक लम्बी चौड़ी होती थीं, बडे ऊँचे-ऊंचे नैतिक भावों से परिपूर्ण रहती थीं । यदि ये बडे घर की स्त्री न होतीं तो सम्भवत इस घटना के पचीस बरस पहिले ही इन्ह किसी वैष्णाश्रम में आश्रय ले लेना पड़ता । इन की अवस्था इस समय प्राय पचास वरस के लगभग है, परन्तु चारित्रिक दोष अब भी दूर हो सके हों, सो बात नहीं । हा, जैसे पहिले थे, वैसे अब नहीं हैं । यदि हम इनके जीवन की समस्त पूर्व घटनाओं का उल्लेख करें तो हमारा उपन्यास अश्लीलता से परिपूर्ण हो जावेगा, पाठिकाओं के पढने योग्य न रहेगा । अतएव सक्षेप मे हम सिर्फ इतना ही कहते हैं कि प्राय पचीस बरस हुए, इन्होंने एक बार अपने घर के पहरेदार जुल्मतअली के साथ भागने की चेष्टा की थी । क़ासिमबाज़ार के पास पकड़ी गई । बाबू राधागोविन्द ने उसी दिन से बगाली मुसलमानो को नौकर रखना छोड़ दिया । पहरे के काम पर अब उन्होंने हिन्दू सिपाहियों को नियुक्त कर रखा है ।

परन्तु राधामणि ठाकुरानी बडे घर की स्त्री हैं । वे एक गरीब ब्राह्मण नवकिशोर की गांना नहीं हैं । राधामा

पण्डितों को बाबू राधागोविन्द हरगोविन्द के घर से बारह-चौदह हजार रुपया साल की आमदनी है । ऐसे बड़े आदमी को भला कौन बिरादरी से अलग कर सकता है ? निदान राधामणि ठाकुरानी भद्र समाज में बड़े गर्व के साथ चलती फिरती हैं । अन्यान्य स्त्रियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार के अपवाद की बात सुनते ही कह उठती हैं—"मैं आठ बरस की अवस्था से विधवा हूं, परन्तु आज तक मेरे सम्बन्ध में किसी ने रत्ती भर बात न कह पाई । अपने में ऐब न हो तो कोई कैसे कुछ कह सकता है ?"

इस प्रकार राधा ठाकुरानी के घर जुड़ी हुई स्त्रियों की सभा में श्यामा के चरित्र की आलोचना होती रही । परन्तु हम इस समय राधामणि ठाकुरानी के घर से बिदा ग्रहण करते हैं, और पाठशाला के छात्रों ने श्यामा के चरित्र की जिस प्रकार आलोचना की थी, नीचे उसका उल्लेख करते हैं ।

एक-एक करके पाठशाला के छात्रगण इकट्ठे हुए, और श्यामा के चरित्र की आलोचना करने लगे । अध्यापक महाशय जिस समय मौजूद नहीं रहते थे, उस समय छात्रों को इस आलोचना का काफी मौका मिलता था । हरिदास तर्क-पञ्चानन की पाठशाला में कितने ही छात्र थे । उनमें से एक ने कहा—श्यामा के सम्बन्ध में जो कुछ सुना गया है, उस में रत्ती भर भी झूठ नहीं है । श्यामा का चरित्र कदापि अच्छा नहीं हो सकता । भला शास्त्र की बात मिथ्या हो सकती है ? विष्णु शर्मा ने कहा है—

*स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
तेन नारद ! नारीणां सतीत्वमुपजायते ।

दूसरा छात्र बोला—ठीक ही कहते हो। शास्त्र कदापि मिथ्या नहीं। विष्णु शर्म्मा ने और भी तो कहा है—

न स्त्रीणाम प्रिय कश्चित् प्रियो वापि न विद्यते।
गाव स्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम्।

तीसरा छात्र बडा दुष्ट था। उसने जो श्लोक पढा उसकी प्रथम पक्ति हम नीचे उद्धृत करते हैं। जिन पाठकों की इच्छा हो, वे इस श्लोक को हितोपदेश में पूरा पढ सकते हैं। इस घृणित श्लोक को पूरे रूप में उद्धृत करने से पुस्तक भद्र समाज के पढने योग्य न रहेगी—

सुवेशा पुरुष दृष्ट्वा भ्रातर यदिवासुतम्।

× × × × ×

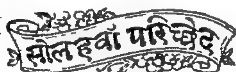
पाठशाला के छात्रगण इस प्रकार पुस्तकों के वाक्यों के प्रमाण दे देकर नारी-जाति के चरित्र की आलोचना कर रह थे। परन्तु जिस देश के पुरुषों में नारी जाति के प्रति ऐसे घृणित विश्वास फैले हुए हैं, जिन्होंने नारी जाति के प्रति यथोचित सम्मान और श्रद्धा प्रकट करने की शिक्षा ही नहीं पाई, उनका जातीय जीवन नितान्त घृणित और निन्दनीय है, इसमें सन्देह ही क्या ?

उन दिनों देश की सामाजिक अवस्था ऐसी शोचनीय थी, और इसी कारण उस समय बंगवासियों को, अप कुकर्मों के प्रतिफलस्वरूप नानाप्रकार के अत्याचारों से पीडि

* मूल लेखक ने लिखा है—"हिन्दू शास्त्रकारों के इन घृ मत प्रतिपादक श्लोकों का बंगला अनुवाद लिखने में, पुस्तक अश्लील

होना पड़ा था। बंगाल की उसी तत्कालीन सामाजिक अवस्था का वर्णन पिछले दो परिच्छेदों में किया गया। इस प्रकार के समाज में वास्तविक देशहितैषिता का उद्भव नहीं होता। वरन् उपर्युक्त सामाजिक अवस्था के द्वारा समाज के प्रत्येक स्त्री पुरुष का हृदय दुष्ट इच्छाओं का आधार बन जाता है।





अनाथा कन्याश्रय।

छिदाम विश्वास की स्त्री की दुरवस्था देखकर सावित्री मन ही मन अत्यन्त दुखित होने लगी। सोचने लगी, इस संसार के धन-सम्पत्ति आदि सभी पदार्थ असार हैं। आज से दो तीन बरस पहिले छिदाम विश्वास की स्त्री की सेवा-शुश्रूषा के लिए आठ दस दास-दासियां नियुक्त थीं, पालकी पर सवार हो कर वह प्रतिदिन गङ्गा स्नान करने जाया करती थी, आज उसकी यह दुर्दशा है।

छिदाम की स्त्री एक फटा पुराना वस्त्र पहिने थी, उसके अतिरिक्त दूसरा वस्त्र उसके तन पर न था। आरा-टून साहब की स्त्री के दिये हुए चार-पांच कपड़े सावित्री

के साथ थे। उनमें से दो कपड़े उसने छिदाम की स्त्री को दे दिये, और बाद में उन से विदा ग्रहण कर वह कलकत्ते की ओर अग्रसर हुई।

सावित्री अन्यान्य मुसाफिरों के पीछे-पीछे चलने लगी। वह सदा ही सब के पीछे रहती थी। इस प्रकार समस्त पथिकों के पीछे-पीछे चलने के दो कारण थे। एक, वह बहुत देर तक जल्दी-जल्दी चल नहीं पाती थी, इसलिए धीरे-धीरे चलती थी। दूसरे, स्वेच्छा से वह अन्यान्य पथिकों के कुछ दूर पीछे रहना पसन्द करती थी। सोचती थी, मैं अबला हू, कौन जाने, कहीं सब के संग साथ मिलकर चलने से कहीं कोई व्यक्ति दुर्वासना से धर्म नष्ट करने की चेष्टा न करे।

शाम हो आई। जो पथिक आगे-आगे जा रहे थे वे सामने के बाजार मे पहुचते ही अपने-अपने ठहरने का प्रबन्ध करने लगे। सावित्री अभी बाजार से बहुत फासले पर थी। सामने उसने एक बरगद का पेड़ देखा। बाजार इस बरगद के पेड़ से भी प्राय चार-पाच सौ हाथ की दूरी पर था। उससे और आगे न चला गया। मन में सोचा कि इसी पेड़ के नीचे थोड़ा सा दम लेकर बाद में बाजार के भीतर जाऊ। पेड़ के नीचे पहुची तो उसने सामने तीन कन्याए देखीं। उनमे से एक की अवस्था सात बरस से अधिक न होगी। दूसरी की अवस्था ग्यारह बरस की जान पड़ती थी। तीसरी कन्या नितान्त दुर्बल और शक्तिहीन हो रही थी, उसकी अवस्था कम से कम सोलह बरस की होगी। वह पृथ्वी पर लेटी हुई

देख कर सावित्री ने सोचा कि सम्भवतं ये कन्याए कहीं को जा रही हैं; इस लिए मैं भी बाजार में जाकर इसी पेड के नीचे इन कन्याओं के साथ वेखटके बिता सकूगी। यह सोच कर वह पेड के नीचे इन्हीं ाओं के पास बैठ गई। परन्तु पास बैठते ही उसने कि वे तीनों ही कन्याए आसुओं की धारा बहा रही सोलह बरस की युवती कन्या कह रही है—"हा पर- र! इस समय यदि मेरी मृत्यु हो गई तो इन दो क्या हाल होगा?"

सावित्री इनके पास पहुच कर चुपचाप बैठी रही। बात पूछने का साहस उसे न हुआ। इन्होंने भी एक सावित्री से कोई बात न पूछी। थोड़ी देर बाद षोडशवर्षीया युवती ने अत्यन्त क्षीण स्वर मे सावित्री पूछा—"आप कहा जायँगी?"

सावित्री—मैं कलकत्ते जाऊगी।

युवती ने मन ही मन सोचा—"सम्भवत ये भी हमारी विपद्ग्रस्त हैं। यह सोचकर पुन प्रकट रूप में सावित्री बोली—"आप किसी भले घर की स्त्री जान पडती हैं, अकेले ही कलकत्ते जा रही हैं?"

सावित्री—विपत्ति पडने पर मनुष्य क्या नहीं करता?

युवती—मैं भी यही सोच रही थी कि आप भी री तरह किसी दुरवस्था में फँसी हुई हैं। आप के ! क्या नमक का कारबार करते थे?

सावित्री—नहीं, मैं तो तन्तुकारों की सन्तान हू। कम्पनी आदमियों ने दादनी के रुपये के लिए हमारा घर मार लिया है।

युवती — कम्पनी के आदमी क्या सभी का घरबार लूट करते हैं? मैं तो समझती थी, जो नमक का कारबार करते हैं, उन्हीं की आफ़त है।

सावित्री — क्या आपका घर भी कम्पनी के आदमियों ने लूट लिया है?

युवती — हा परमेश्वर! हमारा क्या सिर्फ घर ही लूट लिया है? हमारा तो सर्वनाश कर दिया है। जातीय मान अभिमान कुछ भी न रह गया। हमारे पिता को शायद कलकत्ते की जेल मे कैद कर रक्खा है।

सावित्री — आपका घर कहां है?

युवती — वर्धमान के राजमहल का हाल तो सुना ही होगा। उस राजमहल से हमारा निवासस्थान एक मञ्जिल के फ़ासिले पर है। कलकत्ते की जेल में क्या आपका कोई आत्मीय कैद है?

सावित्री — हमारे बड़े भाई तथा स्वामी को शायद कलकत्ते की जेल में क़ैद कर रक्खा है।

युवती — हा ईश्वर! तुम क्या इस संसार में नहा हो। कम्पनी के आदमियों का यह अन्याय क्या तुम नहीं देख रहे हो?

सावित्री — आप के पिता को कम्पनी के आदमियों ने क्यों कैद किया है?

युवती — वे सारी बातें कौन कहे? हमारा सर्वनाश कर डाला है। इज्जत प्रतिष्ठा, धन माल सब कुछ चला गया— घर मकान कुछ भी न रहा।

यह कह कर रोते रोते युवती सविस्तार अपना सारा वृत्तान्त सुनाने लगी। बीच बीच में उसे कण्ठावरोध

ता था । अपनी सारी कथा सुनाते समय इस युवती ने कुछ कहा था, उसका सारांश हम नीचे उद्धृत करते । हमारी पाठिकाओं का हृदय स्वभवत ही दयालु है । तएव युवती ने जिस प्रकार कातर-कण्ठ और करुण-स्वर अपनी विपत्ति कहानी कही थी उसे यदि हम उसी के ब्दों मे लिखें तो वे अपनी आंखों की अश्रुधारा के वेग को कने मे कदापि समर्थ न होंगी।

इस युवती का नाम अन्नपूर्णा है। इसके साथ की दो न्य बालिकायें इसकी सगी छोटी बहिनें हैं । उन मे से ी का नाम जगदम्बा और छोटी का नाम अहिल्या है । मान ज़िले के अन्तर्गत किसी एक प्रसिद्ध ग्राम मे मदन त नाम के एक नमक के व्यापारी थे । ये तीनो उन्हीं नदत्त की बेटियाँ हैं । मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत जलामुठा ना क जमींदार लक्ष्मीनारायण चौधरी * के यहा नमक कारखाना था । मदनदत्त एव अन्यान्य ज़िलो मे रहने ले नमक के कितने ही व्यापारी लक्ष्मीनारायण चौधरी के ा से नमक खरीद खरीद कर व्यापार करते थे । मदन एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे, चार पाच हज़ार रुपये का नका कारबार था ।

लार्ड क्लाइव ने जिस समय नमक के व्यापार का काधिकार स्थापित किया, उसके बाद कलकत्ते मे अगरेजों जो वणिक-सभा सस्थापित हुई थी, और उस सभा के भ्यों ने जिस प्रकार के भयानक अत्याचार और अवैध वहार आरम्भ किये थे, उनका वृत्तान्त इस से पहिले

* Vide Note (15) in the appendix

लिखा जा चुका है। उस वणिक-सभा के अनुचित बर्ताव के कारण ही लक्ष्मीनारायण चौधरी ने अपना नमक का कारखाना उठा दिया। उन्होंने देखा कि अगरेज़ी वणिक सभा के हाथों बारह आना मन के भाव में नमक बेचना पड़ता है, इससे बचत कुछ भी नहीं होती। यह सोच कर उन्होंने नमक तैयार कराने का कार बार क़तई छोड़ दिया। परन्तु अँगरेज़ व्यापारियों को बंगालियों की बात का एतबार न होता था। उन्हें शक हुआ कि लक्ष्मीनारायण चौधरी गुप्त रूप में नमक तैयार कर के दूसरे व्यापारियों के हाथ बेचता है। अगरेज़ी वणिक-सभा के कर्मचारियों ने इस प्रकार का सन्देह करके लक्ष्मीनारायण चौधरी के प्रधान गुमाश्ता सागर पोद्दार को गिरफ्तार किया। वेरेलस्ट और साइक साहब के गुमाश्तों ने सागर पोद्दार को गिरफ्तार करते वक्त उसका घर तक लूट लिया, और मार मार कर उसे धमकाने लगे कि इस साल लक्ष्मीनारायण चौधरी के कारखाने से जिन जिन व्यापारियों ने नमक खरीद किया है, उनके नाम तुम्हें बताने पड़ेंगे। सागर बारम्बार यही कहता था कि "चौधरी महाशय ने नमक का कारखाना क़तई छोड़ दिया है।"

वणिक-सभा के गुमाश्तों ने जब देखा कि सागर किसी का भी नाम नहीं बतलाता तो उसे कलकत्ते की जेल को भेज दिया। वणिक सभा के कलकत्ते में रहने वाले कर्मचारियों ने वेरेलस्ट साहब की आज्ञानुसार सागर से उन सब व्यापारियों के नामों की एक फर्द तैयार करा ली, जो गत पिछले सालों में लक्ष्मीनारायण चौधरी के कारखाने से नमक खरीदते रहे थे। उसी फेहरिस्त के अन्तर्गत दयाराम

ले के मदनदत्त एवं अन्यान्य व्यापारियों के नाम थे। णिक सभा के अध्यक्षो ने भिन्न-भिन्न जिलों के नमक की ठियो के अगरेजी एजन्टों को ऐसी ही फर्द तैयार करने लिए नमक के व्यापारियों की खानातलाशो लेने की आज्ञा । उस समय बर्धमान की कोठी के एजन्ट जानस्टन हब थे। जैसे ही उन्हें मदनदत्त की खानातलाशी लेने हुक्म मिला वैसे ही उन्होंने फौरन दीवान भवतोष वन्द्यो-ध्याय एवं अन्यान्य प्यादे बरकदाज तथा सिपाहियो को नदत्त के यहां खानातलाशी लेने के लिए भेजा। इन्होने नदत्त की खानातलाशी ली, सिर्फ तीन सेर नमक मिला। स्थ के यहा चार पाच सेर नमक रोजाना खर्च के लिए धारणत हर वक्त बना रहता है परन्तु भवतोष वन्द्योपाध्याय र जानस्टन साहब ने निश्चय कर लिया कि मदन वास्तव गुप्त रूप से लक्ष्मीनारायण चौधरी के गुमाश्ता के पास अब भी नमक खरीदता है, अथवा अन्यथा क्या किसी स्थ के घरमें साधारण खर्च के लिए कभी इतना नमक मा रह सकता है? उन्होंने यह भी कहा कि साधारण र्च के लिए लोगों को जितने नमक की जरूरत पड़ती है, ना, वे हर रोज बाजार से खरीद कर लाया करते हैं। तएव अवस्था घटित प्रमाण के द्वारा मदनदत्त का अपराध सन्देह रूप में प्रमाणित हो रहा है। परन्तु अगरेजी विचार णाली के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण न प्राप्त होने पर अप-धी को सन्देह का फल नहीं दिया जा सकता। अतएव नदत्त के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष प्रमाण पाया जाता है या हीं, इस पर विचार होने लगा।

जानस्टन साहब खाना खा रहे हैं। आजिमअली खान-

सामा रकाबी मे मुर्गी का एक रोट रखे साहब के सामने खड़ा है। साहब बड़े कायदत्त हैं। उसी समय मदन के अपराध का विचार आरम्भ हुआ। उन्होंने आजिमअली से पूछा—"तेरे घर खाने के लिए हर रोज कितना नमक खरीदा जाता है?" आजिमअली ने कहा—"हुजूर! हमारे घर के लोग प्रत्येक बाजार के दिन एक पाव नमक खरीद कर रख छोड़ते हैं, इतने से सात आठ दिन खूब मजे में चल जाते है। सात दिन के पहिले और नमक नहीं लाना पड़ता।" साहब ने कहा—"ठीक कहते हो?"

आजिमअली ने कहा—"हुजूर! प्राण जाने पर भी झूठ नहीं कह सकता। मेरे बाप दादा क्या सात पुश्तों में से किसी ने कभी झूठ नहीं बोला।"

मदनदत्त के गुप्त रूप से नमक खरीदने-बेचने का अपराध आजिमअली के इजहारों से सर्वथा प्रमाणित हो गया। आजिमअली के घर के लोग जब हर हफ्ते में बाजार के दिन एक पाव नमक खरीद कर घर का काम चला लेते हैं, तब बंगदेश के अन्यान्य सभी गृहस्थ हर हफ्ते बाजार के दिन एक पाव नमक खरीद कर गृहस्थी का खर्च चला सकते हैं। इस विषय मे सन्देह ही क्यों?

इस प्रकार प्रमाण के द्वारा मदनदत्त का, गुप्तरूप से नमक खरीदने बेचने का अपराध प्रमाणित हुआ। जानस्टन साहब ने वणिक-सभा के अध्यक्षों को रिपोर्ट भेजी कि नियमित खर्च के लिए बंगाली गृहस्थों के घर में जितना नमक रहता है, उसकी अपेक्षा बारह गुना नमक खानातलाशी के वक्त मदनदत्त के घर में मिला। इससे नि:सन्देह प्रमाणित होता है कि मदनदत्त गुप्तरूप से नमक खरीदता

बेचता था । अन्यथा इतना नमक उस के घर कहा से आता । इसके अतिरिक्त गवाह के इजहारों से भी उसका अपराध प्रमाणित हो चुका है ।

इस ओर खानातलाशी के वक्त मदनदत्त की स्त्री और कन्याए घर से भाग कर एक जगल के भीतर जा घुसी थी । खानातलाशी के वक्त कोठी के गुमाश्ता और प्यादा बरकंदाज तथा सिपाहीगण घर के भीतर जो कीमती चीजें पाते, उन्हें हजम कर लेते थे । सदूक और बक्सों को तोड-ताड कर रुपया पैसा निकाल लेते थे । वर्तमान समय में जिस प्रकार पुलिस के कर्मचारियों में से जो कोई घूंस लेते हैं, उन्हें जब कभी किसी कत्ल के मुकदमें की तहकीकात का भार सौंपा जाता है तो मन ही मन बड़े आनन्दित होते है, चार पैसों की आमदनी का मौका हाथ आता है । इसी प्रकार उस समय खानातलाशी का परवाना प्राप्त होने पर नमक की कोठियों के गुमाश्तो और सिपाही-प्यादों के हर्ष का वारापार नहीं रहता था ।

मदनदत्त की खानातलाशी के वक्त उसके घर जो कुछ कीमती माल असबाब था, वह सभी गुमाश्तो और सिपाही प्यादों ने हजम कर लिया ।

खानातलाशी के दूसरे दिन मदनदत्त की स्त्री अपनी तीनों कन्याओं को साथ लेकर उस सूने घर में वापिस आई । परन्तु गाव के लोग कहने लगे — " इनके घर में जब कम्पनी के सिपाही प्यादे घुसे तो अवश्य ही ये जाति भ्रष्ट हो चुकी । " किसी किसी ने यहा तक कहा कि " कम्पनी के सिपाहियों ने मदनदत्त की स्त्री और बड़ी लड़की की इज्जत ले ली । "

मदनदत्त की स्त्री और तीनों कन्याएँ जाति-भ्रष्टा ठहरा दी गई ।

हाँ परमेश्वर ! इस नरक तुल्य वंगदेश में — इस निन्दनीय समाज मे — मनुष्य को जन्म लेना पड़ता है ! अत्याचार-पीडित मदनदत्त के परिवार के प्रति ग्राम निवासियों ने तनिक भी सहानुभूति प्रकट न की, वरन उल्टा उसे समाजच्युत कर डाला ।

मदनदत्त की स्त्री और तीनों कन्याएँ जाति-भ्रष्टा बन कर अपने घर में रहने लगीं । परन्तु उनका सारा माल असवाब कम्पनी के गुमाश्ता और सिपाही-प्यादे लूट ले गये थे । किस प्रकार वे अपने दिन गुज़ारेंगी, इसका कोई ठीक न था । मदनदत्त की स्त्री और कन्याओ के तन पर सोने चांदी के जो दो एक आभूषण थे, उन्हें बहुत थाडे मूल्य में बेंच बाच कर पेट पालने की व्यवस्था करनी पड़ी । परन्तु उन सब आभूषणो के मूल्य से दो तीन महीने के भोजनो की गुजर न हुई । मदनदत्त की स्त्री क्लेश एवं अन्न-चिन्ता के कारण दिनो दिन अत्यन्त दुर्बल होती गई । पति जेल में गया, स्वय अपनी तीनों कन्याओं के सहित जातिच्युत हुई, तिस पर पेट के लिए भोजनो का कोई प्रबन्ध नहीं । इससे भी अधिक मनुष्य की और क्या दुर्दशा हो सकती है ? दिन रात इसी प्रकार की चिन्ता करते करते मदन की स्त्री एक दिन अचानक अचैतन्य हो गई और थोडे ही समय के बाद उसका प्राणान्त हो गया । दुःखिनी रमणी ससार के समस्त क्लेशो से मुक्त हुई ।

मदनदत्त की स्त्री की मृत्यु के बाद लोग उसकी दाह

क्रिया के लिए तैयार न हुए। कितने ही यह कहने लगे कि जाति-भ्रष्टा की दाह-क्रिया करने पर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। गाव के दो चार आदमी जो मदनदत्त के विशेष कृतज्ञ थे, और समय समय पर मदनदत्त ने जिनके साथ अनेक उपकार किये थे, उनकी बारम्बार यह इच्छा थी कि हम मदनदत्त की स्त्री की दाह क्रिया करें और उनकी निराश्रित कन्याओं को अपने यहां आश्रय दें। परन्तु डर यह था कि ऐसा करने पर गाव के अन्यान्य लोग उन्हें बिरादरी से बाहर कर देंगे और समाजच्युत कर डालेंगे। इसी से वे भी मदनदत्त की स्त्री का दाह संस्कार करने नहीं आये। मदन की तीनो कन्यायें कुत्ता बिल्ली के बच्चों की तरह घर घर घूमने लगीं, परन्तु उनकी यह दुर्दशा देख कर गाव के भद्र समाज में किसी का भी कलजा न पसीजा। मदन की बड़ी कन्या अन्नपूर्णा का विवाह बाल्यावस्था में ही हो चुका था, परन्तु उसका पति उस पर प्रेम नहीं रखता था। इसीलिए वह सदा अपने पिता ही के घर रहा करती थी। पिता का घर लुट जाने के बाद अन्नपूर्णा एक बार अपने ससुर के पास गई थी, परन्तु ससुर ने उसे अपने घर में न ठहरने दिया। वे बोले — "बेटी! मैं यहा का एक गरीब आदमी हू, मेरी जाति बिरादरी के दस पाच घर भी तो यहा नहीं हैं। लोग शत्रुता करके सहज ही मुझे नक्कू बना सकते हैं। फौरन ही वे मुझे अलग कर बैठेंगे। इस लिए मैं इस समय तुम्हें घर में न रख सकूँगा। फिलहाल तुम अपनी मा के साथ रहो, तुम्हारे पिता यहाँ के एक प्रभावशाली और प्रतिष्ठित आदमी हैं। वे जैसे ही जेल से छूट कर

आवेंगे, वैसे ही समाज में फिर तुम्हारा चलन हो जावेगा। तब कोई तुम्हे जाति-भ्रष्ट न कहेगा, और उस समय तुम हमारे घर आकर स्वच्छन्दता से रह सकोगी।"

जिस दिन मदन की स्त्री का प्राणान्त हुआ उस दिन भी तीसरे पहर के वक्त अन्नपूर्णा अपनी दोनों बहिनों को साथ ले अपने सास ससुर के पास गई, और उनके पांव पकड कर रोते रोते कहा — "मेरी मा की दाह क्रिया कराने की कुछ चेष्टा कीजिए।" परन्तु उसके ससुर ने इस बार भी वही पहिले वाली बात कही — "बेटी! मैं गाव का एक गरीब और निर्बल आदमी हूं। मैं इन बातों का साहस नहीं कर सकता। तुम्हारे पिता के घराने में बहुत से आदमी हैं उन्हीं लोगों के पास जाओ।"

अन्नपूर्णा निराश हो घर लौट आई। सवेरे आठ बजे के समय उसकी मा का प्राणान्त हुआ था, परन्तु सन्ध्या होने आई, अभी तक उसकी अन्त्येष्टि क्रिया का कोई प्रबन्ध नहीं हुआ। माता का मृत शरीर घर के भीतर पड़ा था। मदनदत्त के पुराने नौकर पेलाराम चाण्डाल की माता इन तीनों कन्याओं की दुर्दशा देखकर दुपहर के बाद इन के पास आई।

पेलाराम चाण्डाल का घर मदनदत्त के मकान के बाहरी हिस्से के पड़ोस ही में था। वह फूस की एक छोटी सी मड़ैया में रहता था। पहिले वह मदनदत्त के घर कभी कभी मजदूरी किया करता था और लकडी काटता था। मदन की स्त्री को पेलाराम मालकिन मां कहा करता था। मदन की कन्याओं का दुर्दिन देखकर उसके हृदय में दया

का सञ्चार हुआ। इस अशिक्षित चाण्डाल के हृदय में दया का सञ्चार होना कुछ असम्भव न था। यह एक अत्यन्त हीन जाति का आदमी था। इसके हृदय में किसी प्रकार का जात्याभिमान न था। विशेषतः पेलाराम ने पाठशाला में कभी संस्कृत का अध्ययन नहीं किया था। इस लिए रूखे ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा उसका हृदय अभिमान और अहमन्यता से परिपूर्ण नहीं हुआ था। पेलाराम ने जब देखा कि कोई मदनदत्त की स्त्री का दाह संस्कार करने नहीं आया, तो उसने कहा — "गांव का कोई साला आवे या न आवे, मैंने अपनी मालिकिन मा का नमक खाया है, मैं अकेला उसका दाह संस्कार करूँगा। मेरी जाति बिरादरी के लोग मुझे बिरादरी से निकाले तो निकाल दें, कोई पर्वा नहीं, मैं किसी साले को नहीं डरता।"

यह कह कर पेलाराम ने अन्नपूर्णा से कहा — "दीदी कोई साला माता का दाह-संस्कार करने नहीं आया। यदि आप की आज्ञा हो तो मैं अपनी मालिकिन मा का दाह-संस्कार करूँ।" अन्नपूर्णा की अवस्था इस समय १६ बरस की है। हिन्दुओं के आचार व्यवहार को वह बहुत अच्छी तरह जानती है। उसके पिता वैष्णव धर्मावलम्बी स्वर्णकार थे। चाण्डाल यदि उसकी माता के शव को स्पर्श भी कर लेगा तो वह अधोगति को प्राप्त होगी— अन्नपूर्णा इस प्रकार का विश्वास रखती है। अतएव पेलाराम की बात सुनकर वह हाहाकार करके रोने लगी। जिस लिए अन्नपूर्णा रो उठी उसे पेलाराम ने भली भांति समझ लिया, और उस दशा में बहुत कुछ सोच-समझकर वह दो चार वैरागियों को तलाश कर

लाने के लिए चल दिया। बंगाल के प्राय प्रत्येक प्रदेश में वैरागियों का एक न एक दल मौजूद रहता था, थोड़े से रुपयों की प्राप्ति का ढङ्ग देखते ही वे मृत शव का दाह कर दिया करते थे। वर्तमान समय में भी मेदिनीपुर आदि जिलों में इस प्रकार के वैरागियों के दल पाये जाते हैं। मदनदत्त जिस गांव में रहते थे, उस गांव के पास ही एक गांव में इस प्रकार के वैरागियों का एक दल रहता था। पेलाराम ने उनके अखाड़े के पास जाकर दूर ही से उन्हें बड़े उच्च स्वर से पुकारा—"ओ बाबा जी—ओ—ओ—बाबा जी हो—चार पांच आदमी जल्दी से चले आओ। तुम्हारे लिए दही-चिउरों का ढङ्ग लगाया है। तुम्हें दही-चिउरा उड़ाने के लिए बीस आने नक़द मिलेंगे, हमारी मालिकिन मा का दाह-संस्कार कर जाओ।"

वैरागियों ने सोचा कि मदनदत्त की कन्या घोर आपदा में फंसी हुई है। उसकी माता का दाह करने के लिए यदि दिखावे के लिए, पहिले हम ज़रा आनाकानी करें और ज़्यादा रुपया मांगे तो अवश्य ही वह पांच सात रुपया देने पर राज़ी हो जावेगी। यह सोच कर उन में से एक ने कहा—"भाई हम पांच रुपये से कम में नहीं जावेंगे।"

परन्तु पेलाराम उनके आन्तरिक भाव को पहिचान कर क्रोधपूर्वक बोल उठे—"अरे साले वैरागी! तेरी जाति का तो स्वभाव ही यह है। तूने समझा होगा पेलाराम की बड़ी गौं पड़ी है। अकेला पेलाराम ऐसे तीन शवों का संस्कार कर सकता है। दूसरे के यहां सवा रुपया लेकर अपने ही आप ईंधन तक चीर-फाड़कर दाह संस्कार

कर आते हो—यहा ईंधन हम स्वय चीर-फाड़ देंगे—अच्छा तुम न आओ, अपने घर बठो। हमारी मालिकिन मा पतली दुबली छोटी लक्ष्मी जैसी तो हैं, हम दो घटे के भीतर उनकी दाह-क्रिया समाप्त कर डालेंगे।"

वैरागियों ने देखा, पेलाराम हाथ से निकला जाता है। सवा रुपये से ज्यादा देने वाला आदमी नहीं है। इस लिए लिबिड-सिबिड दो चार बात कह कर वैरागी लोग पेलाराम के साथ हुए और मदनदत्त के घर आये। तीन चार घटे के भीतर ही उन्होंने मदनदत्त के घर के निकटवर्ती तालाब के किनारे उनकी स्त्री का दाह सस्कार समाप्त किया।

मदनदत्त की स्त्री का दाह करते समय उसकी तीनों कन्याए श्मशान के पास ही बैठी थीं। रात के दस-ग्यारह बजे दाह-क्रिया समाप्त हुई। परन्तु अल्पवयस्का कन्याओं के रहने सहने के लिए अब कोई जगह न रह गई। उन्हें बड़ा भय लगा। घर में किसी बड़े बूढे के न होने के कारण उन्हें वहा रहने का साहस न होता था। यह देख कर पेलाराम ने अन्नपूर्णा से कहा—"दीदी! आप फिलहाल बाबाजी के इसी अखाड़े मे चली जाय, वहीं रहें, वहा और भी दो चार स्त्रिया रहती हैं। पीछे जब मालिक छूटकर आवे तब घर में आ जाना।"

अन्नपूर्णा न देखा कि वैरागियो के अखाड़े के अतिरिक्त और कहीं जाने के लिए ठौर नहीं है। गांव के सजातीय स्वर्णकार हमें कदापि अपने घरों में स्थान नहीं देंगे। यह सोचकर वह अपनी दोनो छोटी बहिनों को साथ ले वैरागियों के सङ्ग उनके अखाड़े में चली गई।

परन्तु जिन समस्त वैरागियों को किंचित शास्त्र ज्ञान है, भद्र समाज में जिनका कुछ मान सम्मान है, और जो गुरुगीरी का व्यवसाय करते हैं, उन्हीं का चरित्र जब अत्यन्त घृणित रहता है, वही जब अनेक प्रकार के कुत्सित दुराचारों से अपने-अपने जीवन को कलङ्कित करते हैं, तब इन, मुर्दों को फूँकने का व्यवसाय करने वाले, वैरागियों का क्या ठीक। इनका चरित्र उनसे बहुत गया बीता था, इसमें सन्देह ही क्या ? इनमें से एक वैरागी अन्नपूर्णा का धर्म-नष्ट करने की चेष्टा करने लगा। अन्नपूर्णा अपने धर्म को तिलांजलि देने के लिए कदापि तैयार न हुई।

तत्कालीन हिन्दू स्त्रियों में पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म सम्बन्धी विश्वास बहुत ही दृढ़ था। अन्नपूर्णा सोचने लगी कि पूर्व में न जाने कैसे-कैसे घोर पाप किये थे कि इस जन्म में यह असह्य क्लेश भोग रही हूँ। अब यदि इस जन्म में और पाप करूंगी तो पुनर्जन्म में इसकी अपेक्षा भी दारुण दुख झेलने पड़ेंगे। इस प्रकार के धार्मिक विश्वास से परिचालित हो वह अपने सतीत्व धर्म को नष्ट करने के लिए सहमत न हुई। और दो तीन दिन के बाद ही उसने उस अखाड़े को छोड़कर पिता का साक्षात् प्राप्त करने की आशा से कलकत्ते को प्रस्थान किया।

मदनदत्त जिस गाँव में रहते थे, उसी गाँव का नमक का एक अन्य व्यापारी गुप्तरूप से नमक खरीदने के अभियोग में कलकत्ते की जेल को भेजा गया था। उसपर ढाई सौ रुपया जुर्माना हुआ था। वर्तमान समय में अर्थ दण्ड दिये जाने पर यदि कोई उस अर्थदण्ड का रुपया चुकाने में असमर्थ हो तो उसे एक निर्दिष्ट समय तक जेल

में रहना पड़ता है, परन्तु पहिले यह नियम नहीं था। जितने दिन तक जुर्माने का रुपया अदा न होता था, उतने दिन तक दण्डित व्यक्ति को जेल में रहना पड़ता था। इस समय किसी व्यक्ति पर पचास रुपया अर्थदण्ड होने पर यदि वह पचास रुपया अदा न कर सके तो उसे पंद्रह दिन एक महीना अथवा अधिक से अधिक दो महीने तक जेल में रहना पड़ता है। परन्तु उन दिनों यदि किसी पर दस रुपया जुर्माना किया जाता था, तो जब तक दस रुपये अदा न हों, तब तक दण्डित व्यक्ति को जेल मे रहना पड़ता था। सम्भव था कि दस रुपये के लिए किसी को पाच बरस तक जेल मे रहना पड़े।

उपर्युक्त नमक के व्यापारी पर ढाई सौ रुपया जुर्माना हुआ। उसके पास रुपया चुकाने की कोई युक्ति न थी। विशेषत उसका घर भी कम्पनी के आदमी लूट-पाट चुके थे। उसके छोटे भाई ने कलकत्ते जाकर वहा के निवासी महात्मा गौरीसेन की शरण ली। गौरीसेन ने ढाई सौ रुपया देकर उसे कैद से छुड़वा दिया।

बङ्गाल में गौरीसेन का नाम आज भी बहुत प्रसिद्ध है। सौ बरस पहिले गौरीसेन नामक एक परम धार्मिक पुरुष कलकत्ते मे वास करते थे। ये सुविख्यात, वैष्णव-चरण सेठ के कारबार में साझीदार थे।

धर्मानुरागी गौरीसेन कलकत्ते में रहते हुए परोपकार में बहुत सा रुपया खर्च करते थे। ऋणग्रस्तों को ऋण से मुक्त कर देते थे, जिन पर जुर्माना होता था, उनके, जुर्माने का रुपया चुका कर उन्हें जेल से छुड़ा लेते थे। गुप्त रूप से नमक खरीदने-बेचने के अभियोग में अंगरेज

व्यापारी अनेक आदमियों को अर्थदण्ड देकर उन्हें जेल भेजने लगे। इस ओर सहृदय गौरीसेन उन हत भाग्य अभियुक्तों का जुर्माना चुका चुकाकर उन्हें जेल से मुक्त करने लगे। गौरीसेन की उदारता का यश सारे देश में फैल गया। मदनदत्त की स्त्री ने भी गौरीसेन का नाम सुना था। आज-कल भी बंगाल के लोग बातचीत में कहा करते हैं—"लागे टाका देबे गौरीसेन।" अर्थात् रुपये की जरूरत होगी, गौरीसेन देंगे।

मदनदत्त के जेल जाने के बाद उसकी स्त्री ने एक दिन अपनी लड़की अन्नपूर्णा से सलाह की थी कि मैं कलकत्ते जाकर गौरीसेन के पांव पकड़ूँगी। परन्तु मदन की स्त्री का देहान्त हो गया, कलकत्ते न पहुंच पाई। अब अन्नपूर्णा ने मन ही मन निश्चय किया कि कलकत्ते जा कर पिता के छुटकारे के लिए गौरीसेन से अनुरोध करूं। इसी उद्देश से उसने दोनों बहिनों को साथ ले कलकत्ते की यात्रा की।

परन्तु कलकत्ते को प्रस्थान करते वक्त अन्नपूर्णा के पास सिर्फ दो आने पैसे और पहिनने के लिए दो नये कपड़ों के अतिरिक्त दो ही पुराने कपड़े थे। मार्ग में सिर्फ दो ही दिनों के भोजनों का प्रबन्ध करने में, गांठ के आठ पैसे खर्च हो गये। तीसरे दिन दो कपड़ों के बदले में खाने के लिए चावल मोल लिए। चौथे दिन दोपहर को पिछले दिन के बचे-खुचे चावलों से तीनों ने किसी तरह गुजर की। पर आज पाँचवा दिन है। कल दूसरे वक्त भी कुछ भोजन नहीं मिला था। आज भी शाम होने को आई, भोजनों का कोई प्रबन्ध न हो सका।

मदनदत्त साधारणत एक धनी आदमी थे । अतएव उनकी कन्यायें नहीं जानती थीं कि भीख कैसे मागी जाती है । कभी कभी उनके जी मे आता था कि मुसाफिरों से कुछ याचना करें, परन्तु पथिकगण जब उनके पास होकर निकले, तो वे लज्जा के मारे मुह खोलकर कुछ भी न कह सकें । इस पेड़ के नीचे वे तीनों बैठी हुई हैं । परन्तु इस समय तक उन्हें किसी के निकट कुछ याचना करने का साहस नहीं हुआ है ।

मदनदत्त की छोटी कन्या अहल्या की अवस्था सिर्फ सात वर्ष की है । वह भूख से बडी व्याकुल है । जगदम्बा ने उसे बरगद की कई हरी-हरी नवीन पत्तिया लाकर दी थी, वही पत्तिया उसने खाई हैं ।

अन्नपूर्णा आज तीन दिन से ज्वर में है । इससे पहिले वह कभी-कभी अहल्या को गोद में लेकर चलती थी । परन्तु आज उससे नहीं चला जाता । पेड के नीचे पड़ी हुई है ।

सावित्री इन अनाथा कन्याओं का दुखवृत्तान्त सुन कर बड़ी व्याकुल हुई । ये आज सारे दिन की भूखी हैं, यह जानकर उसने अपने पास के चार रुपयों में से एक रुपया निकाला और जगदम्बा के हाथ में दिया । जगदम्बा उसके मुँह की ओर ताकती रह गई । सावित्री ने उससे कहा — "चलो सामने के बाजार से हम इस रुपये को तुड़ा कर चावल मोल ले आवें, और लौट कर चारो जनों के लिए भोजनों का प्रबन्ध करें ।" अहल्या यह बात सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई ।

अन्नपूर्णा ने सावित्री से कहा — "आप बहुत दूर से

चली आ रही हैं, बाजार जाने का कष्ट क्यों उठावेंगी। यही दोनों चावल खरीद ला सकेंगी।"

जगदम्बा और अहल्या सावित्री का दिया हुआ रुपया लेकर बाजार से चावल खरीदने चली गई।

दोनों बहिनों के चले जाने पर सावित्री अन्नपूर्णा से कहने लगी — "मेरी समझ में नहीं आता कि आप के पति ने आपको इस दुरवस्था में कैसे छोड़ा ?" अन्नपूर्णा ने कहा — "सात बरस की अवस्था में मेरा विवाह हुआ था, तब मेरे पति की अवस्था ग्यारह बरस की थी। उस समय वे मुझे विशेष कष्ट का कारण समझते थे, और मैं भी उन पर ऐसा कुछ प्रेम नहीं रखती थी। निदान उन दिनों मुझ में और उन में परस्पर प्रेम-भाव का सर्वथा ही अभाव था। परन्तु बड़े होने पर मेरे हृदय में उनके प्रति प्रेम का सञ्चार हुआ। मैं उन पर बहुत ही स्नेह रखने लगी। परन्तु दुर्भाग्य से मेरे पति के हृदय में मेरे प्रति प्रेम का सञ्चार नहीं हुआ। उनके चित्त में मेरे प्रति पहिले का विद्वेष भाव ही बना रहा। मेरी समझ में बहुत बाल्यावस्था में विवाह होने पर अनेक स्थलों में इस प्रकार की अवस्था घटित होती है।"

दोनों की बातें समाप्त होते-होते जगदम्बा और अहल्या बाजार से चावल और लकड़ी खरीद कर आ गई। चारों ने मिलकर उसी पेड़ के नीचे भोजनों का प्रबन्ध किया। परन्तु अन्नपूर्णा से कुछ न खाया गया। उस का ज्वर क्रमश जोर पकड़ने लगा। भोजनो के बाद चारो पेड़ के नीचे लेट रहीं। जो फटा-पुराना कपड़ा पहिन कर दिन में लज्जा-निवारण करती थीं, रात्रि में

वही इनका बिछौना होता था। आज भी उसी को बिछा कर चारो एक साथ पड रही। परन्तु रात्रि में अन्नपूर्णा का शरीर एक दम अशक्त हो गया। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि मेरी मृत्यु निकट ही है। सवेरा होने के आध घण्टा पहिले ही उसने अपनी दोनों छोटी बहिनो और सावित्री को जगाया, और सावित्री को सम्बोधन करके कहा —

"मैं स्वप्न देख रही थी कि मेरी मा मेरे सिराहने बैठी अँगुली से आपकी ओर इशारा कर के मुझसे कह रही है — 'यह स्वर्गीया देवी हैं, अपनी दोनो बहिनो को इनके हाथों मे सौंप कर मेरे साथ आओ। तुम्हारे सारे क्लेश, सारे दुख दूर हो जायँगे।' मेरी मां निश्चय ही मेरे पास आई थी। जान पड़ता है, मेरे अन्तकाल मे अब अधिक देर नहीं है। मेरा सारा शरीर बेकाबू हो रहा है। छाती पर मानों बोझ सा रक्खा है। बात करने में भी कष्ट होता है। मेरे मरने पर मेरी इन दोनों अनाथा बहिनों को अपने साथ कलकत्ते लिए जाना। मैं इन्हें आपके हाथो में सौंपती हू। आप कलकत्ते जा रही हैं, इन्हें भी साथ लेती जाय। यदि वहा पहुच कर पिता से साक्षात् हो गया तब तो ये पिता के पास चली जायँगी। परन्तु यदि पिता की मृत्यु हो चुकी हो, अथवा अन्य किसी कारण-वश पिता से साक्षात् न हो सकें तो इन्हें अपने साथ रखना। मुझे यह निश्चय विश्वास हो रहा है कि आपका दुख दूर होगा, और आप फिर इस ससार मे सुख से दिन बितायेंगी। अपने पति और भाई का आप अवश्य ही उद्धार कर सकेंगी।

कुछ दक्खिन की तरफ वर्त्तमान वेलवेडियर गृह का निर्माण हुआ।

कलकत्ते के उत्तरी विभाग में लालबाजार एक पुराना स्थान है। सन् १७३६ में लिखे हुए हालवेल साहब के किसी किसी कागज-पत्र में लालबाजार के नाम का जिक्र आया है। इस उपन्यास में उल्लिखित घटनाओं के समय लाल बाजार में कितने ही बङ्गालियों की दुकाने थीं।

मुसलमानों के शासनकाल मे फौजदारी बालाखाने में कभी कभी हुगली के फौजदारी (मजिस्ट्रेट) आकर कचहरी किया करते थे। आर्मीनियन, पुर्तगीज तथा ग्रीक व्यापारी इसी के पश्चिम की ओर बसे थे।

लॉलबाजार के पश्चिम लालदीघी है। अँगरेजी में इस स्थान का नाम 'टास्क स्क्वायर' कहा जाता है। इस उपन्यास में लिखित घटनाओं के समय टास्क स्क्वायर के बीचोबीच मे स्थित एक सुपरिष्कृत-गृह में खृष्टीय धर्म प्रचारक कियर्नन्डर साहब (John Zacharia Kiernander) रहा करते थे। इनका जन्मस्थान यूरोप के अन्तर्गत स्वीडन प्रदेश में था। इङ्गलैण्ड के खृष्टीय धर्म प्रचारक समाज (Christian Knowledge Society) की ओर से ये धर्म-प्रचारक के पद पर नियुक्त होकर पहिले पहिल मदरास को भेजे गये थे। बाद मे सन् १७५८ ई० में ये मदरास से कलकत्ते आये और तब से यहीं रहने लगे। ये बड़े विद्वान और बुद्धिमान थे। सुप्रसिद्ध ज्र्मन अध्यापक फ्रांक (Francke) के निकट इन्होंने दर्शन और विज्ञान की शिक्षा पाई थी। कलकत्ते के गवर्नरों में, क्या क्लाइव और क्या वेरेलस्ट, सभी इनका आदर सत्कार करते थे। इनकी उदारता

और सच्चरित्रता देख कर कितने ही आरमीनियन एवं पुर्तगीज, यहां तक कि कोई कोई बँगाली भी, खृष्टीय धर्म का अवलम्बन करने लगे थे । ये अनेकानेक रोमनकथलिकों तथा फादरवेन्टों नामक प्रसिद्ध रोमन कैथलिक पादरी को प्रोटेस्टन्ट धर्म का अनुगामी बनाने में सफल हुए थे।

सन् १७६१ में इनकी सहधर्मिणी का देहान्त हो गया । उस वक्त कलकत्ते में रहनेवाली समस्त अंगरेज महिलाओं में इनके समान सहृदय स्त्रियां बहुत थोडी थीं । उस समय कलकत्ते के अगरेजों की कार्यावली में एक ओर जिस प्रकार घोर अर्थलोलुपता, दुराशयता, एव सत्यता का पूर्ण अभाव, दृष्टिगोचर होता था, दूसरी ओर उसी प्रकार व्यभिचार आदि कुकर्मों के द्वारा अगरेजों का जीवन कलंकित हो रहा था । भद्र अङ्गरेज महिलाएं भारतवर्ष में आने के लिए कदापि राजी नहीं होती थीं । अतएव यहां भद्र अङ्गरेज महिलाओं की संख्या बहुत थोड़ी थी । उस समय कलकत्ते में यदि कोई अङ्गरेज महिला विधवा हो जाती थी तो पाच सात अङ्गरेज युवक उसके पाणिग्रहण के साथी होते थे ।

पादरी कियर्नन्डर साहब की सहधर्मिणी के मरने के बाद उन्होंने एक अङ्गरेज व्यापारी की विधवा मिसेज उली के साथ विवाह किया । मिसेज उली की अवस्था उस समय कुछ बहुत नहीं थी, सिर्फ पचास बरस के लगभग थी । महिलाओं में वे रूपवती प्रसिद्ध थीं, परन्तु उनके सिर में कहीं-कहीं पर बाल नहीं थे । उन के पूर्व पति उली साहब ने बङ्गाल में व्यापार कर के बहुत सा धन इकट्ठा किया था । उनकी मृत्यु के बाद मिसेज उली पाच

लाख रुपया नक़द तथा अन्यान्य सम्पत्ति की अधिकारिणी हुई। मिसेज़ उली के साथ विवाह करने की बहुतेरे इच्छा रखते थे। परन्तु सौभाग्यवश उन्होंने पादरी कियर्नेन्डर साहब ही के प्रस्ताव को मजूर किया। कियर्नेन्डर साहब को उस समय धर्म प्रचार के काम के लिए बहुत से रुपये की आवश्यकता थी। प्रचार-सभा के दिये हुए रुपये से पूरा खर्च नहीं चलता था। अतएव इस विवाह के द्वारा उन्हें धर्म-प्रचार के कार्य में विशेष सहायता मिली। कलकत्ते के आर्मीयन एवं बङ्गालियों की शिक्षा के लिए उन्होंने टास्क स्क्वायर के निकटवर्ती एक स्थान में एक विद्यालय खोला। परंतु बङ्गालीछात्र दो एक से ज्यादा नहीं जुटे। बङ्गाली तो सदा ही नौकरी के उद्देश से लिखते पढ़ते हैं। सो उस समय थोड़ी सी फारसी भाषा सीख लेने से नौकरी मिलने में बड़ा सुभीता होता था। अतएव बङ्गाली प्रायः इस विद्यालय में पढ़ने नहीं आते थे। कियर्नेन्डर साहब के स्कूल में आर्मीनियन, पुर्तगीज एवं ग्रीक छात्रों की संख्या ही अधिक रही। इस प्रकार उन्होंने विद्यालय आदि स्थापित करके खृष्टीय धर्म-विचार में विशेष सुभीता कर लिया। सन् १७६३ ई० के पहिले उन्होंने कितने ही आर्मीनियन एवं पुर्तगीजों के अतिरिक्त कोई पंद्रह बङ्गालियों को भी ख्रीष्ट-धर्म का अनुगामी बना लिया। परंतु अङ्गरेज़ों का कुव्यवहार, असद् आचरण एवं अर्थ-लोभ ख्रीष्ट-धर्म-प्रचार में सदा ही बाधा डालता रहा। सन् १७६३ ई० मे कियर्नेन्डर साहब के प्रचार-कार्य में भारी विघ्न उपस्थित हुआ।*

* Vide Note (16 in the Appendix)

इससे पहिले जिन पन्द्रह बगालियो ने खीष्ट-धर्म का अवलम्बन किया था, उनका विश्वास था कि खीष्ट धर्मावलम्बी अङ्गरेज लोग निश्चय ही यीशु खीष्ट के समान निर्मल चरित्र और सदाशय होते हैं। परन्तु सन् १७६३ ई०. मे कलकत्ते की कौसिल के मेम्बरो ने विक्रेय वस्तुओं के महसूल की अदायगी से सम्बन्ध रखने वाले नियमों के विषय में जैसा आन्दोलन मचाना शुरू किया। मीर कासिम से जिस प्रकार के अन्याय और अवैध मार्ग को ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया, उसे देख कर ये नये खीष्ट धर्मावलम्बी बड़े चकित हुए। जिन पन्द्रह बगालियो को कियर्नन्डर साहब ने खीष्ट-धर्म में दीक्षित किया था, उनमें से ग्यारह आदमी, मीर कासिम के साथ अगरेजों का विवाद छिडते ही अगरेजो से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने पर उतारू हो गये। फूासिस् रामचरन, जानमन्, रामकृष्ण, जनाथन गंगागोविन्द, हिलर जनार्दन तथा अन्यान्य सात आदमी कियर्नन्डर साहब के पास जा कर बोले — " पादरी साहब ! हमारे नाम का अगला भाग आपको निकाल लेना पडेगा। हम अब आप के इस गिर्जे में धर्म की शिक्षा नही लेना चाहते। हम अपना स्वतन्त्र गिर्जा बनवा कर उसमें उपासना करेंगे। "

कियर्नन्डर साहब अचम्भे मे आकर बोले — " तुम लोग क्यों ऐसा कह रहे हो ?"

फूासिस् रामचरन सब से आगे खडे थे। वे नम्रतापूर्वक कहने लगे — " पादरी साहब ! आप हमे तो यह सिखा रहे हैं कि कल क्या खाओगे, क्या पहिनोगे, इस की फिक्र मत करना (Think not for tomorrow)

परन्तु खीष्ट धर्मावलम्बी अङ्गरेज-गण पचीस बरस बाद क्या खायें-पहिनेंगे, आज ही से उसका बन्दोबस्त कर रहे हैं। आपका यह खीष्ट-धर्म हम नहीं चाहते। बाइबिल में जैसा कुछ लिखा है, हम तो उसी के अनुसार चलेंगे।"

कियर्नेन्डर — तुम क्या कहटे हो, हम नहीं समझे।

फ्रांसिस रामचरन — अच्छा अब समझाकर कहता हूं।

कियर्नेन्डर — सारी बाटें समझाकर कहो।

फ्रांसिस रामचरन कहने लगे — "महाशय! आप सिर्फ हमीं से कहते हैं कि कल क्या खाओगे क्या पिओगे, इस को फ़िक्र मत करना। परन्तु हम देखते हैं कि आप के स्वदेशीय खृष्ट धर्मावलम्बी इस विषय की बड़ी चिंता रखते हैं। देखिये, बंगालियों को महसूल-अदायगी की ज़िम्मेदारी से नवाब ने मुक्त कर दिया है, इस के लिए आप के सजातीय खृष्टान नवाब के साथ युद्ध करने पर उतारू हो गये हैं। जिन समस्त वाणिज्य-वस्तुओं पर महसूल लिया जाता है, बँगालियों ने उन समस्त वस्तुओं का क्रय-विक्रय कभी नहीं किया। परँतु पचीस बरस के बाद यदि बँगाली लोग कहीं इस प्रकार की वाणिज्य वस्तुओं का व्यापार आरम्भ करेंगे तो उससे अँगरेजों के व्यापार को थोड़ी बहुत हानि पहुचेगी, — इस आशँका से वे आज ही युद्ध छेड़ने को तैयार हैं। आप पचीस बरस बाद क्या खायगे, क्या पहिनेंगे, अभी से उसका इँतज़ाम कर रहे हैं। फिर इधर आप कहते हैं कि हम अनेक कष्ट झेलकर सिर्फ तुम्हारे उपकार के लिए यहां आये हैं। परन्तु पचीस बरस बाद हमारे देश के लोग व्यापार न करने पावें, ...

कर रहे हैं। धन्य आप का त्याग! और अधिक क्या कहें, अब हमारी आशा छोड़िये। हम आप से अपना सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे। हम अपना स्वतन्त्र गिर्जा बनवाकर उस में खृष्ट देव की उपासना करेंगे। आप से कोई संसर्ग हम नहीं रखना चाहते। आप लोग बड़े स्वार्थी हैं।"

यह कह कर फ्रांसिस् रामचरन अन्यान्य दस जनों को साथ ले वहां से चले गये। कियर्नेन्डर साहब ने देखा कि बड़ी आफ़त आई। पन्द्रह आदमियों में से सिर्फ मेथिड मुलकचन्द, टामकिन काशीनाथ, फिलिप गंगाराम और टामस घनश्याम, बस इन्हीं चार आदमियों ने अंगरेजों से सम्बन्ध नहीं छोड़ा। इनमें से मेथिड मुलकचन्द और टामकिन काशीनाथ इन दिनों कियर्नेन्डर साहब की सिफारिश से अंगरेजों की ढाका वाली कोठी में मुहर्रिरी के काम पर नियुक्त हो गये थे। दस रुपये के रोजगार से लगे थे। तत्कालीन प्रचलित अंगरेजों के नवीन खृष्ट धर्म का अवलम्बन करके वे लोगों का सर्वस्व अपहरण कर रहे थे। अन्तिम दो व्यक्तियों में से फिलिप गंगाराम कियर्नेन्डर साहब के घरू काम काज पर नियुक्त थे और टामस घनश्याम उक्त साहब के बगीचे में काम करते थे। फिलिप गंगाराम और टामस घनश्याम — इन दोनों में से कोई लिखना पढना नहीं जानता था। ये बड़े गरीब आदमी थे। रुपया इकट्ठा करके विवाह करने की कोई सूरत न थी। बंगालियों को विवाह के लिए कन्या का मूल्य देना पड़ता है। खृष्टान होने के पहिले इन्होंने मन ही मन यह आशा की थी कि खृष्ट धर्म का अवलम्बन कर लेने पर अवश्य ही किसी विलायती मेम के साथ विवाह हो जायगा। परन्तु उनकी

यह आशा निर्मूल हुई। आशा भी एक बुरी बला है! प्रत्येक आदमी के मन में न जाने कैसी-कैसी असम्भव आशाओं का प्रादुर्भाव होता रहता है। उस समय सुशिक्षित अंगरेजों तक के लिए विलायती मेमें नहीं जुटती थीं, और इसलिए विवश हो उन्हें मुसलमान महिलाओं का पाणिग्रहण करना पड़ता था। इन समस्त शङ्कर विवाहों के अवश्यम्भावी फलस्वरूप सैकड़ों ड्रूज, विड्र इत्यादि युरेशियन गण इस समय भारत में विचरण कर रहे हैं। परन्तु टामस घनश्याम ने न जाने क्या सोच कर इतनी ऊँची आशा की थी यह हमारी समझ में नहीं आया। हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि इस प्रकार की असम्भव आशायें समय समय पर, क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित, सभी के हृदय में उत्पन्न हुआ करती हैं। अतएव फिलिप गंगाराम और टामस घनश्याम को हम इसके लिए कुछ बहुत दोषी नहीं समझते।

फिलिप गंगाराम बड़े चालाक आदमी थे। कियर्नन्डर साहब की मेम (पूर्व-लिखित मिसेज वली) ने गृह कार्य सम्बन्धी सारी चीज-वस्तु खरीदने का काम, इन्हीं को सौंप रक्खा था, बाजार से सारा सौदा सुलफ रोज यही लाते थे। टामस घनश्याम की अक्ल बहुत मोटी थी निरे अहमक थे। इसलिए उन्हें बगीचे का काम मिला।

परन्तु इन दोनों को खृष्टान हुए पाँच सात बरस बीत गई। आज तक विवाह न हो पाया। अब इन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि यदि विलायती न मिले तो देशी ही सही; विलायती के लिए अब बहुत दिन इन्तजार नहीं करेंगे। परन्तु दुर्भाग्य से देशी भी नहीं मिली। सन् १७६३

० मं कियर्नेन्डर साहब के प्रचार कार्य में बाधा पडी,
र से सन् १७६७ ई० तक वे किसी एक आदमी को भी
ष्टान न बना सके।



विलायती वैष्णव।

सन् १७६७ ई० के अप्रैल मास मे सावित्री, मदनदत्त
की दोनों कन्याओ के सहित कलकत्ते पहुची। शहर के
भीतर घुमने पर उसे मार्ग में जो कोई मिलता था,
उससे यही प्रश्न करती थी — "गौरी सेन का मकान
कहां पर है ?" परन्तु गौरीसेन उन दिनों कलकत्ते में नहीं
रहते थे, कभी कभी बाहर चले जाते थे। एक आदमी
ने इन से कहा — "गौरीसेन आज कल कलकत्ते में नहीं
है।"

यह सुनते ही इन्हें बड़ी निराशा हुई। पास मे एक
पैसा भी न था। कुछ देर सोच समझ कर सावित्री ने
कहा — "जगदम्बा, यदि हम कारापिट साहब के घर तक
पहुंच जाय तो वे हमारा सब प्रबन्ध कर देंगे। मेरे पास
उनकी मेम का पत्र है।"

यह सोचकर वह कारापिट साहब का मकान खोजने
लगी। जो मिलता उससे कारापिट साहब का मकान पूछती।
परन्तु कारापिट साहब को बहुत से लोग पहिचानते न थे।

अतएव दो घन्टे बराबर तलाश करने पर भी कारापिट साहब के मकान का पता नहीं लगा। अन्त में एक बंगाली कारापिट साहब के घर का पता पूछते ही कहने लगा — "कारापिट नहीं कियर्नेन्डर साहब कहो।"

इस आदमी ने अपने मन में यह सोचा था कि ये स्त्रियां हैं, सम्भवत इनके भाई, बाप कोई खृष्टान हो गये होंगे, उन्हीं की तलाश में ये पादरी साहब की कोठी का पता लगा रही हैं। यह समझ कर उसने इन्हें कियर्नेन्डर साहब की कोठी का पता बता दिया। उसके बताने के अनुसार ये तीनों लालदीघी के उस पार कियर्नेन्डर साहब के बगले पर जा पहुची। साहब उस समय घर पर न थे। वे प्रति दिन अपने पिता के स्थापित किये हुए स्कूल में पढाने जाया करते थे। इन्होंने बगले के भीतर पहुंचकर देखा कि एक वृद्धा अगरेज रमणी बँगले के बरांडे में एक कोच के ऊपर बैठी हुई है। चालीस बरस की अवस्था का एक अधबूढा आदमी उस पर ताड का पखा झल रहा है।

तीन कन्याओ को बगले के भीतर घुसते देख कर मेम साहब ने पंखा हाकने वाले आदमी को सम्बोधन करके कहा — "टामम घनश्याम! पूछो ये किस लिए आई हैं।"

मेमसाहब बँगला नही जानती थीं। उस समय युरोपीय लोगों को बगालियों के साथ बातचीत करते समय पुर्तगीज, फरांसी तथा हिन्दो, इन तीन भाषाओ के शब्दों से सयुक्त एक विचित्र भाषा बोलनी पड़ती थी। अतः मेमसाहब की निज की भाषा को यहा उद्धृत करना निष्प्रयोजन

। वह फारसी एवं पुर्तगीज शब्दों से परिपूर्ण है । पाठक पाठिकाओं समझ में क़तई नहीं आवेगी। इधर टामस घनश्याम भी हिन्दुस्तानी (युक्तप्रान्त के निवासी) थे। अतएव वे भी आधी बँगला र आधी हिन्दी में बात चीत किया करते थे। सावित्री की तों को वे सहज मे नहीं समझ सकते थे। सावित्री भी की बातों को नहीं समझती थी। टामस घनश्याम ने आधी दी और आधी बँगला में प्रश्न किया— "तुम जान पड़ता ख्रीष्ट धर्म का अवलम्बन करने आई हो ?"

सावित्री ने कहा—"महाशय, मेरे स्वामी और भाई यहा ल में पड़े हैं, इस लिए आई हू।"

टामस घनश्याम ने मेम को समझा कर कहा "इस स्वामी जल में पड़ कर मर गया, बिना स्वामी की है, लिए यहा ख्रीष्ट धर्म का अवलम्बन करने आई है।"

मेम ने कहा—"बहुत अच्छा, इनसे कहो साहब आ य, वे इनके सम्बन्ध में जैसा उचित होगा, करेंगे।"

फिलिप गङ्गाराम इस समय कमरे के भीतर बठे हुए साहब के जूतों मे ब्रुश कर रहे थे। स्त्री की आवाज़ त ही बाहर निकल आये। टामस घनश्याम ने फिलिप राम से कहा यह खृष्टान होने आई हैं। फिलिप गगाराम समय बड़ी आवभगत के साथ, इनका परिचय ने लगे। फिलिप बँगाली था, उसने सहज ही सावित्री सारी बातें समझ लीं। सावित्री को भी उसकी बातें झने में कोई असुविधा न हुई। टामस घनश्याम सावित्री फिलिप गगाराम के साथ बहुत कुछ बात-चीत करते देख, सोचने लगे कि, हो न हो, फिलिप मेरा खोज मार कर यह लड़की के साथ अपना ही विवाह कर लेगा।

कुछ देर के बाद मेम साहब कपडे बदलने के लिए कमरे के भीतर उठ गइ। फिलिप गंगाराम ने विशेप सज्जनता प्रकट करते हुए इन तीनों से बँगले के अन्तर्गत एक पेड़ के नीचे भात बना कर खाने के लिए कहा। और झट से जाकर फिलिप गंगाराम चावल दाल ले आये।

टामस घनश्याम प्राय तीन चार घंटे से मेम साहब के ऊपर पङ्खा हाक रहे थे। इस लिए मेम साहब के चले जाने पर उन्होंने अपने घर जाकर हुक्के में दम लगानी शुरू की, और दम लगाते-लगाते वह इस प्रकार चिन्तन करने लगे—"सावित्री का स्वामी जल में पड कर मर चुका है—सावित्री कृश्चान होने आई है, इसलिए विवाह का बडा अच्छा मौक़ा है,—परन्तु एक बडी भारी अडचन है,—फिलिप गंगाराम बडा चालाक है—सावित्री सम्भवत फिलिप के हाथ लग जायगी।"

इस प्रकार चिन्ता करते-करते टामस घनश्याम के हृदय मे फिलिप गङ्गाराम के विरुद्ध प्रबल विद्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी। परन्तु इस विपय में और कोई उपाय न था, बहुत कुछ सोचते-विचारते अन्त में निश्चय किया कि बडी लड़की यदि अन्तत फिलिप ही के हाथ चढ जाय, तो विवश हो मै दूसरी लडकी के साथ ही विवाह कर लूँगा। परन्तु पहिले एक बार इस सम्बन्ध में फिलिप से वाद-विवाद करूंगा और साहब तथा मेम साहब से इस विषय पर विचार करने के लिए कहूंगा।

टामस घनश्याम हुक्का पीते-पीते इसी चिन्ता में गो

लगाते रहे । पुन सोचने लगे — साहब के बगले मे कोई कमरा भी खाली नहीं है । फिलिप और हम, दोनो बराडे के एक कोने मे लेटते हैं, इसलिए विवाह के बाद हम रहेंगे कहा, यह भी मेम साहब से पूछना पड़ेगा ।

फिलिप गगाराम ने इन्हें दाल-चावल ला दिये । ये तीनो कुछ दूरस्थित एक पेड़ के नीचे भात बनाने चली गई । फिलिप गगाराम मुस्कराते हुए टामस घनश्याम के पास आए, एक साथ बैठ कर हुक्का पीने लगे । फिलिप गगाराम बोले — "भाई टामस ! ईश्वर की इच्छा से इतने दिनों के बाद हम दोनो का ठीक लगा है । इनके जो आत्मीय स्वजन जेल मे थे, वे सम्भवत. मर चुके होंगे । उनकी मृत्यु का सवाद पाते ही ये खीष्टधर्म का अवलम्बन कर लेंगी, इसके अतिरिक्त इनके लिए और उपाय ही नहीं है । कौन इन्हें खाने को देगा ?"

घनश्याम ने कहा — "क्या कह रहे हो ? इस बड़ी लड़की का स्वामी तो जल में पड़ कर मर चुका है, और छोटी दोनों का तो अभी विवाह ही नहीं हुआ है ।"

गगाराम — अरे जल में पड़ कर नहीं मरा । बड़ी लड़की का स्वामी तो जेल में कैद है ।

घनश्याम — मुझे तुम्हारी बात का विश्वास नहीं । मुझ से बड़ी लड़की ने खुद कहा है कि मेरा स्वामी जल में पड़ कर मर गया । तुम शायद मुझे धोखा देने के लिए कह रहे हो कि बड़ी लड़की का स्वामी जीवित है ।

गगाराम — अरे तू तो निरा गधा है, ढंगचा बोली

खाक नहीं समझता। तभी तो कहता है कि इसका स्वामी जल में पड़ कर मर गया।

घनश्याम — भाई तुम बड़े चालाक हो। यहा चालाकी नहीं चलने की। साहब और मेम विचार कर के हमें जिसके साथ विवाह करने के लिए कहेंगे, उसी के साथ कर लेंगे। तुम से हमारी उमर ज्यादा है, हम बहुत समझते हैं। साहब और मेमसाहब विचार कर के यदि हमसे सब से छोटी लडकी के साथ विवाह करने के लिए कहेंगे तो हम तत्काल ही सब से छोटी छः बरस वाली लडकी के साथ विवाह कर लेंगे, किसी तरह की आपत्ति नहीं करेंगे। परन्तु उनके निकट विचार की प्रार्थना अवश्य करेंगे। तुम अन्याय से बडी लड़की को नहीं ले सकते।

गंगाराम — तुझे रत्ती भर भी अकल नहीं। इन दो छोटी लडकियों में से यदि बडी के साथ तू विवाह करने को रजामन्द है तो कल कर सकता है। दो में से एक का भी विवाह नहीं हुआ है। पर सब से बडी लडकी का विवाह हो गया है, उसका स्वामी जेल में है। यदि जेल में वह अभी जीवित हो तो बडी लडकी न तुम्हें मिल सकती है और न हमें।

घनश्याम — हां हां, मुझे ठगने के लिए यह चालाकी चल रहे हो। टामस के सामने चालाकी नहीं चलेगी। साहब के आते ही मैं उन से इस विषय पर विचार करने के लिए कहूगा।

गँगाराम — अरे मूर्ख! यदि तुझे मेरी बात का विश्वास नहीं, तो अभी जा कर उस बड़ी लडकी से पूछ लें, सब

घनश्याम—तुम्हारी बंगाली जात बड़ी दुष्ट है, मैं खब जानता हूं। शायद उसे तुमने अभी यह सिखा दिया है कि तुम घनश्याम से कहना कि हमारा स्वामी जेल में है। मैं उससे अब कुछ भी पूछा-पाछी नहीं करूंगा। मैं तो सिर्फ साहब और मेम से इस विषय पर विचार करने के लिए कहूंगा।

गंगाराम—तू निरा अहमक है। मेरी बात पर विश्वास नहीं करता।

घनश्याम—मैं तुम्हारी बात पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं कर सकता। हमारी धर्म-पुस्तक में लिखा है—'पराया धन मत हरो।' तुम रोज ही बाजार-खर्च के दामों में से चार छः आने चुराते हो। जो चीज दो आने में लाते हो, हिसाब में उसे चार आने की लिखाते हो।

गंगाराम—अरे भूत! क्या बाजार का हिसाब देने के सम्बन्ध में धर्म-पुस्तक में कुछ लिखा है? तू खुद भी तो उस दिन छः आने में कुदाल मोल लाया था और आठ आने बतलाये थे?

घनश्याम—और तुम जो चोरी करते हो, सो कोई बात ही नहीं? मैंने कुदाल के दाम जो तुम्हारे सामने आठ आने कहे थे; वही मेमसाहब को बतलाए। बाबा, तुम उन सब बातों को जाने दो। साहब विचार करके तुम्हें जिस के साथ विवाह करने की आज्ञा दें, उसके साथ कर लेना, हमें जिसके साथ करने के लिए कहेंगे, उसके साथ हम कर लेंगे।

तीसरे पहर कियर्नन्डर साहब घर आये। सावित्री ने देखा कि ये सैदाबाद वाले फारापिट साहब नहीं हैं।

बड़ी निराश हुई। परन्तु कियर्नन्डर साहब बड़े दयावान् पुरुष थे। निराश्रय अनाथों के प्रति बड़ी दया प्रकट करते थे। उन्होंने इनकी जबानी इनकी दुर्दशा का सारा वृत्तान्त सुन कर इनसे कहा—"तुम्हारे जो आत्मीय स्वजन कैद हैं, उनके मुक्त होने का कोई उपाय है या नहीं, हम शीघ्र ही इसका पता लगाते हैं।"

यह कह कर वे गवर्नर वेरेलस्ट साहब के बँगले की तरफ चले। परन्तु फिर कुछ सोच समझ कर निश्चय किया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा नियुक्त कलकत्ते के चैपलेन (Chaplain) रेवरेन्ड टीटमर्श साहब को साथ ले कर गवर्नर के बँगले पर जाय। अतएव वे टीटमर्श साहब के बँगले की ओर चल दिये।

कियर्नन्डर साहब के साथ जब सावित्री की बात-चीत हुई, तब टामस घनश्याम की समझ में आया कि वास्तव में सावित्री का स्वामी जेल ही में क़ैद है। फिलिप गंगाराम की बात पर अब उन्हें पूरा विश्वास आ गया। उस समय फिलिप को बुला कर कहने लगे—"अच्छा भाई, हम इस मामले में तुम से ज्यादा झगड़ा नहीं करना चाहते। जिस लड़की का नाम जगदम्बा है उसी के साथ तुम हमारा विवाह करवा दो। परन्तु ऐसा करो कि चट-पट काम हो जाय। देर होने पर कौन जाने, क्या हो। विवाह हो जाने पर हम तुम दोनों यहीं बँगले की पश्चिम ओर दो घर उठा लेंगे। कल जिस वक्त तुम बाजार जाओ, उस वक्त छप्पर छाने वाले एक आदमी को बुलाते लाना।

इस ओर कियर्नन्डर साहब टीटमर्श साहब के बँगले पर आ पहुँचे। और उनसे कहने लगे—"...

और एक नमक का व्यापारी जेल में क़ैद हैं। सुना है, शायद उनके प्रति बड़ा अन्याय हुआ है। चलो, हम लोग गवर्नर साहब से उनका सारा हाल कह कर उन्हें छुड़ाने का अनुरोध करें।"

रेवरेन्ड टीटमर्श साहब, कियर्नन्डर साहब की बात सुन कर बोले — "मिस्टर कियर्नन्डर! आप इन बँगालियों की बातों में आकर गवर्नर साहब के निकट कभी इस प्रकार का अनुरोध न करें। बँगालियों की जाति बड़ी नीच है, ये बड़े झूठे और कृतघ्न हैं। सिर्फ इन्हीं लोगों की भलाई के लिए लार्ड क्लाइव ने नमक व्यापार के सम्बन्ध में यह नया सुनियम प्रचलित किया है। परन्तु ये सदा ही सिर्फ ठगी और धोखेबाजी से काम लेते हैं। इन समस्त पापियों को जेल से मुक्त करना न्याय के सर्वथा विरुद्ध है। विशेषत इनके जुर्माने का रुपया नमक-व्यापार की तहवील में जमा होता है। जुर्माना अदा न होने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा उसके समस्त कार्यकर्त्ताओं की हानि होगी। अन्यान्य विषयों में आप का जी जितना चाहे उतना आप अनुरोध करें। परन्तु नमक-व्यापार विभाग में यदि किसी पर जुर्माना हो तो उसे माफ़ कराने के लिए गवर्नर साहब से कभी न कहें।"

इससे पहिले लिखा जा चुका है कि इस अवैध नमक व्यापार के मुनाफ़े के रुपये में से ग्रीष्ट धर्मयाजक (Chaplain) रेवरेन्ड टीटमर्श साहब को भी कुछ हिस्सा मिलता था। अतएव जुर्माने का रुपया अदा न होने पर उनकी भी हानि होती। किसी व्यक्ति पर एक सौ रुपया जुर्माना होता तो हिस्साबाट में दो चार आने टीटमर्श साहब के

पहले भी पड़ते। ऐसी दशा में खीष्ट धर्म-प्रचारक टीटमर्श साहब किसी से जुर्माने की माफ़ी के लिए अनुरोध करेंगे, यह आशा ही कौन कर सकता था।

बाद में कियर्नेन्डर साहब सावित्री के स्वामी नवीनपाल और भाई कालाचाद के विषय में बात करने लगे। रेशम के व्यापार के हानि-लाभ में टीटमर्श साहब के निज के हानि-लाभ का कोई सम्बन्ध नहीं था अतएव इस बार उन्होंने बंगालियों के लिए ठग, धोखेबाज इत्यादि सुललित शब्दों का प्रयोग नहीं किया। सज्जनतापूर्वक, सिर्फ उपेक्षा का भाव प्रकट करते हुए बोले—"भाई कियर्नेन्डर (Brother Kiernander) इन समस्त विषयों में हस्तक्षेप करना हम लोगों के लिए किसी प्रकार उचित नहीं जान पड़ता। ये लोग अपने अपने जुर्माने का रुपया अदा करने ही पर तो मुक्त हो सकते हैं ?"

कियर्नेन्डर साहब ने कहा—"तन्तुकारों पर घोर अत्याचार हो रहा है, क्या आप इसे नहीं मानते ? विशेषतः इनके आत्मीय स्वजन एक पैसा भी अदा करने की शक्ति नहीं रखते।"

टीटमर्श—इस देश के तन्तुकार बड़े दुश्चरित्र हैं। ये लोग पहिने हुए कपड़ा के नीचे रुपया छिपा रखते हैं। ये लड़कियां जो यहां आई हैं, उनके पास अवश्य ही रुपया होगा।

कियर्नेन्डर—आप किस तरह तन्तुकारों को दुश्चरित्र कह रहे हैं ? वे दादनी का रुपया नहीं लेना चाहते। परन्तु आप के आदमी जबरदस्ती उन्हें दादनी का रुपया लेने पर मजबूर करते हैं।

टीटमर्श — मूर्ख आदमियों का उपकार करने के लिए उन्हें सत्मार्ग पर लाने के लिए, मजबूर ही करना पड़ता है। ये देशी आदमी तो यों इस पवित्र खीष्ट-धर्म को भी ग्रहण करने की इच्छा नहीं करते। पर आप इन्हें कौशल चातुर्य से खृष्टान बनाते हैं। इसी प्रकार अपने हिताहित पर विचार न करके जो लोग दादनी का रुपया लेने में अनिच्छा प्रकट करते हैं, उन्हें दादनी का रुपया लेने के लिए मजबूर किया जाता है।

कियर्नन्डर — आप तो अद्भुत युक्ति का अवलम्बन कर के रेशम के व्यापार से सम्बन्ध रखने वाले दौरात्म्य का समर्थन कर रहे हैं। खीष्ट-धर्म की शिक्षा देना और दादनी का रुपया देना — क्या आप इन दोनों कामों को एक ही सा समझते हैं ?

टीटमर्श — इस से क्या — आप उनकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए धर्म शिक्षा देते हैं, ये लोग व्यवसाय की उन्नति के लिए, तन्तुकार लोगों को धनवान बनाने के लिए दादनी का रुपया देते हैं।

कियर्नन्डर — परन्तु दादनी का रुपया लेने से उनका सर्वनाश होता है।

टीटमर्श — धोखा देने की चेष्टा करने पर, ठहरौती के अनुसार काम न करने पर अवश्य ही सर्वनाश होगा।

कियर्नन्डर — परन्तु आप के अंगरेज लोग उन्हें उन के परिश्रम का उपयुक्त मूल देने के लिए तैयार नहीं।

टीटमर्श — संसार में सभी अपना हानि लाभ देखते हैं। अँगरेज क्या अपने लाभ का खयाल छोड़ दें ?

कियर्नन्डर — परन्तु लाभ के लिए क्या ऐसा दौरात्म्य—ऐसा अत्याचार — करना उचित है ? तो फिर डाकुओं की निन्दा क्यों करते हो ?

टीटमर्श — कुछ अधिक लाभ न होने पर इस गरम मुल्क में आने की जरूरत ही क्या ?

कियर्नेन्डर — तो क्या इन देशी लोगों के प्रति ऐसा निष्ठुर व्यवहार कर के, ऐसा घोर अत्याचार कर के, लाभ उठाने की इच्छा रखते है ? यह क्या धर्म-संगत बात है ? बाइबिल यही कहती है ?

टीटमर्श — बाइबिल मे तो लिखा है कि-"जिस प्रकार तुम अपने कल्याण की कामना करते हो, उसी प्रकार अपने पड़ोसियो के कल्याण को कामना करो। " परन्तु इन सब बातो के अनुसार क्या कोई चल सकता है ? इस ग्रीष्म-प्रधान देश मे बाइबिल की वे सब बाते नहीं घट सकतीं।

कियर्नेन्डर — आप धर्मयाजक (Chaplain) होकर ऐसा कहते हैं ?

टीटमर्श — अनेकानेक लार्ड विषयों ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।

कियनेन्डर — तो आप का यह खीष्ट धर्म सिर्फ धन इकट्ठा करने का वसीला है ?

टीटमर्श — धर्म — अर्थ दोनो ही चाहिए।

कियर्नेन्डर — परन्तु धर्म का तो लेश भी नहीं है, सिर्फ अर्थ-चिन्ता ही दिखाई पड़ती है — किस प्रकार धन इकट्ठा करें, अङ्गरेजों को एक मात्र यही चिन्ता है।

इतने में टीटमर्श साहब के घर में भोजनों की घन्टी बजी। कियर्नेन्डर साहब पादरी टीटमर्श साहब की बातें

सुनकर गुस्से मे आ गये, और तत्काल ही उठकर अपने घर की तरफ चल दिये। घर पहुंच कर उन्होंने सावित्री से कहा कि तुम्हारे जो आत्मीय जन जेल में हैं, उन के जुर्माने का रुपया अदा न होने तक उनके छुटकारे की कोई आशा नहीं है। इसलिए किसी तरह रुपया इकट्ठा करने की कोशिश करो।

साहब की बात सुनकर सावित्री दुख सागर में गोते खाने लगी। उस वक्त रात हो चुकी थी। साहब के बँगले की आया लोगों के साथ वे तीनो एक कोने मे पड़ रहीं। सवेरे को उठते ही उन्होने फिर कारापिट आराटून साहब के बँगले की तलाश मे जाने का निश्चय किया। सावित्री को सारी रात नींद नहीं आई।

सवेरा होते ही ये तीनो इस स्थान से जाने को तैयार हुईं। परन्तु फिलिप गङ्गाराम और टामस घनश्याम ने इन से कहा—"कलकत्ता शहर अच्छा नहीं है। वहां जाकर किस आफत मे फँसोगी, यहीं रहो। साहब के निकट धर्म शिक्षा ले सकोगी।"

सावित्री हर्गिज उनकी बातो मे न आई। अन्तत विवश हो फिलिप ने उनसे कुछ भोजन कर लेने के लिए कहा। अहल्या से बिना कुछ खाए चला न जाता। पास में एक पैसा भी न था। अतएव सावित्री सिर्फ अहल्या के खयाल से भोजन बनाने को तैयार हुई। पहिले दिन की तरह फिलिप ने उन्हें चावल दाल ला दिये। सावित्री ने पेड़ के नीचे भोजनों का प्रबन्ध किया। दस बजे के बाद कियर्नेन्डर साहब स्कूल में पढ़ाने चले गये। उनकी मेम बराडे में आकर एक कोच पर बैठी। फिलिप गङ्गा-

राम आदि के अनुरोध से मेम साहब ने इन तीनों को खीष्ट धर्म में दीक्षित करने के लिए उपदेश देना आरम्भ किया। मेम की बातें सावित्री कुछ समझ न सकती थी; इसलिए मेमसाहब जो कुछ कहती थीं, फिलिप गङ्गाराम उसे सावित्री को समझाते जाते थे । और इधर से सावित्री की बात मेम साहब को समझा देते थे ।

मेम — तुम आर्मीनियन साहब की कोठी में जाना चाहती हो — वह अच्छा आदमी नहीं है।

सावित्री — श्रीमती, वे कन्या के समान मुझे प्यार करते हैं, मैं वहीं जाऊँगी ।

मेम — तुम खीष्ट-धर्म ग्रहण करो, तुम्हारा भला होगा। खीष्ट ने अपने रक्त के द्वारा संसार का उद्धार किया है।

सावित्री — श्रीमती, ये बातें मेरी समझ में नहीं आतीं ।

मेम — यहाँ रह कर खृष्ट सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने पर धीरे धीरे सब समझ जाओगी ।

सावित्री — श्रीमती, यदि मैं अपने स्वामी और भाई का उद्धार न कर सकी तो मेरे जीने से कोई लाभ नहीं ।

मेम — भाई और स्वामी क्या स्वर्ग दे सकते हैं ? मुक्ति दे सकते हैं ? क्यों तुम नरक की तरफ जा रही हो ?

सावित्री — श्रीमती, मेरे भाई और स्वामी ही मेरे लिए स्वर्ग हैं, वही मेरे लिए मुक्ति हैं । यदि मैं नरक में जा कर उनका उद्धार कर सकूं तो भी तुरन्त जाने को तैयार

हू । यदि प्राण देकर उन्हें मुक्त कर सकू तो प्राण देने के लिए भी प्रस्तुत हू ।

यह कहते-कहते सावित्री की दोनों आंखों से आसू बहने लगे ।

मेम ने फिर कहा — "इस ससार में भाई अनेक मिलेंगे । स्वामी के मर जाने पर भी अन्य स्वामी मिल सकेंगे । परन्तु खीष्ट को न पाने पर सभी कुछ वृथा है। अनन्त नरक में जलकर मरना पड़ेगा ।

मेम की यह अन्तिम बात सुन कर सावित्री ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया । वह चकित हो उठी । एकाएक बाबा गुरु गोविन्द वाली बात उसके स्मृति पथ में आ गई। बाबा गुरु गोविन्द ने उस से पहिले दिन कहा था— "नवदूर्वादल श्याम श्री कृष्ण को जान कर जिसे पति भाव से पूजोगी, वही तुम्हारा पति होगा ।" " पाठकों को याद होगा कि सावित्री पहिले-पहिल बाबा गुरु गोविन्द की इस बात का आशय नहीं समझ सकी थी । बाद में अखाड़े में पहुचने पर जब बाबाजी ने सावित्री को कुपथ गामिनी बनाने की चेष्टा की थी, उस समय उन्होंने इस बात का आशय भी उसे समझा दिया था । उसी दिन पहिले पहिल सावित्री ने बाबा गुरु गोविन्द की दुष्ट इच्छा को समझ कर दूसरे दिन उनका अखाड़ा छोड़ दिया था । इस समय वह सोचने लगी कि मेमसाहब जो बात कह रही हैं, वह ठीक बाबा गुरु गोविन्द की बात के समान ही है, और कुछ नहीं ।

मेमसाहब कह रही हैं कि "स्वामी के मर जाने पर अनेक स्वामी मिल सकते हैं, परन्तु खीष्ट के न मिलने

पर अनन्त नरक में जल कर मरना पड़ेगा।" और उधर बाबा गुरू गोविन्द ने कहा था कि "श्रीकृष्ण ही संसार की समस्त स्त्रियों के पति हैं, अतएव नव दूर्वादल श्याम श्रीकृष्ण को जान कर जिसे पति मान कर ग्रहण करोगी, वही तुम्हारा पति होगा।" इन दोनों की बात में अन्तर क्या,—सावित्री में इसके समझने की शक्ति न थी। वह हिन्दू घर की स्त्री थी। वह जानती थी कि एक स्वामी के मर जाने पर दूसरा स्वामी नहीं मिलता। आजीवन विधवा रहना पड़ता है। मेमसाहब की बात का आशय यह है कि एक पति के मर जाने पर विधवाएं दूसरा पति ग्रहण कर सकती हैं। बाबा गुरु गोविन्द के मतानुसार इस संसार में स्त्रियों के लिए स्वामियों की कमी नहीं। नव दूर्वादल श्याम श्रीकृष्ण को जान कर किसी भी पुरुष को पति रूप में ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु अशिक्षिता सावित्री ने सोचा कि मेमसाहब ने जो कुछ कहा है, ठीक वही बात बाबा गुरू गोविन्द जी भक्तिरसपूर्ण भाषा में कहते थे। यह सोचकर उसने निश्चय किया कि सर्वनाश हो गया;—हम लोग विलायती वैष्णव के अखाड़े में आ पड़ीं।

इस उन्नीसवीं शताब्दी में पाठक और पाठिकाएं "विलायती वैष्णव"—यह शब्द पढ़कर 'ही ही' करके हँस पड़ेंगी। परन्तु अठारहवीं शताब्दी की उस अशिक्षिता सरला रमणी के हृदय में यह दृढ़ विश्वास हो गया कि हम विलायती वैष्णव के हाथों मे आ फसीं। इसके बाद क्रियर्नन्डर साहब की मेम ने सावित्री को सम्बोधन करके जो समस्त बातें कहीं, सावित्री ने उनमें से एक बात का

भी उत्तर नहीं दिया। वह मौन धारण किये रही, और बीच-बीच में वहां से चले आने के लिए अत्यन्त आग्रह प्रकट करने लगी। जैसे ही वह उठ कर चल देने को तैयार होती वैसे ही फिलिप गङ्गाराम कहने लगते—"इस धूप में चला नहीं जायगा, शाम के वक्त चली जाना।" सावित्री बड़ी भयभीत हुई। मनही मन कहने लगी- "हे दयामय परमेश्वर, हे विपत्ति-भंजन परमात्मन्, तुम्हारी कृपा से अब तक धर्म-रक्षा हुई। एक धर्म को छोड़ कर इस समय संसार में हमारे पास और कुछ भी नहीं है। दीनबंधु! इस वर्त्तमान विपत्ति से हमारी रक्षा करो।"

कितनी ही बातों के बाद मेमसाहब बारम्बार कहने लगीं- "तुम हमारी बातों का उत्तर क्यों नहीं देती हो?"

बहुत देर के बाद सावित्री ने कहा—"श्रमती, मैं क्या कहूं? यदि मेरे स्वामी और भाई मुझे न मिले तो यह प्राण जायं तो जाय, यदि मुझे नरक में जाना पड़ा तो चली जाऊंगी। मैं एक बार उन्हें आखों देखना चाहती हूं।"

मेम—भाई एवं स्वामी की बात तो तुम कई बार कह चुकी हो। परन्तु तुम घोर विपत्ति में जो फसोगी?

सावित्री—विपत्ति के समुद्र में तो डूबी ही हुई हूं, और विपत्ति में क्या फंसूंगी?

इतने में फिलिप गङ्गाराम ने मेमसाहब से कहा—मेम साहब, यह यदि स्वयम् कुमार्ग में जाना चाहती है तो जाय, इसका पति हो तो उसी के पास चली जाय। परन्तु इन दोनों छोटी लड़कियों को यदि आप अपने पास रख कर धर्म शिक्षा दें तो इनके उद्धार का उपाय हो सकता है।

फिलिप ने सोचा था कि दोनों छोटी लड़कियां यदि

रहे गई तो जगदम्बा के साथ में विवाह करूंगा और अहल्या के प्रतिपालन का भार घनश्याम को सौपूगा।

फिलिप के अनुरोध से मेमसाहब सावित्री से कहने लगी—"तुम स्वयम् कुपथ मे जाना चाहती हो, जाओ। परन्तु इन छोटी दोनो लडकियों को यही छोड जाओ। हम इन्हे धर्म-शिक्षा देकर खीष्ट-धर्म में दीक्षित करेंगी।"

सावित्री—श्रीमती, यह मुझ से न होगा। इनकी बडी बहिन मरते समय इन्हे मेरे हाथों में सौंप गई हैं। मैं इन्हें इनके पिता के पास पहुचाऊगी।

सावित्री जिस समय नम्रतापूर्वक मेमसाहब से ये बातें कह रही थी, उस समय अहल्या एव जगदम्बा दोनों ही उसका अँचल पकडे बैठी थीं। उन्हे डर लग रहा था कि कहीं सावित्री के पास से हमें कोई जबरदस्ती न उठा ले जाय।

अन्त में मेमसाहब ने कहा—"तुम लोग काले बँगाली हो। तुम्हारा हृदय बहुत काला है। धर्म की बात तुम्हारे हृदय में तनिक भी प्रवेश नहीं करती।" यह कहते कहते वह आराम करने के लिए कमरे के भीतर चली गई। टामस घनश्याम ताड का पङ्खा हाथ में लेकर उनके पीछे पीछे चले गये। उन दिनों इस देश में छत में टंगने वाले पङ्खों का प्रचार नहीं था। गरमी के दिनों में पङ्खा हाथ में लेकर घनश्याम को मेमसाहब के पीछे-पीछे रहना पड़ता था।

फिलिप गगाराम इन के पास बैठे रहे। वे बारम्बार सावित्री से कहने लगे—"तुम मेमसाहब का कहना मानो, इस में तुम्हारा भला होगा। तुम्हारे भाई और स्वामी जीवित हैं या मर गये, कौन कह सकता है?"

यह बात सुनते ही सावित्री की आखों से तीव्र अश्रुधारा बहने लगी। उसने फ़िलिप की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बाद फिलिप गङ्गाराम भी किसी काम के लिए चले गये। उस समय इन तीनों को परस्पर बात-चीत का अच्छा मौका मिल गया। वे जल्दी-जल्दी वहा से चले जाने की सलाह करने लगीं।

सावित्री ने जगदम्बा से कहा—"जगदम्बा! हम लोग बड़ी आफ़त में आ पड़ीं, जान पड़ता है, विलायती वैष्णव के हाथों में आ फसी हैं। अगर चटपट यहां से नहीं भाग चलोगी तो उद्धार नहीं है।"

जगदम्बा बोली—"दीदी, मै भी यही सोच रही थी। यह किसी विलायती बाबा का ही घर होगा। यह स्त्री शायद विलायती अखाडे की अधिकारिणी है। कल मैंने देखा था, इसके सिर पर बाल नहीं हैं। शायद थोडे ही दिन पहिले यह वैष्णवी हुई है।

सावित्री ने कहा—"क्यों उसके सिर पर तो बहुत लम्बे लम्बे बाल हैं।"

जगदम्बा—नहीं दीदी रात सध्या होने के बाद इसने अपने सिर के ये बाल उतार कर आया के हाथ में दे दिये थे। उसने उन्हें कपडों के साथ रख दिया।

सावित्री—तो शायद विलायती वैष्णवी स्त्रिया सिर के बाल उतरवा कर एक नई तरह के बाल सिर में लगाये रहती हैं।

जगदम्बा—ऐसा ही होगा।

सावित्री—ये जो आदमी हम लोगों के खाने को चावल दाल ले आये थे, शायद इसी अखाडे के चेले हैं।

जगदम्बा—ऐसा ही होगा। आज सवेरे मैंने देखा साहब ने एक पुस्तक का पाठ आरम्भ किया, ये दोनों घु डाल कर बैठ गये और आखें मूँद कर सुनने लगे।

सावित्री—तो विलायती वैष्णव क्या पुस्तक सुनते व घुटनों के बल बैठते हैं?

जगदम्बा—सम्भवत ऐसा ही होगा। विलायती चीं और देशी चीज तो प्राय एक सी नहीं होती।

ये तीनों जिस समय इस प्रकार बात-चीत कर रही, उसी समय कियर्नन्डर साहब स्कूल से घर लौटे। उ इन्हों ने कहा, हम कारापिट साहब के बँगले पर जायँ कियर्नन्डर साहब ने इसमें कोई आपत्ति नहीं की। वि यही कहा, तुम निराश्रिता हो रही हो, यदि इच्छा हो तो रह कर धर्म-शिक्षा ले सकती हो। साहब की बात से यह स मत न हुई और चलने के लिए तैयार होने लगीं। सा ने उस समय अपने मन में सोचा कि शायद इनके प रुपया पैसा बिल्कुल नहीं है, इस लिए दो चार रुपया दे से इनका कुछ कष्ट दूर होगा। यह सोचकर इन से ठहरने लिए कह कर साहब अन्दर चले गये। बक्स में से इ देने के लिए पाच रुपये निकाले। परन्तु मेमसाहब रुपये देने की राय नहीं दी। दूसरे कियर्नन्डर साहब चेप्लेन टीटमर्श साहब की बात याद आ गई। टीटम साहब ने कहा था— "बंगाली लोग बड़े दुष्ट होते हैं ये लोग पहिने हुए कपड़ों के नीचे रुपया छिपा रखते हैं। सिर्फ मेमसाहब के कहने पर साहब रुपया देने से रुकते, पर टीटमर्श साहब की बात याद आते ही उन्ह निकाले हुए पाच रुपये फिर बक्स के अन्दर रख दिय

बरांडे में आकर सावित्री से पूछने लगे—"तुम्हारे पास कुछ खर्च पात नहीं है, फिर कैसे तुम्हारा काम चलेगा ?"

सावित्री—"परमेश्वर कोई न कोई उपाय कर देंगे।"

क्रियनेन्डर साहब सोचने लगे,—"शायद टीटमर्श साहब की बात सच ही थी, यदि वैसा न होता तो ये मेरे निकट कुछ याचना करतीं। उपधर्मावलम्बी बंगाली क्या कभी परमेश्वर पर इतना भरोसा रख सकते हैं ?"

सावित्री, जगदम्बा और अहल्या को साथ ले साहब के बंगले से बाहर हुई, और वहां से दक्षिण की ओर चल दीं।

कोई चार बजे शाम तक बराबर चलती रहीं। रास्ते में जो कोई मिलता उससे कारापिट साहब के बंगले का पता पूछतीं, परन्तु दुर्दिन देखिये कि कारापिट साहब तो उस समय फौजदारी बालाखाने के पच्छिम की तरफ एक छोटे से घर में रहते थे और ये उनका घर तलाश करने के लिए लालदीघी के पास से गंगा के किनारे किनारे होती हुई दक्खिन की तरफ खिदिरपुर को चली गई। तीनों अनाथा कन्याओं के पास एक पैसा भी न था। जो पहिने थीं वही सिर्फ तीन फटे पुराने कपड़े थे। सरमेन साहब के पुल (Surman Bridge) को पार कर के ये और भी दक्खिन को चली गईं। दिशाओं का ज्ञान भी जाता रहा, क्रमश आगे ही को बढ़ने लगीं। सन्ध्या के समय अलीपुर जा पहुंचीं। उस समय बादल घिर आया, चारों ओर अंधकार छा गया। बादल तड़पने लगा।

जोर की आंधी आ गई। अंधकार में आंखों से कुछ दिखाई न देता था। बादल की गरज के कारण कुछ सुनाई भी नहीं पड़ता था। अन्धकार में कहीं एक दूसरे से अलग न जा पड़ें, इस आशंका से—सावित्री दाहिने हाथ से अहल्या का और बाएँ हाथ से जगदम्बा का हाथ पकड़ कर रास्ते के एक किनारे उसी खुले मैदान में बैठ रही।

प्राय दो घण्टे के बाद, आंधी तो शांत हो गई; पर जोर से पानी बरसना शुरू हुआ। बिजली के प्रकाश में, उस समय सामने एक पेड़ दिखाई दिया, तीनों उसी पेड़ के नीचे जा बैठीं। इस घटना के पांच सात बरस बाद इसी पेड़ के नीचे फिलिप फ्रांसिस ने हेस्टिंग्स साहब के साथ सम्मान-रक्षार्थ संग्राम (Duel) किया था।

इन अनाथा, आश्रयहीना, निरपराधिनी कन्याओं की दुरवस्था के स्मरणमात्र से हृदय विदीर्ण होता है। ऐसे दारुण क्लेश की अपेक्षा मौत हजार गुनी अच्छी! सर्व समाज में घृणित और निन्दित धुन्दुपन्थ नाना ने विगत सिपाही-विद्रोह के समय निरपराधिनी अंगरेज महिलाओं तथा असहाय निर्दोष बालक बालिकाओं का प्राण-नाश करके चिरकाल के लिए भारत के वीर गौरव महाराष्ट्रीय नाम को कलंकित कर रखा है, इतिहास में वह निर्दय, नरपिशाच, राक्षस आदि नामों से सम्बोधित हुआ है। उस का नाम सुनते ही मनुष्यमात्र के हृदय में घृणा उत्पन्न होती है। परन्तु पाठक! हम तुमसे पूछते हैं, उनदिनों जिन समस्त अर्थ-लोलुप, कठोर-हृदय एवं स्वार्थपरायण अङ्गरेजों के

अर्थ-लोभ की पूर्ति के लिए बंगाल की हजारों निरपराधिनी स्त्रियां सावित्री की तरह दुरवस्था-ग्रस्त हुई थीं, जिनकी अर्थ लोलुपता के कारण हजारों असहाय निर्दोषी बालक-बालिकाएं जगदम्बा और अहल्या की तरह विपत्ति सागर में निमग्न हुई थीं, परम न्यायवान् मङ्गलमय परमेश्वर के न्याय-विचार में वे क्या धुन्दपन्थ नाना की अपेक्षा अधिक अपराधी प्रमाणित नहीं हुए? केवल वे ही क्यों?— उस समय जिन समस्त बंग कुलाङ्गार बंगालियों ने अङ्गरेजों के उस अत्याचार में सहायता दी थी—जिन समस्त बंग-कुलाङ्गार बंगालियों ने कायरता के कारण सहानुभूति से शून्य हो दूरस्थित दर्शक की भांति निश्चिन्त इन समस्त अत्याचारों को देखा था, ईश्वर के न्याय-विचार में उन्हें भी अवश्य ही नीचा देखना पड़ा।



स्वप्न में भगवद्दर्शन।

सारी रात अविराम पानी बरसता रहा। पेड़ के नीचे बड़ी कीच हो गई। तीनों अनाथा कन्याएं रात भर उसी कीचड़ में बैठी भीगती रहीं। अहल्या सात बरस की बालिका थी। उसे रह रह कर नींद आने लगी। पर-दुख-कातरा सावित्री उसे अपनी छाती से चिपटाये बैठी रही। स्वयम् सारी रात मन ही मन भगवान् के नाम का स्मरण करती थी और कहती

थी—"दयामय दीनबन्धो! इस दारुण दुखसे उद्धार कीजिये, प्राण जाय तो जाय पर मरते समय एक बार अपने स्वामी और बड़े भाई को आंखो से देख सकूं। इतनी दूर आकर भी यदि मृत्यु से पहिले उन्हे न देख पाऊंगी तो हृदय में एक भीषण यंत्रणा शेष रह जायेगी।"

इस प्रकार की चिन्ता करते-करते सावित्री की आंखों में कुछ झपकी आ गई। अहल्या को छाती से लगाये अचैतन्य अवस्था में धरती पर पड़ रही। रात थोड़ी रह गई थी, घोर अन्धकार छाया हुआ था, जगदम्बा सावित्री के पार्श्व में चुपचाप बैठी हुई थी। अचैतन्य अवस्था में सावित्री ने स्वप्न देखा—मानों स्वयम् श्री भगवान् उसके सामने खडे खडे कह रहे हैं 'पुत्री' तुम्हारे हृदय का पवित्र भाव देखकर मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ हूं। क्या चाहती हो, सो कहो।" सावित्री स्वप्नावस्था में तत्काल बोल उठी—"प्रभो! मेरे स्वामी और भाई का उद्धार कीजिये इन दुखिनी दोनों बालिकाओं के पिता का उद्धार कीजिये—" सावित्री स्पष्ट शब्दों मे यही कहती हुई उठी। यह देखकर अर्द्धसुप्त जगदम्बा और अहल्या चौंक पड़ीं और कहने लगीं—"दीदी, किस से बात कर रही हो?"

सावित्री का विश्वास था कि स्वप्न की बात किसी से रात में न कहनी चाहिये, इसलिए उसने कोई जवाब नहीं दिया। देखते देखते उस दुखमयी रजनी का अन्त हुआ। आकाश में सूर्योदय होते ही समस्त संसार में प्रकाश फैल गया। पेड़ के पास वाले रास्ते से सैकड़ों स्त्री-पुरुष प्रातःकाल को गंगाजी में स्नान करने के लिए जाने लगे।

सावित्री, जगदम्बा एवं अहल्या तीनों ही कौच

मन हुए भीगे वस्त्र पहिने बैठी हैं ।। पहिने हुए एक एक वस्त्र के अतिरिक्त उनके पास कोई दूसरा कपड़ा नहीं है। सावित्री ने जगदम्बा से कहा—"अहल्या अभी बच्चा है, ऐसे छोटे बालक-बालिकाओं के नंगे रहने में कोई शरम की बात नहीं । लो, इसे थोड़ी देर के लिए नंगा करके यहां पेड़ की आड़ में बिठाल दो और इसका कपड़ा पहिन कर हम लोग एक एक करके गंगा जी में स्नान कर आवें । और अपना कपड़ा धो लावें । हम अपने पापों से इतना कष्ट भोग रही हैं, गंगा स्नान करने से यदि पापों का नाश होता है तो हमारा कष्ट अवश्य दूर होगा ।"

यह कह उन्होंने अहल्या का कपड़ा उतार कर उसे वृक्ष की ओट में खड़ा कर दिया । सावित्री ने उनका कपड़ा पहिन कर गंगा में स्नान किया । बाद में अपना वस्त्र धोकर भीगा ही पहिन लिया, और अहल्या का वस्त्र जगदम्बा को पहिनने के लिए दिया । जगदम्बा ने भी उसी तरह अहल्या का वस्त्र पहिन कर स्नान किया और अपना वस्त्र धो लिया । बाद में अहल्या को स्नान कराने लिवा लाई । घाट पर आदमियों की भीड़ थी, इस लिए स्नान कर चुकने पर ये तीनों घाट से कुछ दूर पर जा कर अपना अपना भीगा वस्त्र धूप में सुखाने लगीं ।

गंगा के घाट पर एक वृद्ध ब्राह्मण प्रातःकृत्य सम्पादन कर रहा था, उसकी नजर इन तीनों बालिकाओं पर पड़ी । वह देखता रहा कि इन तीनों बालिकाओं ने किनारे स्थित पेड़ के नीचे से आकर एक एक करके गंगा में

स्नान किया और स्नान के अनन्तर, अपना-अपना धोया हुआ भीगा वस्त्र पहिना। वृद्ध ब्राह्मण, प्रात कृत्य को समाप्त करके उस स्थान पर आया जहां ये तीनों बैठी थीं और बारम्बार स्नेह-पूर्ण दृष्टि से इनकी ओर देखने लगा। कुछ देर बाद करुणा भरी आवाज में कहा— "बेटी, तुम कहा से आ रही हो? हमें जान पड़ता है, तुम इस समय किसी दुर्दशा में फँसी हो। कहा जाना चाहती हो?"

सावित्री अपिरिचित व्यक्ति के साथ प्राय. बातचीत नहीं करती थी। परन्तु वृद्ध ब्राह्मण की स्नेह पूर्ण वार्त्ता और प्रशान्त मूर्ति ने उसकी सारी आशका को दूर कर दिया। वह बोली—

"हम सैदाबाद के कारापिट आराटून साहब की कोठी पर जायँगी।"

वृद्ध ब्राह्मण—बेटी, तुम हिन्दू स्त्री हो, कारापिट आराटून साहब की कोठी पर क्यों जाना चाहती हो?

सावित्री—श्रीमान्, हम बड़ी विपत्ति में फँसी हैं।

वृद्ध—अपनी विपत्ति का वृत्तान्त मुझ से कहो! डरो मत। मैं यदि तुम्हारा कुछ उपकार कर सका तो अवश्य करूगा।

सावित्री ने अपना तथा जगदम्बा और अहल्या का सारा वृत्तान्त वृद्ध ब्राह्मण से कहना आरम्भ किया, और अपने पिता सभाराम का नाम लिया। सभाराम का नाम सुनते ही वृद्ध को बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने लगा—"अहा बेटी, तुम सभाराम की कन्या हो!" यह कहते-कहते उसकी आखो से आसू निकल पड़े। परन्तु

वह सावित्री का सारा वृत्तान्त सुनने के लिए ऐसा उत्सुक था कि उसने सावित्री की बात काट कर बीच में कुछ नहीं कहा। सावित्री की बातें सुनते-सुनते, उसकी दोनों आखों से तीव्र अश्रुधारा बहने लगी। जब उसकी बातें समाप्त हुईं तो वृद्ध ब्राह्मण अत्यन्त दयार्द्रभाव से निश्चल पुतली की तरह टकटकी बांधे तीनों कन्याओं की ओर देखने लगा। मुह से बात न निकलती थी। सावित्री को उस समय गत रात्रि के स्वप्न की बात याद आई। जब उसकी दुरवस्था का वृत्तान्त सुन कर वृद्ध ब्राह्मण ऐसा शोकाकुल हुआ तो वह अपने मन में सोचने लगी कि मनुष्य में तो मैं ने इतनी दया देखी नहीं। कितने ही आदमियों के निकट अपने दुख की कथा कही, पर कोई भी हमारे दुख को सुन कर इतना दुखी नहीं हुआ, हो न हो, ये स्वयम् श्री भगवान ही हैं।

सावित्री ने पहिले कितनी ही कथाओं में सुना था कि भगवान श्रीहरि ने समय-समय पर वृद्ध ब्राह्मण के वेश में पापियों को दर्शन दिया है। अतएव उसे एकदम यह निश्चय हो गया कि जरूर यही बात है। गंगा-स्नान करने पर हमारे पापों का नाश हो गया है, और हमारी दुर्दशा देख कर स्वयम् भगवान श्रीहरि वृद्ध ब्राह्मण के वेश में हमारा उद्धार करने के लिए आये हैं। इसी विश्वास से प्रेरित हो वह अपने पहिने हुए वस्त्र का अंचल गले में डाल कर वृद्ध ब्राह्मण के पावों में लोट गई और कहने लगी —

"कल रात मैंने जो स्वप्न देखा था वह सत्य हुआ आप क्या वेही विपद्भञ्जन हरि हैं, और वृद्ध ब्राह्मण के

वेश में इन दुखिनियों का उद्धार करने के लिए आये हैं। आप निश्चय ही वे ही विपद्भञ्जन हरि हैं। मैं आपके श्रीचरणों को न छोड़ूंगी। यदि आप मेरे भ्राता और स्वामी का उद्धार न करेंगे तो मैं अभी तत्काल आपके श्रीचरणों में अपने प्राणों का परित्याग करूंगी। हे विपद्भञ्जन भगवान्! भला अब मुझे और कितना दुख दोगे।"

सावित्री के इन कातर वचनों को सुन कर वृद्ध ब्राह्मण अपने को न संभाल सका। इन तीनों कन्याओं के साथ वह भी उच्च स्वर से फूट-फूट कर रोने लगा। उसे इस प्रकार रोते देखकर सावित्री का यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि ये निश्चय ही विपद्भञ्जन भगवान् हैं। वृद्ध ब्राह्मण के वेश में हमारा उद्धार करने आये हैं। साक्षात् देव स्वरूप न होने पर क्या कहीं मनुष्य के हृदय में इतनी दया हो सकती है?

वास्तव में स्नेह और दयाभाव-परिपूर्ण मुखमण्डल को देखने से यह वृद्ध साक्षात् देवता ही प्रतीत होता था।

कुछ देर बाद वृद्ध अपने शोकावेग को रोक कर बोला — "बेटी, तुम यहां निराश्रिता बनी पड़ी हो। मेरे साथ चलो, तुम्हारे आत्मीय स्वजन जिस से कारागार से मुक्त हो सकें, उसके लिए मैं यथा साध्य चेष्टा करूंगा।"

सावित्री अब भी वृद्ध के पांव नहीं छोड़ती थी। वृद्ध ने धीरे-धीरे उसे हाथ पकड़ कर उठाया। पिता के हस्तस्पर्श से जिस प्रकार सन्तान का शरीर अनुपम

आनन्द से रोमाञ्चित हो उठता है, सावित्री का शरीर उस वृद्ध ब्राह्मण के हस्तस्पर्श से उसी प्रकार पुलकित हुआ। हृदयस्थित पवित्र भाव मनुष्य के शरीर को पवित्र कर देता है, स्वच्छ एवं साधु चरित्र वास्तव में रक्त मांस को रूपांतरित कर डालता है। इस से पहिले एक दिन जिस समय बाबा गुरू गोविंद ने सावित्री का हाथ छुआ था, उस समय उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो उसके हाथ में एक ही साथ सैकड़ों तेज काटे छिद गये हैं।

सावित्री हिताहित की चिन्ता न कर के, पिता के पीछे-पीछे चलने वाली छोटी सी बालिका की तरह, नितांत निशंक चित्त से जगदम्बा और अहल्या के सहित उस वृद्ध के पीछे-पीछे चलने लगी। कुछ दूर पहुंच कर वृद्ध ने एक स्वच्छ एवं सुपरिष्कृत घर के भीतर प्रवेश किया, और 'बेटी', 'बेटी' कह कर आवाज दी, जिसे सुनते ही एक स्त्री छः बरस के बालक का हाथ पकड़े हुए वृद्ध के पास आ उपस्थित हुई। स्त्री की अवस्था पचीस बरस से कुछ अधिक ही थी, परन्तु देखने में वह सहसा षोड़श-वर्षीया जान पड़ती है। उसकी रूप-राशि से घर उजाला हो रहा है। परन्तु उस रूप को वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में नहीं। उस सौन्दर्य्यमयी मुखाकृति के निरूपण में कोई यह भी नहीं कह सकता कि मानो सूर्य्य-मण्डल अपने प्रदीप्त रश्मि-जालों से घिरा है। वरन् उस की मुखच्छवि धर्म, पवित्रता, दया और स्नेह की परमोज्ज्वल किरणों से उद्भासित हो रही है। अतएव उस का शारीरिक सौन्दर्य्य दृष्टि का विषय नहीं, और इस

लिए हम उसकी प्रशंसनीय रूपराशि के वर्णन की चेष्टा न कर के स्थान स्थान पर सिर्फ उस के अनेकाने सद्गुणों को उल्लेख करेंगे।

वृद्ध ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातः काल गंगा-स्नान कर के कोई चार घडी दिन चढे घर पर लौट आते थे। परन्तु आज स्नान के अनन्तर सावित्री का वृत्तांत सुनते सुनते प्राय. दोपहर हो गया। उनके आने में बहुत देर देख कर उक्त रमणी बड़ी उत्कण्ठित हो रही थी। इस लिए पास आते ही उसने बडी उत्सुकता से पूछा—

"पिता, आज आप को आने में इतनी देर कैसे हुई? मैं आपके लिए बड़ी उत्कण्ठित हो रही थी।"

वृद्ध ने कहा—"इन तीन कन्याओं के कारण ही कुछ देर हो गई। ये वडी दुर्दशा में फसी हैं। कल से इन्होंने कुछ खाया नहीं है। घर में जा भोजन तैयार हुए हों, वह पहिले इन्हें खाने को दो, वाद में फिर हमारे लिए भोजन तैयार करना।"

सावित्री, ब्राह्मण को सम्बोधन कर के कहने लगी—"पिता जी, आप ब्राह्मण हैं। आप के लिए जो भोजन तैयार हुए हैं, उन्हें मैं प्राण जाने पर भी कदापि नहीं छू सकती। पहिले आप भोजन करें, हम लोग आपकी थाली का प्रसाद पावेंगी।"

सावित्री एव जगदम्बा किसी प्रकार भोजन करने को तैयार न हुई। अहल्या को उक्त रमणी ने भोजन ला दिये। बालिका भूक से पीड़ित हो रही थी। रमणी के दिये हुये भोजनों को पाकर वह कुछ शान्त हुई। रमणी, सावित्री को अपने पास बुलाकर उस से उसका

सारा वृत्तान्त पूछने लगी। सावित्री ने जिस समय कहा कि मैं सैदाबाद के सभाराम बसाक की कन्या हूं तो रमणी आश्चर्य चकित होकर बोली — "आहा! तुम क्या सभाराम बसाक की बेटी हो? तुम्हारे पिता पहिले हमारे आसामी थे। बाद में जब उन्होंने जागीर पाई तो उसी की जमीन में घर मकान बनवा कर रहने लगे।"

सावित्री ने कहा — "आप क्या हमारे देश का प्रमदा देवी हैं? आप को देख कर आज हमारे नेत्र सार्थक हुए। देश के सभी लोग आप के सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं। आप वृद्ध नवाब के पण्डित की बेटी हैं न?"

प्रमदा ने कहा — "हां, जो तुम्हें साथ लिवा कर आये हैं, वे हमारे पिता बापूदेव शास्त्री हैं। इन्हीं को मुर्शिदाबाद में सब लोग 'वृद्ध नवाब के पण्डित' कहा करते हैं।"

सावित्री यह बात सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई। मन ही मन उसे आशा हुई कि अवश्य ही वृद्ध नवाब के पण्डित मेरे स्वामी एवं भाई को मुक्त करा सकेंगे। उसने बचपन ही से सुन रक्खा था कि वृद्ध नवाब के पण्डित बड़े धार्मिक पुरुष हैं, वे असाध्य को भी साध्य बना सकते हैं।

प्रमदादेवी के निकट उसने अपना सारा वृत्तान्त कहना आरम्भ किया। इतने में बापूदेव शास्त्री वहां आकर बोले —

"बेटी, हम तुम्हें इस वक्त ये सारी बातें नहीं सुनने देंगे। इन समस्त शोचनीय घटनाओं को सुन कर तुम

अचेत हो जाओगी। इस लिए पहिले इन के भोजनों का प्रबन्ध करो। बाद में क्रम-क्रम से सारी बातें जान लोगी। मैं स्वय तुम्हे इन का सारा दुखवृत्तान्त सुनाऊंगा।"

प्रमदा का दयालु हृदय दूसरे के दुख को नहीं सह सकता था। तन्तुकारों की भयानक दुर्दशा का हाल सुनते सुनते वह प्राय समय समय पर मूर्च्छित हो जाया करती थी। इसी लिए उसके पिता ने उसे मुर्शिदाबाद से कालीघाट में ला रखा था। पाठकों को याद होगा कि इस उपन्यास के पहिले ही परिच्छेद में एक स्थान पर पर-दुखकातरा प्रमदा देवी के नाम का उल्लेख हो चुका है।

बीसवाँ परिच्छेद

वापूदेव शास्त्री।

इस उपन्यास के आरम्भ ही में वापूदेव शास्त्री का जिक्र आ चुका है। परन्तु वापूदेव शास्त्री कौन थे, यह पाठक-पाठिकाओं को अभी तक नहीं ज्ञात हुआ। अतएव इस परिच्छेद में हम उन्हे वापूदेव शास्त्री का परिचय देते हैं।

इस समय बंगाल में एक मात्र वापूदेव शास्त्री ही सच्चे ब्राह्मण थे। यों कहने के लिए तो हजारों तिलक-

धारी ब्राह्मण थे, पर उनसे ब्राह्मणत्व सम्बन्धी कोई सद्गुण नहीं दिखाई देता था।

महाराज मानसिंह जब पहिले-पहिल बंगाल में आये तो वे अपने गुरु वासुदेव शास्त्री को अपने साथ लाये थे। वासुदेवजी बड़े उदार-चित्त पुरुष थे। मानसिंह का यह नियम था कि वे कूच करते वक्त गुरुदेव के चरणों की वन्दना किये बिना कभी युद्ध-क्षेत्र में अग्रसर नहीं होते थे। यदि किसी युद्ध पर जाना होता तो गुरुदेव ही उनकी यात्रा का समय निश्चित करते थे। उनका विश्वास था कि पाण्डव-कुल-तिलक, भारत के वीर गौरव, महावीर धनञ्जय सदा ही युद्ध में प्रवृत्त होने से पहिले प्रथमत बाण के द्वारा अपने गुरु द्रोणाचार्य के चरणों की वन्दना कर लेने के कारण ही विश्व विजयी हुए थे। उनका निश्चय था कि गुरु चरणों की वन्दना करके संग्राम में प्रवृत्त होने पर कोई कदापि पराजित नहीं हो सकता। इसी विश्वास के कारण वे सदा ही बड़े आदर सम्मान के साथ गुरुदेव को अपने साथ-साथ रखते थे।

वासुदेव शास्त्री का जन्मस्थान पञ्जाब में था। उन के चार पुत्र थे। उनमें सब से छोटे पुत्र कृष्णदेव शास्त्री पिता के साथ बंगाल आये। मानसिंह कुछ दिन बंगाल में रह कर स्वदेश को लौट गये, उनके इष्टदेव वासुदेव शास्त्री भी उनके साथ ही चले गये। परन्तु उनके गुरु-पुत्र कृष्णदेव शास्त्री बंगाल में रहते समय ढाका जिले के अन्तर्गत विक्रमपुर ग्राम के एक प्रतिष्ठित और कुलीन ब्राह्मण की कन्या के साथ पाणिग्रहण कर के विक्रमपुर ही में रहने लगे। इन कृष्णदेव शास्त्री के पुत्र रामदेव

शास्त्री ने भी विक्रमपुर ही में अपना जीवन व्यतीत किया। रामदेव शास्त्री की मृत्यु के बाद मुर्शिदकुली खां के शासनकाल में बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद से ढाका को स्थानान्तरित हुई। रामदेव शास्त्री के पुत्र जयदेव शास्त्री उस समय विक्रमपुर छोड़ मुर्शिदाबाद में आकर रहने लगे। इन्हीं जयदेव शास्त्री के अनुरोध से महाराज राजबल्लभ नवाब सरकार के काम पर नियुक्त हुए थे।

ढाका और मुर्शिदाबाद इन दोनों ही प्रदेशों में जयदेव शास्त्री के पास माफी की काफी जमीन थी। उनकी वार्षिक आय दस हजार रुपये से कम न थी।

जयदेव शास्त्री की धर्मपत्नी गौरी देवी के गर्भ से बापूदेव का जन्म हुआ — गौरी देवी अत्यन्त सहृदया, धर्मपरायणा और बड़ी रूपवती स्त्री थीं पर बहुत छोटे कद की और दुबली पतली थीं। चालीस बरस की अवस्था में भी वे दस ग्यारह बरस की बालिका सी जान पड़ती थीं। साध्वी सुशीला गौरी देवी ससार में विशेष सुख सम्भोग की अधिकारिणी न हुई। सन्तान के शोक में उनका मुख-कमल सदा ही उदास और आंसुओं से भीगा रहता था। क्रमशः गौरी देवी के उदर से नौ सन्तानों का जन्म हुआ था जिनमें से पांच का प्राणान्त बचपन ही में हो गया। सिर्फ तीन कन्याएं और सब से छोटी पुत्र-सन्तान, बापूदेव शास्त्री जीवित रहे। बापूदेव के जन्म से पहिले ही गौरी देवी की अन्यान्य पांच संततियों का प्राणान्त हो चुका था, इसलिए बापूदेव ने कभी किसी दिन भी अपनी जननी का मुख को प्रसन्नतापूर्ण नहीं देखा। बाल्यावस्था में उनकी जननी उन्हें गोद में लेकर सन्तान शोक में सदा ही विला

परिताप किया करती थीं। सम्भवतः इसी कारण बापूदेव का हृदय बाल्यावस्था से ही दूसरे के दुख को देखकर बहुत ही दुखी होता था। माता के सरल और सद्-आचरणों को देख देख कर मिथ्या-प्रवञ्चना के प्रति बापूदेव के हृदय में विशेष विद्वेष उत्पन्न हो गया था। बापूदेव अपनी माता के इकलौते पुत्र थे, इसलिए बड़े यत्न के साथ उनका लालन पालन हुआ था। उनकी माता ने तत्काल-प्रचलित नियमानुसार अत्यन्त बाल्यावस्था में ही उन का विवाह सम्बन्ध स्थिर किया। बारहवाँ बरस समाप्त होने के पहिले ही उनका विवाह हो गया। विवाह के कुछ ही दिनों बाद जननी की मृत्यु हो गई।

बापूदेव के पिता जयदेव शास्त्री बड़े भक्त और धर्मानुरागी पुरुष थे। बाल्यकाल से ही बापूदेव अपने पिता की जबानी धर्म-सम्बन्धी अनेक कथा-वार्ताएं सुना करते थे। मातृवियोग के प्राय चौदह बरस बाद उन के पिता का भी देहान्त हो गया।

धर्मानुरागी पिता के औरस एवं सहृदया जननी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण यौवन के प्रारम्भ काल से ही बापूदेव के हृदय में धर्म के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हुई। उनके प्रत्येक कार्य में प्रबल धर्म-तृष्णा और वैराग्य का भाव दृष्टिगोचर होता था। दूसरे का दुख देखते ही उनका हृदय दुख से अभिभूत हो जाता था। परोपकार में वे बहुत सा धन खर्च करते थे इसीलिए धीरे धीरे उन्हें अपनी ढाका प्रदेश की बहुत सी माफी की जमीन बेच डालनी पड़ी। अन्यान्य जमींदार जिस प्रकार प्रजागण को सताकर उनका सरवस्व हरण करते थे बापूदेव शास्त्री में वह बात न थी। उनके समस्त

आसामी एक प्रकार से बिना ही लगान के जमीन का उपभोग कर रहे थे। वे कभी किसी से लगान नहीं मांगते थे। परन्तु प्रजागण बापूदेव पर अत्यन्त श्रद्धा भक्ति रखते थे, पिता के तुल्य उनका मान करते थे, और इस लिए वे अपने आप ही बापूदेव के लिए गृहस्थी के समस्त आवश्यक पदार्थ जुटाते रहते थे। प्रजागण में भिन्न भिन्न जाति और श्रेणी के आदमी थे। यदि कोई जुलाहा कोई अच्छा कपड़ा बुनता था तो उसे बापूदेव शास्त्री को भेंट करता था। किसान लोग अपने अपने खेतों में पैदा होनेवाले धानों के बढ़िया बढ़िया चावल उनकी नजर करते थे। किसी के बाग़ में कोई अच्छा फल पैदा होता तो वह सब से प्रथम पेड़ का पहिला फल अपने जमींदार (बापूदेव शास्त्री) को लाकर देता था। उनका विश्वास था कि ऐसे धर्मानुरागी जमींदार को वृक्ष का पहिला फल भेंट करने से वृक्ष बहुत फलवान होगा। इन कारणों से बापूदेव के घर में कभी किसी चीज का अभाव नहीं रहता था। उनके आसामी सौ से अधिक थे। उनमें से प्रत्येक ही एक दो दिन के अन्तर से अपने अपने खेत अथवा बाग़ में पैदा होने वाला कोई न कोई पदार्थ शास्त्री जी को उपहार स्वरूप प्रदान करता रहता था।

शास्त्री जी के चित्त में संसार की कोई भावना न थी। दिन रात शास्त्र का अध्ययन किया करते थे। केवल एक मात्र कन्या के अतिरिक्त उनके और कोई सन्तान न थी। बापूदेव बाल विवाह के कट्टर पक्षपातियों में नहीं थे। परन्तु स्त्री के अनुरोध से नवें बरस में ही उन्होंने एक सत्पात्र वर के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया

था । पुत्र था नहीं, इसलिए दामाद को अपने पास रख कर पुत्र की भांति उसका लालन पालन करने की इच्छा से बापूदेव की स्त्री ने अल्पावस्था में अपनी कन्या का विवाह किया था । परन्तु दुर्भाग्य वश कन्या की चौदह बरस की अवस्था में दामाद की मृत्यु हो गई । इकलौती सन्तान की चिर-वैधव्य-यन्त्रणा ने उस दयामयी साध्वी का हृदय विदीर्ण कर डाला, और थोड़े ही दिनों बाद वह इस दुख पूर्ण संसार का परित्याग कर स्वर्ग धाम को चली गई।

शास्त्री जी स्वयम भी जामाता के वियोग से बड़े व्यथित हुए । परन्तु वे परम ज्ञानी थे । अपने ज्ञान-बल से उन दारुण व्यथा को भुला कर वे दिन रात इस बात की चिन्ता में रहने लगे कि परम दयालु मङ्गलमय भगवान सदा ही मनुष्य के कष्टों का निवारण करते हैं, किसी को पीड़ा पहुचाना उनका उद्देश्य नहीं । इस लिए इन विपद्-राशि के अन्तर्गत अवश्य ही विधाता का कोई न कोई शुभ उद्देश्य छिपा हुआ है । इस चिन्ता के साथ विविध शास्त्रों की आलोचना करते करते उन्हें निश्चित रूप से यह विश्वास हो गया कि इस विपद् राशि के भीतर ईश्वर का मङ्गलमय हाथ गुप्त रूप से कार्य कर रहा है । उन्होंने किस युक्ति का अवलम्बन करके इस प्रकार का सिद्धान्त स्थिर किया और उस हृदय विदारक विपद् जाल के भीतर उन्होंने विधाता के किन किन गूढ अभिप्रायों को स्थित पाया, सो उन्होंने किसी पर प्रकट नहीं किया । तथापि उनके मन में जो बोध हो गया था, उन्हें जो शान्ति और सान्त्वना प्राप्त हुई थी उसके लक्षण उनके व्यवहारों में स्पष्टत झलकते थे ।

स्त्री-वियोग के बाद शास्त्री जी ने फिर दूसरा विवाह नहीं किया । स्नेहपूर्वक अपनी मातृहीना कन्या का लालन पालन करने और उसे विविध धर्म-शास्त्रों की शिक्षा देने लगे ।

× × × × ×

एक दिन सायकाल के समय बापूदेव शास्त्री गंगा तीर पर सध्या-कृत्य समाप्त करके उठे तो देखा कि घाट से थोड़ी दूर पर सैनिक वेशधारी एक मुसलमान प्रगाढ चिन्ता में निमग्न बैठा है ।

शास्त्री महाशय एकाएक उसके पास जा कर हँसते हुए बोले—"हे मुसलमान-कुल-तिलक । 'हम कब बंगाल के सूबेदार होंगे'—क्या इसी की चिन्ता कर रहे हो ? यदि सिंहासन प्राप्त करना चाहते हो तो विश्वासघातकता की सीढ़ी का परित्याग करो । इस सीढ़ी पर जिसने पांव रखा, उसका पतन अनिवार्य है । सन्मुख-संग्राम में सरफराज को परास्त करने की चेष्टा करो ।"

सैनिक पुरुष ब्राह्मण की बात सुनकर सोते से उठने वाले का तरह चौक पड़ा, और हत-बुद्धि की भांति उस के मुंह की ओर ताकता रह गया ।

शास्त्री ने पुन कहा—"यदि तुम सत्मार्ग का अवलम्बन करो तो निश्चय ही दो बरस के भीतर सूबेदार बन सकोगे, सरफ़राज के राजत्व का अन्त होने ही [illegible] है । "

मैनिक पुरुष बडे अजम्भे में पडा । मन ही मन सोचने लगा—"यह क्या मामला ! मै मन ही मन [illegible] कुछ सोच रहा था, इस व्यक्ति ने उसे कैसे जान लिया

यह कोई साधारण आदमी नहीं है ।"—प्रकट रूप में कहने लगा—"महाशय, आप थोड़ी सी देर के लिए यहा बैठने की कृपा करें, मैं आप से एक बात पूछूंगा ।"

शास्त्री—बस और क्या पूछोगे ? यदि कुपन्थ का अवलम्बन नहीं करोगे तो तुम दो बरस के भीतर ही सूबेदार बन सकोगे । सरफ़राज का राज्य अब दो बरस से ज्यादा नहीं रहेगा । फिर चाहे तुम सूबेदार हो या और कोई हो ।

सैनिक पुरुष—क्या आप मुझे पहिचानते हैं ?

शास्त्री—मैं तुम्हें बहुत अच्छी तरह पहिचानता हूं । तुम 'अलीवर्दी खां' हो । इस समय एकाग्रचित्त हो तुम इसी विषय की चिन्ता कर रहे थे कि हम कितने दिनों में और किन उपायो से बगाल के सूबेदार बन सकेंगे ।

सैनिक पुरुष—महाशय, किसी से कहियेगा नहीं । वास्तव में मैं इसी चिन्ता में था । परन्तु मैं आप से यह पूछता हूं कि आप ने मेरे मन की बात को किस प्रकार जान लिया ?

शास्त्री—तुम्हारे मन की बात मैंने कैसे जान ली,—यह पूछ कर तुम क्या करोगे ? मैं जो कहता हू, उसे गाठी बाधो कि यदि कुपथ का अवलम्बन नहीं करोगे तो निश्चय ही दो बरस के भीतर बगाल के सूबेदार बन जाओगे ।

सैनिक पुरुष—महाशय, कुपथ कहते किसे हैं ?

शास्त्री—जो उपाय तुम मन ही मन सोच रहे थे, वही कुपथ है । विष दे कर सरफ़राज का प्राण नाश

करने की चेष्टा कभी न करना। इस प्रकार का आचरण कायरों का काम है। सन्मुख-संग्राम में उसे परास्त करने की चेष्टा करो, अवश्य सफलता होगी।

सैनिक पुरुष — आप ने कैसे जाना कि निश्चय हमें जय-लाभ होगा?

शास्त्री — सरफराज की आयु का अन्त आ गया है।

सैनिक पुरुष — यह आप ने कैसे जाना?

शास्त्री — हमारे शास्त्र की बात कभी मिथ्या नहीं होती।

सैनिक पुरुष — आप के शास्त्र में क्या लिखा है?

इस प्रश्न के उत्तर मे वापूदेव शास्त्री बड़ी दृढ़ता के साथ कहने लगे — "अरे मूर्ख मुसलमान, मेरी बात सुन! स्त्री-जाति की पवित्रता कैसी महामूल्यमयी वस्तु है, इसे तेरे जैसे म्लेच्छ कदापि नहीं समझ सकते। तुम लोग बड़े घृणित और निन्दनीय हो। अपने निज के वीरत्व अथवा पुण्य-प्रताप से तुम लोग हमारे देश को कभी न विजय कर सकते। इस देश के निवासी स्वयम् ही अपने पापाचार और स्वार्थपरता के कारण पराजित हुए। मैं जो कह रहा हूँ, उसे याद रखना। साध्वी स्त्रियां साक्षात् लक्ष्मी-स्वरूपा हैं, स्वयम् भगवती हैमवती के तेजोमय अंश से उन का हृदय और मन गठित होता है। शास्त्र में लिखा है, यदि कोई नर-पिशाच ऐसी लक्ष्मीस्वरूपा साध्वी रमणी का अपमान करे तो उसकी दीर्घायु तत्क्षण ही क्षय को प्राप्त होती है। शास्त्र के इस मत को स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित करने के लिए कविश्रेष्ठ वाल्मीकि

ने अपने रामायण नामक महाग्रंथ में बहुत कुछ लिखा है। वे एक स्थान पर लिखते हैं—

दृष्टा सीता परामृष्टां देवो देवेन चक्षुषा।
कृत कार्यमिति श्रीमान व्यजहार पितामह॥
दृष्टा सीता परामृष्टां दण्डकारण्य वासिन।
रावणस्य विनाशश्च प्राप्त बुध्वा यदृच्छया॥

रावण ने जैसे ही भगवती सीता को अपमान की दृष्टि से देखना चाहा, वैसे ही उसका शीघ्र-विनाश निश्चित हुआ। अलीवर्दी खा! निश्चय जान कि सरफ़राज़ ने जिस समय जगत् सेठ की पुत्रवधू को अपमानित किया, उसी समय उस के राजत्व और उसकी दीर्घायु का अन्त हो चुका। वह परम साध्वी निरपराधिनी इस समय अपने पति के द्वारा परित्यक्त हो चुकी है। उस के आंसुओं की धारा से कालाग्नि प्रज्वलित हो कर सरफ़राज़ को भस्मीभूत कर डालेगी। तुम लोगों में से जो कोई भी विश्वासघातकता का मार्ग छोड़ कर सम्मुख समाम में सरफ़राज़ को पराजित करने की चेष्टा करेगा वह अवश्य ही बंगाल के सिंहासन को प्राप्त कर सकेगा।

अलीवर्दी खा ने कहा—"महाशय यदि दो बरस के भीतर मैं सूबेदार बन सका तो निश्चय ही मैं आप को हजार बीघे जमीन की जागीर प्रदान करूंगा। आप की बातें सुन कर मैं अत्यन्त चकित हुआ हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि आप ने मेरे हृदय की बात कैसे जान ली।"

बापूदेव ने कहा—"यदि तुम्हें आवश्यकता हो तो

मैं स्वयम् तुम्हें हज़ार बीघे जागीर सहज ही दान दे सकता हूं। मानसिंह की दी हुई, ढाका प्रदेश में हमारी दस बारह हज़ार बीघे माफी की जमीन पड़ी हुई है। मुझे लोभी ब्राह्मण न समझना। मैं तुम से जमीन-जागीर नहीं चाहता। मेरे पास बहुत सी पैतृक जागीर थी, अब भी काफी है। परन्तु मैं तुम से एक बात कहता हूं—तुम दो बरस के भीतर अवश्य ही बंगाल के सूबेदार हो सकोगे। बंगाल की सूबेदारी हासिल करना कोई बहुत कठिन काम नहीं है, हां, हासिल कर लेने के बाद उसकी — सूबेदारी की — रक्षा करना बहुत कठिन है। सूबेदार बन कर यदि बेखटके राज्य करना चाहो तो कभी किसी साध्वी के प्रति अत्याचार न करना। मन, बचन, कर्म से प्रजा के हित साधन में तत्पर रहना। यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारा राज-पद निष्कण्टक रहेगा।"

यह कह कर बापूदेव शास्त्री वहां से चलने को तैयार हुए। अलीवर्दी खां ने विनीतभाव से कहा — "महाशय, कृपापूर्वक थोड़ी देर और ठहरिये, एक दो बातें आप से और पूछूंगा।"

बापूदेव फिर बैठ गये। अलीवर्दी ने पूछा — "महाशय, आप क्या महराज मानसिंह के गुरु घराने में हैं?"

बापूदेव — "हां, महाराज मानसिंह के गुरु वासुदेव शास्त्री हमारे वृद्ध प्रपितामह थे।"

अलीवर्दी — "मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि सूबेदारी का पद प्राप्त होने पर मैं आपकी सम्मति के अनुसार राज्य शासन करूंगा। आपके वृद्ध प्रपितामह के आशीर्वाद से

ही महाराज मानसिंह सर्वत्र विजयी हुये थे। आप अर्थ-लोभी ब्राह्मण नहीं हैं, यह मुझे भली भांति ज्ञात है। जो अर्थ-लोभी होते हैं वे स्वार्थसिद्धि के लिए नवाने को कु-परामर्श दिया करते हैं। परन्तु आप में स्वार्थ का भाव नहीं है, इस लिए निश्चय ही आप मुझे वही काम करने की सलाह देंगे, जिसे आप सब तरह से अच्छा समझेंगे।"

इस प्रकार की बात-चीत के बाद बापूदेव शास्त्री घर चले आये। अलीवर्दी खां भी अपने स्थान को चला गया।

उपर्युक्त घटना के एक साल बाद सरफ़राज को सिंहासनच्युत करके अलीवर्दी खां बंगाल का सूबेदार हुआ। बापूदेव शास्त्री के परामर्शानुसार वह स्त्री-जाति के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति का व्यवहार रखने लगा। अन्यान्य मुसलमान सूबेदार सिंहासनासीन होते ही अपने से पूर्ववर्ती सूबेदार की बेगमों को अपने अन्तःपुर में ले लेते थे। परन्तु अलीवर्दी खां ने इसके विपरीत आचरण किया। सरफ़राज की माता मुर्शिदकुली खां की कन्या* के प्रति वह माता के समान श्रद्धा-भक्ति रखता था। अपनी कन्याओं की तरह उसने सरफ़राज की बेगमों का लालन-पालन किया, और मन-वचन-कर्म से सदा प्रजा के कल्याण की चेष्टा में तत्पर रहा।

प्राय प्रति दिन ही वह गुप्त-मन्त्र-गृह में बैठ-कर बापूदेव शास्त्री के साथ राजकार्य की आलोचना किया

*Vide Note (17) in the Appendix.

करता था। और बापूदेव जो उपदेश देते थे, प्राणपण से उसका प्रतिपालन करने की चेष्टा करता था। बापूदेव के, मन्त्र-गृह में प्रवेश करते ही वह नित्यप्रति बड़े आदर से उठकर खड़ा हो जाता था, और सिर की पगड़ी उतार कर उनके चरणों में रखता था।

इस प्रकार सदा ही बापूदेव के परामर्शानुसार काम करने के कारण अलीवर्दी खा ने निष्कटक राज्यशासन कर सन् १७५६ ई० में इस ससार से कूच किया। मृत्यु के समय उसने अपने भावी उत्तराधिकारी सिराज को दो उपदेश दिये थे। पहिला यह कि "वत्स, अङ्गरेजों को प्रबल न होने देना, इन्हे जिस प्रकार देश से बाहर कर सको, उसकी चेष्टा करना।" दूसरा यह कि "मेरे पवित्र बापूदेव शास्त्री जब तक जीवित रहें, तब तक उन्हीं के परामर्शानुसार राज्य-शासन करना। वे धन की इच्छा नही रखते, कितने ही बार मैंने उन्हे धन, भूमि तथा अन्यान्य उत्तमोत्तम बहुमूल्य वस्तुए देने की चेष्टा की, परन्तु उन्होंने कभी मुझसे किसी प्रकार का दान नहीं लिया।"

दुराचारी सिराज नाना के पहिले उपदेश को पालन करने की चेष्टा करने लगा, परन्तु कुसग में पड़कर वह उनके दूसरे उपदेश को एकदम भूल गया।

सिंहासन-प्राप्ति के थोड़े ही दिनों बाद अपने कुछ समवयस्क नरपिशाचों की सलाह से उसने राजशाही प्रदेश के राजा रामकृष्ण की बहिन, रानी भवानी की बेटी तारा का धर्म नष्ट करने के उद्देश्य से उसे जबरदस्ती पकड़ लाने के लिए फौज भेजी। रानी भवानी एव राजा रामकृष्ण के प्रति देश के समस्त निवासी विशेष श्रद्धाभक्ति

रखते थे । जब सिराज ने इस निष्कलंक कुल को कलंकित करने पर कमर कसी तो देश के सभी लोग उसके शत्रु हो उठे । जगत सेठ, राजा रायदुर्लभ, राजा राजवल्लभ मीर जाफर, अमीचंद, ख्वाजा वाजिद आदि कितने ही प्रधान-प्रधान आदमियों ने सिराज को सिंहासनच्युत करने के लिए गुप्त षड़यन्त्र रचना प्रारम्भ किया। इन सब की सलाह हो जाने के बाद महाराज राजवल्लभ एक दिन बापूदेव शास्त्री के पास गये, और सिराज को सिंहासनच्युत करने के विषय में जो निश्चय हुआ था उसका सारा हाल उनसे कहा ।

बापूदेव शास्त्री के पिता के अनुरोध से ही विक्रमपुर के निवासी कृष्णजीवन मजूमदार के पुत्र राजवल्लभ मजूमदार नवाब सरकार के काम पर नियुक्त हुए थे। बाद मे उन्होंने अपने बुद्धि-बल से राज्य में एक प्रधान पद प्राप्त किया और वे महाराज राजवल्लभ के नाम से प्रसिद्ध हुए । बापूदेव शास्त्री महाराज राजवल्लभ के बड़े हितैषी और मित्र थे । अतएव उन्होंने बिना किसी संकोच के सारी गुप्त बातें बापूदेव को प्रकटरूप में कह सुनाई ।

बापूदेव अत्यन्त घृणा प्रकट करते हुये बोले—"राजा राजवल्लभ । तुम सब षड़यन्त्रकारियों में एक भी सच्चा मनुष्य नहीं है । सभी बड़े नीचाशय और कायर हो । यदि यह न होता तो ऐसे विश्वासघात और कुकर्म के द्वारा अपने जीवन को कलंकित करने पर कमर न कसते ।"

राजवल्लभ— महाशय, ऐसे दुष्ट और दुश्चरित्र नवाब को सिंहासनच्युत करने की चेष्टा करना कौन सा कुकर्म है ?

शास्त्री—सिराज को इसी क्षण सिंहासनच्युत करने के लिए मैं स्वयं तुम से अनुरोध करता हूँ; परन्तु सब वीरों की तरह उसे सन्मुख-संग्राम में पराजित करने की चेष्टा करो। विश्वासघात की अपेक्षा दुष्कर्म संसार में और कौन हो सकता है?

राजवल्लभ—विश्वासघात कौन कर रहा है?

शास्त्री—तुम छिप-छिपे उसके विरुद्ध षड़यन्त्र कर रहे हो, क्या यह विश्वासघात नहीं है? विशेषत षड़यन्त्र करके किसी के प्राण लेने की अपेक्षा अधिक विश्वासघात और क्या हो सकता है।

राजवल्लभ—कौशल के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है?

शास्त्री—सैन्य-संग्रह करके उसे सन्मुख-संग्राम में परास्त करो।

राजवल्लभ—ऐसे कठिन काम में हाथ डालने का साहस किसी ने नहीं किया।

शास्त्री—फिर तुम्हारी कायरता में क्या सन्देह है? मेरी समझ में ऐसा करने से देश का बड़ा अहित होगा।

राजवल्लभ—देश का क्या अहित होगा?

शास्त्री—देश का अधःपतन हो जायगा। कुकार्य से कदापि सुफल उत्पन्न नहीं होता। अङ्गरेज व्यापारियों की सहायता लेकर तुम सिराज को सिंहासनच्युत करोगे, उसके बाद मीरजाफर सूबेदारी हासिल करेगा और वह अंगरेज व्यापारियों का गुलाम बन बैठेगा। अर्थ-लोभी अंगरेज-व्यापारी अर्थ लोभ के कारण देश का सर्वनाश करेंगे,

चारों ओर घोर उत्पात मचेगा—सिराज के अत्याचार से सौ गुना अधिक अत्याचार फैल जायगा।

राजवल्लभ—परन्तु सन्मुख-सग्राम में अग्रसर होकर पराजित होने पर, हमारा प्राणनाश होगा, और उसके द्वारा देश का कुछ भी कल्याण नहीं होगा।

शास्त्री—सन्मुख सग्राम में तुम्हारे नष्ट हो जाने पर भी देश का बहुत कुछ कल्याण होगा। पराजय में भी लाभ है। स्वाधीनता की रक्षा के लिए एक बार समामानल प्रज्वलित हो उठने पर वह सौ बरस में भी नहीं बुझती। जब तक स्वाधीनता प्राप्त न होगी तब तक यह अग्नि प्रज्वलित रहेगी। क्रमानुसार पुरुष परम्परा से अधिकाधिक प्रज्वलित होती रहेगी। रण में नष्ट हुए पिता-पितामहों की शोणित-सिक्त पोशाकें गौरव के साथ पहिन पहिन कर उनके पुत्र पौत्रगण दूने उत्साह से शत्रु का सामना करेंगे।

राजवल्लभ—तो आप हमारे इस परामर्श का अनुमोदन नहीं करते ?

शास्त्री—मैं इस प्रकार के कुकार्य का अनुमोदन कर सकता हू या नहीं—क्या यह अभी पूछने को बाकी है? तुम्हारे इस षड्यन्त्र के प्रति मर्व अन्तःकरण से मुझे घृणा है। तुम सब अपने आपही अपने नाश की चेष्टा कर रहे हो। इस दुष्कर्म का फल तुम्हें अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

राजवल्लभ—इसका फल क्या होगा ?

शास्त्री—तुम में से प्रत्येक ही या तो अङ्गरेजों के हाथ या मुसलमानों के हाथों अपने प्राण खो बैठेगा।

राजवल्लभ — आप की इस प्रकार की आशका का कोई कारण तो दीख नहीं पड़ता।

शास्त्री — तुम्हारे समान अंधे भविष्य के गर्भ में छिपी हुई उस समस्त कार्य-कारण शृङ्खला को कैसे देख सकते हैं ?

राजवल्लभ — आप हमारे गुरु हैं, यदि हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करके आप भावी अमङ्गल का कारण हमें समझा दें तब तो समझ सकगे ?

शास्त्री — समझाने पर भी तुम नहीं समझ सकते। तुम्हारे साथी षड्यन्त्रकारियों मे से प्रत्येक की दृष्टि अपने अपने स्वार्थ पर लगी हुई है; उधर अंगरेजों की दृष्टि अपने व्यापार की ओर है। देश में सुशासन कैसे होगा, इसके प्रति किसी की भी दृष्टि नहीं, अतएव पारस्परिक स्वार्थ की रक्षा के लिए जिस समय विवाद उपस्थित होगा, उस समय एक, दूसरे के नाश की चेष्टा मे तत्पर होगा— घोर अराजकता फैलगी, और उसके द्वारा देश की दुर्गति होगी।

राजवल्लभ — नवाब होने पर मीरजाफर हम लोगों के परामर्शानुसार कार्य करेंगे, और हम लोग सुशासन की चेष्टा में तत्पर होंगे।

शास्त्री — अंगरेजों की व्यापारीय कोठियों के साहब लोग जिस समय व्यापार के लिए अत्याचार आरम्भ करेंगे उस समय उन पर कौन शासन करेगा ?

राजवल्लभ — मीरजाफर।

शास्त्री — मीरजाफर उनका खरीदा हुआ गुलाम बन बैठेगा! वह उन पर शासन करना आरम्भ करेगा तो वे तत्काल ही उसे सिंहासनच्युत करने की चेष्टा करेंगे। उनके डर के मारे मीरजाफर चू तक नहीं करेगा।

राजवल्लभ — तो आपकी राय में क्या करना चाहिए?

शास्त्री —दूसरे की सहायता के प्रार्थी न हो कर अपने निज के बाहुबल से सिराज को सिंहासनच्युत करने की चेष्टा करो। इस समय निज की सहायता से सिराज को पदच्युत करोगे, अन्त में वे ही देश के वास्तविक अधिकारी बन जायगे, और उनके अत्याचार से देश बरबाद होगा।

राजवल्लभ — हम लोग थोड़ी सी सेना लेकर युद्ध में प्रवृत्त होने पर अवश्य ही पराजित होंगे — अवश्य ही प्राण खोवेंगे।

शास्त्री — मैं सिर्फ इतना ही कहता हू कि पराजित होने मे भी भला है। तुम प्राण दोगे, इस से भी अच्छा फल पैदा होगा। यह सग्रामानल शताब्दी भर प्रज्वलित रहेगा, तुम्हारे आरम्भ किए हुए यज्ञ के फल-स्वरूप तुम्हारे पुत्र-पौत्रगण स्वाधीनता लाभ करेंगे। ससार में जन्म लेकर मरना ही पड़ता है। मृत्यु से इतना क्यों डरते हो? एक न एक दिन मरना ही पडेगा। तब दो बरस पहिले ही सही।

बापूदेव शास्त्री की ये बातें सुन कर राजवल्लभ चुप रह गए। कुछ देर बाद बापदेव ने फिर कहा — "राजवल्लभ, मैं तुम से बारम्बार कहता हू, इस कुकार्य मे अपने नाम को कलंकित न करना। सैन्य समह करके तुम लोग खुल्लमखुल्ला सिराज के साथ सन्मुख-सग्राम करने की तैयारी करो। जिस कुकार्य पर तुमने कमर-कसी है, उसी के कारण कुल-परिवार के सहित तुम्हें मृत्यु

शास्त्री — तुम्हारे समान अधे भविष्य के गर्भ में छिपी हुई उस समस्त कार्य-कारण शृङ्खला को कैसे देख सकते हैं ?

राजवल्लभ — आप हमारे गुरु हैं, यदि हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करके आप भावी अमङ्गल का कारण हमें समझा दें तब तो समझ सकेंगे ?

शास्त्री — समझाने पर भी तुम नहीं समझ सकते। तुम्हारे साथी षड्यन्त्रकारियों में से प्रत्येक की दृष्टि अपने अपने स्वार्थ पर लगी हुई है; उधर अंगरेजों की दृष्टि अपने व्यापार की ओर है। देश में सुशासन कैसे होगा, इसके प्रति किसी की भी दृष्टि नहीं, अतएव पारस्परिक स्वार्थ की रक्षा के लिए जिस समय विवाद उपस्थित होगा, उस समय एक, दूसरे के नाश की चेष्टा में तत्पर होगा— घोर अराजकता फैलेगी, और उसके द्वारा देश की दुर्गति होगी।

राजवल्लभ — नवाब होने पर मीरजाफर हम लोगों के परामर्शानुसार कार्य करेंगे, और हम लोग सुशासन की चेष्टा में तत्पर होंगे।

शास्त्री — अंगरेजों की व्यापारीय कोठियों के साहब लोग जिस समय व्यापार के लिए अत्याचार आरम्भ करेंगे उस समय उन पर कौन शासन करेगा ?

राजवल्लभ — मीरजाफर।

शास्त्री — मीरजाफर उनका खरीदा हुआ गुलाम बन बैठेगा ! वह उन पर शासन करना आरम्भ करेगा तो वे तत्काल ही उसे सिंहासनच्युत करने की चेष्टा करेंगे उनके डर के मारे मीरजाफर चूं तक नहीं करेगा।

राजवल्लभ — तो आपको राय में क्या करना चाहिए ?

शास्त्री — दूसरे की सहायता के प्रार्थी न हो कर अपने निज के बाहुबल से सिराज को सिंहासनच्युत करने की चेष्टा करो। इस समय निज की सहायता से सिराज को पदच्युत करोगे, अन्त में वे ही देश के वास्तविक अधिकारी बन जायगे, और उनके अत्याचार से देश बरबाद होगा।

राजवल्लभ — हम लोग थोड़ी सी सेना लेकर युद्ध में प्रवृत्त होने पर अवश्य ही पराजित होंगे — अवश्य ही प्राण खोवेंगे।

शास्त्री — मैं सिर्फ इतना ही कहता हू कि पराजित होने मे भी भला है। तुम प्राण दोगे, इस से भी अच्छा फल पैदा होगा। यह समामानल शताब्दी भर प्रज्वलित रहेगा, तुम्हारे आरम्भ किए हुए यज्ञ के फल-स्वरूप तुम्हारे पुत्र-पौत्रगण स्वाधीनता लाभ करेंगे। ससार में जन्म लेकर मरना ही पड़ता है। मृत्यु से इतना क्यों डरते हो ? एक न एक दिन मरना ही पडेगा। तब तो वरन पहिले ही सही।

बापूदेव शास्त्री की ये बातें सुन कर राजवल्लभ चुप रह गए। कुछ देर बाद बापदेव ने फिर कहा — "राजवल्लभ, मैं तुम से बारम्बार कहता हू, इस कुकार्य में अपने नाम को कलकित न करना। सैन्य सग्रह करके तुम लोग खुल्लमखुल्ला सिराज के साथ सम्मुख-समाम करने की तैयारी करो। जिस कुकार्य पर तुमने कमर कसी है, उसे के कारण कुल-परिवार के सहित तुम्हें मृत्यु

के मुँह में पतित होना पडेगा। देश का तो अधःपतन होगा ही, तुम्हारी भी कामना सिद्ध न होगी,—तुम्हारे भावी वंशजों को दिन में एक बार पेट भोजन भी नहीं मिलेगा

राजवल्लभ ने कोई उत्तर न दे कर शास्त्री महाशय के चरणों में प्रणाम कर अपने स्थान को प्रस्थान किया।

इस घटना के कुछ दिनों बाद राजा राजवल्लभ और मीर जाफर आदि के षड़यन्त्र से सिराजुद्दौला और अंगरेजों के बीच पलासी-क्षेत्र में युद्ध हुआ। सिराजुद्दौला के प्रधान सेनापति मीरमदन ने इस युद्ध में प्राण-विसर्जन किया। उसके वीर सेनापति मोहनलाल की वीरता से, भारत से अंगरेजों के नाम के विलुप्त होने का उपक्रम हुआ था, परन्तु मीरजाफर की विश्वासघातकता के कारण मोहनलाल की अमरकीर्ति के द्वारा बंगाल का इतिहास समुज्वलित नहीं हुआ। अनिच्छापूर्वक नवाब के सैनिकगण युद्ध से हट रहे। और ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बिना ही युद्ध के बंगाल पर आधिपत्य जमाने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

पलासी-युद्ध के बाद मीरजाफर बंगाल का सूबेदार हुआ। अंगरेज व्यापारियों के निकट उसने प्रतिज्ञा की कि अंगरेजों की व्यापारीय कोठियों के साहब अथवा देशी गुमाश्ता लोग व्यापार-सम्बन्धी कार्य में यदि प्रजागण के प्रति किसी प्रकार का अत्याचार भी करेंगे तो वह उस विषय में हस्तक्षेप न करेगा, वरन् अंगरेज व्यापारियों की वाणिज्य कोठियों के कार्य-कर्ताओं के साथ यदि अन्य कोई कुछ झगड़ा ठानेगा तो वह अंगरेजों की सहायता करेगा।

मीरजाफ़र के इस प्रकार अंगरेज़ों की अधीनता स्वीकार करने के बाद अंगरेज़ों ने तन्तुकार आदि शिल्पियों के प्रति जैसा अत्याचार आरम्भ किया, पिछले परिच्छेदों में उसका सविस्तर उल्लेख हो चुका है। बापूदेव शास्त्री की ज़मींदारी में कम से कम तीस घर तन्तुकारों के थे। उनके प्रति अत्याचार आरम्भ होते ही उनमें से बहुतेरे घर छोड़ भाग गये। हलधर तन्तुकार की स्त्री और कन्या को छिदाम विश्वास ने अपमानित किया था, इस पर उसने छिदाम की हत्या कर डाली और बाद मे खुद भी आत्महत्या कर ली। उसकी स्त्री और कन्या ने भी उसी के पथ का अनुसरण किया। सिर्फ़ एक पुत्र रह गया, उसे बापूदेव शास्त्री ने पाला पोसा। बाद में शास्त्री जी अपनी कन्या प्रमदा देवी को साथ ले कालीघाट चले आये, और तब से यहीं रहने लगे।



वापूदेव शास्त्री और नन्दकुमार

वापूदेव शास्त्री से महाराज नन्दकुमार का परिचय कैसे हुआ था, और उनमें परस्पर किस प्रकार का सम्बन्ध था—इसका उल्लेख अभी तक नहीं हुआ है। नीचे हम इसी का जिक्र करते हैं—

मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत भद्रपुर नामक ग्राम में नन्दकुमार का जन्म हुआ। यह ग्राम और इसके निकटवर्ती अन्यान्य ग्राम वर्त्तमान वीरभूम जिले के अन्तर्गत हैं। नन्दकुमार के पिता का नाम पद्मनाभ राय था। नवाब अलीवर्दी खा के शासन-काल में पद्मनाभ राय तीन चार परगनों की मालगुजारी वसूल करने का काम करते थे। वापूदेव शास्त्री ही की सिफारिश से वे नवाब सरकार को तरफ से इस कार्य पर नियुक्त हुए थे। बारह बरस की अवस्था में नन्दकुमार वापूदेव शास्त्री के घर पर रह कर शास्त्र का अध्ययन करने लगे। इनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी और ये बड़े सहृदय थे, इस कारण वापूदेव शास्त्री इन पर विशेष स्नेह रखते थे। नन्दकुमार ने आठ बरस तक, वापूदेव शास्त्री के निकट शास्त्र का अध्ययन किया। साथ ही फारसी भाषा भी सीखते रहे। जिस समय इनकी अवस्था प्राय बाईस बरस की थी, उस

समय बापूदेव शास्त्री के अनुरोध से अलीवर्दी खां की सरकार में यह महिषादल पर्गना की मालगुजारी वसूल करने के काम पर नियुक्त हुए। इसके बाद अलीवर्दी खां के जमाने में ही हुगली के फौजदार के पद पर तैनात हुए। पलासी-युद्ध के पहिले अंगरेज़ लोग नन्दकुमार की कृपा के अभिलाषी थे।

पलासी-युद्ध के बाद अंगरेजों की वाणिज्य-कोठियों के साहब तथा बङ्गाली गुमाश्तागण जिस समय जुलाहों, सुनारों इत्यादि देशी व्यवसाइयों के प्रति अत्याचार कर देशी वाणिज्य के मूल में कुठाराघात करने को तैयार हुए, उस समय देश भर में एकमात्र नन्दकुमार ही ने उस अत्याचार को रोकने पर कमर कसी। देश के अन्यान्य लोग अंगरेजों की वाणिज्य-कोठियों में गुमाश्ता के पद पर नियुक्त होने के लिए ही प्राणपण से चेष्टा करते थे, और जो समस्त बंगाली, अंगरेज व्यापारियों के यहां गुमाश्ता अथवा खजान्ची के पद पर नियुक्त होते थे। वे सभी छिदाम विश्वास, नवकृष्ण मुन्शी, गंगागोविन्द सिंह कान्त पोद्दार इत्यादि के मार्ग का अनुसरण करते हुए देशी लोगों का सर्वनाश कर अवैध उपायों से अर्थ-सञ्चय करते थे।

अंग्रेजों के अभ्युदय के साथ ही साथ नवकृष्ण मुंशी भी धीरे-धीरे देश के एक प्रतिष्ठित आदमी बन गये। इनके साथ नन्दकुमार की घोर शत्रुता थी। नन्दकुमार अंगरेज़ व्यापारियों के अत्याचार का अवरोध करते थे, इस कारण क्लाइव ने पहिले-पहिल नन्दकुमार को अपने हाथों में करने के लिए विविध चेष्टाएँ कीं। मीरजाफर

ने अँगरेजों का ऋण चुकाने के उद्देश से बर्द्धमान, हुगली और नदिया — इन तीन जिलों की मालगुजारी वसूल कर लेने की आज्ञा अगरेजों को दे दी थी। सुचतुर क्लाइव ने इन तीनों जिलों की मालगुजारी वसूल करने का भार हेस्टिंग्स साहब के हाथों से लेकर नन्दकुमार के हाथों में सौंपा। इसी समय से अर्थात सन् १७५८ ई० से नन्दकुमार के साथ हेस्टिंग्स के मनोमालिन्य का सूत्रपात हुआ था।*

परन्तु क्लाइव की आशा विफल हुई। नन्दकुमार के प्रति इस प्रकार का अनुग्रह प्रकट कर के भी वह उन्हें अपनी मुट्ठी में न कर सका। अतएव इसके बाद स्वयं क्लाइव भी नन्दकुमार का पूरा शत्रु हो गया। उसने समझा कि नन्दकुमार मुंह से अङ्गरेजों के प्रति स्नेह प्रकट करता है, परन्तु भीतर-भीतर वह सदा ही अङ्गरेजों को बङ्गाल से बाहर कर देने की चेष्टा करता रहता है। प्राय सभी अङ्गरेज नन्दकुमार से द्वेष रखने लगे। क्रम क्रम से नन्दकुमार के हृदय में भी अङ्गरेजों के विरुद्ध विद्वेषाग्नि प्रज्वलित होने लगी।

१७५८ ई० में नन्दकुमार अपने गुरु बापूदेव शास्त्री से मिलने मुर्शिदाबाद आये। इसके पहिले प्राय पाँच सात बरस से नन्दकुमार बापूदेव शास्त्री से नहीं मिले थे। नन्दकुमार उस वक्त हुगली ही में रहते थे। बापूदेव शास्त्री की सहधर्मिणी, बाल्यावस्था में अपनी सन्तान की तरह नन्दकुमार को प्यार करती थीं। बापूदेव की कृपा

* Vide note (18) in the appendix

से ही नन्दकुमार हुगली के फौजदार के पद पर नियुक्त हुए थे, और पाच बरस फौजदारी के पद पर काम कर के उन्होंने प्राय दो तीन लाख रुपया पैदा किया था। हुगली से आते समय महाराज नन्दकुमार अपनी महोदरा भगिनी के सदृश प्रमदा देवी और माता के तुल्य गुरुपत्नी को भेंट देने के लिए कितने ही बहुमूल्य आभूषण अपने साथ लाये थे। परन्तु शास्त्री महोदय के यहा पहुचने पर महाराज नन्दकुमार को मालूम हुआ कि उनकी उन स्नेहमयी गुरुपत्नी का प्राणान्त हो गया और बहिन प्रमदा देवी भी विधवा हो गई।

नन्दकुमार को यह जानकर अत्यन्त दुख हुआ। तत्काल-प्रचलित प्रथा के अनुसार वे घूस इत्यादि लेते हुए भी कठोर स्वभाव के आदमी न थे। उनका हृदय दया, ममता, भक्ति एव कृतज्ञता से परिपूर्ण था। जिनकी भेंट करने के लिए वे विविध प्रकार के बहुमूल्य पदार्थ बड़े यत्नपूर्वक अपने साथ लाये थे, उनमें से एक का प्राणान्त हो चुका और एक आजन्म आभूषणों को धारण करने की अधिकारिणी न रही। यह देखकर उन्होंने गुरुदेव के निकट आभूषणों को लाने की बात का जिक्र भी नहीं किया। वे बड़ी आशा कर के आये थे कि कृतज्ञता के चिन्ह-स्वरूप अपनी पूज्य गुरुपत्नी के हाथो में ये समस्त आभूषण समर्पित करेंगे। परन्तु इस आशा से उन्हें एकदम वञ्चित होना पड़ा। सहोदरा के समान प्यारी बहिन प्रमदादेवी विधवा हो गई,—यह दुसम्वाद सुनकर उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। एक बार उनके मन में आया कि इन समस्त आभूषणों को अग्नि में जला कर खाक

कर डालें, क्योंकि इन्हें देख-देखकर हृदय की शोकाग्नि अधिकाधिक प्रदीप्त होगी"। परन्तु फिर सोचा कि इन्हें जला डालने से क्या होगा। अन्त में निश्चय किया कि इन समस्त आभूषणों को कहीं दूसरी जगह रख दें। यदि प्रमदादेवी को कभी रुपये की जरूरत पड़ी तो इन्हें बेचकर इनकी कीमत का रुपया प्रमदादेवी को दे देंगे।

यह सोचकर वे गुरुदेव से मिलने के बाद तुरन्त ही मुर्शिदाबाद में रहनेवाले अपने एक अनुगत व्यक्ति, बुलाकीदास की दुकान पर गये, और उसमें उन आभूषणों को बतौर अमानत के रख लेने के लिए कहा।

बुलाकीदास ने पूछा—"क्या इन्हें बेचना पड़ेगा?"

इन्होंने कहा—"नहीं, इस समय बेचने की जरूरत नहीं। रुपया हाथ में आने पर खबर दी जावेगा। इनके मूल्य का रुपया प्रमदादेवी को देना होगा।"

बुलाकी* से इस प्रकार की बातचीत करके शाम के वक्त नन्दकुमार गुरुदेव के घर लौट आये और अङ्गरेज व्यापारियों के अत्याचार के सम्बन्ध में उनसे विविध प्रकार का वार्त्तालाप करने लगे।

वासुदेव ने कहा—"मानव समाज से दुर्बल के प्रति बलवान के अत्याचार को एकदम दूर कर देने का कोई उपाय नहीं। मनुष्य-समाज जब तक पाप और स्वार्थपरता से सर्वथा शून्य नहीं है, तब तक प्रचलित अत्याचार का जोर इस संसार से कभी नहीं होने का। संसार में

* Vide Note (19) in the Appendix

पाप और स्वार्थपरता की जितनी वृद्धि होती है, दुर्बलो के प्रति बलवानो का अत्याचार भी उतना ही बढता जाता है। परन्तु अङ्गरेज व्यापारियों का अत्याचार एक प्रकार की डकैती है। दुराचारी सिराज के समय में भी इस प्रकार का अत्याचार नहीं था। मीरजाफर की दुर्बलता के कारण ही ऐसा हो रहा है। मैंने पहिले ही कह दिया था कि मीरजाफर बडा विश्वासघाती है। उसमें राज कार्य चलाने की शक्ति नहीं है। अफीम खा कर सदा पीनक में पड़ा रहता है। उसके हाथों में राज्य-भार सौपने की अपेक्षा तो किसी पशु के हाथों में सौंप देना अच्छा था।"

नन्दकुमार—रेशम की कोठियो के साहब और गुमाश्तो ने देश को बरबाद कर रखा है। वे लोगों का घरबार लूट रहे हैं। जुलाहे लोग दूसरी जगह जो कपडा बेंचकर पचास रुपया पा सकते हैं, ये लोग उस कपडे के लिए उन्हें दस रुपये से ज्यादा देने को तैयार नहीं होते। यदि मुझे दीवान का पद प्राप्त हो जाय तो अवश्य ही इस अत्याचार का निवारण कर सकूँगा।

शास्त्री—यदि मीरजाफर को पद च्युत कर के बङ्गाल की सूबेदारी प्राप्त कर अङ्गरेजों को शासनाधीन कर सको, तो तुम किसी अंश में अङ्गरेज व्यापारियो के इस अत्याचार को रोकने में समर्थ हो सकोगे। परन्तु मीरजाफर के दीवान बन कर किसी प्रकार के अत्याचार का अवरोध नहीं कर सकते।

* Vide note (20) in the appendix

नन्दकुमार—मीरजाफर को पद-च्युत करना क्या कुछ सहज काम है ?

शास्त्री — अफीम-सेवन में आसक्त, हिताहित के ज्ञान से शून्य, जाफर को पद-च्युत करना अत्यन्त सहज काम है।

नन्दकुमार — अगरेज लोग उनकी सहायता करेंगे।

शास्त्री — इन दो चार विदेशी व्यापारियों की सहायता क्या हो सकती है ?

नन्दकुमार — मेरी समझ में दिल्ली सम्राट और फरासीसों की सहायता से इस कार्य मे सफलता हो सकती है।

शास्त्री — दूसरे की सहायता से मनुष्य कभी किसी देश पर अधिकार नहीं जमा सकता। अपने निज के बाहुबल पर निर्भर होना पड़ता है।

नन्दकुमार — मेरा निज का बाहुबल, ऐसा कब है कि मैं देश के सूबेदार के साथ युद्ध ठानूँ ?

शास्त्री — केवल मानसिक बल की आवश्यकता है, उमी से काम पूरा हो सकता है। यदि हृदय में बल हो तो फौरन ही सफलता प्राप्त कर सकते हो।

नन्दकुमार — यदि मानसिक बल हो तो क्या कोई बिना सेना इकट्ठी किए अकेला युद्ध कर सकता है ?

शास्त्री — सेना अपने-आप ही इकट्ठी हो जाती है।

नन्दकुमार — भला अपने-आप कैसे इकट्ठी हो जायगी ?

शास्त्री — यदि अत्याचार को रोकने के लिए प्राण देने पर कमर कसोगे तो सहज ही सेना इकट्ठी कर सकोगे। तुम्हारे हृदय में स्थित निस्वार्थ-प्रेम इस मृतप्राय जाति के अन्तर में बल प्रदान करेगा,

नन्दकुमार — एक भी बगाली मेरा अनुसरण नहीं करेगा। देश के लोग सिर्फ इसी चेष्टा में हैं कि किस प्रकार अगरेजों की वाणिज्य-कोठियों में गुमाश्ता के पद पर नियुक्त हो कर दस रुपये की आमदनी का वसीला करें।

शास्त्री — तुम एक बार मेरी शिक्षा के अनुसार काम करो, देखो कृतकार्य होते हो या नहीं।

नन्दकुमार — युद्ध में प्रवृत्त होने पर अवश्य ही पराजित होऊंगा।

शास्त्री — जय-पराजय की चिन्ता कर के सग्राम-क्षेत्र में कोई अग्रसर नहीं हो सकता। जय पराजय ईश्वर के हाथ है। पलासी क्षेत्र में अगरेज लोग एक दम पराजित हो चुके थे, परन्तु दैवेच्छा से अन्त में फिर उन्हीं की जीत हुई। मान लो, तुम अवश्य ही पराजित हो जाओगे, परन्तु इसमें भी हानि क्या?

नन्दकुमार — युद्ध में प्रवृत्त होकर पराजित होने से लाभ ही क्या?

शास्त्री — पराजित होने पर भी देश का विशेष उपकार होगा। तुम स्वय सद्गति प्राप्त करोगे। वग इतिहास के अन्तर्गत स्वर्णाक्षरों में तुम्हारा नाम अकित रहेगा। समस्त वगवासियों के मृत शरीरों में जीवन का सञ्चार होगा। जिस सँग्रामाग्नि को एक बार प्रज्वलित करोगे, वह कभी न बुझेगी। भावी वशज तुम्हारी शोणित-सिक्त पोशाक को बड़े गौरव के साथ धारण करेंगे।

नन्दकुमार — पराजित हो कर प्राण खो देने से मेरा निज का कौन उपकार होगा?

शास्त्री — अब जाकर असली भेद खुला। जिन अँगरेजों के अत्याचार के लिए चिल्ला रहे हो, वे जैसे स्वार्थी हैं, तुम भी वैसे ही स्वार्थी हो। मीरजाफर की तरह तुम भी एक बड़े नीच आदमी हो। स्वार्थपरता का परित्याग न करने पर, सम्पूर्ण रूप से आत्मत्याग न करने पर, कोई कदापि देश के प्रचलित अत्याचार को रोकने में समर्थ नहीं होता। तुम अपने स्वार्थ की रक्षा कर के काम करना चाहते हो। इस प्रकार स्वार्थ पर लक्ष्य रख कर जो लोग सत्कार्य करना चाहते हैं, उनसे न तो सत्कार्य की सिद्धि होती है—न स्वार्थ की रक्षा। यदि निःस्वार्थ भाव से काम कर सको तब तो इस अत्याचार को रोकने पर कमर कसो, अन्यथा बस निताई बाग्दी के पुत्र छिदाम की तरह काम करना आरम्भ करो। सुना है कि छिदाम रेशम की कोठी में प्यादे के काम पर नियुक्त हुआ है। लोगों पर बड़ा अत्याचार करता है।

नन्दकुमार — छिदाम कौन ?

शास्त्री — जगाई और छिदाम दोनों पितृ-भ्रा हीन बाग्दी हैं। हमारे आसामी कृपाराम की मा ने उनका प्रतिपालन किया है। लोग उन्हें कृपाराम की मा का दौहित्र जानते हैं, और इस लिए सभी उन्हें शूद्र समझते हैं। परन्तु मुझे उनका सब हाल मालूम है,—उन का घर त्रिवेणी में था। रायमणि बाग्दिनी के गर्भ से उन का जन्म हुआ। रायमणि की मृत्यु के बाद शिवदास वन्द्योपाध्याय उन्हें यहाँ ले आये।

नन्दकुमार — वही छिदाम रेशम की कोठी में प्यादा है ?

शास्त्री हां — यही सुना है, साथ ही यह भी सुना है कि वह जुलाहों पर शायद बड़ा अत्याचार करता है।

नन्दकुमार—रेशम की कोठी में जितने बङ्गाली हैं, सभी अत्याचार करते हैं। केवल उसी को दोष क्यों दिया जाय ?

शास्त्री—तुम भी अङ्गरेजों के साथ मिलकर अत्याचार करना आरम्भ करो। सहज ही धन जमा कर सकोगे। सिर्फ 'अत्याचार', 'अत्याचार' कह कर चिल्लाने से क्या होगा ?

नन्दकुमार—आप मुझे इतना नीचाशय समझते हैं ?

शास्त्री—सोलहों आना नीचाशय नहीं हो, इसीलिए तो दुविधा में फसे हो। दोनों ओर की खींच तान में पड़े हो। एक मार्ग का अवलम्बन करना अच्छा होता है। तुम्हारी तरह जो लोग दो मार्गों का अवलम्बन करते हैं, उन्हें घोर विपत्ति में फसना पड़ता है।

नन्दकुमार—मैंने क्या दो मार्गों का अवलम्बन किया है ?

शास्त्री—हां दो मार्गों का अवलम्बन तो किया ही है। अपना स्वार्थ भी रखोगे और देश का अत्याचार भी दूर करोगे। इन दोनों कामों को एक साथ कोई नहीं सिद्ध कर सकता। यदि देश का अत्याचार दबाना चाहते हो तो अपने को भूलकर आत्मत्याग के पथ का अवलम्बन करो।

गुरुदेव के द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत हो कर फौजदार नन्दकुमार नीचा मुह कर के बैठ रहे। कुछ देर

बाद फिर बोले — महाशय, सूबेदार की अधीनता में दीवानी का पद प्राप्त हो जाने पर मैं अवश्य ही अङ्गरेज व्यापारियों के अत्याचार को रोकने में समर्थ होऊँगा ।

शास्त्री—बेटा, मैं बूढ़ा हुआ । इन सब बातों से तुम मुझे भुलावा नहीं दे सकते । अत्याचारी राजा के सेवक को भी अत्याचारी होना पड़ता है । दीवानी पद प्राप्त होने के बाद तुम सैकड़ों आदमियों पर अत्याचार करना आरम्भ करोगे, अभी तो थोड़े ही आदमियों पर कर रहे हो ।

बातचीत में रात बहुत होगई । भोजनों के बाद नन्दकुमार ने गुरु के चरणों में प्रणाम कर अपने स्थान को प्रस्थान किया । कुछ दिन मुर्शिदाबाद में रह कर वह फिर हुगली को चले गये ।

इस घटना के दो-तीन बरस बाद कलकत्ता-कौंसिल के अगरेज़ों ने मीरक़ासिम से बहुत कुछ घूस ले लिवा कर उसे सूबेदार के पद पर प्रतिष्ठित किया । वृद्ध मीरजाफ़र पदच्युत होने पर मुर्शिदाबाद छोड़ कलकत्ते में रहने लगे ।



बापूदेव शास्त्री और नवाब क़ासिम अली।

शास्त्री महाशय प्रायः प्रतिदिन ही कन्या के निकट विविध विषयों पर धर्म-चर्चा किया करते थे। १७६२ ई० के प्रारम्भ में, जनवरी महीने में, एक दिन सन्ध्या के बाद अपने घर बैठे हुए प्रमदा देवी के निकट भगवद्गीता, के कर्मयोग की व्याख्या कर रहे थे। इतने में एक नौकर ने आकर कहा—"एक मुसलमान व्यक्ति आया है और द्वार पर बैठा हुआ है। आप से मिलना चाहता है।"

शास्त्री महाशय ने बाहर आकर देखा कि कपड़े से मुँह छिपाये हुए एक मुसलमान उनके द्वार पर बैठा है। शास्त्री जी को देखते ही वह बड़े आदरपूर्वक उठ कर खड़ा हो गया, और फिर उसने यथोचित अभिवादन किया।

शास्त्री जी ने उसका परिचय पूछा। उसने घर में से नौकरों आदि को बाहर करके घरके किवाड़ बन्द कर लेने के लिए कहा। शास्त्री जी ने जैसे ही किवाड़ बन्द किये, वैसे ही उसने अपने मुंह पर से कपड़े का पर्दा उठा लिया। शास्त्री जी ने देखा कि स्वयं नवाब मीरक़ासिम उनके घर पर उपस्थित हैं।

उन्होंने बड़े आश्चर्य में आकर कहा—"मै तो समझता था, आप मुंगेर में हैं, मुर्शिदाबाद कब आये ?" मीरकासिम ने कहा—"अभी कुछ ही रोज हुए, मुर्शिदाबाद आया हू। आप से मुझे कुछ कहना है।"

शास्त्री—"जो कहना हो, कहिए।"

मीरकासिम ने कहा—"महाशय, वृद्ध नवाब अलीवर्दी खां आपके परामर्शानुसार सारा राज-काज करते थे, आप के उपदेशानुसार चलने के कारण ही वह निर्विघ्न राज्य शासन करने में समर्थ हुए थे। उनका राज्य निष्कण्टक था, बड़े सुख से उन्होंने समय बिताया। परन्तु मैं बंगाल की सूबेदारी प्राप्त करके कभी एक दिन भी सुख से बिताने में समर्थ न हुआ। इस सूबेदारी के पद को प्राप्त करने की अपेक्षा उसकी रक्षा करने का काम अत्यन्त कठिन है। एक ओर तो अगरेजों को प्रसन्न रखना पड़ेगा, और दूसरी ओर प्रजा का सर्वनाश न हो, यदि इसके प्रति यथोचित मनोयोग न दिया जायगा तो देश का राज-कर कभी न वसूल होगा। विशेषतः मैंने अगरेजों को जो रुपया देने का वचन दिया था, उसी का परिशोध करने में राज्य का खजाना खाली हो गया है। परन्तु इस समय फिर अगरेजों के साथ विवाद छिड़ने का उपक्रम हुआ है। इसी लिए आप के साथ इस विषय पर कर्त्तव्याकर्त्तव्य सम्बन्धी परामर्श करने के लिए आया हू। गत तीन रातों से मेरा पलक नहीं लगा है। सदा इसी चिन्ता में रहता हू कि किस उपाय का अवलम्बन करने पर उपस्थित विपत्ति से रक्षा हो सकती है। कल रात सोचते-सोचते मन में यह आया

कि वृद्ध नवाब अलीवर्दी खां सदा ही आपके परामर्शानुसार काम करते थे, अतएव मैं भी एक बार आप से परामर्श करूं। इसी लिए आज सध्या के बाद गुप्त रूप में आप के घर आया हूं।"

शास्त्री—आप और अगरेजों के दर्मियान किस विषय पर विवाद छिड़ने का उपक्रम हुआ है?

मीरकासिम — महाशय, क्या कहूं, ऐसी स्वार्थ-पर, दुराशय, अर्थ लोलुप जाति ससार में और कोई नहीं दिखाई देती। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी गण अपने-अपने व्यापार की विक्रेय वस्तुओं के ऊपर महसूल नहीं देना चाहते थे। बाद में कलकत्ते के गवर्नर वेन्सिटार्ट के साथ एक प्रकार का समझौता हो गया था। परन्तु कलकत्ता कौंसिल के अन्यान्य मेम्बरों ने उस समझौते को मजूर नहीं किया था। इन लोगों से किसी प्रकार महसूल नहीं वसूल हो सकता। यदि इस समय किसी तरह महसूल-अदायगी के नियम को स्वीकार भी कर ले तो महसूल अदा करते वक्त अवश्य ही कुछ न कुछ फसाद उठावेंगे। अब इस सम्बन्ध में क्या करना उचित है, यही आप से पूछने आया हूं।

शास्त्री महाशय बहुत कुछ सोच विचार कर कहने लगे—"देखो बेटा तुम इस समय देश के राजा हो। तुम जो कुछ कह रहे हो, उसमें कुछ भी झूठ नहीं है। अगरेज लोग बड़े स्वार्थपरायण हैं। महसूल-अदायगी के नियम से इस समय सहमत होने पर भी भविष्य में वे उस नियम का पालन नहीं करेंगे। दिनोदिन उन का आधिपत्य बढ़ता जाता है। परन्तु तुम अपना राजधर्म प्रतिपालन

करो। महसूल अदायगी की प्रथा को एक दम उठा दो। सभी श्रेणियों और सभी जातियों की प्रजा का समान भाव से प्रतिपालन करनेकी चेष्टा करो।

मीरक़ासिम—अगरेज लोग इसमें भी आपत्ति करेंगे। उनकी इच्छा है कि उन्हे महसूल-अदायगी से मुक्त रखा जाय, और अन्यान्य प्रजा से महसूल वसूल किया जाय।

शास्त्री—तुम यदि उनके इस प्रकार के प्रस्ताव से सहमत होगे तो तुम्हें अवश्य ही राज-धर्म से भ्रष्ट होना पड़ेगा। यदि ऐसा हो तो तुम निश्चय ही कायर हो। मैं संक्षेप में तुम से एक बात कहता हू। अस्त्रहीन अवस्था मे कभी शत्रु पर भी आक्रमण न करना, इससे तुम्हारा राज्य चिरस्थायी होगा। कुकार्य एव पापानुष्ठान के द्वारा मनुष्य अस्पष्ट भाव में सिर्फ अपनी ही शक्ति का ह्रास करता रहता है।

मीरक़ासिम—तो आप महसूल-अदायगी की प्रथा को एक दम उठा देने के लिए कहते हैं?

शास्त्री—हां।

मीरक़ासिम—परन्तु ऐसा करने पर राजकर एकदम कम हो जायगा।

शास्त्री—प्रजा के कल्याण से ही राजा का कल्याण होता है। प्रजा के घर में धन रहे तो राजा के लिए धन का अभाव नहीं होता। जिस में प्रजा का कल्याण हो वही करो। इस युक्ति से दूसरे रूप में राज-कर बढ जायगा।

मीरक़ासिम—परन्तु अङ्गरेजों की ऐसी अधीनता मु[illegible] एकदम असहनीय हो रही है। सिर्फ इसीलिए मैंने मुंगेर [illegible] कर अगरेजी-प्रथा के अनुसार सैनिकों को युद्ध-प्रणाली [illegible] शिक्षा देनी आरम्भ की है। मैं देश का राजा हू। ये लो[illegible]

दूर देश से आकर मेरे देशमें व्यापार करते हैं। इन थोड़े से अर्थलोलुप व्यापारियों की अधीनता स्वीकार कर के राज्य करने की अपेक्षा उस राज्य को त्याग देना ही अच्छा। ये लोग बात बात में कहते हैं कि "हमने तुम्हें सूबेदारी दी है, हमारी सब बातों को मान कर चलना पड़ेगा।"

शास्त्री — जब अंगरेजों की सहायता से सूबेदारी प्राप्त की है तो वे अवश्य ही ऐसा कहेंगे। सूबेदारी प्राप्त करने के लिए तुमने अंगरेजों की सहायता क्यों ली? कुकर्म के फल से कोई नहीं छूट सकता। तुमने अवैध उपाय का अवलम्बन कर के सूबेदारी का पद प्राप्त किया है। मुझे प्रतीत होता है तुम्हारा राज्य कदापि चिरस्थायी नहीं होगा। परन्तु तुम में मुझे यही एक उत्तम गुण दिखाई देता है कि तुम सदुपदेश के सामने सदाही सिर झुकाते हो।

यह बात सुनकर मीरकासिम का हृदय कांप उठा। वह कहने लगा —"महाशय, पूर्व में जो कुछ हो चुका, उस के लिए अब क्या हो सकता है। परन्तु इस समय किस उपाय का अवलम्बन करने से मेरा राज्य चिरस्थायी हो सकता है, सो बताइये।"

शास्त्री जी ने कहा — सभी पापों का प्रायश्चित्त हो सकता है। मनुष्य पाप के पथ का परित्याग कर, सत्मार्ग का अवलम्बन करके पूर्वकृत पाप से मुक्ति पा सकता है। तुम इस समय सदा के लिए सत्य और न्याय के पथ का अवलम्बन करो। अवश्य ही तुम्हारा राज्य चिरस्थायी होगा।

मीरकासिम—पण्डित जी! मैं आप के उपदेश को पालन करने की सदव ही चेष्टा करूंगा। आप कृपा कर

के मेरे साथ मुंगेर चलें। आप पास रहेंगे, तो आप से सदा ही सत्परामर्श प्राप्त होता रहेगा।

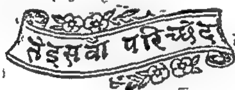
शास्त्री—मुझे इस समय मुंगेर को साथ ले चलने से तुम्हारा कोई लाभ नहीं। मैं निश्चय रूप में तुम से कहता हू,—सदा ही प्रजा के कल्याण की कामना करो, तुम्हारा राज्य चिर स्थायी होगा।

मीरकासिम ने यह सुन कर अपने सिर की पगड़ी बापूदेव के चरणों में रखी, और उन से विदा माँग कर निज स्थान को चले गये।

यथासाध्य वे सदा ही बापूदेव शास्त्री के उपदेश का प्रतिपालन करने की चेष्टा करते रहे। सर्वसाधारण प्रजा के कल्याण के लिए उन्होंने विशेष उद्योग किया। परन्तु इस संसार में विविध प्रकार की विशेष-विशेष अवस्थाओं में पड़ कर मनुष्य सदा ही भ्रमजाल में पतित होता रहता है। अँगरेजों के साथ युद्ध आरम्भ होने के बाद मीरकासिम को हिताहित का ज्ञान जाता रहा। अस्त्रहीन अवस्था में उन्होंने कुछ अंगरेजों का प्राण वध कर के अपने हाथों को कलंकित किया। कृष्णदास इत्यादि तीन चार पुत्रों के सहित राजा राजवल्लभ के गले में बालूका बोरा बंधवा कर उन्हें गंगा में फिकवा दिया। राजा रामनारायण, उमेद सिंह बुनियादसिंह, फत्तेसिंह और सेठवंशीय कई प्रधान २ आदमियों का प्राण निनाश किया। इस प्रकार राज्याभिनय को समाप्त कर मीरकासिम बंगाल से बहिष्कृत हुआ। परन्तु यह प्रजा-वत्सल नवाब था, इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रतिकूल अवस्था में पड़कर वह अपने को भूल गया, और इसी कारण

उसने इस प्रकार के कु-कर्मों से अपने हाथों को कलंकित किया।

मीरकासिम यदि उपर्युक्त नर-हत्या के द्वारा अपने हाथों को कलङ्कित न करता, तो निश्चय ही वह सन्मुख-युद्ध में जय-लाभ करके अंगरेजों को देश से बाहर करने में समर्थ होता। उसने वापूदेव के कई एक उपदेशों का प्रतिपालन किया था, इसी लिए भावी वंशजों के निकट वह एक प्रजा-हितैषी राजा कहा गया, उसके नाम का स्मरण आते ही वंगवासियों के हृदय में कृतज्ञता के भाव का संचार होता है।



कारागार-दर्शन।

पाठकों को जताने के लिए हमने इस से पहिले के कई परिच्छेदों में वापूदेव शास्त्री के संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त का उल्लेख किया। अब पूर्वोक्त अनाथा कन्यात्रय का हाल ही लिखा जायगा। वापूदेव शास्त्री के घर में सावित्री, जगदम्बा और अहल्या को आश्रय प्राप्त हुआ। शास्त्रीजी की कन्या प्रमदा-देवी इन निराश्रया कन्याओं की दुरवस्था का वृत्तान्त सुन-कर आंसू बहाने लगीं। प्रमदा देवी का हृदय स्नेह और ममता

से परिपूर्ण था। वे बारम्बार शास्त्रीजी से कहने लगीं—"पिता, आज ही सावित्री के भाई और स्वामी तथा इन दोनों असहाय बालिकाओं के पिता को जेल से छुड़ा कर लाने का कोई उपाय निश्चित कीजिये।"

शास्त्री महाशय ने सहज ही समझ लिया कि सावित्री के भाई और स्वामी तथा मदनदत्त को अगरेजों ने सिर्फ जुर्माने के रुपये के लिये कारागार में रख छोड़ा है। जुर्माने का रुपया अदा होते ही वे उन्हें मुक्त कर देंगे। परन्तु शास्त्रीजी आजकल बड़ी तंगी से गुजर कर रहे थे। इनकी जिमींदारी की सारी प्रजा, प्राय. पांच बरस हुए, कासिमबाजार की रेशम की कोठी के साहबों की सख्ती से देश छोड़ गई थी। मृत स्त्री के गहने बेच बाच कर ही वे इस समय अपनी जीविका चला रहे थे। अतएव बहुत कुछ सोच विचार कर भी वह इस का कुछ निश्चय न कर सके कि किस प्रकार इन लोगों के जुर्माने का रुपया अदा करें।

जिस दिन सावित्री आदि बापूदेव के घर पर आई थीं, उसके दूसरे दिन उन्हें अपने साथ लेकर अगरेजों के कलकत्ते के कारागार तक गये। बहुत खुशामद बरामद करने के बाद इस वृद्ध ब्राह्मण के अनुरोध से जेल के जमादार ने मदनदत्त, नवीनपाल तथा कालाचाद को अपने स्वजनों के साथ मुलाक़ात करने दी।

शास्त्री महाशय को जमादार ने कारागार के भीतर नहीं घुसने दिया। मदनदत्त, कालाचाद एवं नवीनपाल को बाहर ला कर उन्हें अपने स्वजनों के साथ मिलने की सुविधा प्रदान की। शास्त्री महाशय ने जो इस कारागार के भीतर प्रवेश नहीं किया, सो अच्छा ही हुआ। इस कारागार

भीतर का भीषण दृश्य—भयानक अत्याचार—कारारुद्ध हतभाग्यों का आर्त्तनाद, और करुण क्रन्दन सुनकर बापूदेव जसे हृदयवान व्यक्ति का अवश्य ही प्राण-वियोग हो जाता।

पाठकों से इस कारागार के सम्बन्ध में हम विशेष कुछ बातें नहीं कहना चाहते। सिर्फ इतना ही कहते हैं कि इस घर से सर्वदा ही लगातार गहरी, सासें उठती हैं, सैकड़ों आदमी घुटनों में, माथा रखे अधोमुख बैठे अपने अपने बाल-बच्चों की चिन्ता कर रहे हैं, उनकी आखों के आसुओं से सामने की भूमि भीग रही है, वे वारम्बार यही कहते हैं— "हा परमेश्वर न जाने बाल-बच्चों की क्या दुर्दशा हुई होगी, कौन जाने, शायद स्त्री का जातिभ्रष्ट होना पड़ा हो।"

कहीं-कहीं पर कोई-कोई नमक-व्यवसायी बैठे हैं, और अन्यान्य क़ैदियों से कह रहे हैं —"भाई हम तो अब जीने की इच्छा नहीं रखते। हमारा सर्वनाश हो चुका। धन, माल सब गया। मौत आ जाय, तो बस सारे कष्टों का अन्त हो।"

यह कहते कहते वे अपनी आखों से तीव्र अश्रुधारा गिराने और "जगत् में ईश्वर नहीं" यह कह-कह कर चिल्लाने लगते हैं।

इस गृह की क्रन्दन ध्वनि, इस गृह का आर्त्तनाद, इस गृह से उठी हुई गहरी सासें प्रतिक्षण उस मङ्गलमय परमेश्वर के पास पहुचती हैं। परन्तु जगत्पिता का प्रबोध-वाक्य, इनके कर्ण कुहरों में प्रवेश नहीं करता। ये हत भाग्य बङ्गवासीगण इस समय भी यह न समझ सके कि पारस्परिक सहानुभूति से शून्य होकर जीवन बिताने के कारण ही हमारी यह दुर्दशा हुई है। यदि बङ्गवासियों

को परस्पर-एक दूसरे के साथ सहानुभूति होती तो क्या अगरेज व्यापारी इन के ऊपर इस प्रकार का भयानक अत्याचार करने में समर्थ होते। ऐ काराबद्ध क़ैदियो! तुम अपने अपने कु-कर्मों का फल भोग रहे हो। "जगत् में ईश्वर नहीं" — "ईश्वर नहीं" यह कह-कह कर तुम व्यर्थ ही चिल्लाते हो।

मदनदत्त, कालाचांद एवं नबीनपाल ने कारागार से बाहर होने पर देखा कि एक वृद्ध ब्राह्मण दूर पर खड़ा है। उसके पीछे तीन कन्याएँ हैं। जमादार ने इन से उसी वृद्ध के निकट जाने के लिए कहा।

कारागार के कष्टों के कारण ये तीनों ही बड़े दुर्बल हो रहे थे। मदनदत्त की दोनों कन्याएँ अपने पिता को न पहिचान सकीं। परन्तु मदन ने, उन्हें देखते ही पहिचान लिया, दोनों हाथ पसार कर दोनों कन्याओं को अपनी छाती से चिपटा लिया और फूट-फूट कर रोने लगा। सावित्री अपने बड़े भाई को देखते ही गला पकड़ कर उच्च-स्वर से रो उठी और तृष्णा भरी दृष्टि से पास में खड़े हुए पति की ओर देखने लगी।

सभाराम की मृत्यु का हाल कालाचांद और नबीनपाल ने आज तक नहीं सुना था। सावित्री अकेली कलकत्ते आई है, यह जानकर वे विविध प्रकार की चिन्ता करने लगे।

इनके परस्पर सम्मिलन में जैसी क्रन्दन ध्वनि उठी और इन सब ने जिस प्रकार विलाप परिताप किया, उसका सविस्तर उल्लेख करके पुस्तक का कलेवर बढ़ाना व्यर्थ

पाठक और पाठिकाए एक बार इस प्रकार की अवस्था में अपने आत्मीय स्वजनों के साथ मिलने की कल्पना करें, तभी वे इनके तत्कालीन हार्दिक भावों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

जब इन्होंने अपने अपने प्रबल शोकावेग को सभाला तो वापूदेव शास्त्री, नवीनपाल, कालाचाद, एव मदनदत्त को सावित्री का आद्योपान्त सारा वृत्तान्त सुनाने लगे। जिस प्रकार सावित्री की माता और भौजाई आदि की मृत्यु हुई, जिस प्रकार उस टूटे-फूटे घर में रहते हुए सावित्री अपने पिता के सहित रामहरी के द्वारा कासिमबाजार में लाई गई, जिस प्रकार सावित्री को आराट्न साहब की सहधर्मिणी ने आश्रय प्रदान किया, बाद में कलकत्ते आने में जो-जो कष्ट भोगने पडे, एक एक करके उन्होंने वह सब हाल उन्हें कह सुनाया। तदनन्तर, जिस प्रकार सावित्री के साथ मदनदत्त की बडी कन्या का साक्षात् हुआ, एव मदन की बड़ी कन्या तथा स्त्री का प्राणान्त हुआ वह सारा हाल कहा।

मदन अपनी स्त्री और बेटी की शोचनीय मृत्यु का सम्वाद सुनकर मूर्च्छित हो गिर पड़ा। कुछ देर बाद चैतन्य होने पर "हा मेरी अन्नपूर्णा! तेरे भाग्य में इतना क्लेश बदा था,—" यह कहते हुए अपनी स्त्री और कन्या के शोक में उच्च स्वर से रोदन करने लगा।

इस ओर कालाचांद—माता, पिता, स्त्री तथा भौजाई की मृत्यु का सम्वाद सुनकर उन्मत्त सा हो गया। नवीनपाल भी हाहाकार करके रोने लगा।

कुछ देर बाद जेल के जमादार ने आकर वापूदेव

से कहा—"महाशय, अब अधिक देर तक हम क़ैदियों को बाहर नहीं रख सकते।"

मदनदत्त, कालाचांद एव नवीनपाल वापूदेव के चरणों में लोट कर रोते-रोते बोले—"प्रभो, आप सचमुच देवता हैं। यदि आप आश्रय न देते तो इनके साथ इस जन्म में हमारा साक्षात् न होता।"

कालाचांद और नवीनपाल पहिले ही से वापूदेव को पहिचानते थे। वापूदेव कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं—यह भी उन्हें ज्ञात था। परन्तु मदन को आज पहिले ही पहिल यह मालूम हुआ कि इस कराल कलिकाल में भी ब्राह्मण कुल में दो एक देवता मौजूद हैं। वापूदेव ने कहा—"तुम लोग कोई चिन्ता न करो। अपना सर्वस्व वेच कर भी मैं तुम्हारे जुर्माने का रुपया दाखिल करके तुम्हें कारागार से मुक्त कराऊँगा।"

इस प्रकार के घोर आपद्काल में वृद्ध ब्राह्मण की यह बात सुनते ही उनके हृदय में वापूदेव के प्रति भक्ति-भाव का जो प्राबल्य हुआ, वह शब्दों से प्रकट नहीं हो सकता।

वापूदेव, सावित्री, जगदम्बा और अहल्या को साथ लेकर घर लौट आये



कारापिट आराटून ।

प्रमदा देवी ने सोचा था कि मेरे पिता, सावित्री के स्वामी और भाई तथा मदनदत्त को आज ही कारागार से छुड़ाकर ले आवेंगे। परन्तु जब उसके पिता इन तीनों कन्याओं को ही साथ लेकर घर लौटे तो उसे बड़ी निराशा हुई।

बापूदेव कन्या को समझा कर कहने लगे—"बेटी, मेरे पास एक पैसा भी नहीं है जुर्माने का रुपया कहाँ से अदा करूँ। सुना है, तीनों का जुर्माना मिल कर कोई एक हजार रुपया होगा। इसके लिए क्या उपाय किया जाय, कुछ समझ में नहीं आता।"

प्रमदा देवी ने अपने सब आभूषण बेच बाच कर रुपया इकट्ठा करने का निश्चय किया। परन्तु वे अच्छी तरह जानती थीं कि यदि पिता जी इन आभूषणों को बेचने जायँगे तो उन्हें इनका उपयुक्त मूल्य नहीं मिलेगा। क्रय-विक्रय के काम में विविध प्रकार की ठगई का व्यवहार होता है। बापूदेव शास्त्री इस सम्बन्ध में क़तई अनभिज्ञ थे।

प्रमदादेवी ने पिता के निकट आभूषणों को बेचने का इरादा प्रकट नहीं किया। पिता से सिर्फ यही कहा—"पिता, दादा से एक बार यहाँ आने के लिए कह देना।"

प्रमदा देवी बचपन ही से महाराज नन्दकुमार को दादा कहा करती थीं।

परन्तु उनके पिता ने यह बात सुनकर कहा— "नहीं बेटी, यह न होगा। नन्दकुमार मेरा शिष्य है। जब उसे मालूम होगा कि मुझे रुपये की जरूरत है, तो वह जैसे कुछ होगा, रुपया देने की चेष्टा करेगा। मैं प्राण जाते भी उसके निकट रुपये का प्रार्थी नहीं हो सकता। उससे कहूंगा क्या, मेरी इच्छा नहीं कि किसी के निकट धन की याचना करूँ। विशेषत नन्दकुमार पर इस समय घोर विपत्ति है। वह पदच्युत होकर एक प्रकार से बन्दी-स्वरूप कलकत्ते में रह रहा है। इस समय मैं किसी प्रकार उस से रुपया नहीं माग सकूँगा।"

प्रमदा ने कहा — "नहीं पिता, मैं दादा से रुपया नहीं चाहती। मैं अपने निज के आभपण उन्हें बेचने को दूँगी। उनके द्वारा विकवाने पर आभूषणों का उपयुक्त मूल्य मिल सकेगा। परन्तु आप इन्हें बेचने ले जायगे तो लोग अवश्य ही आप को ठग लेंगे।"

सावित्री इन दोनों के हृदय में इतनी दया देख कर एकदम हतबुद्धि रह गई। मन ही मन सोचने लगी कि मनुष्य के घर आई हू या देवता के यहा? हम लोगों को किस प्रकार विपत्ति से मुक्त करें, इसके लिए ये अपना सर्वस्व तक वेचने को तैयार हैं।

इस प्रकार की चिन्ता करते करते उसने प्रमदा देवी को सम्बोधन करके कहा — "माता! सैदाबाद के आरा...

पास है । यदि वहां पहुच जाऊँ तो सम्भवत. आराटून साहब मुझे कुछ रुपया दे सकेंगे । ऐसा हुआ तो आप को इन समस्त आभूषणों को बेचने की आवश्यकता न रहेगी।"

बापूदेव ने यह बात सुनकर कहा — "अच्छा बेटी, कल मैं तुम्हें साथ लेकर आराटून साहब के पास चलूगा। परन्तु मैं तुम से यह पूछना चाहता हूं कि सभाराम के पास तो बहुत रुपया था, वह क्या सब कम्पनी के आदमी ले गये ?"

सावित्री — सुना है, उन्होंने हमारे गुप्त धन का पता नहीं पाया । पिता ने कुछ रुपया घर के भीतर किसी जगह मिट्टी के नीचे दबा रक्खा था, उसे मैं भी नहीं जानती । सिर्फ पिता, माता और मेरे बड़े भाई उसे जानते थे।

शास्त्री—मरते समय तुम्हारे पिता उसे किसी को बता नहीं गये ?

सावित्री—मरते समय पिता ने कुछ कह ही नहीं पाया। मृत्युकाल के पूर्व उनके मुँह से सिर्फ "हलधर", "मोहर" यही दो शब्द निकले थे।

शास्त्री—सभाराम वास्तव में एक धार्मिक पुरुष थे । हलधर का रुपया और मोहरें मैंने उनके पास रख दी थीं । मरते समय सम्भवत उन्होंने उसी को बतलाने की चेष्टा की थी । हलधर का रुपया कहां रखा था, क्या तुम जानती हो ?

सावित्री — मुझे नहीं मालूम ।

शास्त्री — तुम हलधर को जानती थी ?

सावित्री — श्रीमान् वे मेरे मामा थे । सुना है, मेरा

जन्म होने के पहिले मेरे पिता मेरे मामा के घर में एक ही साथ रहते थे। बाद में जागीर की जमीन मिलने पर अलग घर बना लिया।

शास्त्री — हां, ऐसा ही हुआ था। तुमने शायद हलधर के पुत्र को कभी नहीं देखा।

सावित्री — हां, मामा की मृत्यु के बाद फिर मैंने उसे कभी नहीं देखा। अब वह जीवित है या नहीं, यह भी मुझे नहीं मालूम। सुना था, मेरी मामी पुत्र को गोद में लेकर नदी में कूद पड़ी थीं। परन्तु पुत्र जब पानी पर उतराने लगा तो आप ने उसे नदी से निकाल लिया।

शास्त्री — इस छः बरस के जिस बालक का प्रमदा प्रतिपालन कर रही है, यही बालक हलधर का पुत्र है।

यह सुन कर सावित्री को बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रमदा देवी के पाव पकड़ कर बोली — "मा, आप मनुष्य नहीं हैं निश्चय ही देवकन्या हैं। अनाथ कँगालों के प्रति आप के हृदय में इतनी दया! आप ब्राह्मण की बेटी हो कर इस तन्तुकारों के बालक का इतने यत्न से प्रतिपालन कर रही हैं!"

यह कहते-कहते सावित्री की आखों से बूँद बूँद आसू टपकने लगे। वह प्रमदा के पास बैठे हुए बालक को गोद में लेकर उसका मुह चूमने लगी।

गत तीन बरसों से प्रमदादेवी इस पितृ-मातृ-हीन बालक का प्रतिपालन कर रही हैं।

इस के दूसरे दिन सवेरे बापूदेव शास्त्री सावित्री को साथ ले फौजदारी बालाखाने के पास आर्मीनियन मुहल्ले

आये। कारापिट आराटून को वे खुद भी नहीं पहि-
ते थे।

इस समय आराटून साहब अपने मुक़द्दमे की पैरवी
लिए कलकत्ते के फ़ौजदारी बालाखाने के पास एक
से इकतला घर में रहते थे। बापूदेव शास्त्री के साथ
त्री को देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। मुर्शिदाबाद
भी लोगों में बापूदेव शास्त्री "वृद्ध नवाब के पण्डित"—
नाम से प्रसिद्ध थे। कारापिट आराटून और उन
ता सामुयल आराटून शास्त्री जी का बहुत आदर
थे।

शास्त्री महाशय ने जैसे ही घर में प्रवेश किया,
ने साहब ने बड़े आदर से उठ कर उन्हें सलाम
।

सावित्री ने अपने खूँट में से एस्थार बीबी का पत्र
कर आराटून साहब के हाथ में दिया।
एस्थार बीबी कैसी सहृदया रमणी थीं, पाठकगण उसे
लिखे हुए पत्र के अनुवाद को पढ़ कर ही जान
। यह पत्र फ़ारसी भाषा में लिखा था। पत्र
यान्य बातों को छोड़ कर, उन्होंने सावित्री के
में जो कुछ लिखा था, उसे हम नीचे उद्धृत
—

नाथ! हमारे ऊपर इस समय जैसी विपत्ति है,
हम में यह सामर्थ्य नहीं कि इस समय हम
किसी की सहायता कर सकें। परन्तु फिर
तुम से अनुरोध करती हूँ कि इस दुखिनी सावित्री
मोचनार्थ जितना रुपया आवश्यक हो, उतना इसे

देना। अपनी एस्थार का यह अनुरोध तुम्हें रखना ही पड़ेगा। इस दुखिनी की दुर्दशा जब याद आती है तो मेरा हृदय फटने लगता है। इसके पिता, माता, भाई और भौजाई सभी मर गये हैं। सिर्फ एक भाई और इसका पति अभी तक जीवित है। रामहरी ने जब इस के धर्म को नष्ट करने का षड्यन्त्र रचा तो मैंने इसे अपने घर में आश्रय दे लिया था। सावित्री पति-प्राणा है, इसी लिए वह पति का उद्धार करने कलकत्ते आ रही है। जैसे हो, इसके भाई और स्वामी को कारागार से मुक्त करवा देना।

तुम्हारी चिरानुगत दासी,

एस्थार।"

पत्र को पढ़ते ही आराटून साहब की आखों से आसू बहने लगे—"हा परमेश्वर!" यह कह कर उन्होंने गहरी सास ली, और बापूदेव शास्त्री को सम्बोधन कर के कहा—"पण्डितजी, अंगरेज़ों के अत्याचार से मेरा रेशम का कारबार क़तई बैठ गया। मेरे यहा के सब आदमियों को पकड़ ला कर वे अपनी कोठी में, उन से काम ले रहे हैं। डाकुओं की तरह मेरी दीनाजपुर वाली नमक की कोठी लूट लाये। उसी नमक की क़ीमत के लिए मैंने उनके विरुद्ध मुक़दमा दायर किया है। इस मुकदमे के खर्च के लिए मैंने तीस हज़ार रुपया क़र्ज़ लिया है। इस वक्त हाथ में एक पैसा भी नहीं है। कोई मुझे एक पैसा उधार देने को भी तयार नहीं होता। नौ मई की तारीख़ मुक़दमे के विचारार्थ निश्चित हुई है। आज से छ दिन के बाद ही मुक़दमे का विचार

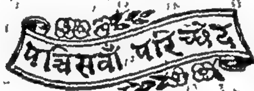
होगा। यदि इस मुक़दमे में इन्साफ़ न हुआ तो सावित्री की तरह मेरी एस्थार भी पथ की भिखारिणी बन जायगी। मेरा जीना कठिन हो जायगा। फिर यदि मुक़दमे की डिग्री हो तभी मैं ऋण चुका सकूंगा, और उस समय लोग भी मुझे दस पांच रुपये उधार देने को इनकार न करेंगे। आप यदि आज से छः सात दिन बाद सावित्री को लेकर मेरे पास आवें तो मैं आप से इसे रुपया दे सकने या न दे सकने के सम्बन्ध में निश्चित बात कह सकूंगा। यदि मुक़दमा डिग्री हो तो इसे जितने रुपये की ज़रूरत होगी, सब मैं दूंगा।"

आराटून साहब की इस दुरवस्था का हाल सुनकर बापूदेव शास्त्री बड़े दुःखित हुए। कारापिट आराटून के पिता सामुयल आराटून के घर में एक लाख रुपये का लेन-देन होता था। परन्तु आज कारापिट को किसी से एक पैसा उधार मांगे नहीं मिलता। यह क्या थोड़े दुःख की बात है। बंगाल के अर्थ-लोभी गवर्नर वेरेलस्ट साहब की अर्थ-लोलुपता के कारण कारापिट की यह दुर्दशा हुई है।

कुछ देर तक बापूदेव आराटून साहब के साथ अन्यान्य विषयों पर वार्तालाप करते रहे। बाद में सावित्री को साथ लेकर घर लौट आये और प्रमदा से कहा कि आराटून साहब बड़ी दुरवस्था में हैं। वे रुपया दे सकेंगे, इसकी कोई सम्भावना नहीं।

प्रमदा देवी ने पिता की बातें सुन कर महाराज नन्दकुमार को बुला लाने के लिए आदमी भेजा। तीसरे पहर महाराज नन्दकुमार आकर प्रमदा से मिले। अन्यान्य

वार्त्तालाप के बाद प्रमदा ने कहा—“ दादा, अपने गुमाश्ता चैतननाथ के द्वारा मेरे कुछ आभूषण बिकवा दीजिए। मुझे रुपये की बड़ी जरूरत है। ये जो तीन कन्याएं आप देख रहे हैं, इनके आत्मीय कारागार में हैं। उन के जुर्माने का रुपया अदा कर के मैं उन्हें मुक्त कराऊँगी। ”



भाई-बहिन।

महाराज नन्दकुमार प्रमदा पर बहुत स्नेह करते थे। प्रमदा को देखते ही उनकी आंखों में आंसू भर आते थे। आज उसकी बात सुन कर उन्होंने कहा—“ प्रमदा, तुम्हें ये आभूषण नहीं बेचने पड़ेंगे। तुम्हारे आभूषणों के मूल्य का बहुत सा रुपया मेरे पास है। ”

प्रमदा देवी ने अचम्भे में आ कर कहा—“ यह क्या! मेरा कोई आभूषण तो पिता ने कभी बेचा नहीं! ”

महाराज नन्दकुमार का जी भर आया, उन्होंने कहा—“ प्रमदा, अत्यन्त बाल्यावस्था में मेरी मा का देहान्त हो गया था। मातृ स्नेह जैसे अमूल्य धन के सम्भोग का सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हुआ। जब मैं तुम्हारे घर रहता

था, तुम्हारी माता मुझे पुत्र के समान प्यार करती थीं। उनकी कृपा से मैंने मातृहीन हो कर भी मातृस्नेह का सुख भोगा था। मैं सदा ही उन्हें अपना गर्भधारिणी जननी समझता रहा। हुगली में फौजदार के पद पर नियुक्त होते ही, मैंने सोचा था कि उन स्नेहमयी जननी को और तुम्हें हीरक-मण्डित कई एक स्वर्णालंकार उपहार स्वरूप प्रदान करूंगा। बाल्यावस्था से ही मैं तुम्हें छोटी बहिन के समान प्यार करता हूं। परन्तु मेरे जैसा पापी शायद संसार में दूसरा नहीं। जननी को स्वर्णालंकार भेंट करना मेरे भाग्य में नहीं बदा था। हुगली से मुर्शिदाबाद को चलते वक्त मैं तुम्हारे और उस स्नेहमयी जननी के लिए कई एक हीरक मण्डित स्वर्णालंकार अपने साथ लाया था। तुम्हारे घर पहुंचते ही सुना कि जननी इस लोक से प्रस्थान कर स्वर्गलोक में जा बसीं, और तुम्हें इस अल्पावस्था में ही वैधव्य के कारण सांसारिक सुख-सौभाग्य से वंचित होना पड़ा। अतएव ऐसी दशा में वे समस्त आभूषण मेरे लिए एक नवीन दुख के कारण हुए। एक बार मन में आया कि इन समस्त आभूषणों को आग में जला डालूं। परन्तु प्रायः पचास हजार रुपये के आभूषणों को जला डालने से भी कोई लाभ नहीं,— यह सोच कर मैंने निश्चय किया कि इन आभूषणों को बेचकर इनके मूल्य का रुपया रख छोड़ूंगा, और इसलिए मैंने उन समस्त आभूषणों को रघुनाथराय के द्वारा अपने अनुगत दुगाकीदास की दूकान में रख दिया था। छः बरस से वे समस्त आभूषण बलाकीदास की दूकान ही में पड़े थे। मुझ से वे फिर ओरों न देखे गये। मीर कासिम और अंगरेजों के दर्मियान युद्ध छिड़ने पर बलाकी की दुकान लुट गई,

और उस समय वे समस्त आभूषण भी कहीं खो गये।

"जब मैं कलकत्ते आया तो बुलाक़ी ने मेरे पास आकर कहा कि आप के अमानत रखे हुये आभूषणों का मूल्य मैं इस समय न दे सकूंगा। परन्तु उनके मूल्य की बाबत मैं ४८०२१ (अड़तालिस हज़ार इक्कीस) रुपये का तमस्सुक लिख देना चाहता हूं। बाद में तमस्सुक का रुपया चुका दूगा।

"मैंने पहिले बुलाक़ी को तमस्सुक लिखने के लिए मना किया। सोचा कि जब अमानत के गहने लुट गये तो अब उससे उनकी क़ीमत लेना उचित नहीं।

"परन्तु बुलाकी ने कहा—"महाराज, ये अलंकार बापूदेव शास्त्री की कन्या प्रमदादेवी के थे। वे परम साध्वी, साक्षात भगवती स्वरूपा हैं। मैं उन्हें मानवी नहीं समझता। उनके आभूषण जब मेरे गुमाश्ता आदि की असावधानी से जाते रहे तो उनका मूल्य मैं कौड़ी गडे से चुकाऊंगा, ब्राह्मण का धन है। उनका मूल्य न अदा करने पर मेरा सर्वनाश हो जायगा।"

"बुलाकी ने तुम्हारे उन आभूषणों के एवज में मुझे ४८०२१ रुपए का एक तमस्सुक लिख दिया है। वह अपने कम्पनी के हिसाब का रुपया पाते ही यह रुपया चुका देगा। तुम्हें जिस समय जितने रुपए की जरूरत हो मुझसे लेती रहो, और यह समझो कि तुम्हारे उन आभूषणों की बाबत ४८०२१ रुपये मेरे पास अमानत हैं।"

ये सब बातें कहकर नन्दकुमार गुरु के चरणों में प्रणाम कर अपने स्थान को चले गये, और उसके दूसरे दि

उन्होंने अपने गुमाश्ता चैतानाथ के हाथ प्रमदा के पास २००० रुपये भेज दिये।

बापूदेव चैतानाथ को साथ लेकर मदनदत्त, नवीनपाल एव कालाचाद के जुर्माने का रुपया अदा करने आफ़िस को गये। उन तीनों पर साढे बारह सौ रुपया जुर्माना हुआ था। जुर्माने का रुपया अदा करके शास्त्री जी उन्हें कारागार से मुक्त करवाकर अपने घर ले आये। सावित्री एव मदनदत्त की दोनों कन्याओं को जितना आनन्द हुआ, वह शब्दों से प्रकट नहीं हो सकता।

नवीनपाल और कालाचाद को फिर मुर्शिदाबाद जाने का साहस न हुआ। उनके गांव के सभी तन्तुकार घर छोड़ कर भाग गये हैं, सूने गाव में अब उनसे कैसे रहा जायगा,— यह सोच कर वे शास्त्रीजी के बाड़े में ही छोटा सा घर उठाकर रहने लगे। जिसमें वे अपना व्यवसाय चला सकें, इसके लिए प्रमदा ने उन्हें कुछ रुपया दे दिया।

मदनदत्त भी अपने ग्राम निवासियों के निर्दय व्यवहार की बातें सुनकर फिर वहा नहीं गये। कालाचाद और नवीनपाल की तरह वे भी शास्त्रीजी के बाड़े में ही अपनी दोनों कन्याओं को लेकर रहने लगे, और प्रमदा देवी के पास से तीन सौ रुपया लेकर उन्होंने भी एक छोटा सा कारबार आरम्भ किया।



कारापिट आराटून की मृत्यु।

कारापिट आराटून ने सावित्री से दसवीं मई को आने के लिए कहा था। नवीं तारीख उनके मुकदमे के विचार के लिए नियत थी। परन्तु सावित्री को अब रुपये के लिए उनके पास जाने की आवश्यकता न रही थी।

दसवीं मई को सावित्री ने अपने स्वामी और बड़े भाई से कहा—"आराटून साहब के मुकदमे में क्या हुआ, इसका पता लगाना उचित है। आराटून साहब की मेम ने मुझे आश्रय प्रदान कर मेरे कुल, प्राण, मान एवं धर्म की रक्षा की है। उन्होंने मेरा बड़ा उपकार किया है। अतएव चलो, तीनों आदमी उनके पास चल कर कहें कि अब हमें रुपये की जरूरत नहीं है, और उनके मुकदमे में क्या हुआ इसका भी पता ले आवें।"

नवीनपाल और कालाचांद सावित्री की बात सुनक उसे साथ ले तत्काल ही आराटून साहब की कोठी पर गये वहा जाकर देखा कि आराटून साहब के घर का दरवाज बन्द है, उनका नौकर बाहर बराडे मे बैठा हुआ है। पूछ पर मालूम हुआ कि आराटून साहब गवर्नर साहब बगले पर गये हैं, अभी लौटे आते होंगे। तीनो वहीं कर प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु आध घटे के बाद दे कि चार पाच आदमी आराटून साहब का कधो पर

लिए आ रहे हैं, आराटून साहब अचैतन्य हो रहे हैं। साथ में और भी पांच छ आदमी हैं।

जो आदमी आराटून साहब को कंधों पर रखकर लाये थे, उनके साथ दो आदमी और थे। उनमें से एक का नाम था गोकुल। यह सोने का व्यवसाय करता था। दूसरे का नाम था रामनाथ दास।

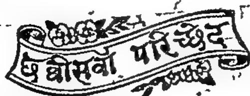
आराटून साहब के घर में प्रवेश करते समय गोकुल सुनार रामनाथ के साथ चुपचुपाते हुए कुछ बातें कर रहा था। स्पष्टरूप से उनकी बातें कोई न समझ सका। अन्तिम बात का सिर्फ इतना अंश सुनाई दिया कि "जो भाई वेरेलस्ट साहब और बारवेल साहब का घूस दे देता है, गवर्नर साहब उसके नाम की नालिश का विचार नहीं करते।"

कुछ देर में रामनाथ और गोकुल सुनार दोनों चले गये। सावित्री, नवीन, कालाचाँद एवं आराटून साहब के नौकर ने इस व्यापार का मर्म न समझ पाया।

नवीन और कालाचाँद ने आराटून साहब के सिर पर पानी छोड़ना शुरू किया। कुछ देर में उन्हें कुछ होश हुआ, आँखें खोलीं, इधर-उधर देखने लगे। पलँग के पार्श्व में सावित्री को देखकर बोले—"मेरी एस्थार—मेरी प्यारी एस्थार! तुम कंगालिनी हुई, पथ-पथ की भिखारिणी हुई, मैं जाता हूँ।"

सावित्री ने कहा—"मैं एस्थार नहीं हूँ। मैं हूँ सावित्री। आप के मुकद्दमे में क्या हुआ—यह जानने आई हूँ।"

मुकद्दमे की बात सुनते ही आराटून साहब माथे पर हाथ रखकर बोले—"मेरा सर्वस्व गया, मेरी एस्थार पथ की भिखारिणी हुई।"



कारापिट आराटून की मृत्यु।

कारापिट आराटून ने सावित्री से दसवीं मई को आने के लिए कहा था। नवीं तारीख उनके मुकदमे के विचार के लिए नियत थी। परन्तु सावित्री को अब रुपये के लिए उनके पास जाने की आवश्यकता न रही थी।

दसवीं मई को सावित्री ने अपने स्वामी और बड़े भाई से कहा—"आराटून साहब के मुकदमे में क्या हुआ, इसका पता लगाना उचित है। आराटून साहब की मेम ने मुझे आश्रय प्रदान कर मेरे कुल, प्राण, मान एवं धर्म की रक्षा की है। उन्होने मेरा बड़ा उपकार किया है। अतएव चलो, तीनों आदमी उनके पास चल कर कहें कि अब हमें रुपये की जरूरत नहीं है, और उनके मुकदमे में क्या हुआ, इसका भी पता ले आवें।"

नवीनपाल और कालाचाँद सावित्री की बात सुनकर उसे साथ ले तत्काल ही आराटून साहब की कोठी पर गये। वहाँ जाकर देखा कि आराटून साहब के घर का दरवाजा बन्द है, उनका नौकर बाहर बराण्डे मे बैठा हुआ है। पूछने पर मालूम हुआ कि आराटून साहब गवर्नर साहब के बंगले पर गये हैं, अभी लौट आते होंगे। तीनो वहीं बैठ कर प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु आध घंटे के बाद देखा कि चार पाँच आदमी आराटून साहब का कंधों पर र

लिए आ रहे हैं, आराटून साहब अचैतन्य हो रहे हैं। साथ में और भी पाँच छः आदमी हैं।

जो आदमी आराटून साहब को कंधों पर रखकर लाये थे, उनके साथ दो आदमी और थे। उनमें से एक का नाम था गोकुल। यह सोने का व्यवसाय करता था। दूसरे का नाम था रामनाथ दास।

आराटून साहब के घर में प्रवेश करते समय गोकुल सुनार रामनाथ के साथ चुपचुपाते हुए कुछ बातें कर रहा था। स्पष्टरूप से उनकी बातें कोई न समझ सका। अन्तिम बात का सिर्फ इतना अंश सुनाई दिया कि "जो कोई वेरेलस्ट साहब और बारवेल साहब को घूस दे देता है गवर्नर साहब उसके नाम की नालिश का विचार नहीं करते।"

कुछ देर में रामनाथ और गोकुल सुनार दोनों चले गये। सावित्री, नवीन, कालाचाँद एवं आराटून साहब के नौकर ने उस व्यापार का मर्म न समझ पाया।

नवीन और कालाचाँद ने आराटून साहब के सिर पर पानी छोड़ना शुरू किया। कुछ देर में उन्हें कुछ होश हुआ, आँखें खोलीं, इधर-उधर देखने लगे। पलँग के पार्श्व में सावित्री को देखकर बोले—"मेरी एस्थार—मेरी प्यारी एस्थार! तुम कगालिनी हुईं, पथ-पथ की भिखारिणी हुईं, मैं जाता हूँ।"

सावित्री ने कहा—"मैं एस्थार नहीं हूँ। मैं हूँ सावित्री। आप के मुकद्दमे में क्या हुआ—यह जानने आई हूँ।"

मुकद्दमे की बात सुनते ही आराटून साहब माथे पर हाथ रख कर बोले—"मेरा सर्वस्व गया, मेरी एस्थार पथ की भिखारिणी हुई।"

इतना कह कर वे फिर बेहोश हो गये। उस समय सावित्री, कालाचांद और नवीनपाल सभी ने अनुमान किया कि शायद साहब मुकदमा हार गये हैं, इसी लिए मानसिक दुख के कारण अचैतन्य हो रहे हैं।

वे पुनः उन के सिर पर पानी छोड़ने लगे। कुछ देर बाद आराटून साहब ने "हा" कर के जल पीने की इच्छा प्रकट की। सावित्री ने उन के मुह के पास पानी का गिलास रखा। पानी पीकर वे कुछ सावधान हुए, और पुनः चेतनता प्राप्त हुई। परन्तु अत्यन्त दुर्बलता के कारण इस समय उन्हें बात करने में कष्ट प्रतीत होता था। वे सावित्री से बारम्बार कहने लगे— "मरते समय मैं अपनी प्राणप्यारी एस्थार को न देख सका।"

सावित्री ने कहा—मेरे भाई जेल से छूट कर आ गये हैं। एस्थार बीबी को खबर करने के लिए मैं उन्हें मुर्शिदाबाद भेज दूंगी।

आराटून साहब ने कहा—खबर करने से भी अब क्या होगा। उनके यहा पहुंचने के पहिले ही मेरी मृत्यु हो चुकेगी।

उस समय कालाचांद ने आराटून साहब के पास जा कर कहा— "बाबा साहब, (कालाचाँद आराटून साहब को बाबा साहब कहा करते थे) आप सावधान हों, मुकदमें की चिन्ता छोड़ दें।"

कारापिट की आंखों से फिर आँसू गिरने लगे। ग्रिगरी खाजेमाल नामक एक अन्य आरमीनियन व्यापारी काराापिट साहब के घर के पड़ोस में रहते थे। यह

कारापिट के घनिष्ट सम्बन्धियों में से थे। उन्हें बुला लाने के लिये कारापिट ने अपने नौकर को उन के पास भेजा। खाजेमाल ने आकर जब आराटून साहब की यह शोचनीय अवस्था देखी तो वे बड़े दुखित हुए, और उन्हें का इस दशा का कारण पूछने लगे।

कारापिट साहब पहिले की अपेक्षा कुछ सावधान होकर कहने लगे— "भाई, मेरा सर्वनाश हो गया। कल जैसे ही मेरा मुकदमा पेश हुआ, मैं अपने वकील के सहित अदालत में हाजिर हुआ। परन्तु उसी वक्त गवर्नर वेरेलस्ट साहब का एक पत्र मेयर कोर्ट के प्रधान जज कर्नेलियस गुडविन (Cornelius Goodwin)* के पास पहुंचा। विचारपति गुडविन ने उस पत्र को पढ कर मुझ से कहा— "तुम अपना मुकदमा आपस में मिल कर तय कर लो। यहां तुम्हारे मुकदमें का विचार नहीं होगा। तुम्हें अपना सब रुपया आपस के राजीनामे से मिल जायगा।"

"मैं बारम्बार कहने लगा कि मेरे साथ कभी किसी प्रकार के राजीनामे का प्रस्ताव नहीं हुआ है। मेरे वकील ने कहा कि हम कदापि राजीनामा नहीं करेंगे। परन्तु गुडविन साहब ने मेरी ओर मेरे वकील की बात न सुन कर 'राजीनामे से फैसल होगा'—यह कहते हुए मुकदमा खारिज कर दिया। जब मैंने बहुत कुछ, खुशामद बरामद कर के अपनी दुरवस्था का हाल बयान किया तो उन्होंने कहा कि ये सब बातें वेरेलस्ट साहब से कहना।

---

* Vide note (21) in the appendix

"आज दस बजे के बाद मैं वेरेलस्ट साहब के बंगले पर गया। मिलते ही पहिले तो वे मुझे गालियां देने लगे। बाद में कहा कि हम तुम्हारे मुकदमे के विषय में कुछ नहीं जानते। मैंने फिर कुछ कहना चाहा तो इन्होंने अपने नौकरों को मुझे निकाल देने की आज्ञा दी।

"भाई मुझे लूट लिया। मेरी ६०००० रुपये की नमक की गोदाम लूट ली। मैंने तीस हजार रुपया कर्ज ले कर मुकदमे में खर्च किया। परन्तु ये अंगरेज विचारकगण वास्तव में चोर प्रतीत होते हैं। इन्हें धर्माधर्म का तनिक भी ज्ञान नहीं। इन के गवर्नर एक डकैत हैं। इन के विचारकगण चोर हैं। मैंने इन का कभी कोई अपराध नहीं किया। इन्होंने केवल अर्थ-लोभ के कारण ही मेरा सब नमक छीन लिया। ऐसे कपटी और स्वार्थी मैंने कहीं न देखे।

"भाई मेरा सर्वनाश हो गया, सब कुछ जाता रहा। अब मैं बचूंगा नहीं। मेरी प्राण प्यारी एस्थार, मेरे दो बालक, मेरी विमाता सभी एकदम कङ्गाल बन गये।"

यह कहते-कहते कारापिट फिर अचैतन्य हो गये। फ्रिगरी राजेमाल एक डाक्टर को बुला लाये। कारापिट के पास डाक्टर को देने के लिये दो रुपये भी न थे। डाक्टर ने उन की शारीरिक अवस्था देख कर, कहा कि थोड़ी ही देर में उन की मृत्यु हो जायगी।

शाम के वक्त राजेमाल अपने घर चले गये। सावित्री ने कालाचाँद और नबीनपाल से कहा—"तुम मैदापुर जाकर एस्थार बीबी को खबर दो। इन्होंने मेरे ऊपर बड़े

उपकार किये हैं। उनके पति बहुत बीमार हैं,—यह सम्वाद उन के पास अवश्य पहुचना चाहिए।"

कालाचाँद ने कहा— "नवीन के जाने की कोई जरूरत नहीं। मैं अकेला ही आज रात में चला जाऊ गा। चार दिन के भीतर मैं सैदाबाद पहुच जाऊ गा। तुम और नवीन यही रह कर साहब को चङ्गा करने की कोशिश करना।"

कालाचाद ने तत्काल ही बापूदेव शास्त्री के घर आकर उन से सब हाल कहा। बापूदेव ने कहा—" मदनदत्त यदि तुम्हारे साथ जाने को राजी हो तो उसे भी लेते जाओ। अकेले मुर्शिदाबाद जाना ठीक नहीं।"

मदनदत्त अपने पहिले जमाने मे परोपकार के लिए किसी प्रकार का कष्ट उठाने को तैयार नहीं होते थे। परन्तु शास्त्री जी और सावित्री का आचरण देखकर उन का पहिले वाला कठोर हृदय अब एकदम नरम हो गया है। अब वे किसी के दुख को देख कर प्राणपण से उसे दूर करने की चेष्टा करते हैं। कालाचाद के साथ वे मुर्शिदाबाद जाने को तैयार हो गये। उन की दोनों कन्याए बापूदेव के यहा रहीं।

इस ओर आधीरात के वक्त कारापिट साहब को फिर होश हुआ। उस समय वे क्षीण स्वर मे कहने लगे— "मेरी एस्थार आई ? थोडा सा पानी।" सावित्री ने पानी का गिलास उनके मुह के पास रखा।

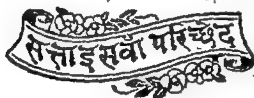
पानी पीकर कहने लगे—" हाय! मेरी एस्थार को कौन देखेगा ?"

इसके बाद आराटून साहब क्रमश अशक्त होते गये।

रात के दो बजे उनका मृत्यु काल उपस्थित हुआ। "एस्थार"—"एस्थार"—दो बार मुह से ये शब्द निकलते निकलते उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

रात्रि का अन्त होने पर खाजेमाल ने आकर देखा कि कारापिट का प्राणान्त हो गया। उन्होंने कई अन्यान्य आरमीनियनों को बुलाया और कारापिट की मृत देह को समाधिस्थ करने का प्रबन्ध किया।

सावित्री और नवीनपाल कारापिट की मृत्यु के दूसरे दिन सवेरे बापूदेव के घर लौट आये।



एस्थार बीबी को कलकत्ते की यात्रा।

कालाचांद और मदनदत्त ने सात आठ दिन में मुर्शिदाबाद पहुच कर एस्थार बीबी और बदरुन्निसा से कारापिट आराटून की बीमारी का हाल कहा। पति प्राणा एस्थार, स्वामी के साघातिक रोग का सम्वाद सुनकर एक दम उन्मत्त सी हो गई और मुर्शिदाबाद से पैदल कलकत्ते जाने का निश्चय किया। परन्तु बदरुन्निसा बड़ी दूरदर्शिनी और बुद्धिमती स्त्री थी। वह भली-भांति जानती थी कि एस्थार जैसी अमीर घराने की स्त्री के लिए मर्शिदाबाद से पैदल कलकत्ता पहुचना सर्वथा दु साध्य है।

अतएव वह एस्थार को विविध प्रकार से समझा-बुझाकर सवारी का प्रबन्ध करने लगी।

अन्त में नाव पर सवार हो एस्थार बीबी और बदरुन्निमा ने कानाचाद एव मदनदत्त को साथ ले कलकत्ते की यात्रा की।

चलते समय रामा की मा आई और रोते-रोते कहने लगी—"मेरी रामा, प्राय एक महीना हुआ, घर छोड़ कर भाग गई है। शायद कलकत्ते गई होगी। उसे खोजने के लिए मैं भी कलकत्ते चलूँगी।"

एस्थार बीबी ने रामा की मा को भी साथ लिया। मर्शिदाबाद से रवाना होने के दो तीन दिन बाद उनकी नाव एक बाजार के पास आ लगी। भोजनों का सामान खरीदने के लिए नाव पर के आदमी बाजार गये। दैवात् इसी बाजार में रामा और उसकी माता का साक्षात् हो गया।

रामा की मा ने जैसे ही रामा को उच्च स्वर से "रामा" "रामा" कहकर पुकारा, वैसे ही रामा ने आकर मा का मुँह दाब लिया, और चुपचुपाते हुए कहने लगी—"कम्पनी के आदमियों ने कहीं पकड़ लिया तो मुझे फाँसी दे देंगे। मैं रामहरी का करल करके भागी हू।"

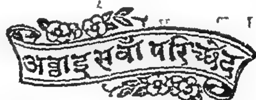
रामा की मा रामा को लेकर नाव पर आई। नाव पर सवार हो रामा भी इन सब के साथ कलकत्ते चली। पाच सात दिन के भीतर ये सब कलकत्ते आ पहुचे।

एस्थार बीबी स्वामी की मृत्यु का सम्वाद सुनते ही

उन्मत्त सी हो गईं। सावित्री हर वक्त उनके पास रह कर उन्हें सान्त्वना देने की चेष्टा करती थी। "मृत्यु काल में, मेरे स्वामी ने क्या कहा था, उनका शरीर उस समय कैसा था,—" एस्थार बीबी बारम्बार सावित्री से यही बातें पूछा करती थीं, और अहर्निशि अविराम अश्रुधारा बहाती रहती थीं।

एस्थार और बदरुन्निसा के पास जो गहने थे, उन सब को दो लाख रुपये में बेंच कर उन्होंने मृत स्वामी का ऋण चुकाया। बाद मे जिस घर में आराटून साहब की मृत्यु हुई थी, उस घर को खाजेमाज से खरीद कर कलकत्ते ही में रहने लगीं। भविष्य के भरण पोषण के लिए इनके पास अधिक रुपया न रह गया।

सेनापति मीरमदन की कन्या, धनाढ्य आरमीनियन व्यापारी सामुयल आराटून की पुत्रवधू, आज नितान्त कंगालियों की तरह कलकत्ते मे रह रही हैं।



रामा और रामहरी।

रामा किस लिए सैदाबाद छोड़ कर भागी थी—यह पाठकों को अभी तक नहीं ज्ञात हुआ। रामहरी के विरुद्ध रामा के हृदय में बहुत दिनों से विद्वेषाग्नि प्रज्वलित हो रही थी। उसे निश्चय था कि रामहरी के कुपरामर्श के कारण ही अङ्गरेज़ों ने उसे तथा अन्यान्य जुलाहों को

कारापिट साहब की कोठी से पकड़ लाकर कासिमबाजार की कोठी के काम में नियुक्त किया है। रामा एवं अन्यान्य जुलाहों ने इससे पहिले कारापिट आराटून साहब की रेशम की कोठी में काम करते हुए किसी प्रकार की तकलीफ नहीं उठाई थी। आराटून साहब इन्हें कम से कम ४॥) मासिक वेतन देते थे, परन्तु अङ्गरेजों ने सिर्फ १॥) महीना वेतन दिया।

अङ्गरेजों की कोठी में काम न करना पड़े, इस उद्देश्य से प्रायः इन सब जुलाहों ने पहिले पहिल अपने अपने दाहिने हाथ का अगूठा काट डाला। परन्तु अङ्गरेजों ने इस पर भी इन्हें नहीं छोड़ा।

साइक साहब ने कलकत्ता कौंसिल को पत्र लिखा कि जुलाहे लोग बड़े धूर्त हैं। उन्हें काम न करना पड़े इसके लिए उन्होंने अपना अपना अगूठा काटना शुरू किया है।

कलकत्ता-कौंसिल से हुक्म हुआ कि जिन समस्त जुलाहों ने इस प्रकार की धूर्तता करके अपना अगूठा काटा है, उनका वेतन घटाना चाहिये। अतएव रामा इत्यादि को अङ्गरेजों ने अब सिर्फ एक रुपया मासिक वेतन देने का निश्चय किया।

जिस महीने से रामा आदि के वेतन घटाने का हुक्म हुआ था, उसके दूसरे महीने की बात है, पहिली तारीख के दिन कासिमबाजार की फैक्टरी के असिस्टन्ट जेम्स हारग्रेव साहब (James Hargrave), रेशम की कोठी के बराडे में बैठे जुलाहों को वेतन दिला रहे हैं। दो चौकियों के ऊपर एक मेज रक्खी हुई है। उसके ऊपर

कैश बाक्स (Cash Box) रखा है। साहब एक कुर्सी पर बैठे बक्स खोल कर रामहरी के हाथ में रुपया देते जाते हैं। रामहरी फेहरिस्त हाथ में लिए साहब के दाहने पार्श्व में खड़े-खड़े एक-एक जुलाहे को बुला कर उसकी तनख्वाह का रुपया उसके हाथ में दे रहे हैं।

रामा को बुला कर रामहरी ने उसके हाथ में एक रुपया दिया। रामा ने कहा—"एक रुपया क्यों दिया? और आठ आने नहीं दोगे?"

रामा को मालूम न था कि उसका वेतन घटाने की आज्ञा हो चुकी है। उसने समझा कि मेरे वेतन में से आठ आना खुद हजम करने की इच्छा से मुझे रामहरी ने सिर्फ एक रुपया दिया है।

रामा के इस प्रकार आपत्ति करने पर रामहरी को गुस्सा आया, और उन के एक लात जमा कर बोले—"बदमाश चुप रह।"

रामा के चरित्र का हाल पाठकों को ज्ञात ही है। दूसरे के निष्ठुर व्यवहार को वह कदापि सहन न कर सकती थी।

रामहरी ने जैसे ही उसके लात मारी, उसने तुरन्त ही हाथ में जो बांस की लाठी थी उसे ऊपर उठाते हुए कहा—"ले दुष्ट चाहे फांसी हो जाय—पर तुझे आज मार ही डालूंगी।"

यह कहते हुए रामा ने रामहरी को पीटना शुरू कर दिया, उनकी पीठ और कमर में लगातार बड़े जोर से धमाधम लाठियां मारने लगी। रामहरी तुरन्त जमीन पर लोट गये। कमर और पीठ चौकी के ऊपर रहे; और

फिर चौकी के नीचे पृथ्वी पर घसिटने लगा। इसी अवस्था में पड़े हुए रामहरी की कमर में रामा ने फिर जैसे ही बड़े जोर से लाठी की चोट मारी, वसे ही रामहरी की कमर की हड्डी एक दम टूट गई।

हारमेव साहब "बज्जात को पकडो"—कहते हुए उठे ही थे कि रामा ने साहब की पीठ पर भी दो तीन लाठिया जमाई।

हरगोविन्द मुकर्जी आदि दीवान तथा अन्यान्य मुहर्रिर जो कोठी के भीतर बैठे काम कर रहे थे, वे अपने अपने प्राणों के भय से भीतर ही भीतर दरवाजा को बन्द कर बिल्कुल खामोश हो रहे।

हारमेव साहब ने दो ही तीन लाठी की चोट में "रामसिंह गोपालसिंह"—कह कर कोठी के ड्योढ़ीवान और जमादार को पुकारना शुरू किया।

रामसिंह और गोपालसिंह जब साहब के पास आते थे तो उन्हें चपकन पाहन कर आना पड़ता था। अपने स्थान पर वापिस जाते ही वे चपकन को उतार कर पास रख छोड़ते थे।

साहब ने जैसे ही उन्हें पुकारा, उन्होंने "गुलाम हाजिर"—यह कह कर अपनी-अपनी चपकनें पहिननी शुरू कीं। चपकन की तनी बांधने में कुछ समय लगता है, इस लिए उनके आने में जरा देर हुई। साहब स्वयं झटपट चोकी से कूद कर रिवाल्वर लेने के लिए अपने कमरे की तरफ चले गये। इस ओर रामा ने रामहरी को मातृ-प्राय कर वहा से दौड़ लगाई।

साहब का रिवाल्वर और बन्दूक दोनों उनके आराम

कमरे में रखे थे, पर वहां मेम साहब शाम के कपड़े बदल रही थी इस लिए कमरे का दरवाजा बन्द था। साहब और मेम साहब में पहिले ही यह निश्चय हो चुका था कि तीन-चार बजे के बाद आफिस से लौटने पर साथ-साथ नदी के उस पार घूमने चलेंगे।

साहब बड़े जोर से कमरे का दरवाज़ा खटखटा कर बोले—'Open the door dear, open the door" प्रिये दरवाजा खोलो, प्रिये दरवाजा खोलो।

मेम—Hargrave you are too early, it is not yet three तुम बडी जल्दी आगये—अभी तो तीन भी नहीं बजे।

साहब—Open the door dear, I want my revolver दरवाजा खोलो, मैं अपना रिवाल्वर चाहता हूं।

मेम—Wait a little, I will be ready in fifteen minutes ज़रा देर ठहरो, पंद्रह मिनट में आती हूं।

साहब—O dear what a silly girl you must be—Ram Hari is being murdered प्रिये, तुम कैसी नासमझ हो—दरवाजा खोलो। रामहरी का खून हो गया।

मेम—That fool ought to be murdered, I had been telling him so often to get some Dacca muslin for me, but he has not brought it yet Hargrave! do you not recollect how pretty miss Bensley looked, when she came

to our house She put on a very fine dress made of Dacca muslin—रामहरी का मर जाना ही अच्छा। मैंने कई वार उस से ढाके की मस्लिन लाने के लिए कहा, आज तक नहीं लाया। हारमेव ! तुम्हें याद नहीं, मिस चेन्हली उस दिन ढाके की मस्लिन के कपड़े पहिन कर हमारे घर आई थीं, कैसे सुन्दर लगते थे।

साहब—बहुत जोर से खटखटा कर, What a silly girl you are I want my revolver—open the door dear तुम बड़ी नासमझ हो, दरवाजा खोलो—मैं रिवाल्वर चाहता हूं।

मेम—O you want your revolver—perhaps shoot Ram Hari—very good—तुम रिवाल्वर चाहते हो!—रामहरी को गोली मारोगे—अच्छा, अच्छा!

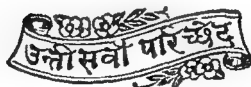
यह कहते हुए मम साहब ने दरवाजा खोला। साहब दूसरी बात न कह कर बक्स खोल रिवाल्वर हाथ में ले बाहर आये। परन्तु रामा पहिले ही भाग चुकी थी। रामहरी की कमर और दोनों टांगें चौकी के ऊपर पड़ी हैं। सिर नीचे लटक रहा है। क्षीण स्वर मे वे हरगोविन्द मुकर्जी को पुकार रहे हैं। मुकर्जी महाशय किसी एक कुठरि मे कह रहे हैं—"पहिले, खिड़की खोलकर देख लो रामा चली गई कि नहीं। अगर हो तो दरवाजा न खोलना।"

हारमेव साहब ने आते ही बड़े जोर से रामहरी का हाथ पकड़ कर उन्हें उठाने की चेष्टा की। रामहरी ने चिल्ला कर कहा,—"साहब, मरा—मरा—मेरा तो वैसे ही

दम निकलता है, एकदम मत मार डालो । बस करो, बस करो ।"

इतने में हरगोविन्द मुकर्जी दरवाजा खोलकर बाहर आये, बहुत कुछ गाली-गलौज करते हुए बोले,—"अब तो भाग गई, कमबख्त के हाड़-गोड़ एक कर देता।"

रामहरी की कमर और टांगों की हड्डी बिल्कुल टूट गई थी । खड़े होने की ताकत नहीं रही थी, तकिये की थोक दिये बिना बैठा भी नहीं जाता था । प्राय दो महीने तक कासिमबाजार में रह कर रामहरी अपना इलाज कराते रहे । परन्तु डाक्टरों ने कहा कि कमर और पीठ की हड्डी एकदम टूट गई है । यह अब नहीं जुड़ सकती। अन्त में विवश हो रामहरी को काम छोड़ घर चला आना पड़ा । इन का निवासस्थान कांदोया में था ।



रामहरी ।

रामहरी और हमारे पाठकों में फिर भेंट होने की अब कोई सम्भावना नहीं है । ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गुमाश्तागीरी का काम उन्होंने छोड़ दिया है । इसलिए यहां पर हम, उनके पारिवारिक इतिहास और संक्षिप्त जीवन वृतांत का उल्लेख कर देना चाहते हैं ।

रामहरी, एक कुलीन ब्राह्मण की सन्तान थे। इन के पिता जयगोविन्द चट्टोपाध्याय ने कोई पचास विवाह किये थे विवाह करना ही उनका एकमात्र व्यवसाय था, इसी से वे अपनी जीविका चलाते थे। परन्तु दुर्भाग्य वश मुसलमानो के शासनकाल में जयगोविन्द चट्टोपाध्याय एक बार चोरी के अपराध में दण्डित हुए थे। इस घटना के बाद से लज्जा के कारण वे अपनी किसी ससुराल को नहीं जाते थे। मुर्शिदाबाद में एक प्रतिष्ठित आदमीके यहा रसोइया के काम पर नियुक्त होकर वहीं रहने लगे थे।

पलासी-युद्ध के समय जब नवकृष्ण मुंशी क्लाइव के साथ मुर्शिदाबाद गये तो वहां इत्तफाक से उनके साथ में जो ब्राह्मण रसोइया था उसकी मृत्यु हो गई। इस अवसर पर रामहरी के पिता नवकृष्ण के रसोइया नियत हुए और उनके साथ मुर्शिदाबाद से कलकत्ते आये।

इसके प्राय पन्द्रह बरस पहिले रामहरी की माता चरित्र-दोष के कारण घर से निकाल दी गई थीं। वे तीन पांच बरस के पुत्र रामहरी को साथ ले कलकत्ते चली गईं और वहां किसी अमीर आदमी के घर में रसोई बनाने के काम पर नियुक्त हो गईं।

कलकत्ता उस वक्त बहुत छोटा सा शहर था इस लिए शहर के रहने वालों में परस्पर एक दूसरे के साथ सहज में जान पहचान हो जाया करती थी। नवकृष्ण मुंशी के साथ रामहरी के पिता जब कलकत्ते आए तो एक दिन गंगा स्नान करने पर वहां रामहरी की माता से उनका साक्षात हो गया। परस्पर एक दूसरे का परिचय सुनते ही दोनों को

याद आई कि पहिले कभी परस्पर हम दोनों में विवाह हुआ था ॥ रामहरी के पिता ने अपनी स्त्री और पुत्र को ग्रहण किया । यह सोच कर कि मैं अब वृद्ध हो, रहा हूँ भविष्य में रामहरी मेरा प्रतिपालन करेगा,— रामहरी के पिता अपनी विवाहिता स्त्री और उसके गर्भजात पुत्र को साथ ले एक ही स्थान पर रहने लगे ।

रामहरी की अवस्था अब लगभग बीस बरस की हो चुकी थी। वे प्राय अपने पिता के साथ शोभा बाज़ार में नवकृष्ण मुँशी के घर रहते थे । नवकृष्ण मुँशी कितने ही गरीब कगालों को रोजी से लगा दिया करते थे। उनकी सिफ़ारिश से रामहरी अगरेजों की क़ासिम बाज़ार की कोठी मे गुमाश्ता के काम पर नियुक्त हुए।

रामहरी बडे चतुर और कार्यदक्ष थे। बहुत ही थोडे समय में उन्होंने कासिम बाजार की कोठी के साहबों की प्रसन्नता प्राप्त करली । छिदाम विश्वास की मृत्यु के बाद बाल्टस साहब ने छिदाम के काम पर इन्हीं को नियुक्त किया। परन्तु, छिदाम की मृत्यु के दो-तीन बरस पहिले ही रामहरी के पिता माता दोनों की मृत्यु हो चुकी थी । पिता-माता की मृत्यु के बाद उन्होंने कलकत्ते का जाना-आना बन्द कर दिया था। कलकत्ते के लोग बातचीत में नवकृष्ण मुँशी के रसोइया का पुत्र कह कर रामहरी का परिचय दिया करते थे, और इसी पहचान से वे रामहरी को पहिचानते थे, परन्तु रामहरी को इसमें अपना बड़ा अपमान मालूम पड़ता था। छिदाम की मृत्यु के दो-तीन बरस पहिले ही रामहरी बहुत सम्

धन इकट्ठा कर चुके थे। उन्हीं दिनो वे अपना विवाह करने के उद्देश से अपने नाना के यहा चले गये। ननिहाल इनकी काटोया में थी परन्तु नाना का देहान्त इसके पहिले ही हो चुका था, कोई पुत्र उनके था नहीं, एकमात्र विधवा कन्या थी, वही घर पर रहती थी। रामहरी अपने नाना के घर जाकर अपनी विधवा मौसी के साथ रहने लगे। उनकी मौसी उनके विवाह की चेष्टा करने लगीं।

रामहरी की मा घर से निकाली गई थीं, पर इसके लिए गाव के अन्यान्य ब्राह्मणों ने रामहरी को समाजच्युत नहीं किया। उन सब पिछली वार्ता के सम्बन्ध में ब्राह्मणों ने फिर कोई चर्चा भी नहीं उठाई। रामहरी इस समय कम्पनी की सरकार में नोकरी करता है, बहुत सा धन जमा कर चुका है—यह सोच कर किसी को उसके साथ शत्रुता करने का साहस न हुआ। विशेषत एक बात यह भी थी कि गाव के दो तीन प्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मणों की कन्याए सयानी हो रही थीं, बेचारे कन्या-ऋण से ग्रस्त थे,—योग्य पात्र मिल नहीं रहे थे। रामहरी इस समय प्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मण की सन्तान प्रसिद्ध हो थे। अतएव गाव के ही ब्राह्मणों ने सोचा था कि 'रामहरी को कन्यादान करके कन्या ऋण से उद्धार हों। रामहरी धनवान आदमी हैं। कन्या उन के यहा सुखी रहेगी।'

देवी घर के द्वारा ब्राह्मणों के श्रेणीबद्ध हो जाने के बाद से कितने ही कुलीन ब्राह्मणों की कन्याए बहुत सयानी हो जाती थीं, वर नहीं मिलते थे, अतएव रामहरी को पाकर बहुतों के मन में आशा का [illegible]। और उन के साथ अपनी कन्या को व्याहने का [illegible]।

रामहरी ने पहिले-पहिल गाव के एक प्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मण भवतोष वन्द्योपाध्याय की सत्तरह बरस की कन्या का पाणिग्रहण कर के वन्द्योपाध्याय महाशय को कन्या-ऋण से उद्धार किया। परन्तु इस कुलीन कन्या की अवस्था कुछ अधिक है— यह सोच कर उन्होंने दुबारा रामगति तर्कपञ्चानन की कन्या के साथ विवाह किया। तर्कपञ्चानन महाशय की कन्या कुछ लड़ाका थी। तथापि कुलीन ब्राह्मण की बेटी होते हुए भी उस में और कोई दोष नहीं था। एक दिन रामहरी से उस से झगड़ा हुआ, रामहरी उसे छोड़ देने पर तैयार हो गये। कुलटा कह कर उसे बदनाम किया और तीसरी बार रामहरी ने हरिनाथ वाचस्पति की ग्यारह वर्ष का कन्या का पाणिग्रहण किया। वाचस्पति जी की कन्या अभी कुछ सयानी न थी, परन्तु 'रामहरी के पास बहुत रुपया है'—यह सुन कर वाचस्पति जी की स्त्री ने अपने वृद्ध पति पर बहुत कुछ जोर डाल कर उन्हें रामहरी के साथ कन्या का विवाह करने के लिए बाध्य किया। स्त्री के अनुरोध से विवश हो अन्त में वाचस्पति जी ने रामहरी के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया।

वाचस्पति जी की ग्यारह बरस की कन्या के साथ विवाह करने के दस पन्द्रह दिन बाद ही, १७५९ या १७६० ईसवी में रामहरी फिर कासिमबाजार को चले गये। सिर्फ विवाह करने के उद्देश से ही तीन महीने की छुट्टी लेकर वे काटाया आये थे। तीन महीने के भीतर सहज ही तीन विवाह कर लेने के बाद वे अपने काम पर वापस गये। तीनों ही स्त्रियां उनकी विधवा मौसी के साथ उनके नाना के घर रहने लगीं।

परन्तु इस के बाद सात बरस तक रामहरी को घर आने के लिए छुट्टी नहीं मिली। कासिमबाजार की रेशम की कोठी के अध्यक्ष साहब लोग रामहरी को छुट्टी देने के लिए तैयार न होते थे। सोचते थे कि रामहरी की अनुपस्थिति में व्यापार का काम ठीक रूप में नहीं चलेगा।

रामहरी की पहिली और दूसरी स्त्री विवाह के बाद ही पति के प्रेम से वञ्चित हो गयी थीं। पति का प्रेम ही स्त्री को कुमार्ग से दूर रखता है। अतएव रामहरी की पहिली और दूसरी स्त्री पति प्रेम से वञ्चित हो जाने पर मानव प्रकृति की दुर्बलता के कारण शीघ्र ही कुपथ-गामिनी हो गईं। वे रामहरी के घर में तो रहती थीं, परन्तु गृह-कार्य में उनका तनिक भी मन नहीं लगता था दुपहर को भोजनों के बाद गाव में, इस घर से उस घर, मारी-मारी फिरा करती थीं। रामहरी की तीसरी स्त्री को उन की मौसी बड़े यत्न से पालती—पोसती थीं। विवाह के समय उस की अवस्था सिर्फ ग्यारह बरस की थी।

रामहरी की मौसी उस समय बिलकुल बूढी हो आई थी। इन के पति ने कोई एक सौ विवाह किये थे। विवाह के बाद इन्हें अपने पति के साक्षात् का सौभाग्य भी कभी नहीं प्राप्त हुआ। पति के मृत्यु के प्राय ग्यारह बरस बाद इन्हें यह ज्ञात हुआ था कि मैं विधवा हो गई हूं।

उन दिनों हमारे देश की स्त्रियों मे कहीं हजार में कोई दो एक स्त्रिया अपने आप पुस्तकें पढ सकती थीं। परन्तु

उस समय स्त्रियों में पुस्तकों का सुनने का बडा रिवाज था। अपनी अपनी रुचि के अनुसार स्त्रियां विविध प्रकार की पुस्तकों का श्रवण किया करती थीं।

आज कल बङ्गाल में जिस प्रकार दो श्रेणियों की स्त्रियां देखी जाती हैं उन दिनों भी हमारे देश में इसी प्रकार भिन्न भिन्न रुचि की स्त्रियां थी। वर्तमान समय में एक ओर अनेकानेक भद्र महिलाएँ विद्यासागर के सीतावनवास, अक्षय-कुमार दत्त के धर्मनीति देवेन्द्रनाथ ठाकुर के 'धर्मोपदेश आनन्दचन्द्र विद्यावागीश लिखित विविध ग्रन्थ, कालीप्रसन्न सिंह रचित महाभारत, हेमचन्द्र भट्टाचार्य द्वारा प्रकाशित रामायण इत्यादि ग्रन्थों के पढने पढाने और सुनने सुनाने में रुचि रखती हैं, परन्तु दूसरी ओर अन्यान्य अनेक स्त्रियां इन पुस्तकों को हाथ से नहीं छूती, वे विविध प्रकार की प्रेम-कथाओं और रसिक ग्रन्थों को बडे आदर चाव से पढ़ा करती हैं।

उन दिनो भी हमारे देश में इसी प्रकार दो श्रेणियों की स्त्रियां थीं। कितनी हो स्त्रियां रामायण महाभारत, इत्यादि ग्रन्थों का श्रवण करती थीं और कितनी ही रस और हंसी मजाक की पुस्तकों को सुनना पसन्द करती थीं।

हरिदास तर्क-पञ्चानन की कन्या सुदक्षिणा तथा रामदास शिरोमणि की कन्या श्यामसुन्दरी सदा रामायण और महाभारत ही पढ़ा करती थीं।

परन्तु रामहरी की मौसी बाल्यावस्था ही से रामायण और महाभारत सुनने में ऐसी रुचि नहीं रखती थी। रस और हंसी मजाक की पुस्तकों को सुनने में उन्हे बड़ा आनन्द आता था।

रामहरी के घर के पास ही बाबा अद्वैतानन्द का अखाड़ा था। इस से पहिले जिन बाबा ललितानन्द का ज़िक्र आ चुका है, वे इसी अखाड़े में रहते थे। विवाह करने के बाद रामहरी जब कासिमबाज़ार को चले गये तो ललितानन्द प्राय रोज ही रामहरी के घर आकर उनकी मौसी को विविध प्रकार की रसिक पुस्तकें सुनाया करते थे। इस प्रकार की पुस्तकों में उस समय विद्यासुन्दर का बहुत प्रचार था। इस घटना के दस ही बारह बरस पहिले विद्यासुन्दर की रचना हुई थी। ललितानन्द प्राय रामहरी के घर बैठ कर विद्यासुन्दर का पाठ किया करते थे।

रामहरी की मौसी और उनकी तीसरी स्त्री दोनों ही हर रोज़ इन सब पुस्तकों को बाबा ललितानन्द की ज़बानी बड़े प्रेम से सुना करती थीं। पहिली और दूसरी स्त्री का मन घर में क़तई नहीं जमता था। वे दोनों भोजनों से निपटते ही पड़ोसियों के घर घूमने चली जाती थीं। इस प्रकार रामहरी के विवाह के बाद प्राय सात बरस तक बाबा ललितानन्द शाम के वक्त हर रोज ही रामहरी के घर आकर पुस्तकें पढ़ा करते थे। सात बरस बाद जब रामहरी घर आये तो उस के दो बरस पहिले ही से रामहरी की तीसरी स्त्री कभी कभी बाबा अद्वैतानन्द के अखाड़े में जाने लगी थी और ललितानन्द की कुटी में बैठकर विद्यासुन्दर और रामलीला आदि ग्रन्थों को सुना करती थी। रामहरी की मौसी उसे अखाड़े में जाने को कभी नहीं मना करती थी। वह समझती थी कि बाबा ललितानन्द बड़े धार्मिक और शास्त्रज्ञ पुरुष हैं, उन के घर जा कर ग्रन्थों को सुनने में कोई दोष नहीं। विशेषत गांव की स्त्रियां शहर की स्त्रियों की तरह एक

दम घर के भीतर बन्द नहीं रहतीं, वे जब तब अपने अत्मीय-स्वजनो के घर आया जाया ही करती हैं।

बाबा ललितानन्द अपने को एक विशेष शास्त्रज्ञ बैरागी समझा करते थे। उन का अचार—व्यवहार भेष भाव सभी कुछ वैष्णवोचित था।

सम्भव है हमारे पाठक बाबा ललितानन्द का पूर्व वृत्तान्त जानने के लिए उत्सुक हों, इसलिये यहा पर हम पाठकों को उनका पूरा परिचय प्रदान करते हैं।

बाबा ललितानन्द चाण्डाल-कुल—तिलक अभिराम मण्डल के पुत्र थे। उनका पहिला नाम केनाराम था। उनके पिता अभिराम, गांव के चाण्डालों के मुखिया थे। उनकी सालाना आमदनी सौ रुपये से कम न थी। उन्होंने अपने पुत्र केनाराम को बाल्यावस्था से ही गुरु महाशय की पाठशाला में भेज दिया था। केनाराम पाठशाला मे लिखना-पढ़ना सीख कर कबीर पथियों के एक दल का सरदार बन गया। परन्तु इस दल मे कई एक कायस्थ और एक दो ब्राह्मण भी थे। भोजनों के वक्त केनाराम को सब से अलग घर के बाहर बैठ कर भोजन करना पड़ता था। दल के साथ में जा नौकर था, वह अन्यान्य सभी लोगों की जूठन साफ किया करता था परन्तु केनाराम को अपनी जूठन अपने हाथों ही उठानी पड़ती थी। केनाराम को मन ही मन इस में अपना बड़ा अपमान समझ पड़ता था। केनाराम एक प्रसिद्ध गायक भी थे। परन्तु नीच जाति होने के कारण जब इन्होंने देखा कि हमें, सब से अलग बाहर बैठकर भोजन करना पड़ता है और अपनी जूठन अपने आप ही धोनी पड़ती है तो वे कबीर पन्थिया के दल का छोड़ कर बाबा अद्वैतानन्द

के अखाड़े में चले आये और मूड़ मुड़ाकर वैष्णव-धर्म ग्रहण कर लिया। वैरागियों के अखाड़े में ब्राह्मण, शूद्र, चाण्डाल सभी इकट्ठे बैठ कर भोजन करते हैं। अतएव यहां पर केनाराम को चाण्डाल होने के कारण कोई अपमान नहीं सहना पड़ा। बाबा श्रद्धानन्द ने केनाराम चण्डाल को भेष प्रदान करते समय ललितानन्द नाम से सुशोभित किया।

बाबा ललितानन्द कबीर पंथियों के दल में रहने के कारण गाना खूब सीख गये थे। पुस्तकों का बड़ो अच्छी लय में पढ़ा करते थे। रामहरी की मौसी और तृतीया स्त्री ललितानन्द को परम शास्त्रज्ञ वैष्णव समझती थीं। फिर, ललितानन्द के प्रत्येक कार्य और भेष-भाव में ब्राह्मण-पण्डित के लक्षण दिखाई देते थे। वे सदा ही शास्त्रज्ञ वैष्णवों और ब्राह्मण पण्डितों का अनुकरण करते थे। रामहरी जब नौकरी छोड़ कर घर पर आये तो उस के बाद भी बाबा ललितानन्द उनके घर आकर उन की मौसी और तृतीया स्त्री को विद्यासुंदर आदि ग्रन्थ सुनाया करते थे। रामहरी की मौसी रामहरी के निकट बाबा ललितानन्द की बहुत प्रशंसा किया करती थीं।

रामहरी के अभी तक कोई सन्तान नहीं थी। रामहरी की मौसी इसके लिए सदा ही बहुत दुख प्रकट करती हुई कहा करती थीं — "मेरे बेटा के पास इतना धन दौलत, परन्तु एक पुत्र न हुआ। हाय इस धन को कौन भोगेगा!"

रामहरी काम छोड़ कर १७६७ ई० के सितम्बर महीने में घर पर आये थे। उन में इस वक्त उठने की भी ताक़त न थी। हर वक्त बिछौने पर पड़े रहते थे, उनकी मौसी

पहिले तो दो तीन दिन उनकी ऐसी दुर्दशा देख कर दुख के आसू बहाती रहीं। परन्तु बाद में उनका यह दुख धीरे धीरे दूर होने लगा। दो-तीन दिन बाद वे एक दिन रामहरी की चारपाई के पास बैठ कर कहने लगी—"बेटा तुमने इतना धन जमा कर लिया है कि नौकरी न करो तो जन्म भर बैठे २ खा सकोगे। न सही नौकरी, इस से हानि ही क्या परन्तु बेटा, तुम्हारे कोई पुत्र न हुआ, इस धन को कौन भोगेगा, इसी की मुझे बड़ी चिन्ता रहती है।"

जिस साल कुआर के महीने में, कम से कम सात बरस बाद रामहरी घर लौटे थ, उसी साल कार्तिक के महीने में उन की ततीया स्त्री ने पुत्र की कामना से कार्तिक व्रत किया। पाच ही महीने बाद माघ में उसके गर्भ से पुत्र का जन्म हुआ।

रामहरी की मौसी ने बड़ा आनन्द मनाया। मुहल्ले की नाइन, धोबिन इत्यादि स्त्रियां आ आकर बड़ा आमोद प्रमोद मनाने लगी।

रामहरी की मौसी इन सब स्त्रियों को सम्बोधन करके कहने लगी—"तुम सब मेरे रामहरी के पुत्र को आशीर्वाद दो। मेरे रामहरी अभी पाच महीने हुए, घर आये हैं। पाच ही महीने में पुत्र पैदा हुआ। बहुतेरे कहते हैं कि पाच महीने की सन्तान जीवित नहीं रहती।

धोबिन बोली—"मेरे नैहर में एक स्त्री के तीन ही महीने का एक बालक पैदा हुआ था। उसने भी कार्तिक का व्रत रखा था, और इसी कारण उसके इतनी जल्दी सन्तान हुई। आज उस बालक की उमर दस ग्यारह बरस की है।"

गाव की ओर एक वृद्धा स्त्री कहने लगी—"पाच महीने हुए, इसलिए एक ही हुआ, दस महीने हो जाते तो दो बालक एक साथ होते। कार्त्तिक की कृपा से सब कुछ हो सकता है।"

रामहरी के पाच ही महीने म पुत्र उत्पन्न होने के कारण अगले साल से गांव की प्राय सभी स्त्रियों ने कार्त्तिक व्रत करने का निश्चय किया। सैकड़ों बांझ स्त्रिया भी कार्त्तिक-व्रत रख कर पुत्र-लाभ की आशा करने लगीं। वर्द्धमान, वीरभूमि और बाकुडा में इस घटना से कार्त्तिक व्रत का बड़ा प्रचार हो उठा। परन्तु 'मौत की वैरिन सौत'। रामहरी की तृतीया स्त्री ने कार्त्तिक के इस महत्व की पोल खोलनी शुरू की। हम पहिले ही कह चुके हैं कि वह बडी वाचाल थी थी। घर-घर जाकर कहने लगी—"केवल कार्त्तिक की कृपा से पुत्र कदापि न होता,—बाबा ललितानन्द के पास पुस्तकें पढ़ती रही, इसी पुण्य से पुत्र जन्मा है।"

रामहरी की तृतीया स्त्री के गर्भजात पुत्र की अवस्था दश छ महीने की हुई। रामहरी की मौसी ने बड़ी धूमधाम से उस का नामकरण कराया। रामहरी के पुत्र का नाम कृष्णहरी पड़ा।

रामहरी ने स्वय किसी दिन भी अपने पुत्र को गोद नहीं लिया। उनकी मौसी कृष्णहरी को लेकर हसते हुए रामहरी की गोद में देती थी, परन्तु रामहरी अपने पुत्र पर कुछ स्नेह नहीं रखते थे। दूसरे उनकी टांगों की हड्डिया टूटी हुई थीं। कमर की हड्डी भी टूट गई थी। जब तक कोई उठा कर न बैठा ले, तब तक उठ कर बैठने

की भी शक्ति न थी। ऐसी दशा में वे पुत्र को गोदी लेते भी तो किस तरह।

रामहरी के तीन स्त्रियां थीं, परन्तु उनमें से एक भी रामहरी की सेवा-सुश्रूषा नहीं करती थी। कभी कभी वे तीन-चार दिन लगातार मल मूत्र ही में पड़े रहते थे। उनकी स्त्रियों में से कोई उनका बिस्तर भी बदलने नहीं आतीं थीं। तीन-चार दिन बाद जब उनके बिछौने से बड़ी दुर्गन्ध निकलने लगती तो उनकी पहली स्त्री उसे धो-धुला दिया करती थी।

इस प्रकार लगातार पाच-सात बरस तक रामहरी को कष्ट-भोग करना पड़ा। मुद्दतों मल-मूत्र में पड़े रहने के कारण उनका शरीर दुर्गन्धिमय हो गया। शरीर के भिन्न भिन्न स्थानों से रक्त बहने लगा। पीड़ा के मारे हर घड़ी चिल्लाते रहते थे। मागने पर पानी भी नहीं मिलता था।

उनकी प्रथमा और द्वितीया स्त्री तो दुपहर को भोजनों से निपटते ही पड़ोसियों के घर घूमने चली जाती थीं। तृतीया स्त्री के पास पहिले की तरह अब भी बाबा ललितानन्द आते जाते थे और पुस्तके सुनाया करते थे। ये पुस्तक श्रवण में ऐसी निमग्न हो जाती थी कि रामहरी चाहे सौ बार चिल्ला कर पुकारते तो भी उन्हें कोई जवाब नहीं मिलता था।

एक दिन रामहरी ने बड़े गुस्से में आ कर बाबा ललितानन्द से कहा—"साले वैरागी, तू आज से मेरे घर कभी न आना।"

रामहरी की तृतीया स्त्री बड़े क्रोधपूर्वक पति का तिरस्कार करती हुई बोली—"इस दुर्दशा में पड़े हो, तिस

पर वैष्णव की निन्दा करते हो—वैष्णव को गाली देते हो—नहीं मालूम तुम्हारे भाग्य में अभी और क्या क्या बदा है ? ”’

रामहरी बेचारे चारपाई पर पड़े पड़े दोनों होठ चबाने लगे। यह ताक़त न थी कि उठ कर ललितानन्द को ठीक करें।

सात बरस तक विविध प्रकार के क्लेश और यन्त्रणाएँ भोग कर वङ्गीय कुलागार रामहरी ने इस संसार से कूच किया। उन की तृतीया स्त्री के भाई राधाकान्त मुखोपाध्याय ने रामहरी के नाबालिग पुत्र कृष्णहरी के वली (अभिभावक) नियत हो कर रामहरी के छोडे हुए धन माल की रक्षा का भार अपने जिम्मे लिया।

रामहरी ने बहुत जायदाद पैदा कर ली थी। हुगली, वर्दमान, बाकुड़ा इन तीनो ही जिलों मे उनकी बहुत जमींदारी थी। उनके पुत्र कृष्णहरी बाबू के युवा होने के अनन्तर लार्ड कार्नवालिस के वक्त में रामहरी की कुल जमींदारी और साथ ही बङ्गाल के अन्यान्य अनेक जमींदारों की जमींदारी मे इस्तमरारी (स्थायी) बन्दोबस्त हो गया। रामहरी के बाक्स में कितने ही साहबों के हस्तलिखित सार्टीफिकट रखे थे। कृष्णहरी बाबू लार्ड कार्नवालिस को ये सब सार्टीफिकट दिखा कर अङ्गरेज गवर्नमेंट के विशेष कृपापात्र बन गये थे।

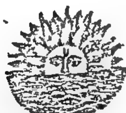
कृष्णहरी बाबू बङ्गाल के एक प्रसिद्ध जमींदार हुए। वर्दमान, बांकुड़ा, हुगली और बीरभूम इन चार जिलों के ब्राह्मण समाज के मुखिया माने जाने लगे। लोग उन्हें एक कुलीन ब्राह्मण की सन्तान समझते थे, इस से उनका

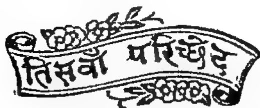
ऐश्वर्य और भी बढ़ रहा था। अतएव हिन्दू समाज में फिर भला उनका प्राधान्य स्थापित न होता तो और किसका? राजा राममोहन राय ने जिस वक्त सती की प्रथा को दूर कराने के लिए विलियम बेंटिंग के निकट प्रार्थना की थी, उस वक्त इन्हीं कृष्णहरी बाबू ने देश के अन्यान्य हिन्दू धर्मावलम्बियों के साथ मिल कर सती प्रथा को कायम रखने के लिए विविध चेष्टाएँ की थी। क्यों न हो, ऐसे उच्च कुल में जन्म लेकर यदि यह इस प्रकार की चेष्टा न करते तो और कौन करता? इस उद्योग में इन के साथ और भी बहुत से लोग शामिल थे। शोभाबाजार के राजा राधाकांत देव, दीनाजपुर के महाराजाधिराज राधाकांत रायबहादुर, सैदाबाद के जगन्नाथ विश्वास के पौत्र महाराज वीरेन्द्रकृष्ण रायबहादुर—इन सभी ने कृष्णहरी बाबू के साथ मिल कर हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए विलियम बेन्टिंग के निकट आवेदनपत्र भेजा था। परन्तु विलियम बेन्टिंग ने इन लोगों के आवेदनपत्र की पीठ पर अपने हाथ से लिखा था—"महाराज राधाकांत और उन के दल के सभी लोगों की दरख्वास्त नामंजूर।"

कृष्णहरी बाबू की मृत्यु के बाद से उनके पुत्र रामकृष्ण बाबू अब तक अपने पिता के प्रभुत्व की रक्षा कर रहे हैं। परन्तु रामकृष्ण बाबू को हुगली, बर्द्धमान बाकुड़ा और वीरभूम के गरीब ब्राह्मण बुरी तरह कोसते हैं। उन्हों ने शायद अनेकानेक गरीब ब्राह्मणों का बह्मोत्तर माफी की जमीन जब्त कर लिया है। अपने पिता की तरह ब्राह्मण समाज पर इन का भी पूरा आधिपत्य है। द्वारकानाथ ठाकुर विलायत गये थे, इस पर इन्हों ने हुगली बर्द्धमान

और बाकुड़ा के ब्राह्मणो से ठाकुरों के साथ खानपान का व्यवहार छुड़वा दिया था। ठाकुरो को भ्रष्ट कह कर ये उन से घृणा करते हैं। विधवा-विवाह के मत का प्रतिपादन करने पर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को इन्हीं रामकृष्ण बाबू की पार्टी के लोगो ने बिरादरी से बाहर किया था। ये अभी तक जीवित हैं।

इस प्रकार ईस्ट इंडिया कम्पनी के अभ्युदय के साथ ही साथ बङ्गाल में दो प्रतिष्ठित कुलीन घरानो का अभ्युदय हुआ। जगन्नाथ विश्वास के पुत्र पौत्रादि गण कायस्थ समाज के मुखिया हो कर कायस्थो पर प्रभुत्व जमा रहे हैं, और ब्राह्मण-समाज मे, रामहरी के पुत्र कहे जाने वाले, कृष्ण हरी बाबू के पुत्र-पौत्रगण विशेष प्रधानता प्राप्त कर ब्राह्मणों के अगुआ हो रहे हैं।





दुर्भिक्ष।

—०—

संसार में कुछ भी चिरस्थायी नहीं। कालक्रम से सभी कुछ रूपान्तरित और परिवर्तित होता रहता है। दुख के बाद सुख, सुख के बाद दुख, ज्वारभाटे की तरह क्रम क्रम से उपस्थित होकर मानव-मण्डली को क्रमिक उन्नति के पथ में परिचालित करते रहते हैं। वर्त्तमान विपत्ति भावी सम्पत्ति का बीज वपन करती है और सम्पत्तिराशि समय समय पर विपत्ति की ओर खींचती रहती है।

परन्तु जिनके लिए विपत्ति और सम्पत्ति समान हैं, सुख और दुख सभी अवस्थाओं में जिन का भाव एक है, वे उस अविनाशी, अचिन्त्य, मङ्गलमय परमेश्वर की कृपा और करुणा पर निर्भर रहकर निर्भीक चित्त से संसार के समस्त कष्ट क्लेशों को सहन करने में समर्थ होते हैं। जिन्होंने अपने को भूल कर समग्र मानव-मण्डली की सुख-शान्ति के लिए समाज में फैले हुए पाप और अत्याचार के साथ अविराम युद्ध करने पर कमर बांधी, उन के लिए नित्य सुख है, नित्य शांति है। उनका सुख, उनकी शान्ति नाश रहित है। वे चिर-सुखी हैं। संसार की नाना प्रकार की कष्ट-यन्त्रणायें और विविध प्रतिकूल अवस्थाएं उन्हें कभी परास्त नहीं कर सकतीं।

दूसरी ओर जिनकी स्वार्थपरता ओर अर्थलोलुपता के कारण विविध निष्ठुर व्यवहारों और अत्याचारों से सँसार परिपूर्ण होता है, जिनका अन्यायाचरण ही सँसार में व्याप्त शोक-सँताप ओर अशान्ति का एक मात्र मूल कारण होता है वे कदापि इस सँसार में सुख-शान्ति को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते।

निराश्रय, दुखिनी सावित्री ने अपने पति और भाई को जेल से छुड़वा लिया, उस के समस्त पूर्व क्लेशों का अन्त हो गया, विपत्ति की काली घटा विलुप्त हो गई। आज उसके सुख-सूर्य का क्रमशः विकास हो रहा है।

इधर सुख-सम्पदा की गोद से गिरी हुई राजदशा [illegible] पति शोक में दुःसह क्लेश सहन कर रही [illegible]। उनका चिरहास्य-युक्त सुँदर मुखकमल राहु ग्रसित [illegible]न्द्रमा की तरह विषाद की मलीन छाया से आवृत हो गया [illegible]। परन्तु वे पवित्र हृदया, निर्मलचरित्रा पुण्यवती रमणी हैं। [illegible] सँसार में उन्हें अधिक दिनों तक कष्टभोग नहीं करना [illegible]गा उनका दुख क्षणस्थायी है, शीघ्र ही उसका अन्त [illegible]ने वाला है। उनकी क्रन्दनध्वनि ने मङ्गलमय पिता के [illegible]नों में प्रवेश किया है, जगन्माता की गोद उन के लिए [illegible] हुई है। शीघ्र ही वे इस पाप और अत्याचार-परिपूर्ण [illegible]क-सदृश बङ्गदेश का परित्याग कर अमृतमय की अमृतमयी [illegible] में आश्रय प्राप्त करेंगी।

परन्तु इस सँसार के अनित्य धन को प्राप्त करने के [illegible] ईस्ट इंडिया कम्पनी के जिन समस्त अर्थ-लोलुप स्वार्थ-[illegible]ण अँगरेजों ने बङ्गसमाज को विविध पाप और अत्याचार [illegible]रिपूरित किया, जिनकी अर्थ-लोलुपता के कारण सैकड़ों

बच्चे पितृ—मातृहीन हुए, पति—प्राणा एस्थार बीबी पतिहीना हुईं, वे क्या सुख से काल-यापन करने में समर्थ हुए थे?

× × × ×

ईश्वर के न्यायविचार में पाप-दण्ड से कोई मुक्ति नहीं पा सकता। कु-कर्म का फल सभी को भोगना पडता है। क्या लार्ड क्लाइव, क्या वेरेलस्ट, क्या कार्टियर, क्या बारवेल, क्या वान्टस—इन में से कोई भी अपने अपने अन्यायोपार्जित धन से सुखी होने में समर्थ न हुआ।

सावित्री अपने पति और भाई के साथ बापूदेव शास्त्री के बाडे के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र घर में रहने लगीं। उस के पति और भाई दोनों बहुत अच्छा कपडा बुनते थे। कलकत्ते में रह कर वे खूब रुपया पैदा करने लगे। हलधर के पुत्र के प्रतिपालन का भार अब सावित्री ने अपने माथे लिया। परन्तु बालक अब भी प्रमदा देवी को मा कहकर पुकारा करता था, और हर घड़ी उन्ही के पास रहना पसन्द करता था।

एस्थार बीबी के पास अब एक पैसा भी न था। वे बडे कष्ट से दिन बिता रहीं थीं। सावित्री और प्रमदा देवी ने एस्थार और एस्थार के बाल बच्चों के भरण पोषण का भार उठाया। मदनदत्त सोने चांदी के गहनों का कारबार करके समय बिताने लगे।

महाराज नन्दकुमार आजकल कलकत्ते में हैं। किस प्रकार मुहम्मद रजा खाँ को पद-च्युत करवा कर स्वयं नायब सूबेदार का पद प्राप्त करें—इसी चेष्टा में लगे हैं। मन ही मन उन्होंने निश्चय किया था कि यदि मुहम्मद

रज़ा खां को पद-च्युत करवा कर स्वयं नायब सुबेदार का पद प्राप्त कर सका तो बाद में धीरे २ अगरेजों को बङ्गाल से बाहर कर दूंगा। यह दुराशा तो देखिए कि अगरेजों की सहायता से पद-लाभ करके फिर उन्हीं के अधिपत्य की जड़ में कुठाराघात करेंगे। अन्तःकरण में सदुद्देश रहते हुए भी इस प्रकार के मार्ग का अवलम्बन करके कोई कभी नहीं कृत-कार्य हो सकता।

मुहम्मद रज़ा खां को पद-च्युत के लिये वे दिनों-दिन नई-नई चालें चलने लगे। परन्तु जब देखा कि सभी चालें व्यर्थ हुईं तो इङ्गलैण्ड में उन्होंने एक व्यक्ति को अपना एजंट नियुक्त किया। यह एजेंट इङ्गलैण्ड में कोर्ट आफ डाइरेक्टर के निकट रज़ा खां के विविध दोष प्रकट करने लगा।

इन सब बड़े-बड़े आदमियों की बातें कहते कहते हमें गरीब रामा का नाम बारम्बार विस्मृत हो जाता है। परन्तु पाठक! गरीब होते हुए भी रामा ईश्वर की दृष्टि में तुच्छ नहीं है। धन, मान ज्ञान प्रतिष्ठा, प्रभुत्व सभी कुछ प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु सच्चरित्र की प्राप्ति सब के भाग्य में नहीं होती। गरीब होने पर भी रामा सच्चरित्रा थी। उसके विषय में दो चार बातें हम इस स्थान पर लिखते हैं।

कलकत्ते में आकर रामा सावित्री के भाई कालाचांद के साथ एकत्र रहने लगी। वह स्वयं थोड़ा बहुत कपड़ा बुन कर जो दो-चार रुपया पैदा करती थी, वह सब पत्थार बीबी को दे देती थी। रामा की मा भी सावित्री के साथ ही रहती है। सावित्री अपनी माता के समान उसकी

सेवा सुश्रूषा करती है। रामा की मा को जब यह ज्ञात हो गया कि सावित्री दुश्चरित्रा नहीं वरन् सदाचारिणी और पुण्यवती है, तो पहिले अपने हृदय में सावित्री के विरुद्ध जिस विद्वेष भाव का पोषण करती रही थी, उसके लिए वह मन ही मन बड़ी लज्जित होने लगी।

महाराज नन्दकुमार जब बापूदेव शास्त्री के घर आते और शास्त्री जी उनसे बातचीत किया करते, उस समय रामा वहाँ खड़ी होकर उन के पारस्परिक वार्तालाप को सुना करती थी।

बापूदेव शास्त्री जब महाराज नन्दकुमार से अपने निज के बाहुबल से मुहम्मद रज़ा खां को पद-च्युत करने के लिये कहते थे तो उसे सुनकर रामा के चित्त में बड़ा आनन्द होता था। युद्ध की बात सुनकर उसका मन प्रसन्न हो जाता था।

कभी-कभी रामा के मन मे आता था कि महाराज नन्दकुमार यदि फ़ौज इकट्ठी कर के युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए तो समरक्षेत्र में सब से पहिले मै अपना जीवन विसर्जित करूंगी।

रामा का हृदय वीरोचित भावों से परिपूर्ण था। वह समय-समय पर कहा करती थी—"सिर्फ तीन आदमी मेरे साथ हों तो मैं कासिमबाज़ार की रेशम की कोठी को गंगा में डुबा सकती हूं।"

अशिक्षित होने पर भी रामा का हृदय, सद्भावों से परिपूर्ण था। क्या उन दिनों, क्या आज, हमने सदा ही यह देखा है कि बङ्गाल मे जो लोग शिक्षित कहे जाते हैं उन में घोर स्वार्थपरता भरी रही है। शिक्षित समुदाय के अधिक

आदमियों के कामों में स्वार्थपरता, कायरता और नीचाशयता के लक्षण दिखाई देते रहे हैं। परन्तु अशिक्षित रामा के सभी कामों में आत्मत्याग के भाव वर्तमान थे।

× × × ×

यहाँ तक इस उपन्यास में जिन लोगों का विशेष रूप में उल्लेख हुआ है, वे प्राय सभी इस समय कलकत्ते में हैं। सिर्फ कृष्णानन्द नामधारी नवकिशोर चट्टोपाध्याय, उनके बहनोई शिवदास वन्द्योपाध्याय, हिन्दू समाज के अग्रणी हरिदास तर्कपञ्चानन और रामदास शिरोमणि इत्यादि कुछ आदमी अब भी अपने अपने निवासस्थान ही में थे। इन के सम्बन्ध में कुछ लिखने के पहले, सन् १७६९ ई० के दुर्भिक्ष में देश की जैसी दुर्दशा हुई थी, और उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रधान प्रधान कर्मचारियों तथा नायब सूबेदार मुहम्मद रजा खां ने जिस प्रकार का आचरण किया था उसका उल्लेख करते हैं।

दिनों-दिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आधिपत्य बढ़ने लगा। साथ ही अत्याचार भी बढ़ता गया। कोर्ट आफ डाइरेक्टस ने लार्ड क्लाइव के द्वारा स्थापित वणिक सभा की कार्य प्रणाली एवं नामक व्यापार के एकाधिकार-संस्थापन की नियमावली का समर्थन नहीं किया। भला वह किस प्रकार इसका समर्थन करता? वह तो व्यापार नहीं एक तरह की डकैती थी। देश का सारा नमक अंगरेज लोग बारह आना मन के भाव में खरीद कर देशी व्यापारियों के हाथ उसे पांच रुपया मन के भाव में बेचते थे, क्या यह डकैती न थी?

कोर्ट आफ डाइरेक्टसे ने नमक के एकाधिकार-संस्था

की नियमावली को एकदम रद्द कर देने के लिए बारम्बार लिखा। परन्तु इस पर भी कलकत्ते के गवर्नर और कौंसिल ने गोलमाल कर के दो बरस तक इस नियम को रद्द नहीं किया। दो बरस के बाद जब कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने देखा कि नमक का व्यापार ये लोग किसी प्रकार दूर नहीं करना चाहते, तब उन्होंने दो रुपया मन के भाव में नमक बेचने की आज्ञा दी। इस से पहिले अगरेज लोग बारह आना मन के भाव में नमक खरीद कर पाच रुपया मन के भाव में बेचते थे। अब वे पाच रुपये के स्थान पर फी मन का दाम दो रुपया लेने लगे।

परन्तु उनकी प्रबल धन तृष्णा इस से न पूरी हुई। क्लाइव के भारतवर्ष से चले आने पर, वेरेलस्ट साहब के वक्त से, अँगरेजों ने धान और चावलों का व्यापार आरम्भ किया।

नवाब अलीवर्दी खां विदेशी व्यापारियों को धान और चावलों के व्यापार में हस्तक्षेप नहीं करने देते थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि धानों से बंगालियों की प्राण-रक्षा होती है, देश अगर धान-चावलों से खाली हो गया तो प्रजा का जीवन दुःसाध्य हो जायगा। अतएव उनके शासन-काल में क्या आरमीनियन, क्या पुर्तगीज, क्या फरासीसी, क्या अँगरेज-धान और चावल के खरीदने-बेचने का अधिकार किसी को नहीं था।

परन्तु अँगरेज लोग धानों के व्यापार का लोभ छोड़ने में असमर्थ हुए। सन् १७६६ ई० के बाद ही से उन्होंने धान का व्यापार आरम्भ कर दिया।

सन् १७६८ ई० में बङ्गाल में बहुत थोड़ा अन्न उत्पन्न

हुआ था । प्रजागण में लगान अदा करने की शक्ति न थी । परन्तु इस साल उनसे कौड़ी गडे से चुकता लगान लिया गया । किसानों को अपने अपने घर में बीज के लिए रखा हुआ धान भी बेच डालना पड़ा । प्रजा के घरों में प्राय बीज का अन्न भी नहीं रहा । इस ओर अङ्गरेज व्यापारी बहुत सा धान खरीद-खरीद कर अधिकाधिक मूल्य में बेचने के अभिप्राय से उसे मद्रास आदि प्रदेशों में भेजने लगे ।

इस के बाद १७६९ ई० में फिर पानी नहीं बरसा । एक ओर किसानों के घर में बीज तक का अभाव था, ऊपर से फिर अनावृष्टि । निदान इस साल १७६८ की अपेक्षा भी थोड़ा अन्न पैदा हुआ । प्राय सभी खेत एक तरह से खाली ही पडे रहे । कलकत्ते के गवर्नर ने दुर्भिक्ष की आशङ्का से फौज आदि के लिए पहिले ही से काफी चावल खरीद कर रख लिया । सैनिकों की प्राण-रक्षा होने पर ही उनका न्यायसङ्गत व्यापार चल सकता था । देश के निवासियों के लिए कौन चिन्ता करता ?

जो थोड़ा-बहुत अन्न उत्पन्न हुआ था, उसे बेचकर किसानों ने अपना-अपना लगान अदा किया । कार्टियर साहब इस समय कलकत्ते के गवर्नर थे । उन्होंने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को लिखा—"कोई चिन्ता नहीं, अनावृष्टि के कारण देश में अधिक अन्न न उत्पन्न होने पर भी लगान के वसूल होने में कोई बाधा नहीं पड़ेगी ।"

परन्तु साल का अन्त होते होते भयानक दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ । सारे बङ्गाल में हाहाकार मच गया । हजारों स्त्री-पुरुष, हजारों बालक-बालिकाएं दिनों दिन मृत्यु के मुंह में पतित होने लगे । बङ्गाल एक दम श्मशान बन गया ।



भीषण दृश्य।

Dire scenes of horror, which no pen can trace,
Nor rolling years from memory's page efface

बङ्गाल मानो राजा से शून्य है। बङ्गाल में इस समय कोई प्रजावत्सल राजा नहीं। इन दुर्भिक्ष पीड़ितों को जो एक मुट्ठी भी अन्न देकर जो इन के प्राण बचावे, ऐसा एक भी आदमी नज़र नहीं आता।

राज्य-शासन का भार उस मुहम्मद रजा खा के हाथों में है, जो राजमहल के भीतर सुन्दर सेज पर निश्चिन्त पड़ा रहता है। कभी स्वप्न मे भी प्रजा की दुरवस्था का चिन्तन नहीं करता। इस दुष्ट के हृदय में दया-धर्म का लेशमात्र भी नहीं, निर्दयी का नाम लेते भी हृदय अपवित्र होता है।

देश में अनेक धनी बसते हैं, परन्तु इस बार उन धनिकों में भी कुछ करने की सामर्थ्य नहीं। क्या किसान, क्या धनी, क्या गरीब, क्या अमीर, किसी के घर में अन्न नहीं। धनिकों के यहां काफी रुपया है, काफी सोना है, काफी मोहरें हैं; परन्तु देश में खरीदने को चावल नहीं मिलता। अतएव अमीर, गरीब, किसान, जमीदार सब की दशा एक है। सभी कह रहे हैं—"माता अन्न दो, बिना प्राण जाते हैं, माता अन्न दीजिये।"

अन्न " सब के मुह से यही चीत्कार सुनाई पड़ता है। कहा जाय तो अन्न मिलेगा,—सब के चित्त में यही चिन्ता उत्पन्न हो रही है।

देश का बहुत सा अन्न खरीद कर अङ्गरेज व्यापारियों ने कलकत्ते में रख छोड़ा है। पुनिया, दीनाजपुर, बांकुड़ा, वर्द्धमान इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रदेशों के कितने ही निवासी कलकत्ते को रवाना हुए। गृहस्थों के घर की कुलाङ्गनाएं अपने-अपने बच्चों को छाती से चिपटा कर कलकत्ते की ओर चलीं। आह ! जिन्हों ने कभी चन्द्र-सूर्य का मुँह नहीं देखा, जिन्हों ने कभी घर के बाहर पांव नहीं रखा, आज वे ही कुलवधुएं बच्चों को गोद में दाब कर भिखारिणी के भेष में कलकत्ते को रवाना हुई। स्वर्ण-मुद्राएं तथा विविध प्रकार के बहुमूल्य आभूषणों को अपने-अपने अचल बांधकर एक मुट्ठी अन्न मोल मिल जाने की आशा से घरबार छोड़ चलीं।

परन्तु इन में से बहुतेरी कलकत्ते तक पहुच भी न सकीं। सैकड़ों सुन्दरी कुलागनाएं, सैकड़ों हट्टे-कट्टे पुरुष भोजनों के बिना रास्ते ही में प्राण खो बैठे। सन्तान-वत्सला माता ने सन्तान को छाती से चिपटाकर कलकत्ते की यात्रा की, परन्तु लघना के कारण सन्तान का दम निकल गया, माता की गोद सूनी हो गई। सन्तान-शोक और भूक प्यास की पीड़ा से व्यथिता हो कुछ ही देर में माता ने भी अपनी मानव लीला समाप्त की।

भ्रान्त स्त्री-पुरुषो ! व्यर्थ आशा में भूल कर तुम कलकत्ते जा रहे हो। जो चावल कलकत्ते जमा हैं, वे तुम्हें नहीं मिलेंगे। तुम मरो तो क्या और जियो तो

क्या ? तुम्हारे लिए कौन चिन्ता करे ? आज क्या भारत में प्रजावत्सल राजा रामचन्द्र हैं ? क्या उदारचेता बादशाह अकबर हैं ? अर्थलोलुप लोग क्या कभी प्रजा के कल्याण की कामना करते हैं ? उनके सैनिकों की प्राण-रक्षा हो यही उनके लिए काफी है। वहां तो सैनिकों के लिए चावल सँग्रहीत हैं। उनके प्राण बड़े मूल्यवान हैं। वे मर जायँगे तो मानव-मण्डली की स्वाधीनता के मूल में कुठाराघात कौन करेगा ? कौन मुहम्मद रजा खां जैसे नरपिशाच के एकाधिपत्य का सँरक्षण करेगा ?

कृषकगण ! तुम किस उम्मीद पर कलकत्ते जा रहे हो ? तुम देश के अन्नदाता हो सही, पर तुम्हें कोई एक मुट्ठी अन्न नहीं देगा। ये देखो, अमीरों के घर की कुलांगनाएँ सोने की मोहरें अपने अपने खूँटों में बांध कर चावल खरीदने के लिए कलकत्ते जा रही हैं। इन्हें शायद मिल जाय तो मिल भी जाय, इनकी गांठ में रुपया है। पर बिना दामों के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारीगण किसी को एक दाना भी नहीं देंगे। कृषकगण ! तुम घर लौट जाओ। तुम्हारे दीर्घ-जीवन का इस बार अवश्य ही अन्त आ गया है। तुम इस सँसार को छोड़ जाओ, यही अच्छा है। परमेश्वर अपनी अमृतमयी गोद में तुम्हें स्थान प्रदान करेंगे। नर-पिशाचों से परिपूर्ण इस श्मशान सदृश बङ्गदेश में रह कर तुम कदापि सुख-शांति-लाभ नहीं कर सकते।

× × × × ×

विकराल दुर्भिक्ष उपस्थित है। दुर्भिक्ष पीड़ित स्त्री पुरुषों से दिनोंदिन कलकत्ते के मार्ग और घाट परिपूर्ण

हो रहे हैं । गंगा के उस पार सैकड़ों नर नारी अन्न के लिए हाहाकार कर रहे हैं । उनके आर्त्तनाद को सुनकर गंगा अपनी कलकल ध्वनि में कह रही है—"मेरी छाती पर तुम्हारा श्मशान निर्मित हो रहा है, दुख और संताप का परित्याग करो, तुम्हारे समस्त क्लेशों, सारी यन्त्रणाओं का अन्त हो जायगा । मैं तुम्हें अपने वक्ष में स्थान प्रदान करूंगी ।"

भूख से व्याकुल हो हजारों आदमी मृत्यु के मुख में पतित होने लगे । गङ्गा की धारा उनके मृत शरीरों को बहा कर बंगसागर की ओर ले चली ।

सैकड़ों माताएँ अपने मृत बालकों को छाती में चिपटाये गंगा के उस पार अचैतन्य पड़ी हुई हैं । अभी उनके प्राणों का अन्त नहीं हुआ है पर डोम और मेहतर उन्हें जीवित अवस्था में ही अन्यान्य मृत-शरीरों के साथ गङ्गा में फेंक रहे हैं ।

कहीं कहीं कुछ लोग क्षुधा की वेदना में हिताहित को भूल कर वृक्षों की पत्तियां चाब रहे हैं । गङ्गा के किनारे पर स्थित बरगद के वृक्षों में एक पत्ता नहीं रहा । पेड़ के पेड़ पत्तों से सूने हो गये हैं ।

शहर के भीतर सैकड़ों दुर्भिक्ष-पीड़ित स्त्रियां मारी मारी फिर रही हैं, बहुतेरी एक मुट्ठी अन्न के लिए अपनी गोद में स्थित बच्चों को बेंच डालने के लिए तैयार हैं । घोर दुर्भिक्ष ने माता के हृदय को स्नेह-शून्य कर डाला, नर नारियों को राक्षस बना दिया ।

पर पीड़ा से पीड़ित बापूदेव शास्त्री प्रति दिन प्रातःकाल गङ्गा स्नान करने आया करते थे । इस भयानक

दुर्दशा को देख-देख कर उनका हृदय फटने लगता था। स्त्री-पुरुषों पर यह दारुण दुख देख कर वृद्ध-ब्राह्मण कभी-कभी मूर्छित हो गिर पडता था।

जो ब्राह्मण-कुलागनाएँ शूद्र का छुआ खाना पीने में घृणा करती थीं आज उन्हें शूद्र का जूठा अन्न मिल जाता है तो बड़ी खुशी से खा लेती हैं।

इनकी दुर्दशा देखकर बापूदेव का हृदय बहुत ही व्यथित हुआ। एक दिन उन्होंने चार-पांच छपरा अन्न लाकर गंगा के पार इन दुर्भिक्ष-पीडितों में बांटना शुरू किया। परन्तु बड़ी आफत आई। अन्न बँटता देखकर चारों ओर से कोई दो तीन सौ आदमी दौडे आये। प्रत्येक ही एक दूसरे को पीछे ठेल-ठेल कर स्वयँ बापूदेव के पास पहुचने की चेष्टा करने लगा। विष्णुपुर की दो तीन भले घरों की स्त्रियां अन्यान्य लोगों के पांवों के नीचे कुचल कर मर गईं। वे बेचारी भी दो दानों के लिये बापूदेव के पास जा रही थीं। पीछे से जो लोग दौडे आ रहे थे, उन्हों ने इन्हें धक्का दिया वे जमीन पर गिर पडीं। सैकडों आदमी इनकी छाती पर पाव रखते हुए निकल गये। इसी दुर्दशा में उनकी मृत्यु हो गई।

सारा अन्न बँट चुकने के बाद सैकड़ों आदमी बापूदेव के पास आ-आकर अन्न मागने लगे। इस भीड़-भाड और धमाधसी में पड़कर बापूदेव को अपने प्राण बचाना कठिन हो गया। रामा उनके साथ थी। वह भीड़ को हटाकर वृद्ध ब्राह्मण के प्राण बचाने की चेष्टा करने लगी। परन्तु वृद्ध ने अपनी विपत्ति की कुछ परवाह न की, किन्तु इसी चिन्ता में आँखों से आँसू बहाने लगा कि इन

सैकड़ों आदमियों को मैंने तनिक भी अन्न न दे पाया । कोई पांच सौ मनुष्यों ने जब दुबारा "अन्न दो—अन्न दो" कहते हुए वृद्ध का पीछा पकड़ा तो वृद्ध ने आंखों से आसू बहाते हुए अपना दाहिना हाथ बाहर निकाल कर कहा— "मेरे इस हाथ का भक्षण कर लेने से यदि तुम्हारी क्षुधा शान्त हो तो मैं यह हाथ तुम्हें दे सकता हूं । परन्तु अन्न अब मेरे पास नहीं है, मैं गरीब ब्राह्मण हूं ।"

ब्राह्मण के इन कातर-वचनों को सुनकर सब लोग चले गये । भीड़ कम हुई, कोलाहल शान्त हुआ । बापूदेव ने देखा कि अन्न बँटते वक्त दो भद्र महिलाएँ और आठ नौ बालक-बालिकाएँ लोगों के पावों से कुचल कर मर गई हैं ।

बापूदेव घर की ओर चले । थोड़ी दूर जाकर देखा कि रास्ते के किनारे पर एक स्त्री पड़ी हुई है । उसकी छाती से चिपटा हुआ एक दो बरस का बालक लगातार मातृ-स्तनों को चूस रहा है । माता के स्तनों में दूध नहीं है । दूध के स्थान पर स्तन से रक्त निकल रहा है और बूंद बूंद रक्त बालक के मुंह में प्रवेश कर रहा है ।

बापूदेव ने जैसे ही बालक को उठाया उसकी माता चौंक पड़ी । शास्त्री महाशय इस स्त्री को साथ ले घर की ओर चल दिये । परन्तु और कुछ दूर आगे चलकर क्या भयानक दृश्य देखा "यह क्या भीषण दृश्य—यह कहते हुए शास्त्री जी मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ।

वास्तव में यह भीषण ही दृश्य है । परन्तु दरिद्रता और अन्नकष्ट क्या मातृ-हृदय को इस प्रकार स्नेह-शून्य कर सकता है ? क्या दारिद्र-दुख में मनुष्य सचमुच ही

मनुष्यत्व को भूल जाता है ? यदि ऐसा है, तब तो दरिद्रता ही सारे पापों का मूल कारण है। तब तो मानव समाज में जब तक दरिद्रता रहेगी, तब तक पाप ताप, शोक-दुख संसार में बने ही रहेंगे। दरिद्रता क्या मनुष्य को राक्षस-प्रकृति बना देती है ? दरिद्रता क्या मनुष्य को पिशाच बना डालती है ? उफ ! यह क्या भीषण दृश्य ! जननी अपनी गोद में स्थित मृत सन्तान का मांस भक्षण कर रही है !

मातृ-स्नेह की संसार में कोई सीमा नहीं कही जा सकती। प्रशांत महासागर भले ही शुष्क हो जाय, परन्तु माता का हृदय कभी स्नेह-रस से रिक्त नहीं होता। पर, हा ! प्रशांत महासागर की अपेक्षा कहीं अधिक विशाल और गम्भीर मातृ-हृदय भी आज स्नेह-रस से शून्य हो गया !

दुर्भिक्ष के दुख में, क्षुधा की वेदना में, जब माता का हृदय ही स्नेह-शून्य हो सकता है, तब इस संसार के अन्याय स्नेह, अन्यान्य प्रेम, सभी वृथा हैं, सभी असार हैं। सम्पद् काल में लोगों का स्नेह-प्रेम, लाड़-प्यार सभी कुछ सुरक्षित रहता है ; परन्तु विपद् काल में इन सब का कूच हो जाता है। तो क्या इस संसार का सारा स्नेह-प्रेम सिर्फ अवस्था पर निर्भर रहता है ? नहीं—कभी नहीं—मातृ-स्नेह, साध्वी जननी का प्रेम कभी नष्ट नहीं होता। यह भीषण दृश्य समग्र मानव-मण्डली की जीवनावस्था पर घटित नहीं हो सकता।

पाठक ! इस भीषण दृश्य की बात को छोड़िये। चलिये, एक बार कलकत्ते के आरमीनियन मुहल्ले में चलें। एस्थार बीबी जिस छोटे से इकतल्ला घर में मृत्युशय्या पर

पड़ी हुई हैं, वहां चलिये। आप देखेंगे कि क्या दुख, क्या दारिद्र, कोई भी कारण साध्वी के प्रेम को, जननी के स्नेह को, नष्ट नहीं कर सकते।

× × × × ×

दुर्भिक्ष के कारण कलकत्ते में चावलों का मूल्य दस गुना बढ़ गया है। सावित्री और प्रमदा देवी एस्थार बीबी को जो थोड़ा सा रुपया दे पाती हैं, उस से उनका सब खर्च पूरा नहीं पड़ता।

एस्थार बीबी, बदरुन्निसा और एस्थार बीबी के दो पुत्र आज कल दोपहर को सिर्फ एक बार भोजन पाते हैं सबेरे और शाम को उन्हें भोजन नहीं जुड़ता।

पुत्रों को भोजनों का कष्ट देख २ कर सन्तान-वत्सला एस्थार का हृदय फटा जाता है। वह स्वयं कुछ भी नहीं खाती हैं, अपने हिस्से के चावल अलग रख छोड़ती हैं। तीसरे पहर उन चावलों को बाट चूट कर दोनो पुत्रों और माता सदृशी बदरुन्निसा को दे देती हैं।

बदरुन्निसा एस्थार को प्राणों से अधिक प्यार करती थी। वह इस प्रकार एस्थार को निराहार नहीं रहने देती थी। परन्तु बदरुन्निसा के हजार आग्रह करने पर भी एस्थार बीबी, अपने हिस्से के चावल खुद न खाकर, शाम के वक्त गुप्त रूप से अपने दोनो बालकों को खिला देती थी। तीन ही चार लघनो के बाद वे चारपाई से लग गई। यह हालत देखकर बदरुन्निसा भी अपने मुह में कौर नहीं देती थी, और बारम्बार एस्थार से भोजन करने का अनुरोध करती थी, परन्तु एस्थार बीबी उससे कहती थीं—"मा, मैं मर जाऊगी तो तुम भीख माग कर भी मेरे इन पुत्रों का प्राण बचा लोगी।

परन्तु तुम यदि लघन कर के मर गई तो मेरे यह बच्चे नहीं जियेंगे।"

बदरुन्निसा ये बातें सुनकर रोने-चिल्लाने लगती थी। वह चाहती थी कि मैं स्वयं भूखी रह कर एस्थार को भोजन कराऊँ। परन्तु एस्थार की इच्छा इस के विपरीत थी, वह स्वयं लँघी रह कर बदरुन्निसा के प्राण बचाना चाहती थी।

एस्थार का हृदय बदरुन्निसा की अपेक्षा भी कोमल था। अतएव बदरुन्निसा हजार चेष्टायें कर के भी एस्थार को भोजन न करा सकती थी। आज एस्थार बीबी मृत्युशय्या पर पड़ी हुई हैं। सावित्री यह हाल सुनकर उन्हें देखने आई है और सिसकती हुई उनकी चारपाई के पार्श्व में बैठी है।

एस्थार कह रही हैं— "सावित्री, मैं जाती हूं। मेरे दोनों बच्चों और माता बदरुन्निसा की प्राण-रक्षा हो—ऐसा उपाय करना।"

"मा तुम जाती हो। तुमने माता की भांति मुझे अपने घर में आश्रय दिया था। तुम्हारी बात सुन कर मेरी छाती फटी जाती है।" यह कह कर सावित्री एस्थार के गले लग कर रोने लगी।

एस्थार—मैंने तुम्हें अपनी सन्तान ही की तरह प्यार किया, और तुम भी सन्तान ही की तरह मेरे काम आई। मृत्युशय्या पर पड़े हुए मेरे पति के मुँह में तुमने पानी डाला था—इसे मैं कभी न भूलूँगी। मुझे इस संसार को छोड़ जाने में तनिक भी दुःख नहीं है। सिर्फ इन दो बच्चों और मा बदरुन्निसा के भविष्य की सोच रही हूं, और इसी सोच में चित्त व्याकुल

हो रहा है ।

सावित्री—तुम्हें मैं कदापि न जाने दूंगी। जैसे कुछ होगा, तुम्हें बचाऊँगी। यह देखो प्रमदा देवी ने रामा के हाथ तुम्हारे लिए कुछ पथ्य भेजा है। लो, इसे खाओ तो।

प्रमदा देवी का नाम सुनकर एस्थार की आखों से आँसू बहने लगे। कुछ देर बाद बोली—"प्रमदा देवी बड़ी दयावान हैं। मैं एक बार उन्हें देखना चाहती हूं।"

सावित्री—मा, वह वास्तव में मानवी नहीं, देवी हैं। मैं उनसे कहूंगी, वे अभी आकर आप को देख जायँगी।"

एस्थार की बात सुनते ही रामा तुरन्त ही वापूदेव शास्त्री के पास जाकर बोली—"कारापिट साहब की मेम मृत्यु शय्या पर पड़ी हैं। प्रमदा देवी को वे एक बार देखना चाहती हैं।"

बापूदेव कन्या को साथ ले एस्थार के पास आये, प्रमदा देवी को देखते ही एस्थार की आँखों से कृतज्ञता के आसू बहने लगे।

एस्थार ने कहा—"आपने मेरी और मेरे बच्चों की प्राण रक्षा की है। मैं आपकी चिर ऋणी हूं"।

प्रमदादेवी—(आखा में आँसू भर कर) आप थोड़ा सा दूध पये अभी चङ्गी हो जायँगी।

एस्थार—अब मेरे बचने की कोई आशा नहीं।

एस्थार रोगी की यह बात सुनकर प्रमदा देवी की आँखों से तीव्र अश्रुधारा बहने लगी। प्रमदा देवी शब्दों के द्वारा हृदय के भाव को कभी न प्रकट कर सकती थीं, प्राय अवाक् रह जाती थीं। किसी ने कभी उन्हें बहुत बातें करते नहीं सुना। उनके

हृदय-स्थित, प्रगाढ़-स्नेह, नि:स्वार्थ-प्रेम और दया का भाव क्या शब्दों के द्वारा प्रकट किया जा सकता है? जैसा स्वर्गीय प्रेम वैसी अपूर्व दया संसार में विरले ही कहीं देखी जाती है और यही कारण है कि मानव-भाषा में, हृदय के उस भाव को प्रकट करने के लिये उपयुक्त शब्दों की रचना ही आज तक नहीं हुई।

एस्थार बीबी का शरीर क्रमश: अशक्त होने लगा। कण्ठ रुकता गया। ज़ोर से साँस चलने लगी।

बदरुन्निसाँ—बेटी, मुझे छोड़ चली?

एस्थार—(अपने दोनों पुत्रों का हाथ पकड़ कर) इन दोनों बच्चों को तुम्हें सौंपे जाती हू।

बदरुन्निसाँ—तुम्हारे बिना मैं इस संसार में कैसे रहूंगी।

एस्थार—मेरे दोनों बच्चों को छाती से लगाओ।

सावित्री—माँ! मेरी माँ की मृत्यु के बाद आप मेरी मा हुई थीं। आज किस अपराध पर मुझे छोड़ चली? मा, मै तुम्हें न जाने दूंगी।

एस्थार—(सावित्री के हाथ पर हाथ रखकर) परमेश्वर तुम्हें सुखी रखे मैं जाती हू।

इस प्रकार इन सब को शोकाकुल देख कर प्रमदा देवी अवाक हो रहीं। दोनों आँखों से अविराम अश्रुधार बहने लगी। मुह की ओर देखने से जान पड़ता थ मानों उनका हृदय विदीर्ण हो रहा है।

इस के कुछ ही देर बाद एस्थार बीबी का गल क़तई रुक गया। बात करने की शक्ति न रही। बदरु न्निसा ओर सावित्री हाहाकार करती हुई रोने लगी। इनव

आर्त्तनाद सुनकर प्रमदादेवी एकदम अचैतन्य होगईं।

एस्थार बीबी का अन्त समय आ पहुंचा। टकटकी बांधे दोनों बच्चों की ओर देख रही थीं। "कारापिट"—बस इतना ही कहते २ उनकी देह निर्जीव हो गई। पाप और अत्याचार परिपूर्ण नरक तुल्य बंगदेश का परित्याग कर उनका निर्मल आत्मा स्वर्ग लोक में जा पहुचा।

हा परमेश्वर। सेनापति मीरमदन की कन्या अतुल ऐश्वर्यशाली आरमीनियन व्यापारी सामुयल आराटून की पुत्रवधू एस्थार बीबी आज दरिद्रता के कारण निराहार रह कर अकाल ही में काल-ग्रास हुई। जो प्रतिदिन सैकड़ों भूखे कंगालों को अन्न वितरण किया करती थीं, जिनकी उदारता और दान-शीलता के कारण सैदाबाद में किसी भिखारी को कभी भूखा नहीं रहना पड़ा था, आज उन्हीं दयावती लक्ष्मी-स्वरूपा एस्थार बीबी ने अन्न-कष्ट में प्राण-त्याग किया। धिक्कार है संसार के उन अर्थ-लोलुपों को, जो अपने अर्थ लोभ के कारण मङ्गलमय परमेश्वर के इस मङ्गलमय राज्य में आये दिन ऐसे हृदयभेदी दृश्य उपस्थित करते है।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

बापू देव शास्त्री और मुहम्मद रजा खां ।

एस्थार बीबी की मृत्युशय्या के निकट प्रमदादेवी अचैतन्य पड़ी थीं । उनके पिता उन्हें उसी अचैतन्यावस्था में घर लिवा लाये । परन्तु दिनों दिन इन दुर्भिक्षपीड़ितों की नाना प्रकार की कष्ट-यन्त्रणाओं की बातें सुन सुन कर उनका हृदय बहुत ही व्यथित होने लगा । रात मे उन्हें नींद नहीं आती थी । इस मानसिक कष्ट के साथ ही साथ धीरे धीरे उन का शरीर भी दुर्बल होता गया । बापूदेव ने समझ लिया कि कोमल हृदया प्रमदा अब अधिक दिन तक इस संसार में न रह सकेगी ।

एस्थार की मृत्यु के दो-तीन दिन बाद ही प्रमदा देवी इतनी कमजोर हो गई कि उठने की शक्ति न रही । उनके पिता उन की चारपाई के पार्श्व में बैठे हुये हैं । सावित्री उनके पावों के पास बैठी आसू बहा रही है ।

कुछ देर में प्रमदादेवी ने कहा— "पिता इन दुर्भिक्ष पीड़ितों का क्लेश दूर करने के लिए कोई उपाय ना है ?"

शास्त्री— "बेटी, गरीब ब्राह्मण हूं, मैं क्या क सकता हूं"।

प्रमदा—पिता, दादा ने कहा था कि मैंने तुमको उ तुम्हारी माँ को भेंट के लिए जो आभूषण मोल लि

थे, उनके मूल्य का रुपया जब तुम चाहोगी, मैं दूंगा। मैं उनसे वह रुपया कभी न मांगती, परन्तु यदि इस समय वह रुपया लाकर इन अनाथों के कष्टनिवारण की चेष्टा की जाय तो अच्छा हो न ?

शास्त्री—तुम्हारी इच्छा हो तो तुम उनसे वह रुपया मांग सकती हो, परन्तु मैं स्वयं इस विषय में नन्दकुमार से कुछ नहीं कहना चाहता।

प्रमदा तो उन्हें बुलवा लीजिये।

बापूदेव शास्त्री ने महाराज नन्दकुमार को बुलाने के लिए आदमी भेजा। परन्तु उस आदमी ने लौट कर कहा कि 'महाराज बुलाक़ीदास के यहां गये हैं। सेठ बुलाकीदास की मृत्यु हो गई है, उन की सम्पत्ति के विषय में उनकी स्त्री और गङ्गाविष्णु में झगड़ा हो रहा है'।

प्रमदादेवी को यह मालूम ही था कि उन आभूषणों की क़ीमत के बाबत बुलाक़ीदास ने महाराज नन्दकुमार को एक तमस्सुक लिख दिया है। परन्तु बुलाक़ीदास की मृत्यु का संवाद सुनकर वे सोचने लगीं कि अब उन आभषणों की कीमत का रुपया शायद नहीं मिलेगा, अतएव उस रुपये से उन्होंने मन ही मन दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता करने को जो निश्चय किया था वह निश्चय उन्हें त्याग देना पड़ा। चित्त में बड़ा क्लेश हुआ।

कुछ देर सोच विचार कर प्रमदादेवी ने कहा—"पिता, इस से पहिले भी कभी इस देश में दुर्भिक्ष पड़ा था ?"

बापूदेव—अनावृष्टि अथवा किसी अन्य दैवी दुर्घटना से समय-समय पर दुर्भिक्ष पड़ा ही करता है। परन्तु इस प्रकार की भयानक शोचनीय अवस्था और भी कभी

इस देश में उपस्थित हुई हो,—यह मै नहीं कह सकता।

प्रमदा—पहिले जब कभी दुर्भिक्ष पड़ा होगा तो शायद देश के धनवान आदमियो ने गरीबों की प्राण-रक्षा की होगी।

बापूदेव—बेटी, दुर्भिक्ष पड़ने पर प्रजा की प्राण-रक्षा के लिये राजा ही को उद्योग करना पड़ता है। परन्तु देश इस समय बिना राजा का है। मुहम्मद रजा खा के ऊपर देश के राज्याशासन का भार है। वह सिर्फ इसी की चेष्टा में रहता है कि किस प्रकार कम्पनी के आदमियों को घूस दे दिला कर अपने पद की रक्षा करे, और कम्पनी के आदमी सिर्फ इसी का उपाय खोजते रहते हैं कि किस प्रकार इस देश का सारा धन बटोर ले। प्रजा का दुख इस वक्त कौन देखे? देश में प्रजापालक राजा हो तो दुर्भिक्ष में एक भी आदमी का प्राण नाश नहीं हो सकता।

प्रमदा देवी—पिता, तो फिर आप एक बार उस रजा खाँ से लोगों की इस दुर्दशा का हाल कहें। अवश्य ही उसे दया आवेगी।

शास्त्री—बेटी इस संसार में कैसे कैसे आदमी हैं, तुम नहीं जानती, इसी लिये ऐसा कह रही हो। सुना है, रजा खां ने बहुत सा चावल खरीद कर रख छोड़ा है। भाव और अधिक मँहगा होने पर वह उसे बेचेगा। प्रजा के सुख दुख को वह भला कब देखने वाला है।

प्रमदा देवी—नहीं पिता, लोगों की दुरवस्था का वृत्तान्त सुनकर उसे अवश्य दया आवेगी। भला कहीं ऐसा सम्भव है? मनुष्य-मनुष्य का इतना दुख देख सकता है? तिस पर वह देश का राजा है।

शास्त्री—बेटी, रज़ा खां बड़ा निर्दयी आदमी है वह कभी प्रजा की सहायता के लिए तैयार नहीं होगा। मैंने स्वयँ एक वार अपने मन में सोचा था कि मुर्शिदाबाद जाकर उस से इस सम्बन्ध में बात चीत करूँ। परन्तु नन्दकुमार से इस विषय में राय लेने पर मैंने समझ लिया कि इस से कोई फल न होगा। तिस पर आज कल तुम्हारी जैसी कुछ अवस्था है, उसे देखते हुए मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं न जा सकूँगा।

प्रमदा देवी—पिता, मेरे लिये आप कोई चिन्ता न करे। इन लोगों का कष्ट देखकर मुझे रात को नींद नहीं आती। इसी से ऐसी दुर्बल हो रही हूं। आप इसी वक्त मुर्शिदाबाद जाकर उस से सब हाल कहें। मेरे लिए तनिक भी चिन्ता न करें। सावित्री यहां मेरी सेवा शुश्रूषा करती रहेगी।

शास्त्री—बेटी, मुहम्मद रज़ा खां से ये सब बातें कहने पर कोई फल न होगा। क्यों व्यर्थ ही मुझे उस के पास भेजती हो?

प्रमदा—नहीं पिता, आप अभी मुर्शिदाबाद चले जाय। क्षणमात्र की देर न करें। प्रति दिन हजारों आदमी मरते जा रहे हैं। पहिले के नवाब तो आप की राय पर चला करते थे।

शास्त्री—बेटी, तुम कुछ नहीं समझतीं। रज़ा खां जैसा नर पिशाच आदमी मेरी बात कभी न मानेगा। शायद घृणा प्रकट करके वह अपने दरवाजे से मुझे दुतकार देगा। मुझ से मुलाक़ात तक नहीं करेगा।

बापूदेव शास्त्री ने इससे पहिले भी मुहम्मद रज़ा खां के

पास जाने का विचार किया था। इधर प्रमदा देवी ने बहुत ज़ोर दिया। दुर्भिक्ष पीड़ितों का दुख देख कर वे स्वयं भी बड़े दुखी हो रहे थे। निदान बहुत कुछ सोचा विचारी के अनन्तर अन्त में उन्होंने मुर्शिदाबाद जाने का ही निश्चय किया, शीघ्र ही रामा को साथ ले मुर्शिदाबाद को रवाना हुए।

रामा अँगरेज़ो के भय से भागकर कलकत्ते आई थी परन्तु परोपकार का कोई अवसर हाथ आ जाय तो उस समय वह अपने कष्ट की तनिक भी पर्वाह नहीं करती थी।

वापूदेव की अवस्था अस्सी बरस से अधिक हो चुकी है। परन्तु आज भी उनके प्रत्येक कार्य में यौवनसुलभ उत्साह दिखाई पड़ता है। कलकत्ते से चलकर पांच सात दिन में वे मुर्शिदाबाद पहुंच गये। रास्ते में सदाबाद और कासिमबाज़ार के निकटवर्ती ग्रामों की दुरवस्था देखकर वापूदेव की आखों से आसू बहने लगे। ये घनी आबादी के गांव एकदम वीरान दिखाई पड़ते थे।

मुर्शिदाबाद के प्राय सभी लोग वापूदेव को पहिचानते थे। अलीवर्दी खां के जमाने में मुहम्मद रज़ा खां जैसे सैकड़ों आदमी वापूदेव की कृपा के अभिलाषी रहते थे। अतएव उन्होंने निर्भीक चित्त से मुहम्मद रज़ा खां के पास एक आदमी के द्वारा अपने आने की खबर भेजी और मुलाक़ात करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु मुहम्मद रज़ा खां ने उनसे मुलाकात करने की अनिच्छा प्रकट करते हुए कहला भेजा कि मेरी शारीरिक अवस्था अच्छी नहीं है, इस लिए मिलने में असमर्थ हू।

“मुहम्मद रज़ा खा ने जब इस प्रकार मुलाक़ात करने में

असमर्थता प्रकट की तो वृद्ध-ब्राह्मण की कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उन्होंने बड़े गुस्से में आकर मुहम्मद रज़ा खां के आदमी से कहा — "अभी अभी जाकर अपने मालिक से कहो कि यदि वह अपना भला चाहता है तो इसी क्षण मुझ से मुलाक़ात करे, अन्यथा उस के लिए अच्छा न होगा।"

मुहम्मद रज़ा खां का आदमी वृद्ध-ब्राह्मण के ये वाक्य सुनकर कुछ डर गया, और फौरन ही अपने मालिक के पास जा कर बापूदेव की बात ज्यों की त्यों कह सुनाई।

इस संसार में स्वार्थ-परायण अर्थ लोलुप और नीचाशय मनुष्य प्राय कायर हुआ करते हैं। सद्-व्यवहार अथवा मीठे वचनों के प्रयोग से इन कायरों को कदापि वशीभूत नहीं किया जा सकता। जब तक भय-प्रदर्शन न किया जाय, ये कभी किसी के साथ सद्-व्यवहार करने को तैयार नहीं होते। जिनके अन्तःकरण में वीरता का भाव है उनके प्रति सद्-व्यवहार किया जाय तो वे भी दूसरे के साथ सद्-व्यवहार करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। परन्तु कायरों को भय दिखाने ही पर वे विनीत भाव का अवलम्बन करते हैं। मुहम्मद रज़ा खां निहायत कायर आदमी था। नौकर की ज़बानी बापूदेव शास्त्री की फटकार सुनकर बहुत डर गया कि सम्भव है, कलकत्ते के गवर्नर अथवा कौंसिल के मेम्बरों के साथ बापूदेव शास्त्री का मेल जोल हो—यह सोचकर तुरन्त ही नौकर के द्वारा उसने शास्त्री जी को अपने कमरे में बुला भेजा।

बापूदेव जैसे ही कमरे में घुसने लगे, रज़ा खां ने बड़े आदर और नम्रता के साथ उन से बैठने के लिए कहा।

बापूदेव बैठ गये और कहने लगे—"महाराय आपके

हाथों में इस वक्त राज्य-शासन का भार है। प्रजा की जो दुर्दशा हो रही है, क्या उसकी आप को तनिक भी चिन्ता नहीं ?"

रज़ा ख़ाँ—पण्डित जी! शारीरिक अवस्था के कारण दो-तीन महीने से मैं बड़े कष्ट में हूं—कहिये, प्रजा की दुर्दशा का कोई समाचार तो मैंने सुना नहीं, हाँ माल-गुज़ारी वसूल होने में इस साल ज़रूर बड़ी अड़चन पड़ रही है।

शास्त्री—देश में घोर दुर्भिक्ष उपस्थित है। दिन रात हज़ारों आदमी मरते जा रहे हैं, क्या आप यह नहीं देखते ?

रज़ा ख़ाँ—तो शायद इसीलिए मालगुज़ारी वसूल होने में बाधा पड़ रही है। किस उपाय से मालगुज़ारी वसूल होगी, अभी तक कुछ निश्चय नहीं कर सका हूं।

शास्त्री—तुम्हें सिर्फ़ मालगुज़ारी वसूल करने की चिन्ता है। देश उजाड़ हो रहा है, उस की कोई फ़िक्र नहीं ?

रज़ा ख़ाँ—पण्डित जी! मनुष्य की मौत के लिए मैं क्या करूंगा! ख़ुदा की मर्ज़ी। मैं किसी की उमर तो नहीं बढ़ा सकता।

शास्त्री—देश के आदमी भूखों मर रहे हैं, उनके भोजनों का कोई प्रबन्ध तुमसे नहीं होता ?

रज़ा ख़ाँ—इतना सामर्थ्य मुझमें कब है कि मैं सारे देश को भोजन दे सकूं ?

शास्त्री—तुम इस वक्त बङ्गाल के नायब सूबेदार हो। प्रजा की जिससे प्राण-रक्षा हो, उसकी चेष्टा तुम्हीं को करनी

चाहिये।

रज़ा खां—महाशय, मैं किस प्रकार प्रजा की प्राण-रक्षा कर सकता हूं। मालगुजारी की वसूली के लिए ही परेशान हो रहा हूं। तिस पर-तीन महीने से बीमार हूं। इतना भी सामर्थ्य नहीं कि राज-कर की प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग करूँ। अब क्या मुझे इसकी चिन्ता भी अपने जिम्मे लेनी पड़ेगी कि कौन मरता है कौन जीता है?

शास्त्री—तुम मेरी बात सुनकर शायद कुछ नाराज हो गये। परन्तु तुम्हारे जैसे घृणित मुसलमान कुलाङ्गार से मैं नहीं डरता। नाराज होने की जरूरत नहीं, मैं पूछता हूं,—तुम प्रजागण की प्राण-रक्षा के लिए कुछ करोगे या नहीं?

हम पहिले ही कह चुके हैं कि धमकाने फटकारने पर कायर लोग विनीतभाव अवलम्बन करते हैं। रज़ा खां शास्त्री की बात सुनकर कुछ भयभीत हो बोले—"पण्डित जी महाराज राग न कीजिये। मैं शारीरिक अस्वस्थता के कारण बड़े क्लेश में हूं। मुझ में कोई काम काज देखने की तनिक भी शक्ति नहीं है।"

शास्त्री—काम काज देखने की शक्ति नहीं है तो तनख्वाह क्यों लेते हो? रुपया लेते शरम नहीं आती?

रज़ा खां— (अधिक भयभीत हो कर) महाराज कम्पनी बहादुर ने मेहरबानी करके जब मुझे यह पद प्रदान किया है तो मैं अवश्य ही तनख्वाह लेने का हक़दार हूं।

शास्त्री—कम्पनी बहादुर शायद अपने घर से तुम्हें तनख्वाह देती है? सर्वसाधारण प्रजा[१] से जो रुपया

वसूल होता है, उसी में से तनख्वाह पाते हो न ? जब ऐसा है तो फिर प्रजा के सुख दुख की ओर कैसे नहीं देखोगे ?

रजा खां—पण्डित जी महाराज, मैं मानता हू कि रुपया दो रुपया दान देने से अवश्य ही पुण्य होता है। हमारे कुरान में भी ऐसा ही लिखा है। सखावत कर मिले तो अच्छा ही है।

शास्त्री—तुम तो बहुत अच्छे सखी हो !

रजा खा—तो आप क्या कहते हैं ?

शास्त्री—अरे नराधम म्लेच्छ ! दुर्भिक्ष के समय प्रजा की प्राण-रक्षा करना क्या कोई सखावत है ? यह तुम्हारे पितृ-श्राद्ध का दान नहीं है प्रजा के दिये हुए रुपये से ही सारा राज काज चलाते हो। इस समय वह भूखों मर रही है। उसकी प्राण-रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम्हारा यह म्लेच्छ हृदय यदि प्रजा की पीडा से व्यथित नहीं होता तो अन्ततः यही सोचकर प्रजा के प्राण बचाने की चेष्टा करो कि यदि प्रजा सब मर मिटेगी तो तुम्हारा कर कहा से वसूल होगा ?

रजा खा—पण्डित महाराज, आप की यह-आखिरी बात मैं मानता हू। प्रजागण के मर जाने पर वास्तव में कर नहीं वसूल होगा।

शास्त्री—तो फिर प्रजा की प्राण-रक्षा के लिए चावल बांटने का उद्योग करो। मैंने सुना है, तुमने तीन लाख मन चावल खरीद कर महगे भाव से बाजार में बेचने के लिए गोदाम में बन्द कर के रख छोड़ा है। उन में से कुछ चावल बांटने के लिए कलकत्ते भेजो, अन्यथा तुम अवश्य ही पद-च्युत

हो जाओगे।

मुहम्मद रज़ा खाँ यह अच्छी तरह जानता था कि नवाब अलीवर्दी खा, नवाब मीरकासिम आदि सभी बापूदेव शास्त्री का आदर करते थे। इसलिए वह सोचने लगा कि बापूदेव शास्त्री इस वक्त कलकत्ते में रह रहे हैं। हो न हो, कलकत्ते के गवर्नर और कौसिल के मेम्बर भी इनका यथेष्ट सम्मान करते हैं। ऐसी दशा में यदि मैंने इनकी बात न मानी तो य कलकत्ते के गवर्नर से मुझे पद च्युत कर देन का अनुरोध करेंगे।

कायर रज़ा खां मन ही मन ऐसा सोचकर पचास हज़ार मन चावल कलकत्ते को भेजने पर राजी हुआ। दुर्भिक्ष-पीड़ितों की प्राण रक्षा के लिए तुरन्त ही ये चावल कलकत्ते को रवाना कर दिये गए।

परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर और कौसिल के मेम्बरों का घृणित व्यवहार देखो कि दुर्भिक्ष-पीड़ितों को मुफ्त बांटने के लिये जो चावल भेजे गये, उन्हें बहुत महँगे भाव में बेच कर वे रुपया इकट्ठा करने लगे*। यही तो ख़ीष्टधर्मावलम्बी महात्माओं के लिए ख़ीष्टोचित व्यवहार था! जब विलायत वालों को यह बात मालूम हुई तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी गण निःसङ्कोच कह उठे—"बङ्गाली गुमास्तों की जात से यह काम हुआ।" परन्तु डिरेक्टरों को इसका पता लग गया कि हमारे उच्च पदस्थ अँगरेज़ कर्मचारियों ने ही यह सब कुछ किया था। सारा दोष बंगालियों के मत्थे मढ़ कर वे सिर्फ अपने को निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं।

---

*Vide Note (24) in the appendix

तैंतीसवाँ परिच्छेद

स्वर्गारोहण।

दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायतार्थ मुर्शिदाबाद से चावल रवाना हो जाने के बाद, बापूदेव शास्त्री कलकत्ते वापस आये। उनकी अनुपस्थिति में प्रमदादेवी की शारीरिक अस्वस्थता क्रमशः बढ़ती गई थी। शास्त्री जी जब कलकत्ते पहुंचे तो देखा कि प्रमदा के जीवन की कोई आशा नहीं है। एक दो दिन के भीतर ही वह इहलोक से प्रस्थान करेगी।

बापूदेव शास्त्री के मुर्शिदाबाद जाने के बाद महाराज नन्दकुमार उनके घर आये थे। प्रमदा की शारीरिक अवस्था देखकर उन्हें अत्यन्त दुख हुआ। बापूदेव की अनुपस्थिति के दिनों में वे प्राय हर रोज ही तीसरे पहर के वक्त एक बार आकर प्रमदा को देख जाते थे, किसी-किसी दिन दो दफे भी आते थे।

बापूदेव के कलकत्ता पहुंचने के दूसरे दिन सवे प्रमदादेवी की अस्वस्थता बहुत बढ़ गई, शरीर अशक्त ह गया। बात करने की ताक़त न रही। शास्त्री जी महारा नन्दकुमार, सावित्री, रामा, सावित्री के पति और भाई ए मदनदत्त सभी उद्विग्न चित्त प्रमदा की चारपाई के अ पास बैठे हैं। सब चुप हैं, किसी के मुह में बात नहीं सावित्री की आंखों से अविराम अश्रुधारा बह रही है

प्रमदा देवी कभी-कभी अचैतन्य हो कर प्रलाप करने लगती हैं, कभी तनिक होश आ जाता है तो पिता से दुर्भिक्ष-पीड़ितों के दुखों का हाल पूछने लगती हैं।

प्राय दो घण्टे बीत गये, प्रमदादेवी बिलकुल चुपचाप ऊँघती पड़ी हुई हैं। नींद अच्छी तरह आती ही न थी। अनिद्रा के कारण ही उन की यह दशा हुई है। प्राय चार-पांच बरस हो गये, सर्वसाधारण के दुख-दारिद्रय की अवस्था का चिन्तन करते रहने के कारण उन्हे रात को सँभल कर नींद कभी नहीं आई। इसी असह्य चिन्ता के कारण उनका शरीर जीर्ण हो गया और उनकी आयु का अन्त समीप आ पहुंचा। दो घण्टे के बाद होश आने पर प्रमदा ने जल पीने की इच्छा प्रकट की। पिता ने बूँद बूँद कर के मुह में जल डालना शुरू किया। जल पी कर प्रमदा कहने लगी—

"पिता, कब तक ससार में इन लोगों का दुख दूर होगा? ओह। हलधर की कन्या पर कैसी विपत्ति पड़ी थी"।

बापूदेव—बेटी इन सब बातों की चिन्ता करते करते तुमने अपना शरीर बरबाद कर लिया। कुछ दिनों के लिए अब यह चिन्ता छोड़ दो।

प्रमदा—पिता हजार चेष्टाएं करने पर भी मेरे चित्त से ये चिन्ताएं दूर नहीं होतीं। दिन-रात में किसी समय भी यह मेरे हृदय से विस्मृत नहीं होती। भुलाना चाहती हू, पर फिर याद आ जाती है। पिता, कब तक इस दुर्भिक्ष का अन्त होगा?

बापूदेव—दुर्भिक्ष सदा नहीं बना रहेगा। अगले साल

फ़सल अच्छी होते ही लोगों का सब दुःख दूर हो जायगा।

प्रमदा—पिता, परमेश्वर मङ्गलमय हैं, परमदयालु हैं। तथापि लोगों का यह दुख देखकर उन्होंने कुछ भी नहीं किया, सो क्यों ?

बापूदेव—बेटी, तुम्हारे आरोग्य हो जाने पर फिर किसी वक्त में तुम्हें ये सब बातें समझाऊँगा। परमेश्वर वास्तव में मङ्गलमय हैं, परम दयालु हैं। परन्तु इस वक्त तुम्हें ये सब बातें समझाने का अवसर नहीं है।

प्रमदा—पिता, मैंने निश्चय समझ लिया है कि मैं अब आरोग्य नहीं होऊँगी। ऐसा जान पड़ता है कि आज कल ही के भीतर मुझे यह संसार छोड़ देना पड़ेगा। आप को जो कुछ समझाना हो सो इसी वक्त समझा दें।

बापूदेव—बेटी ! इस स्वार्थमय संसार में प्रत्येक मनुष्य को अपने कु-कर्म का फल भोगना पड़ता है। जब तक वह स्वार्थ-परता से शून्य नहीं होता और आत्मत्याग को स्वीकार नहीं करता, तब तक वह इस संसार में पूर्ण सुख स्वच्छन्दता प्राप्त नहीं कर सकता। मनुष्य दूसरे के दुखों की ओर दृष्टिपात न करके, सिर्फ अपने सुख की खोज में तल्लीन रहता है। परन्तु इस मार्ग का अवलम्बन करके अन्त मे उसे दुख ही भोगना पड़ता है।

प्रमदा—पिता जो लोग ज्यादा उमर के हैं समझदार हैं; जिसमें भले बुरे को पहिचानने की शक्ति है उनके विषय में माना कि वे अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं, परन्तु इन बेचारे एक-एक दो-दो बरस के बालकों का दुख दूर करने के लिए परमेश्वर ने कोई उपाय क्यों नहीं किया ? ये तो अभी कर्म-कुकर्म कुछ जानते ही नहीं।

इतने में प्रमदा फिर बेहोश हो गई। पिता के मुँह से इस-प्रश्न का उत्तर न सुन सकी। अज्ञानावस्था में इस प्रकार प्रलाप करने लगी—"आहा! हलधर का निराश्रय बालक, यह भी नहीं जानता कि मेरे माता पिता कौन थे। ओह एस्थार बीबी—कैसी पवित्र आत्मा—अन्न के बिना—भोजनों के बिना चल बसी—सावित्री—! आह! इस दुखिनी ने कैसा क्लेश पाया! — दादा के मुर्शिदाबाद से लौट कर आने के पहिले ही यदि मेरी मृत्यु न हो गई तो मैं उनसे अपने समस्त आभूषणों के मूल्य का रुपया एस्थार बीबी के दोनो बच्चों के भरण पोषणार्थ दे देने के लिए कहूंगी—हाय; कितने मृत शरीर गङ्गा में बहते जा रहे हैं—दादा को यदि रुपया देना है तो इसी वक्त दें—जिससे सैकड़ा आदमियों को अन्न मिले।"

प्रलाप में इस प्रकार की अनमिल बेजोड़ बातें कहते कहते प्रमदा फिर निस्तब्ध हो गई। सांस जोरों से चलने लगी।

महाराज नन्दकुमार इस वक्त भी उनकी चारपाई के पास बैठे हुए हैं। प्रमदा देवी के निस्तब्ध हो जाने पर उन्होंने शास्त्री जी से कहा—"गुरुदेव! प्रमदा को उपहार-स्वरूप प्रदान करने के लिए मैंने जो आभूषण खरीदे थे, वे बुलाकीदास की दुकान से खो गये। प्राय चार-पांच बरसे हुई। बुलाकी ने उन आभूषणों के मूल्य की बाबत मुझे ४८०२१ रुपये का एक तमस्सुक लिख दिया था। आज लगभग एक साल हुआ, बुलाकी की मृत्यु हो गई। मृत्यु से कुछ देर पहिले उसने मुझे अपने घर बुलवाया था और कहा था कि आप मेरे कम्पनी के कागजा

(Company's Bonds) को बेचकर अपने तमस्सुक का पावना रुपया वसूल कर लें। पाच-छः महीनें हुए, वह मुझे मिल गया है। आप वह सब रुपया लेकर दुर्भिक्ष पीड़ितों को अन्न वितरण करें। वह सारा रुपया प्रमदा का है। प्रमदा जिस शुभकार्य में उसे खर्च करने के लिए कह रही है, उसी में उसे खर्च करना उचित है।"

यह कह कर महाराज नन्दकुमार गुरु चरणों में प्रणाम कर अपने स्थान को चले गये। उनके जाने के आध घण्टे बाद प्रमदा देवी फिर जाग्रत हो प्रलाप करने लगीं— "अर्थ-लोभ के लिए क्या मनुष्य मनुष्य को इतना दुख दे सकता है? आह! हलधर की कन्या—उफ, कैसी लज्जा की बात है! अर्थलोभी को क्या लज्जा नहीं होती। ओह, कैसे निष्ठुर, निष्ठुर! स्त्रियों को इतना कष्ट देते हैं। हा परमेश्वर! हलधर की निरपराधिनी कन्या। उस दुखिया को अपनी अमृतमयी गोद में स्थान प्रदान कीजिये। यह संसार दुख का आगार है—मा मुझे ले जाओ—पिता मुझे विदा दो।"

"पिता विदा"—ये शब्द प्रमदा के मुँह से निकलते ही बापूदेव शास्त्री आखों में आसू भर कर कहने लगे— "बेटी, मैं तुम्हे विदा देता हू। इस दुखमय संसार में तुम्हें बड़ा क्लेश हो रहा है—परलोक में पहुचकर तुम अपनी माता से मिलोगी—तुम्हारे सब दुख दूर होंगे। तुम्हारी माता परम साध्वी और पुण्यवती थीं। इसी लिए उन्हें तुम्हारा यह दुख न देखना पड़ा।"

"माता"! कैसा मधुर शब्द है! इस दुख पारपूर्ण संसार में भी माता के श्रीचरण—माता के स्नेहपूर्ण मुख कमल

को देखकर किसका हृदय आनन्द से पुलकित नहीं होता ? अतएव "माता"—यह शब्द सुनते ही प्रमदा ने चैतन्य लाभ किया। टकटकी बांध कर पिता की ओर देखने लगीं। मुख-कमल पर किञ्चित हास्य के चिन्ह दिखाई देने लगे। ऐसा प्रतीत हुआ, मानों माता के दर्शनों की आशा से उनका मन आनन्दित हो रहा है।

इस संसार में प्रमदा देवी को यह अन्तिम जागृतावस्था है। उनके जीवन का अन्त सन्निकट है, उनकी पावन स्वर्गीय आत्मा स्वर्ग जाने को तैयार है।

प्रमदा देवी में बहुत बातें करने की आदत कभी न थी। अन्त समय में भी उन्होंने फिर और कुछ बातें न कीं। मृत्यु के कुछ देर पहिले से वे परमेश्वर का चिन्तन करने लगी थीं। बीच बीच में उनके मुँह से "दयामय ईश्वर" यह शब्द निकलता सुनाई पड़ता था। कुछ देर बाद वे टकटकी बांध कर स्वर्ग की ओर देखने लगीं।

पिता ने पूछा—"प्रमदा क्या देखती हो" ?

प्रमदा ने मन्द स्वर में उत्तर दिया—"विश्वमाता को, जननी को, प्राणेश्वर को।"

पिता ने फिर कहा—"प्रमदा तो क्या आज ही मुझे छोड़ चलीं ?"

कोई उत्तर नहीं।

वापदेव ने फिर कहा—'प्रमदा! प्रमदा! तुम ऊपर की तरफ क्या देखती हो ?

"जननी—प्राणेश्वर—सभी समुज्वल"।

वापदेव—बेटी, मुझे कब तक इस संसार में रह कर कष्ट भोगना पड़ेगा ?

पूमदा—(बहुत क्षीण स्वर में) शीघ्र ही पुनर्मिलन गा।

वापूदेव—कब? कहाँ पुनर्मिलन होगा?

पूमदा—पिता की अमृतमयी गोद में—अमृतधाम में—स्वर्ग में।

वापूदेव शास्त्री बडे ज्ञानी पुरुष थे। संसार के दुख शोक में वे कभी अभिभूत नहीं होते थे। परन्तु सन्तान का शोक सम्भवतः किसी से भी सहन नहीं होता। कन्या की बात सुनते ही उनकी आँखों से आसुओं के बूंद टपकने लगे।

पूमदादेवी ने पिता के मुह की ओर देखकर अपना हाथ उठाने की चेष्टा की। ऐसा प्रतीत हुआ कि हाथ उठा कर वे पिता के आँसुओं को पोंछने की चेष्टा करने वाली थी। परन्तु हाथ उठाने की शक्ति न रह गई थी।

उनके पिता ने स्वयं उनके हाथ को ऊपर उठा लिया। पूमदा के मुख कमल पर फिर प्रसन्नता के भाव दिखाई दिये। पिता के चरणों पर हाथ रखते ही आँखें मुंद गई। पवित्र-हृदया, पर-दुख-कातरा, पुण्यवती पूमदादेवी ने पिता के चरणों में प्रणाम कर 'स्वर्गारोहण' किया।

सावित्री, जगदम्बा, अहल्या, रामा आदि हाहाकार कर उठीं। इन के आर्त्तनाद और करुण-क्रन्दन से घर में कोलाहल मच गया। प्रमदादेवी की मृत्यु से आज ये मानों ग।





श्यामा और बाबा कृष्णानन्द।

इस घोर दुर्भिक्ष के समय में बंगाल के सभी प्रदेशों में चावल का मूल्य प्राय दस गुना बढ गया था। भिन्न-भिन्न प्रदेशों के भले मानस गरीब ग्रामीणों को बड़े कष्ट से जीवन बिताना पड़ा।

रामदास शिरोमणि सावित्री को श्राद्ध का मन्त्र पढ़ा कर समाज च्युत होने के बाद से बड़े कष्टपूर्वक जीविका-निर्वाह कर रहे थे। उनकी सहधर्मिणी तथा द्वितीया और तृतीया कन्या की मृत्यु दुर्भिक्ष से पहले ही हो चुकी थी। इस वक्त उन की सन्तानों में सिर्फ एक विधवा कन्या श्यामा और बारह वर्ष की सबसे छोटी कन्या इन्दुमती ही जीवित हैं।

श्यामा कभी कभी जनेऊ बनाकर अपने पिता और छोटी बहिन के भोजनों का प्रबन्ध करती थी, और कभी कभी अपने घर के पड़ोस में रहने वाले एक बालक के द्वारा अपने बाग में पैदा हुये फल मूल बाजार से बिकवा मगाती थी। इस से जो दो चार पैसे मिल जाते, उन्हीं से अपने पिता और छोटी बहिन का पालन-पोषण करती थी। गाव में रहने वाले दुष्ट लोगों के कु-परामर्श के कारण कोई आसामि उनके पिता की ब्रह्मोत्तर-जमीन (दान में मिली हुई माफी) का लगान अदाई नहीं देता था।

श्यामा स्वयं एक दिन बाद एक दिन भोजन करती थी। परन्तु पिता और बहिन कष्ट दूर करने के लिए रात-दिन परिश्रम करती रहती थी। इस घोर दुर्भिक्ष के समय में श्यामा हजार चेष्टाएं करके भी, हजार कष्ट सह कर भी पिता के लिए हर रोज भोजन नहीं जुटा पाती थी। बीच-बीच में एक दो दिन उसके पिता को लघन करना पड़ता था। वृद्ध शिरोमणि ने इसी क्लेश में इह-लोक से प्रस्थान किया। उनकी मृत्यु के बाद श्यामा अपनी छोटी बहिन के साथ पिता ही के घर रहने लगी।

उसकी छोटी बहिन की अवस्था इस वक्त तेरह बरस की थी। अब उसे यह चिन्ता लगी कि इसका विवाह कैसे हो। शिरोमणि महाशय समाज-च्युत होने के बाद जातवैष्णव हो गये थे। जात-वैष्णवों के दल में ब्राह्मण शूद्र सभी एक साथ बैठ कर खाते पीते हैं। जातिभेद का कोई विचार नहीं होता। इन जात वैष्णवों का चरित्र अखाड़े के वैष्णवों से कुछ अच्छा रहा हो सो बात नहीं। क्या जात-वैष्णव और क्या अखाड़े के वैष्णव इन में सच्चरित्र और धार्मिक व्यक्ति प्राय. नज़र नहीं आते थे। शक्ति सम्प्रदाय के लोगों में ग्राम्य-दलबन्दियों के कारण जो कोई भी समाज-च्युत होता था, वह प्राय. वैष्णव धर्म ग्रहण कर लेता था। इस के अतिरिक्त, सुनार, कोरी, तेली, चाण्डाल इत्यादि नीची श्रेणियों के आदमी ब्राह्मण जैसा ऊँचा पद प्राप्त करने की आशा से कभी कभी वैष्णव धर्म ग्रहण करके सामाजिक पद-प्रभुत्व लाभ करने की चेष्टा करते थे।

वैष्णवों में इस समय सच्चा धार्मिक भाव दिखाई नहीं देता था। कृष्ण-लीला का बहाना करके ये

विविधप्रकार के व्यभिचारों और कु-कर्मों में लिप्त रहते थे। हिन्दुओं में विधवा विवाह प्रचलित न होने के कारण हिन्दू महिलाए प्राय: वैष्णवाश्रम में प्रवेश कर के अपनी-अपनी कुवासनाओं को तृप्त करती थी। निदान ये लोग धर्म के नाम पर विविध भांति के असत् कर्म कर के चैतन्य देव के प्रचारित वैराग्य धर्म को एकदम कलङ्कित कर रहे थे।

ये समस्त वैष्णव और वैष्णवी स्त्रिया कहा करती थीं——"जगद्गुरु श्रीकृष्ण ने वृन्दावन मे गोपियों के साथ जो लीलाए की हैं, प्रत्येक वैष्णव और वैष्णवी का कर्त्तव्य है कि सम्पूर्ण रूप में उन्ही लीलाओं का अनुकरण करें।" इस प्रकार धर्म के नाम पर इन लोगों के द्वारा सभी तरह के कु-कर्म होते रहते थे।

श्यामा वैष्णवों के इन निन्दनीय आचरणो को बडी घृणा की दृष्टि से देखती थी। उसने न चाहा कि मैं जात वैष्णवों के सम्प्रदाय में किसी के साथ अपनी बहिन का विवाह करूँ। दिन-रात इसी की चिन्ता में रहने लगी कि किस प्रकार मैं अपनी बहिन का विवाह किस कुलीन सत्पात्र के साथ कर सकूँ। बहुत कुछ सोच विचार कर स्थिर किया कि मेरे पिता के शिष्य नवकिशोर यदि वैष्णवों का अखाडा छोड़ कर फिर से गार्हस्थ्य धर्म अङ्गीकार कर लें तो मैं उन्हीं के साथ अपनी बहिन को व्याह दूगी।

श्यामा नवकिशोर को बहुत ही सच्चरित्र समझती थी। वह बिना ही अपराध के समाजच्युत हुए थे, यह भी उससे छिपा नहीं था। नवकिशोर के प्रति अपने पिता के निर्दय

व्यहार को याद कर मन ही मन श्यामा बड़ी दुखित होती । नवकिशोर ने गैर प्रतिशोध की इच्छा से प्रेरित हो बाद श्यामा के पिता को भी समाज-च्युत कराया था, परन्तु सके लिए वह नवकिशोर को विशेष दोषी नहीं ख्याल करती ी। वास्तव में सहृदया स्त्रियों के हृदय में स्थित न्याय-रता का भाव पुरुषों की अपेक्षा हजार गुना श्रेष्ठ होता है, इस में कोई सन्देह नहीं। परन्तु वर्तमान समय में संसार के भिन्न भिन्न देशों के नारी-जीवन को विशेष रूप से परीक्षा करके देखने पर नारी हृदय स्वार्थपरता का आधार जान पड़ता है। सुसभ्य जातियों में नारीशिक्षा का अभाव हो रहा है। शिक्षा के अभाव और समाज में प्रचलित कु-शिक्षा के प्रभाव ने ही नारी-जीवन को ऐसा घृणित बना डाला है।

"यदि नवकिशोर को स्वीकार होगा तो मैं अपनी बहिन उन्हें ब्याह दूंगी" —मन ही मन ऐसा निश्चय कर एक दिन श्यामा अपने आप ही बाबा कृष्णानन्द (नवकिशोर) के पास गई।

बाबा कृष्णानन्द अब भी उन्हीं बाबा प्रेमदास के अखाड़े में रहते हैं। परन्तु अन्यान्य वैष्णवों की तरह वे आज तक कभी व्यभिचारादि कुकर्मों में लिप्त नहीं हुए। माता की शोचनीय मृत्यु—घटना का स्मरण आते ही उनकी आँखों से आसू गिरने लगते थे। मातृ-शोक आज भी उनका हृदय जला रहा था। इस प्रकार की शोकाकुल अवस्था में चित्त कभी भी कुकर्मों की ओर धावित नहीं होता। अनेक अवसरों पर शोक और दुख ही मनुष्य को कुकर्मों से बचा रखता है अतएव धर्म की दृष्टि से हृदयस्थित शोक और दुख मनुष्य

सच्चा मित्र है, इस में कोईसन्देह नही ।

बाबा कृष्णानन्द एकान्त में बैठकर नित्य ही भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का पाठ किया करते थे । आज तीसरे पहर जिस वक्त वह एक संस्कृत-ग्रन्थ में यह श्लोक पढ रहे थे—

"अरावप्युचित कार्यमातिथ्य गृहमागते ।
छेत्तुः पार्श्वं गता छाया नोप संहरति द्रुम ॥"

अकस्मात इतने में श्यामा उनकी कुटी के द्वार पर आ उपस्थित हुई । नवकिशोर जब शिरोमणि की पाठशाला में पढते रहते थे तब वे बडी बहिन के समान श्यामा का आदर करते थे। श्यामा भी छोटे भाई के समान उनपर स्नेह रखती थी ।

कृष्णानन्द (नवकिशोर) श्यामा को अपनी कुटी के द्वार पर खड़ा देख बडे चकित हुए । मन ही मन सोचने लगे कि शिरोमणि के साथ मेरी शत्रुता रहने के कारण श्यामा शायद मुझ से बात भी नहीं करेगी । किसी और की तलाश में यहा आई होगी भूल से मेरी कुटी के द्वार पर आ गई है ।

सरला श्यामा ने उनकी कुटी के भीतर प्रवेश करके कहा—"नवकिशोर, मैं तुम से एक बात पूछने आई हू। मेरे पिता के साथ शत्रुता रहने के कारण मुझे भी अपना शत्रु मत समझना ।"

सहृदया श्यामा के इन सरलतापूर्ण वाक्य का प्रत्येक शब्द नवकिशोर के हृदय को मानों विदीर्ण करने लगा । श्यामा को फटा-पुराना वस्त्र पहिरे देखकर वे अपने आंसुओं को न संभाल सके । तुरन्त उसके बैठने के लिए एक

कुशासन बिछा दिया। शिरोमणि के साथ शत्रुता करने के कारण, श्यामा को मुँह दिखाते हुए उन्हें मन ही मन लज्जा प्रतीत होने लगी।

कुशासन पर बैठने के अनन्तर श्यामा ने कहा—"नवकिशोर, मैं पहिले भी तुम्हें अपने छोटे भाई के समान समझती थी, आज भी तुम्हारे प्रति मेरा वही भाव है, परन्तु दुर्भाग्यवश पिता की बुद्धि कुछ ऐसी बिगड़ी कि उससे तुम्हारा भी घोर अनिष्ट हुआ और वे खुद भी इस संसार में विविध कष्ट भोग कर परलोक सिधारे।

कृष्णानन्द (नवकिशोर) ने कहा—"दीदी आप और आप की माता मेरे दुख से अत्यन्त दुखित हुईं थीं, यह मैं पहिले भी सुन चुका हू। बदला लेने की इच्छा से प्रेरित होकर मैंने आपके पिता को जो विशेष कष्ट दिया, उसके लिए समय-समय पर मुझे बड़ा पछतावा आता है। इस वक्त आप को मुँह दिखाते भी मुझे लज्जा आती है। विशेषत आज आप को इस दुरवस्था में देखकर उक्त पछतावे की आग मेरे हृदय में सौगुने जोर से जल उठी है।

श्यामा—नवकिशोर, पहिले की सब बातों को एक दम जाने दो। इस वक्त मैं तुम से एक बात कहने आई हू। परन्तु पीछे तुम न जाने अपने मन में क्या समझोगे, यही सोचकर कहने में हिचकती हूं।

नवकिशोर—आप जो कुछ कहेंगी, मैं यथाशक्ति उसे पालन करने की चेष्टा करूँगा।

श्यामा—बैरागियों के इस अखाड़े को छोड़ कर तुम फिर से गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन करोगे?

नवकिशोर—दीदी! भला बताइये तो सही, मैं क्या अपनी खुशी से वैरागी हुआ हू। गाव के लोगों ने मुझे व्यर्थ ही समाज-च्युत कर डाला। कहीं रहने को जगह न रह गई। लाचार वैरागी हो गया, परन्तु अब फिर से किस प्रकार मैं गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन कर सकता हू? भद्र-समाज में मुझे कौन ग्रहण करेगा?

श्यामा—यदि यहा से कहीं दूसरी जगह जाकर किसी ब्राह्मण की कन्या के साथ विवाह कर लो, तब तो भद्र-समाज में सम्मिलित हो सकोगे?

नवकिशोर—ऐसा करने में बहुत छल-कपट करना पड़ता है। विशेषत जब मुझे अपनी माता के प्राणान्त की घटना याद आती है तो इस ससार में प्रवेश करने की इच्छा सर्वथा ही विलुप्त हो जाती है। सदा ही मृत्यु की कामना करता रहता हू। शास्त्र में आत्महत्या को बड़ा भारी पाप कहा गया है, नहीं तो मैं अब तक आत्महत्या कर के अपने सारे कष्टों का अन्त कर चुका होता।

श्यामा—तो क्या आजीवन वैरागियों के अखाड़े ही में रहने का निश्चय किया है?

नवकिशोर—दीदी, वैरागियों का अखाड़ा साक्षात् नरक का नमूना है। ब्राह्मण, शूद्र, सुनार, नाई, धोबी, चाण्डाल इत्यादि सभी जातियों के लोगों में जो लोग सर्वथा दुश्चरित्र होते हैं, वे या तो समाज-च्युत होकर अथवा समाज-च्युत होने की आशका से वैरागियों के अखाड़े में आ दाखिल होते हैं। फिर, इनमें से कितने ही एक-एक दुश्चरित्रा स्त्री को साथ लेकर वैरागी होते हैं। ऐसे

कुमार्गी आदमियों के सहवास में क्या कोई भला आदमी रह सकता है ?

श्यामा—तो यह वैरागियों का अखाड़ा छोड़ते क्यों नहीं ?

नवकिशोर—छोड़ने के लिए मन ही मन निश्चय कर चुका हू । पिछले कई बरसो से मांग-जाच कर मैंने कुछ रुपया इकट्ठा कर लिया है, कुछ और हो जाय तो बस तुरन्त ही काशीधाम को चला जाऊ । अखाड़े के इन दुराचारी वैरागियों के साथ मैं कभी कोई सम्बन्ध नहीं रखता । इन के लीला आदि उत्सवों में भी मैं कभी नहीं शामिल होता ।

श्यामा—तो अब तुम गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन नहीं करोगे ?

नवकिशोर—गार्हस्थ्य धर्म और कहते ही किसे है, इसी को न कि, स्त्री को ग्रहण कर गृहस्थ की तरह जीवन बिताना, यही तो गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन कहलाता है, सो कोई भला आदमी मुझे अपनी कन्या देगा नहीं । यदि मुझे स्त्री ग्रहण की इच्छा हो तो किसी वैष्णव ही को स्त्री-रूप में ग्रहण करना पड़े, परन्तु ऐसी इच्छा मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं की, न आगे करूंगा ।

श्यामा—यदि कोई भला आदमी तुम्हे कन्या दान करे तो गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन करोगे ?

नवकिशोर—अब कोई भलामानस मुझे अपनी कन्या नहीं व्याहेगा ।

श्यामा—यदि व्याहे ?

नवकिशोर—(कुछ हंसकर) दीदी, मैं आपको बहुत भोली

भोली और सरल स्वभावा समझता था। आप ऐसी बातें भी कर जानती हैं,—यह मुझे कतई नहीं मालूम था। जब मैं आपके पिता की पाठशाला में पढता था, मैंने आपके मुह से कभी एक बात भी ऐसी नहीं सुनी। आपकी इस वक्त की बातों से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आप के चित्त में कोई विशेष अभिप्राय है। आप तो मानों मुझे गृहस्थ ही बनाने आई हैं।

श्यामा—हां, मैं इसी के लिये आई हूं। यदि किसी भले आदमी की कन्या मिलें तो तुम विवाह करने को तैयार हो या नहीं,—यही जानना चाहती हूं।

नवकिशोर यह बात सुनकर बहुत देर तक बिलकुल खामोश रहे। बाद मे गहरी सांस लेकर बोले—"विवाह करके क्या मैं इस संसार में सुखी हो सकूंगा मेरी माता की मृत्युघटना क्या आप भूल गई"?

श्यामा—मेरी समझ में तुम गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन कर के सुख से रहोगे।

नवकिशोर—अपने हार्दिक अभिप्राय को स्पष्ट शब्दों में प्रकट कीजिये। बाद में मैं जो उचित समझूंगा, कहूंगा।

यह बात सुनकर श्यामा कहने लगी—"मेरे पिता ने भी समाज-च्युत होकर जात-वैष्णव धर्म ग्रहण किया परन्तु जात-वैष्णव भी प्रायः वैसे ही दुश्चरित्र हैं। मेरी छोटी बहिन इस समय तेरह बरस की है। जात-वैष्णवों के दल में किसी आदमी के साथ में उसका विवाह नहीं करना चाहती। तुम हम लोगों की समान श्रेणी के ब्राह्मण हो। यह भी मुझे अच्छी तरह मालूम है कि तुम बिना ही किसी अपराध के समाजच्युत हुए हो। तिस पर तुम एक अच्छे विद्वान और शास्त्रज्ञ हो। तुम

यदि उसके साथ विवाह करके यहां से अन्यत्र जाकर गार्हस्थ्य धर्म ग्रहण करो तो मैं तुम्हारे साथ उसका विवाह करने के लिये तैयार हूं।

श्यामा के मुँह से यह हितकर बातें सुनकर नवकिशोर को बड़ा आश्चर्य हुआ। श्यामा के प्रति उनकी श्रद्धा सौगुनी बढ़ गई। कुछ देर तक वे फिर चुपचाप रहे। सोच विचार के अनन्तर उन्होंने श्यामा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। कई दिन बाद बाबा प्रेमदास का अखाड़ा छोड़ कर वे शिरोमणि के घर चले आये और श्यामा के साथ रहने लगे।

परन्तु यह देखकर गाव के वैरागी लोग तथा पास पड़ोस के अन्यान्य गृहस्थ जहां-तहां कहने लगे—"श्यामा को वैष्णवी करने के लिए बाबा कृष्णानन्द शिरोमणि महाशय के घर में रहने लगे हैं।"

गाँव वालों की इस तरह की बातों को सुनकर नवकिशोर को मन ही मन बड़ा दुख प्रतीत होता था। अन्त में उन्होंने गाव छोड देने की ठानी। श्यामा के साथ परामर्श कर निश्चय किया कि कलकत्ते चलकर इन्दुमती के साथ विवाह करें और वहीं रहे। परन्तु इन लोगों के कलकत्ते को रवाना होने के तीन चार दिन पहिले नवकिशोर के बहनोई शिवदास बन्धोपाध्याय की मृत्यु हो गई। शिवदास की स्त्री और उनकी अविवाहिता तीन कन्यायें एक दम अनाथा हो गई। शिवदास के ऊपर जो कर्जा था, वह उनका सब घर बार और माल असबाब बेच डालने से भी चुकता नहीं हुआ। लाचार हो शिवदास की स्त्री, अपने छोटे भाई नवकिशोर के पास आई।

नवकिशोर ने बहिन को धीरज बधाया और कहा कि आप मेरे पास रहें। जैसे कुछ हो सकेगा मैं आपका भरण-पोषण करूंगा।

शिवदास बन्धोपाध्याय अपनी मृत्यु के पहिले रोगशय्या पर पड़े पड़े प्राय प्रलाप किया करते थे। परन्तु प्रलाप करते समय वे और कुछ नहीं कहते थे सिर्फ "रायमणि," "रायमणि" कह कर चिल्लाते रहते थे। कभी कभी कहते थे—"यह देखो रायमणि मुझे मारने आई है"—"यह रायमणि मुझे मार रही है।"

वैद्य लोग कहते थे कि ज्वर-प्रकोप के कारण इस तरह प्रलाप कर रहे हैं। परन्तु इस प्रलाप-वाक्य मे कोई गूढ आशय वर्तमान है इसे कोई नहीं जानता था।

कुछ ही दिनों में नवकिशोर ने श्यामा, श्यामा की छोटी बहिन इन्दुमती और अपनी विधवा बहिन तथा तीनों भानजियों को साथ ले कलकत्ते की यात्रा की। वहाँ पहुच कर नवकिशोर ने इन्दुमती के साथ विवाह किया।

इस वक्त नवकिशोर को पाच सात व्यक्तियों का भरण पोषण करना पड़ता है। निर्वाह के लिए वह कलकत्ते में दो तीन अँगरेजों को देशी भाषा की शिक्षा देने लगे हैं। इससे उन्हें लगभग साठ सत्तर रुपया महीना पड़ जाता है।

कलकत्ते के वर्तमान अधिवासियों में बहुतों के पितामह-प्रपितामह इत्यादि पूर्व-पुरुष, नवकिशोर ही की तरह, गाव वालों के अत्याचारों से पीड़ित हो गाव छोड़ कलकत्ते में

आकर रहते लगे थे। इसी से कलकत्ते की जनसंख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही थी।



वारन हेस्टिंग्स।

१७६९ ई० के दुर्भिक्ष में बंगाल के एक तिहाई आदमी मर गये। इन में किसानों ही की संख्या अधिक थी। देश किसानों से खाली हो गया। दुर्भिक्ष के बाद, किसानों की कमी से कितने ही जिलों की बहुत सी जमीन परती पड़ी रही।

ऐसी दशा में मालगुजारी वसूल न हुई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार में भी बहुत अड़चन पड़ी। इस भयानक दुर्भिक्ष की खबर इङ्गलैंड में भी पहुंची। कम्पनी के अर्थ लोलुप कर्मचारी गण देश की वास्तविक स्थिति को छिपा रखने में समर्थ न हुए।

इङ्गलैंड के सहृदय अँगरेजों में मिस्टर डान्डस (Mr Dandas) और कर्नल बर्गेन (Colonel Burgoyne) ने कम्पनी के कर्मचारियों के असद्-आचरण और अत्याचार के सम्बन्ध में तहकीकात कराने के लिए एक कमेटी के नियुक्त किये जाने की प्रार्थना की।

कमेटी नियुक्त होने पर क्लाइव, वान्सिटार्ट, वेरेलस्ट और कार्टियर आदि सब गवर्नरों और कलकत्ता-कौंसिल के मेम्बरों के असद् आचरणों और कुकर्मों का भण्डाफोड़ हुआ। क्लाइव के ऊपर मुक़दमा चलने की सूरत आ थी। परन्तु मुकद्दमा फिर किसी ने दायर नहीं किया। इस ओर आत्म-हत्या करके उसने स्वयं ही अपने पापों का प्रायश्चित्त कर लिया।

इङ्गलैंड में ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने पार्लामेंट की डाट-फटकार से बचने के लिए भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों के कामों का निरीक्षण करने के लिए कुछ सहृदय और सच्चरित्र अँगरेजों को यहाँ भेजना स्वीकार किया।

जगद्विख्यात सद्वक्ता महात्मा एडमन्ड बर्क इस निरीक्षण कमेटी के सभापति चुने गये।

परन्तु इन कुलाङ्गारों के पापों का फल सम्भवतः उस वक्त तक भी समाप्त नहीं हुआ था। उन के भाग्य में और भी कुछ दिनों कष्ट-भोग लिखा था। शायद इसीलिए महात्मा एडमन्ड बर्क जैसे सहृदय और उदारचेता पुरुष भारतवर्ष आने को राज़ी न हुए।

भारतवर्ष बहुत काल से नर-पिशाचों का घर बन रहा था। एडमन्ड बर्क जैसे उदार महात्मा इस नरक तुल्य देश में क्यों आते? उन्होंने यहाँ आना अस्वीकार किया। डाइरेक्टरों ने अन्त में वारन हेस्टिंग्स को बंगाल का गवर्नर बना कर भेजा।

सन १७७१ ई० में वारन-हेस्टिंग्स बंगाल के गवर्नर नियुक्त होकर, फरवरी महीने में, मदरास से कलकत्ता आ पहुँचे।

इससे पहिले सन १७५० ई० में हेस्टिंग्स बहुत थोड़े वेतन पर कम्पनी के क्लर्क नियुक्त होकर बंगाल में आये थे। इसके दो बरस बाद अर्थात् सन १७५३ ई० में वे क़ासिमबाज़ार फ़ैक्टरी के असिस्टंट नियुक्त होकर मुर्शिदाबाद में रहने लगे थे। उसी वक्त से नन्दकुमार में और इनमें शत्रुता का सूत्रपात हुआ था। इन्हीं ने सन १७५३ ई० के प्रारम्भ में छिदाम बिश्वास को रेशम की कोठी में प्यादा मुकर्रर किया था।

वारन हेस्टिंग्स छोटे कद के बहुत दुबले-पतले आदमी थे। परन्तु इनके हर काम में इनकी तीक्ष्ण बुद्धि और चतुरता का परिचय मिलता था। उस वक्त प्रायः सभी अँगरेज़ क्लाइव के दिखाये हुए मार्ग का अनुसरण करके खूब रुपया इकट्ठा करते थे।

कासिमबाज़ार में रहते हुए ही हेस्टिंग्स साहब की पहिली स्त्री का देहान्त हो गया था। स्त्रीवियोग के बाद वे प्रायः पांच बरस तक बंगाल में रहे। इन्हीं पांच बरसों में क्रमशः उन्नति लाभ करके वे कलकत्ता कौंसिल के मेम्बर नियुक्त हुए। तदनन्तर सन १७६४ ई० में वे इंगलैंड वापस गये।

कोर्ट आफ डारेक्टर्स को इनकी कार्यदक्षता का विशेष परिचय प्राप्त हुआ था। इस लिए उसने सन् १७६९ ई० में पुनः हेस्टिंग्स साहब को मदरास कौंसिल के द्वितीय मेम्बर के पद पर नियुक्त करके भारतवर्ष को भेजा। मदरास आकर इन्होंने पुनर्वार अपनी विशेष कार्यदक्षता का परिचय दिया और सन १७७१ में डाइरेक्टरों ने इन्हें बङ्गाल का गवर्नर नियत किया।

अब की बार हेस्टिंग्स साहब ने बड़ी अच्छी घड़ी में इंगलैंड से यात्रा की थी। सभी विषयों में उनका उद्योग सफल होने लगा।

पहिले तो जहाज पर सवार होते ही बड़ी चालाकी से एक स्त्री उनके हाथ लगी। जिस जहाज पर हेस्टिंग्स साहब भारतवर्ष को आ रहे थे, उसी जहाज के मुसाफिरों में वेरन् इन्हफ नामक एक जर्मन और उसकी स्त्री भी थी। हेस्टिंग्स ने चालबाजी से वेरन् इन्हफ की पत्नी को मुट्ठी में कर लिया।

हेस्टिंग्स किसी काम को अधूरा नहीं रखते थे। जो काम करने का निश्चय करते थे, उसे बड़ी चतुरता से पूरा उतार देते थे। जहाज पर सफर करते हुए ही उन्होंने एक दिन वेरन् इन्हफ को बुलाया और कहा—"महाशय! इस संसार में स्त्री बड़ी दुखदायिनी है। इस जबरदस्त जंजीर से बँध जाने पर कोई मनुष्य सुखशांति से कालयापन नहीं कर सकता। अतएव यदि आप की इच्छा हो तो मैं आप को इस भारी बोझ और जबरदस्त जंजीर के बंधन से मुक्त कर सकता हूं।"

वेरन् इन्हफ पहिले ही समझ चुके थे कि हेस्टिंग्स ने चतुरता से मेरी स्त्री को अपना लिया है। अतएव विवश हो वे हेस्टिंग्स के सन्धि-संस्थापन के प्रस्ताव से सहमत हो गये।

हेस्टिंग्स उन्हें स्त्री-परित्याग के मुकदमे का सारा खर्च-पात देने को तैयार हुए और स्त्री के मूल्य-स्वरूप उन्हें यथोचित धन देने कहा। हेस्टिंग्स बड़े भले आदमी थे, इन्हफ को उन्हों ने यथोचित ही मूल्य दिया था। परन्तु

इस ओर दुर्भिक्ष के बाद मालगुजारी वसूल होने में बड़ी अड़चनें उपस्थित हुईं। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने नन्दकुमार के नियत किये हुए एजन्ट की जबानी रजा खां के असद्-आचरणों की बातें सुनकर निश्चय किया कि वास्तव में रजा खां मालगुजारी वसूल कर के खुद हजम कर रहा है। वास्तव में मालगुजारी का बहुत सा हिस्सा वह हजम कर चुका था, इस में कोई सन्देह नहीं। विशेषतः दुर्भिक्ष के समय कलकत्ते के अङ्गरेजों की तरह, उसने भी बहुत सा चावल खरीद कर अधिक मूल्य में बेचने के अभिप्राय से बन्द कर के रख छोड़ा था, यह भी अच्छी तरह साबित हो चुका था।

हेस्टिङ्ग्स साहब मुँह से तो रजा खां के साथ मित्र भाव प्रकट करते थे; परन्तु मन ही मन उनकी यह इच्छा थी कि किसी प्रकार रजा खां पद-च्युत हो तो मालगुजारी वसूल करने का भार स्वयं अपने ऊपर लें लें।

मुहम्मद रजा खां के विरुद्ध नन्दकुमार के एजन्ट जो समस्त अभियोग उपस्थित किये थे, कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने हेस्टिङ्ग्स को उनका फैसला करने की आज्ञा दी। अन्त में मुहम्मद रजा खां को पद-च्युत कर देने के लिये भी लिखा।

अकस्मात् हेस्टिङ्ग्स के पास डाइरेक्टरों का यह हुक्मनामा पहुंचा। उन्हों ने कौन्सिल के किसी अन्य मेम्बर को इस हुक्मनामे का हाल बताने के पहिले ही मुहम्मद रजा खां को गिरफ्तार कर के कलकत्ता भेज देने के लिये मुर्शिदाबाद के रेजीडेण्ट मिडलटन साहब को लिख भेजा।

× × ×

क़रीब आधी रात का समय है। अनेक सुन्दरी रमणियों से घिरा हुआ मुहम्मद रज़ा ख़ां एक सुन्दर सुकोमल सेज पर निश्चिन्त सो रहा है। पलङ्ग के पाइती ओर बैठी हुई दो मुसलमान महिलाएं उसके पाव दाब रही हैं। दो स्त्रिया पलङ्ग के दोनों पार्श्व में खड़ी हुई ताड़ का पखा झल रही हैं। शयन-गृह के पार्श्व स्थित क़मरे में तीन-चार स्त्रिया जागती हुई बैठी हैं। नवाब के जागते ही इन्हें हुक्के की गुड-गुड़ी हाथ में लेकर नवाब के शयन-गृह में जाना पड़ेगा।

अकस्मात् महल के बाहर बहुत से लोगों के पावों की आवाज़ सुनाई दी। देखते-देखते सारा राजमहल सैकड़ों सिपाहियों और सैनिकों से परिपूर्ण हो गया। रणभेरी (Bugle) की ध्वनि से रजनी की गम्भीर निस्तब्धता भङ्ग हुई। पहरेवालों ने महल के भीतर घुसकर मुहम्मद रज़ा खां को इस की ख़बर दी।

मुहम्मद रज़ा खा ने एकाएक जाग कर देखा कि राजमहल असख्य सनिकों से घिरा हुआ है। कापते-कापते कह उठा—"ऐ ख़ुदा, मेरी तक़दीर में जो लिखा हो वही हो — तेरा जो कुछ हुक्म है सब तामील हो — क़िस्मत में जो लिखा है इलाहो शिताब हो।"

अर्थलोलुप क़ायरों के हृदय में उनकी स्वाभाविक भीरुता से ईश्वर के प्रति एक प्रकार की निर्भरता और भक्ति का भाव वर्तमान रहता है। ऐसे आदमी विपत्ति पड़ने पर ही सहायता के लिए ईश्वर को पुकारते हैं, और संसार के धन-सम्पत्ति एवं पद प्रभुत्व को प्राप्त करने के लिए ही ईश्वर के शरणागत होते हैं। परन्तु सच्चा

प्रेम और ईश्वर के प्रति सच्चा भक्ति-भाव इन के जीवन में कभी नहीं दिखाई देता। निःस्वार्थ भाव से ये ईश्वर में लौ लगाना नहीं जानते। इनके निकट ईश्वर केवल असीम शक्ति का आधार है। परन्तु इस के अतिरिक्त ईश्वर न्यायवान् है, प्रेममय है, इसे ये नहीं समझ पाते। इसीलिए संसार में वे कितने ही आदमी, जिन्हें लोग धर्मानुरागी कहते हैं, घोर स्वार्थपरता के रङ्ग में रङ्गे रहते हैं। निःस्वार्थ प्रेम की नींव पर इन का धार्मिक विश्वास स्थिर नहीं होता। कायरता और भीरुता ही इन के धर्म-विश्वास का मूल कारण होती है।

रज़ा खां के धर्म-विश्वास का मूल कारण उसकी स्वाभाविक भीरुता थी। अतएव अपने को आसन्न विपद् में देखकर वह एकदम ईश्वर की शरण में जा पड़ा, और इस प्रकार ईश्वर के प्रति भरोसा रखकर महल से बाहर निकला। दरवाज़े पर पहुंचते ही मिडल्टन साहब से साक्षात् हुआ। उन्हों ने झटपट उसे सारी बातें कह सुनाईं और फिर वह उसको बन्दी कर के कलकत्ते भेजने का प्रबन्ध करने लगे।

इस ओर शिताबराय भी पटने से बन्दी के रूप में कलकत्ते भेजे गये।

मुहम्मद रज़ा खाँ और शिताबराय की ऐसी दुर्दशा देखकर महाराज नन्दकुमार के आनन्द का वारापार न रहा। शिताबराय के साथ भी उन की शत्रुता थी। दिल्ली के सम्राट ने महाराज नन्दकुमार के लिए एक पालकी भेजी था। पटने तक वह पालकी पहुंची थी कि शिताबराय ने उसे बीच ही में रोक लिया। इसी बात पर नन्दकुमार

और शिताबराय के बीच मनोमालिन्य का सूत्रपात हुआ था।

नन्दकुमार अब मन ही मन कल्पना करने लगे कि मुहम्मद रज़ा खां का दोष प्रमाणित होते ही नायब सूबेदारी का पद हमें मिल जायगा। इसी आशा से उन्होंने मुहम्मद रज़ा खां और शिताबराय के विरुद्ध प्रमाण समह करने के लिए प्राणपण से उद्योग करना प्रारम्भ किया।

इधर वारन हेस्टिंग्स साहब ने साल भर के भीतर भी रज़ा खां और शिताबराय के अभियोग का फैसला नहीं किया। प्राय. चौदह महीने तक इन्हें क़ैदी के रूप में कलकत्ते में रहना पड़ा। हेस्टिंग्स साहब इन चौदह महीनों तक इस बात की परीक्षा करते रहे कि देखें, मालगुज़ारी वसूल करने का काम ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों के द्वारा चलाया जा सकता है या नहीं। दूसरे, किसी मुकदमे के बहुत समय तक विचाराधीन रहने से कुछ अधिक आमदनी की सम्भावना रहती थी।

चौदह महीने के बाद मुहम्मद रज़ा खां का अपराध उपर्युक्त प्रमाणों से प्रमाणित न होने कारण उसे छोड़ दिया गया। शिताबराय क़तई निर्दोष सिद्ध हुए। हेस्टिंग्स ने न पद एक दम उठा दिया और मालगुज़ारी

महाराज गुरुदास को नवाब के दीवान खास—घरऊ दीवान के पद पर नियुक्त किया।

नवाब के अभिभावक की नियुक्ति के सम्बन्ध में हेस्टिंग्स साहब बडे सकट में पड़े। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने किसी सत्पुरुष को नवाब के अभिभावक के पद पर नियुक्त करने को लिखा है परन्तु किसी सत्पुरुष को इस पद पर नियुक्त करने से घूस का मामला नहीं गठेगा। किसी स्त्री को इस पद पर नियुक्त करना अच्छा होगा। परन्तु कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के आदेश पत्र में किसी पुरुष को नियुक्त करने का उल्लेख है अतएव उसके आदेश का प्रतिपालन करते हुए स्त्री को इस पद पर नियुक्त किया नहीं जा सकता।

इस प्रकार बहुत कुछ सोच-विचार के अनन्तर हेस्टिंग्स ने नवाब की विमाता मणि बेगम को नवाब के अभिभावक और सरक्षक के पद पर नियुक्त कर के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को लिख भेजा—"आप के पत्र के आशय के अनुसार ही नवाब का सरक्षक और अभिभावक नियुक्त कर दिया गया है। आपने किसी सत्पुरुष को नियुक्त करने के लिए लिखा है। भारतवर्ष में सत्पुरुष बड़ी कठिनता से मिलते हैं। इस देश में पुरुष और स्त्री के बीच सिर्फ इतना अन्तर देखा जाता है कि पुरुष तो प्रकट रूप में बाहर निकलते पैठते हैं और स्त्रियां पर्दे में रहती हैं। इसके अतिरिक्त बङ्गाल में पुरुष-स्त्री के बीच और कोई अन्तर नहीं देखा जाता। परन्तु मणिबेगम नवाब के महल में दाखिल होने से पहिले बराबर बाहर निकलती पठती थी अतएव वह पुरुष ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। नवाब की बेगम होने के बाद वह विशेष 'सत' बन गई है। उसे छोड़ बंगाल में दूसरा सत्पुरुष नहीं है। मैंने इसीलिए उसी को सत्पुरुष

समझ कर नवाब के अभिभावक, के-पद पर नियुक्त कर दिया है।"

मणिबेगम, बिसूबेग नामक व्यक्ति के डेरे की एक नटनी थी। बाद में वह सौभाग्य से कहीं वृद्ध मीरजाफ़र की नज़र चढ़ गई। मीरजाफ़र ने उसे अपने महल में ले लिया। नवाब के यहां आकर पर्दानशीन होने से पहिले वह खुले खजाने बाहर निकलती पैठती थी, अतएव हेस्टिंग्स साहब की व्याख्या के अनुसार वह उस वक्त पुरुष थी। नवाब के महल में आकर हो गई 'सत्'। फिर क्या मणिबेगम अच्छी ख़ासी "सत्पुरुष" थी, इसमें सन्देह ही क्या रहा!

मणिबेगम को इस पद पर नियुक्त कर के हेस्टिंग्स और मिडल्टन आदि सभी ने थोड़ा बहुत लाभ उठाया।

रज़ा खा एकदम पद च्युत हो गया। नायबसूबेदार होने के पहिले वह ढाके में जिस पद पर नियुक्त था, वह पद भी उसे नहीं मिला। शिताबराय निर्दोष सिद्ध हो जाने के बाद अपने अपमान को सहन करने में समर्थ न हुए, और कुछ ही दिनों में उन की मृत्यु हो गई।

लिया। नव-कौंसिल में दो पक्ष हुए। इधर जनरल क्लेवारिंग कर्नल मन्सन और फिलिप फ्रांसिस अँगरेजी व्यापारियों के अत्याचार निवारणार्थ उद्योग करते थे, उधर हेस्टिंग्स और बारवेल अधिकाधिक अर्थ—लाभ की चिन्ता में लीन रहते थे।

क्लाइव ने इससे पहिले नमक के व्यापार पर जो एकाधिकार स्थापित किया था, कई साल बाद कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने उसे एकदम रद्द कर दिया, परन्तु सन् १७७२ ई० में हेस्टिंग्स साहब ने एक दूसरे रूप में यह एकाधिकार फिर स्थापित कर दिया। क्लाइव के बनाये हुये नियम के अनुसार ईस्ट इन्डिया कम्पनी के कर्मचारियों के द्वारा जो वणिक—सभा सगठित हुई थी, वही वणिक—सभा नमक के व्यापार की मूलधनी थी। पर अब हेस्टिंग्स साहब ने स्वयं ईस्ट इन्डिया कम्पनी को मूलधनी बना कर नमक का व्यापार शुरू किया। हेस्टिंग्स के संस्थापित नियमानुसार नमक—महाल के अँगरेजों को कम्पनी के पास से पेशगी रुपया लेकर नमक तैयार कराना पड़ता था, और तैयार किया हुआ सारा नमक ईस्ट इण्डिया कम्पनी को देना पड़ता था। ऐसा निश्चय हो चुका था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी कदापि इस व्यापार में लिप्त न होंगे। परन्तु रिचार्ड बारवेल साहब किसी न किसी बङ्गाली के नाम से और हेस्टिंग्स साहब अपने प्रिय खजांची कान्त पोद्दार, कमालुद्दीन इत्यादि कुछ धूर्त्त आदमियों के नाम से नमक-महाल का ठेका ले लिया करते थे।

पहिले की तरह अब की बार भी इस नमक व्यापार

के द्वारा देशी लोगों को विविध प्रकार के क्लेश भुगतने पड़े। इस ओर पुन बारवेल साहब, बङ्गालियों के नाम से जिन समस्त नमक-महालों का ठेका लेते थे, उन सभी महालों का ठेका उन लोगों की तरफ़ से, जिन के नाम से ठेका लिया जाता था, फिर से देशी व्यापारियों को दिला देता थे। इस प्रकार जो लोग बारवेल साहब के पास से नमक-महालों का ठेका लेते थे, उन्हें कम्पनी का दिया हुआ पूरा रुपया मिलने की कोई आशा न थी। कम्पनी जो रुपया देती थी, उसमें से अधिकाश बारवेल साहब ख़ुद हड़प जाते थे* । सिर्फ़ थोड़ा सा अपने अधीनस्थ ठेकेदारों को देते थे।

कौंसिल क नवागत मेम्बर जनरल क्लेवारि, कर्नल मन्सन और फिलिप फ्रांसिस ने जब हेस्टिंग्स और बारवेल के इन अनुचित व्यवहारों का प्रतिवाद करना आरम्भ किया तो हेस्टिंग्स साहब बड़े चक्कर में पड़े। परन्तु तत्काल प्रचलित राजनैतिक कौशल में हेस्टिंग्स ख़ूब दक्ष थे। बड़ी चतुरता से उन्हों ने सुप्रीम कोर्ट के नवागत चारों जजों के साथ ख़ूब मेल जोल पैदा किया। ये जज लोग सदा ही ऐसी चेष्टा करते रहे, जिससे हेस्टिंग्स का प्रभुत्व स्थिर और सुरक्षित रहे। इन जजों के आचरण को विशेष जाच-पड़ताल करके देखने पर बोध होता है कि ये भी हेस्टिंग्स और बारवेल ही की श्रेणी के आदमी थे।

× × × × ×

महाराज नन्दकुमार की नायबसूबेदारी के पद को प्राप्त करने की आशा जब सर्वथा ही नष्ट हो गई तो उन के

* Vide Note (26) in the appendix

हृदय में हेस्टिंग्स के विरुद्ध घोर विद्वेषानल प्रज्वलित होने लगी। मन ही मन उन्हों ने हेस्टिंग्स के सारे अत्यचार और अवैध आचरणों के रहस्य को प्रकट करने का निश्चय किया।



अभियोग।

हेस्टिंग्स एवं बारवेल साहब के अत्याचारों को निवारण करने का उपाय निश्चित करने के लिए महाराज नन्दकुमार के कलकत्ते वाले भवन में राजशाही, मुर्शिदाबाद नदिया, बाकुड़ा, बर्द्धमान, ढाका, दीनाजपुर इत्यादि भिन्न भिन्न प्रदेशों के ज़मींदार इकट्ठे हुआ करते थे। इन में से बहुतों के ऊपर राज कर की वसूली के बहाने हेस्टिंग्स एवं बारवेल विविध अत्याचार करते रहते थे। ज़मीन पर ज़मींदार लोगों का कुछ स्वत्व है, इसे हेस्टिंग्स एवं बारवेल कभी नहीं स्वीकार करते थे। वे कहते थे कि जब ईस्ट-इण्डिया कम्पनी दिल्ली के बादशाह से बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर चुकी है तब कम्पनी अपनी इच्छानुसार किसी भी ज़मींदार को उसकी ज़मींदारी से बरतरफ़ कर सकती है। परन्तु फिलिप फ्रांसिस इस मत का समर्थन नहीं करते थे। वे कहते थे कि ज़मीन पर ज़मींदारों का परिमित स्वत्व (Limited Right) है और

मुसलमान राजाओं ने उसे स्वीकार किया है। अतएव बिना किसी अपराध के जमींदारों को उनकी जमींदारी से बरतरफ करने का कम्पनी को कोई अधिकार नहीं।

रङ्गपुर के अन्तर्गत बाहिरबन्द परगने की जमींदारी का स्वत्व रानी भवानी के पास था। हेस्टिंग्स साहब ने बिना ही किसी अपराध के रानी भवानी को उक्त परगने की जमींदारी से बरतरफ कर के कान्त पोद्दार को वहां का जमींदार बना दिया। कान्त पोद्दार के नाबालिग पुत्र लोकनाथ नन्दी के नाम इस परगने की लिखा-पढ़ी हो गई। कान्त पोद्दार हेस्टिंग्स का खजांची था। हेस्टिंग्स एवं बारवेल साहबको वह घूस लेने में सहायता देता था। अतएव हेस्टिंग्स ने पुरस्कार-स्वरूप उसे बाहिरबन्द परगना की जमीदारी प्रदान की।

हेस्टिंग्स साहब को शीघ्र ही इसकी खबर लग गई कि उनके अत्याचार निवारणार्थ महाराज नन्दकुमार के यहां जमींदारों की गोष्ठी हुआ करती है, अतएव वे भी अपने अनुचर, गङ्गागोविन्द सिंह, कान्त पोद्दार, मुन्शी नवकृष्ण इत्यादि से मिल कर नन्दकुमार के नाश का उपाय सोचने लगे।

हेस्टिंग्स के विरुद्ध कोई अभियोग उपस्थित होने पर सफाई के लिये गवाहों की कमी न हो, अथवा हेस्टिंग्स और बारवेल को नन्दकुमार के नाम कोई झूठा अभियोग उपस्थित करना हो तो उसके लिए फरियादी और गवाह सहज ही प्राप्त हो सकें—इस अभिप्राय से कान्त पोद्दार ने मोहनप्रसाद एवं मुन्शी सदरुद्दीन आदि कई प्रधान-प्रधान धूर्तों को मुट्ठी में कर रखा।

११ मार्च, सन् १७७५ ई० को महाराज नन्दकुमार ने वारेन् हेस्टिंग्स के कुकार्यों का सविस्तर उल्लेख करके कौन्सिल के सुयोग्य मेम्बर फिलिप फ्रान्सिस के निकट एक आवेदन पत्र भेजा। इस आवेदन पत्र में हेस्टिंग्स के विरुद्ध बहुत सी बातों का ज़िक्र था। इस स्थान पर हम इस आवेदन पत्र के सिर्फ़ कुछ अंशों को उद्धृत करते हैं—

"आवेदन पत्र में उल्लिखित बातों को पढ़ कर सम्भवतः कौन्सिल के मेम्बर गण मुझे भी एक दुश्चरित्र आदमी समझ बैठेंगे। परन्तु प्रकट करने की अपेक्षा इन बातों को छिपा रखने से मेरे चरित्र में अधिक धब्बा लगेगा। इस लिये हेस्टिंग्स साहब की समस्त कुक्रियाओं को मैं कौन्सिल के निकट प्रकट करता हूं। हेस्टिंग्स साहब बंगाल के शासन-कर्त्ता हैं। स्वार्थ-रक्षा के लिये बाध्य होकर मुझे उनकी अनेक कुक्रियाओं में सहायता करनी पड़ी है।

"हेस्टिंग्स-साहब ने गवर्नर के पद पर नियुक्त होकर कलकत्ते आने के बाद मुझसे कहा था—'मुहम्मद रज़ा खां और शिताबराय ने बहुत सा राज-कर हज़म कर लिया है, यह मैं बहुत अच्छी तरह जान चुका हूं।' उन्होंने मुहम्मद रज़ा खां और शिताबराय को पदच्युत करके मुझे नायब सूबेदारी के पद पर नियुक्त करना स्वीकार किया था।

"उन्हीं के अनुरोध से मैंने मुहम्मद रज़ा खां के दिये हुए हिसाब-किताब की जांच पड़ताल की थी।

"जब रज़ा खां के ज़िम्मे कोई तीन करोड़ रुपये का ग़बन उसके ज़माने के हिसाब-किताब से साबित हुआ,

तो उसने दो लाख रुपया मुझे और ग्यारह लाख रुपया हेस्टिंग्स साहब को रिश्वत में देने का प्रस्ताव किया।

"मैंने हेस्टिंग्स साहब से इस रिश्वत के प्रस्ताव का ज़िक्र किया, उन्होंने रिश्वत लेने से इन्कार किया। परन्तु इसके कुछ ही दिन बाद हेस्टिंग्स साहब रज़ा ख़ां के प्रति विशेष अनुग्रह प्रकट करने लगे। इसी से अनुमान होता है कि हेस्टिंग्स ने रज़ा ख़ां से रिश्वत लेकर उसे छोड़ दिया।"

"दुर्भिक्ष के समय रज़ा ख़ां ने बहुत सा चावल ख़रीद कर अधिक मूल्य में बेचने के लिये रख छोड़ा था, यह भी अच्छी तरह प्रमाणित हो गया था।"

"हेस्टिंग्स ने बिना ही किसी अपराध के रानी भवानी को बाहिरबन्द पर्गने की ज़मींदारी से बर-तरफ़ करके अपने ख़ज़ाञ्ची कान्त पोद्दार को उक्त ज़मींदारी दे दी है।"

"दिल्ली-सम्राट ने पुरस्कार-स्वरूप मेरे लिए एक पालकी भेजी थी। पटने तक पहुचने पर शिताबराय ने उसे रोक रखा। जब मैंने हेस्टिंग्स साहब से इसका ज़िक्र किया तो उन्होंने वह पालकी पटने से मँगा कर अपने यहा रख ली। आज तक वह पालकी मुझे नहीं दी।"

"हेस्टिंग्स ने मेरे पुत्र महाराज गुरुदास को नायब दीवानी के पद पर और मणिबेगम को नवाब के अभिभावक के पद पर नियुक्त करते समय बहुत घूस ली है।"

"प्रथमत मैंने स्वयँ उन्हें अपने गुमाश्ता चैताननाथ की मारफ़त उनके नौकर जगन्नाथ एव बालकृष्ण तथा उनके ख़ज़ाञ्ची कान्त पोद्दार आदि के द्वारा तीन थैली मोहरें प्रदान की हैं। इनमें से एक थैली में १४७१ मोहरें, दूसरी

में भी १४७१ और तीसरी में ९८० मोहरें तथा ५७० अधेलियां थीं। दूसरी दफे इन्हें १४७० मोहरें दी गई हैं।"

"हेस्टिंग्स ने मुर्शिदाबाद आकर नवाब मुबारकउद्दौला की माता बहूबेगम को पद—च्युत कर के मणिबेगम को गृह-सम्बन्धी अधिकार प्रदान करते वक्त एक लाख रुपया घूस में लिया है।"

"इस के बाद जब वे मुर्शिदाबाद से कलकत्ते वापस आये तो मणिबेगम ने महाराज गुरुदास के द्वारा मुझ से पुछवा भेजा कि 'गवर्नर साहब का बाक़ी डेढ़ लाख रुपया किस के हाथ भेजा जाय।' मैंने जब इस विषय में हेस्टिंग्स साहब से पूछा तो उन्हों ने क़ासिमबाज़ार में कान्तिपोद्दार के भाई नूरसिंह के पास उक्त रुपया भेज देने के लिए कहा। बाद में महाराज गुरुदास ने मुझे लिखा था कि वह डेढ़ लाख रुपया नूरसिंह के पास पहुंचा दिया गया।"

"हेस्टिंग्स साहब के ये सब रहस्य मेरे द्वारा प्रकट होंगे; इस आशङ्का से वे सदा ही मेरे नाश की चेष्टा करते रहे हैं। मेरे घोर शत्रु मोहनप्रसाद के साथ वे मित्रता सस्थापन की चेष्टा करते हैं। मोहनप्रसाद एक तुच्छ आदमी हैं। परन्तु गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स उसे अपने बंगले पर बुला कर उसका बहुत आदर—सम्मान करते हैं। और बराबर वाले की तरह उस के साथ वार्तालाप करते हैं।"

महाराज नन्दकुमार का यह आवेदनपत्र जब कौंसिल में पढ़ा गया तो हेस्टिंग्स साहब क्रोधाग्नि में प्रज्वलित हो उठे। घोर विपत्ति की आशंका करके वे एकदम हतबुद्धि से

हो गये। अन्त में दृढ स्वर से फिलिप फ्रांसिस और जनरल क्लेवारिं को सम्बोधन करते हुए कहने लगे—' आप लोगो ने षडयन्त्र कर के नन्दकुमार के द्वारा ये समस्त अभियोग उपस्थित करवाये हैं।'

फ्रांसिस ने कहा—महाराज नन्दकुमार के आवेदनपत्र में जिन समस्त अभियोगों का उल्लेख है, वे सत्य हैं या मिथ्या—इसका निर्णय करना उचित है।

हेस्टिंग्स—नन्दकुमार ठग, धूर्त और नीचाशय है। वह कोई अभियोग उपस्थित करे तो उसके निर्णय की आवश्यकता नहीं।

जनरल क्लेवारिं—महाराज नन्दकुमार इस देश के एक प्रतिष्ठित आदमी हैं। वे सूबेदार के दीवान थे। आपकी अपेक्षा भी ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित थे। उनके आवेदनपत्र में उल्लिखित अभियोगों का निर्णय अवश्य ही करना पड़ेगा।

हेस्टिंग्स—आप लोग इस विषय पर विचार करना आरम्भ करेंगे तो मैं इसी दम कौंसिल बरखास्त कर दूंगा। मैं हिन्दुस्तान का गवर्नर जनरल हूं। अभियुक्त के रूप में मैं कदापि यहां उपस्थित नहीं रह सकता।

कर्नल मन्सन—आप के निर्दोषी सिद्ध होने पर आप के पद की कोई अप्रतिष्ठा नहीं होगी।

हेस्टिंग्स—मेरे विरुद्ध किसी अभियोग पर विचार करने का आप लोगों को कोई अधिकार नहीं।

फ्रांसिस—ईस्ट इन्डिया कम्पनी के कुव्यवहार, अन्यायाचरण छल-कपट आदि के निवारणार्थ ही इस नव कौंसिल का सङ्गठन हुआ है। अतएव ईस्ट इण्डिया कम्पनी के किसी भी

र्मचारी के बिरुद्ध अभियोग उपस्थित होने पर उसका बिचार भी लोगो को करना होगा।

हेस्टिंग्स—तो मैं इसी वक्त कौंसिल छोड़े देता हू।

हेस्टिंग्स के कौंसिल छोड़ कर चल देने पर उन के साथी घूसखोर वारवेल भी उनके पीछे पीछे चल दिये। अन्यान्य तीनो मेम्बर; महाराज नन्दकुमार को कौंसिल-गृह में बुला कर उनका इज़हार लेने लगे।

महाराज नन्दकुमार ने बिना किसी छल—कपट के हेस्टिंग्स की सारी कुक्रियाओं को प्रकट किया। प्रमाण के लिए उन्होने कितने ही साक्षियों के नामों का उल्लेख किया। हेस्टिंग्स के प्रति-पात्र कान्त पोद्दार तक को उन्होने साक्षी गिना।

इस के दूसरे दिन कौंसिल के इन तीनो मेम्बरो ने कान्तपोद्दार का इज़हार लेने के लिए उसे कौंसिल में बुला भेजा। परन्तु हेस्टिंग्स ने कान्त पोद्दार को कौंसिल-गृह में जाकर गवाही देने के लिए मना किया। कान्त पोद्दार कौंसिल के मेम्बरो की आज्ञा का उल्लघन कर कहने लगा—"हेस्टिंग्स साहब जब तक कौंसिल में न हो, कौंसिल का अधिवेशन नहीं हो सकता। इसलिए हेस्टिंग्सशून्य कौंसिल में गवाही देने के लिए मै बाध्य नहीं।"

कान्त पोद्दार की यह बात सुनकर जनरल क्लेवारिं बडे क्रुद्ध हुए और कान्त पोद्दार को बेंतो से पीटना स्थिर किया।

परन्तु उसके दूसरे दिन हेस्टिंग्स साहब ने जनरल क्लेवारिं से कहा—"कान्त को जो कोई बेंतो से पीटेगा, मैं कान्त का पक्ष लेकर उसे बेंतो से पीटूगा।"

जनरल क्लेवारिं यह बात सुन कर बड़े गुस्से में आये। फिलिप फ्रांसिस और कर्नल मन्सन ने देखा कि कौंसिलगृह में ही हेस्टिंग्स और क्लेवारिं में हाथापाई की नौबत आना चाहती है अतएव उन्होंने क्लेवारिं को शांत किया। इसके बाद तुरन्त ही कौंसिल बरखास्त हो गयी।

कौंसिल के मेम्बर फ्रांसिस, मन्सन और क्लेवारिं ने निश्चय किया कि महाराज नन्दकुमार के आवेदनपत्र में उल्लिखित अभियोग सत्य हैं।



पहला षड़यन्त्र।

चैत का महीना है। गर्मी की ज्यादती के कारण धूप के वक्त लोग घर से बाहर नहीं निकलते। परन्तु हेस्टिंग्स के दीवान गङ्गागोविन्दसिंह खजाञ्ची, कान्त पोद्दार और उनके परम शुभचिन्तक मुंशी नवकृष्ण आज कल हर वक्त चैत मास की इस प्रचण्ड धूप में शहर के भीतर चक्कर लगाते रहते हैं।

शाम के वक्त ये लोग वापस आकर हेस्टिंग्स के बंगले पर इकट्ठे होते थे। कमरे का दरवाजा बन्द कर विविध वार्तालाप करते थे। बाद में प्राय हर रोज रात के आठ बज चुकने पर

हेस्टिंग्स साहब सुप्रीम कोर्ट के जज इलाइजा इम्पी के बंगले पर जाकर उनसे विविध परामर्श किया करते थे। कभी कभी सुप्रीम कोर्ट के सभी जज एकत्र हो कर एकान्त में हेस्टिंग्स साहब से बात चीत करते थे।

हेस्टिंग्स के मुह पर अब वह प्रसन्नता नहीं देखी जाती। विषाद की छाया ने उनके मुखमंडल को आवृत कर रखा है।

कान्त पोद्दार कभी गङ्गाविष्णु के घर आकर, मोहनप्रसाद के साथ गुप्त वार्तालाप करते हैं, कभी मुर्शिदाबाद को आदमी भेजते हैं। पोद्दार बाबू को आज कल दम मारने की फुर्सत नहीं है।

महाराज नन्दकुमार ने जिस वक्त हेस्टिंग्स साहब के विरुद्ध अभियोग उपस्थित किया, उसके बाद एक महीने तक हेस्टिंग्स, गङ्गा गोविन्दसिंह, मुंशी नवकृष्ण तथा कान्त पोद्दार बड़े व्यस्त रहे। बीच-बीच में मोहनप्रसाद भी हेस्टिंग्स साहब के पास आते-जाते रहते थे। एक महीने के बाद अकस्मात् सुप्रीम कोर्ट के चारों जजों के पास से निम्न लिखित पत्र हेस्टिंग्स साहब को मिला—

The Honorable Warren Hastings Esqr

Sir,

A charge having been exhibited, upon oath, before us against Joseph and Francis Fowke, Maharaja Nand coomar and Radha Charan, for a conspiracy against you and others, we have summoned the parties to appear to-morrow, at ten o'clock in the forenoon, at the house of Sir Elijah Impey where we must require your attendance.

Calcutta,

April 19 th 1775

We are Sir,
Your most obedient humble servants,
E Impey
Rob Chambers
S C Lemaistre
John Hyde

अनुवाद।

माननीय वारन् हेस्टिंग्स महोदय,

महाशय,

जोजेफ फाउक, फ्रांसिस फाउक, महराज नन्दकुमार एवं राधाचरण राय के विरुद्ध हमारे यहां इस आशय का अभियोग उपस्थित हुआ है कि ये लोग आप के तथा अन्यान्य कुछ लोगों के विरुद्ध षड्यंत्र करने को उद्यत हुए थे। हम ने उक्त अभियुक्तों को कल दस बजे दिन के इलाइजा इम्पी के बंगले पर हाजिर होने के लिए तलब किया है। आप उक्त समय पर वहां उपस्थित रहें।

आपके अनुगत सेवक —
इलाइजा इम्पी
रावर्ट चेम्बर्स
एस० सी० लिमेइस्टर
जान हाइड

कलकत्ता,
१६, अपरैल, १७७५



पहले अभियोग का विचार ।

२० अप्रैल, १७७५ ।

सुप्रीमकोर्ट के प्रधान जज इलाइजा इम्पी के बंगले पर आज बड़ी भीड़ है । हेस्टिंग्स, बारवेल, वेन्सिटार्ट*, राजा-राजवल्लभ†, कान्त पोद्दार और दीवान गंगागोविन्द सिंह, कमालुद्दीन अली खां नामक एक व्यक्ति को साथ लेकर दस बजे के पहले ही इलाइजा इम्पी के बंगले पर आ उपस्थित हुए ।

महाराज नन्दकुमार, राय राधाचरण राय बहादुर, जोजेफ फाउक एवं फ्रांसिस फाउक अभियुक्त के वेश में जजों के सामने आ खड़े हुए ।

फ़रियादी कमालुद्दीन अली खां ने झुक कर सलाम किया और शपथ-ग्रहणपूर्वक इस प्रकार कहना आरम्भ किया —

" मेरा नाम कमालुद्दीन अली खां है । मैं सरकार बहादुर के हिजली पर्गने के नमक-महाल का ठेकेदार हूं । सरकार बहादुर ने नमक की दादनी की बाबत मुझे जो रुपया दिये जाने का हुक्म दिया था, उस रुपये में से २६,०००

---

*ये दूसरे वेन्सिटार्ट हैं, गवर्नर वेन्सिटार्ट नहीं ।

†ये कायस्थ कुलोद्भव खालसा डिपार्टमेंट वाले राजा राजवल्लभ हैं, विक्रमपुर वाले राजा राजवल्लभ नहीं ।

रुपया दीवान-गंगागोविंदसिंह ने हज़म कर लिया । उनसे उक्त रुपया वसूल करने का उपाय निर्धारित करने के उद्देश से मैं कलकत्ते आया और महाराज नन्दकुमार के पास गया । यह छब्बीस हज़ार रुपया प्राप्त करने के लिए मैंने गंगागोविन्दसिंह के विरुद्ध दो दरख्वास्तें लिखी थीं । यह दरख्वास्तें मैंने महाराज नन्दकुमार के पास रख दी थीं । रुपया वसूल करवा देने की हालत में मैंने महाराज नन्दकुमार को छ हज़ार रुपया देना स्वीकार किया था ।

बाद में मैंने मुंशी सदरुद्दीन के पास जाकर इस मामले का ज़िक्र किया । उन्होंने कहा, हम आपस में इसे तय करवा कर दीवान गंगागोविंदसिंह से तुम्हारा रुपया वसूल करवा देंगे । ऐसी दशा में मैंने महाराज नन्दकुमार से अपनी दरख्वास्तें वापस मांगीं । उन्होंने दरख्वास्तें लौटाना अस्वीकार किया, और अपने दामाद राय राधाचरण राय को साथ करके मुझे फावक साहब के पास भेजा । फावक साहब ने मुझे बहुत कुछ डरा-धमका कर हेस्टिंग्स और वारवेल साहब के विरुद्ध घूस के अभियोग की एक दरख्वास्त लिख देने के लिए मजबूर किया । मैं बहुत डर गया था । फावक साहब के कहने के अनुसार मैंने हेस्टिंग्स और वारवेल साहब के विरुद्ध घूसखोरी के अभियोग की दरख्वास्त लिख दी । अपने हाथ से मैंने वह दरख्वास्त लिखी थी, और उस पर अपने नाम की मोहर लगाई थी ।

इलाइजा इम्पी — तुमने अपने हाथ से दरख्वास्त क्यों लिखी ।

कमालुद्दीन — धर्मावतार ! मुझे बहुत डर दिखाया गया था ! उस वक्त वे मुझ से जो कुछ भी कहते, मैं वही लिख देने को तैयार हो जाता।

इलाइजा इम्पी — go on — अच्छा आगे चलो।

"धर्मावतार ! मैं दिन में सात दफे नमाज़ पढ़ता हूं। झूठ कभी नहीं बोलता। मैंने उस दरख्वास्त को दूसरे दिन वापस मांगा। उस वक्त फाउक साहब मुझे मारने को तैयार हुए। बाद में फाउक साहब के लड़के ने कहा—"कल महाराज नन्दकुमार यहां आवेंगे, तभी आना। जैसा उचित होगा, किया जायगा।"

दूसरे दिन मैं फिर फाउक साहब की कोठी पर गया। उस वक्त फाउक साहब और महाराज नन्दकुमार कुछ परामर्श कर रहे थे। फाउक साहब और महाराज नन्द-कुमार ने बारम्बार मुझसे हेस्टिंग्स तथा बारवेल साहब के विरुद्ध अर्जी देने के लिए कहा। जब मैंने अर्जी देना स्वीकार न किया, तो मुझे क़ैद कर लेने को तैयार हुए। मैं झटपट अपनी पालकी पर सवार हो भाग कर गवर्नर साहब के पास चला आया।"

इलाइजा इम्पी तथा सुप्रीम कोर्ट के अन्यान्य तीन जजों ने, ये इजहार सुन कर कहा — "फाउक साहब के पुत्र के विरुद्ध कोई अपराध प्रमाणित नहीं होता। अतएव फ्रासिस फाउक को बरी किया जाता है। महाराज नन्दकुमार, राय राधाचरण एवं जोजेफ फाउक साहब के विरुद्ध हेस्टिंग्स तथा बारवेल साहब यदि मुकदमा चलाना चाहें तो तीन दिन के भीतर हमें सूचित करें।



दूसरा षड़यन्त्र।

हेस्टिंग्स, बारवेल, कान्त पोद्दार एवं गंगागोविन्द मुक़दमें की हालत देखकर बड़े व्यथित हुए। किं कर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गये। सुप्रीम कोर्ट के जजों ने उनके उठाये हुए मुक़दमे को विचाराधीन रखा, क़तई फ़ैसला नहीं हुआ।

इधर महाराज नन्दकुमार देश के अन्यान्य ज़मींदारों के साथ मिलकर हेस्टिंग्स एवं बारवेल साहब की अन्यान्य सैकड़ों कुक्रियाओं को प्रकट करने की चेष्टा करने लगे। इसी प्रकार प्राय: दस पद्रह दिन बीत गये। जनरल क्लेवारिंग, फिलिप फ्रांसिस इत्यादि समय-समय पर नन्दकुमार के घर आकर उन से मिल जाते थे।

× × × × ×

अकस्मात् छठी मई को नन्दकुमार के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट से गिरफ़तारी का पर्वाना निकला। वे पकड़ कर उसी दिन कारागार में ठेल दिये गये। कलकत्ते के समस्त निवासी एकदम आश्चर्य-चकित हो उठे। सुप्रीम कोर्ट का व्यवहार देखकर देशी लोग बड़े भयभीत हुए। किस लिए महाराज नन्दकुमार इस प्रकार एकाएक कारागार भेजे गये—इसके रहस्य को कोई न समझ सका।

बाद में ज्ञात हुआ कि महाराज नन्दकुमार के परम-

शत्रु मोहनप्रसाद नामक एक व्यक्ति ने जाली तमस्सुक बनाने के अपराध में उनके विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट के समक्ष अभियोग उपस्थित किया था, इसीलिए सुप्रीम कोर्ट के जजों ने उन्हें कारागार भेजा है।

पाठकों के जानने के लिए मोहनप्रसाद के लम्बे चौड़े इजहार का सारांशमात्र हम नीचे उद्धृत करते हैं—

६ मई, १७७५ ।

"मेरा नाम मोहनप्रसाद है। मैं मृत बुलाक़ीदास की जायदाद के वली (सरपरस्त) गङ्गाविष्णु और हींगूलाल का आटर्नी (मुख्तार) हूं। १७६९ ई० के जून मास में बुलाक़ीदास की मृत्यु हो गई। मृत्यु के पहिले बुलाकीदास ने एक वसीअतनामा लिखा था। इस वसीअतनामें के अनुसार उन्होंने अपनी सम्पत्ति का चौथाई अंश अपने योग्य पुत्र पद्ममोहनदास को दिया था। पद्ममोहनदास को और मुझे उन्हों ने अपनी जायदाद का 'मुख्तार आम' नियत कर रखा था। प्राय तीन बरसें हुई, पद्ममोहनदास का भी देहान्त हो गया। इस वक्त मैं अकेला बुलाक़ीदास के वली गङ्गाविष्णु तथा हींगूलाल की तरफ़ से बुलाक़ीदास की छोड़ी हुई सारी जायदाद का हिसाब किताब और लेन-देन करता हूं। बुलाक़ीदास की रियासत से जितना रुपया वसूल होता है, उसके ऊपर मुझे फी सैकड़ा पांच रुपया कमीशन मिलता है।

"मृत्यु से कुछ ही देर पहिले बुलाक़ीदास ने महाराज नन्दकुमार को अपने पास बुला भेजा था। मरते समय उन्होंने अपनी स्त्री, कन्या, और पद्ममोहनदास को महाराज नन्दकुमार के हाथों में सौंपा था और फिर महाराज नन्दकुमार

से कहा था कि 'आप मेरी स्त्री कन्या तथा पद्ममोहनदास की देखभाल करते रहें।'

"मृत बुलाक़ीदास और महाराज नन्दकुमार में लेन देन का व्यवहार था। बुलाक़ी के जिम्मे महाराज नन्दकुमार का कुछ रुपया पावना था। बुलाक़ी ने अपने कम्पनी के कागजों को बेच कर महाराज नन्दकुमार का रुपया चुकाने की बात कही थी।"

"बुलाक़ी की मृत्यु के प्रायः पाच महीने बाद महाराज नन्दकुमार गङ्गाविष्णु और पद्ममोहन को साथ लेकर हेस्टिंग्स साहब के यहा से बुलाकी के कम्पनी के कागज ले आये और उन्हे अपने पास रख लिया। बुलाकी की स्त्री ने कहा—'महाराज नन्दकुमार ने कृपा करके ये सब कागज ला दिये हैं अतएव सब से पहले उन्हीं का रुपया अदा किया जाय।'

"बुलाक़ीदास ने मेरे नाम जो मुख्तारनामा-आम लिखा था, उसमे महाराज नन्दकुमार को सिर्फ दस हजार रुपये देने लिखे थे। मैंने गङ्गाविष्णु से इसका जिक्र किया था। परन्तु बुलाकीदास के कम्पनी वाले कागज लाने के चौदह या पन्द्रह दिन बाद पद्ममोहनदास मुझे और गङ्गाविष्णु को साथ लेकर महाराज नन्दकुमार का हिसाब किताब साफ करने के लिए उनके पास गये। महाराज नन्दकुमार उस वक्त दुतल्ले पर बैठे थे। हिसाब की बातचीत होनेपर उन्होंने बुलाकीदास के लिखे हुए तीन अदद तमस्सुक, ऊपरी भाग फाड कर, पद्ममोहनदास के हाथ में दिये, और इन तीनों तमस्सुकों का पावना रुपया चुकाने के लिए उन्हों ने कम्पनी के सत्तरह अदद कागजों मे से आठ अदद कागज अपने पास रख लिये। इन तीन तमस्सुकों में से एक तमस्सुक में

"अब जब कि यह नवीन सुप्रीम कोर्ट स्थापित हुई तो मेयर कोर्ट के सारे काग़ज़ात, सुप्रीम कोर्ट में आ गये। मैंने सुप्रीम कोर्ट में दरखवास्त दे कर महाराज नन्दकुमार के चुकता (Surrendered) तमस्सुकों में से ४८०२१) रुपये वाला तमस्सुक वापस ले लिया है, और मैं उनके ऊपर जाली तमस्सुक तय्यार करने की नालिश कर रहा हू। बुलाक़ीदास ने महाराज नन्दकुमार के आभूषणों की कीमत के बाबत कभी कोई तमस्सुक नहीं लिखा। महाराज नन्दकुमार ने यह जाली तमस्सुक बनाया है। अतएव मैं उन के नाम जाली काग़ज़ बनाने का दावा दायर करता हू।"

मोहनप्रसाद के इस इजहारों के समर्थन में पहले मुक़दमे के फरियादी कमालुद्दीन ने कहा — "इस दाखिल शुदा तमस्सुक में मेरा नाम लिखा है और मेरे नाम की मोहर है। महाराज नन्दकुमार ने मेरा जाली नाम बना लिया था, इसे उन्होंने (नन्दकुमार ने) स्वयं मेरे निकट स्वीकार किया है।"

परन्तु इस गवाह का नाम था कमालुद्दीन अली खा और तमस्सुक में जिस गवाह के नाम का उल्लेख था, उस का नाम था आविद कमालुद्दीन। अतएव यहा पर ज़रा अड़चन उपस्थित हुई। परन्तु चालाक कमालुद्दीन अली खा गवाह कह उठा—"अब मैं पहिले की अपेक्षा कुछ विशेष प्रतिष्ठित आदमी बन गया हू, इसलिये मेरे नाम के पीछे एक अली और जुड़ गया है। बाल्यावस्था में मेरा नाम आविद कमालुद्दीन ही था।"

पाठकों को याद होगा कि इसी कमालुद्दीन अली खा ने

१९ अपरैल को महाराज नन्दकुमार और फाउक साहेब आदि के ऊपर मुकदमा दायर किया। नूतन सुप्रीम कोर्ट के दो विज्ञ जजों — लिमेस्टर और हाइड साहब — ने इलाइजा इम्पी के साथ परामर्श करके इन्हीं दोनों के इज़हारों पर नन्दकुमार को फौरन कारागार भेजकर विचारार्थ सेशन-सुपुर्द कर दिया।

हेस्टिंग्स वारवेल, बेन्सिटार्ट, राजा राजवल्लभ, दीवान गङ्गागोविन्द सिंह, कान्त पोद्दार इत्यादि के षड्यन्त्र से इस प्रकार महाराज नन्दकुमार कारागार में ठेल दिये गये। वे देश के अन्तर्गत एक उच्च श्रेणी के ब्राह्मण थे। कारागार में भोजन करना उन्होंने न स्वीकार किया। कोई तीन चार दिन तक वे जेल में भूखे ही पड़े रहे। सुप्रीमकोर्ट के जजों के पास उन्होंने अपने भोजनों का स्वतन्त्र प्रबन्ध कर देने के लिए दरख्वास्त भेजी।

कौंसिल के मेम्बर फिलिप फ्रांसिस, कर्नल मन्सन और जनरल क्लेवारि सुप्रीमकोर्ट का यह अन्यायाचरण देखकर बड़े दुखित हुए। महाराज नन्दकुमार को सान्त्वना देने के लिए जनरल क्लेवारि साहब की कन्या और लेडी मन्सन ने स्वयं कारागार में जाकर उन से मुलाक़ात की।

इधर फिलिप फ्रांसिस ने सुप्रीम कोर्ट के जजों से कहला भेजा कि महाराज नन्दकुमार उच्च श्रेणी के ब्राह्मण हैं। वे कारागार में कदापि भोजन नहीं करेंगे। अतएव यदि उन्हें कारागार में रखना ही है तो उनके लिए भोजनों का स्वतन्त्र प्रबन्ध कर देना उचित है।

परन्तु हेस्टिंग्स आदि की उत्तेजना के कारण सुप्रीमकोर्ट के जजों ने तीन-चार दिन के भीतर भी इसका कोई प्रबन्ध नहीं

किया। शायद प्रथमतः उन्होंने षड्यन्त्र करके कारागार में नन्दकुमार को भूखों मार डालना ही स्थिर कर लिया था। परन्तु बाद में सुप्रीमकोर्ट के जजों ने इस मामले में देशी पण्डितों की राय लेने के अभिप्राय से देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पण्डितों को तलब किया।

हेस्टिंग्स के दाहिने हाथ कान्तपोदार ने मुर्शिदाबाद जा कर तीन-चार दिन के भीतर हरिदास-तर्क-पञ्चानन को ला हाजिर किया।

स्त्री की मृत्यु के बाद हरिदास तर्क-पञ्चानन के दोनों पुत्रों का भी देहान्त हो गया था। इन पण्डित जी से हमारे पाठक अच्छी तरह परिचित हैं। इससे पहिले ये अपनी कन्या को विष देकर मार चुके हैं। परन्तु समाज में आज भी इनका विशेष प्राधान्य है। बङ्ग-समाज में ऐसे नरपिशाच सहज ही प्राधान्य प्राप्त कर सकते हैं। उस समय हिन्दू शास्त्र के सम्बन्ध में इनका मत बहुत प्रामाणिक माना जाता था। इन्होंने सुप्रीमकोर्ट के जजों के प्रश्न के उत्तर में कहा—"कारागार में भोजन करने से कोई ब्राह्मण पतित नहीं हो जाता। हां जिन ब्राह्मणों को कारागार में भोजन करना पड़ता है वे कारागार से छूटने पर किसी धार्मिक ब्राह्मण को थोड़ा सा स्वर्णदान देकर अथवा सिर्फ बारह ब्राह्मणों को भोजन करवा कर इस छोटे से पाप का प्रायश्चित कर सकते हैं।"

नन्दकुमार जिस वक्त दीवान थे, उस वक्त हरिदास तर्क-पञ्चानन समय-समय पर उन के कृपाभाजन हो चुके हैं। परन्तु धार्मिक कहलाने वाले इस कुलाङ्गार

ने कान्तपोद्दार से कुछ रुपया लेकर इस प्रकार की व्यवस्था दे दी।

महाराज नन्दकुमार ने अन्यान्य कुछ पंडितो को तलब कर के उनका मत लेने की प्रार्थना की। पूर्वोलिखित नवकिशोर चट्टोपाध्याय, इस वक्त कलकत्ते ही में रहते थे, उन्होंने कहा कि कारागार में भोजन करने पर शास्त्रानुसार ब्राह्णों को पतित हो जाना पड़ता है। पंडितो में इस प्रकार का मतभेद देखकर जजों ने कारागार में नन्दकुमार के भोजनो के लिए स्वतंत्र स्थान दिये जाने की आज्ञा दे दी।

देश के अन्तर्गत जो लोग वास्तव में सज्जन और भलेमानस थे, उन्होने इस दुरवस्था के समय में भी महाराज नन्दकुमार के प्रति सहानुभूति प्रकट की। हर रोज़ा सैकड़ो आदमी जेल में जाकर महाराज नन्दकुमार से मुलाकात करते थे। जेल के अन्दर भी उनका दरबार सा लगा रहता था।

छयालीसवाँ परिच्छेद

विचार या नरहत्या ।

३ री जून १७७५ ।

कालेक्टरवर बनाम महाराज नन्दकुमार ।

उपस्थित

सर इलाइजा इम्पो, नाइट चीफ़जस्टिस, रॉबर्ट चेम्बर्स, स्टीफ़ेन सिज़र लिमेस्टर, जान हाईड, सहकारी जजत्रय ।

सुप्रीम कोर्ट आदमियों की भीड़ से भर गई । देश के हजारों भद्र पुरुष महाराज नन्दकुमार को अभियुक्त के वेश में देखकर अत्यन्त दुखित हुए । जज लोग लोहित वस्त्र पहिने धीरे-धीरे टहलते हुए आकर विचारासन पर विराजमान हुए । महाराज नन्दकुमार के गुमाश्ता चैतन्नाथ, उनके दामाद राय राधाचरण राय बहादुर सुप्रीम कोर्ट के बैरिस्टर फेरर साहब पीछे आकर खड़े हो गये ।

इस ओर फ़रियादी के गवाह तथा कान्त पोद्दार इत्यादि हेस्टिंग्स के सहचरगण दर्शकों के बैठने की जगह पर आ डटे ।

महाराज नन्दकुमार के ऊपर जाली कागज़ तैयार करना, जाली कागज़ को इस्तेमाल करना, जाली कागज़ को प्रकाशित करना, जाली कागज़ का दूसरे के हाथों में देना, जाली कागज़

को छूना आदि कोई तीन अभियोग लगाये गये थे।

ये समस्त अभियोग जब उन्हें पढ़कर सुनाये गये तो उन्होंने कहा — "मैं निर्दोष हूं।"

इस पर जजों ने पूछा— "आप किस के द्वारा अपना विचार चाहते हैं ?"

महाराज नन्दकुमार ने कहा— "मैं चाहता हूं कि परमेश्वर मेरा विचार करें, मेरे देशनिवासी, मेरे सजातीय मेरा विचार करें।"

परन्तु बङ्गालियों को जूरर (Juror) होने का कोई अधिकार नहीं था। अतएव बारह अंगरेज जूरर चुने गये। इन में से प्रायः सभी के साथ महाराज नन्दकुमार की पुरानी शत्रुता थी।

सुप्रीम कोर्ट के प्रधान इन्टरप्रेटर विलियम चेम्बस की अनुपस्थिति में हेस्टिंग्स तथा इम्पी के अनुगत अलेक्जन्डर इलियट इन्टरप्रेटर के स्थान पर काम करने के लिए चुने गये। महाराज नन्दकुमार के बैरिस्टर ने इलियट साहब को इन्टरप्रेटर नियुक्त करने के सम्बंध में आपत्ति की। परन्तु इम्पी ने क्रोध-पूर्वक उनकी इस आपत्ति को अस्वीकार कर दिया।

इसके बाद क्लार्क आफ दी क्राउन (Clerk of the

---

* यह मुकदमा फैसल हो जाने के बाद प्रकट हुआ था कि नन्दकुमार के विरुद्ध मोहनप्रसाद ने जो पहली दरख्वास्त दाखिल की थी उसका मसविदा (पाडु लिपि) सुप्रीम कोर्ट के जजों ने तैयार कर दिया था। लेखक।

Crown) ने अभियोग-पत्र (अर्ज़ीदावा) पढ़ा, तदन्तर गवाहों के इज़हार शुरू हुए।

पहिले गवाह स्वयं फरियादी मोहनप्रसाद थे। इनके इज़हारों को यहां उद्धृत करने की विशेष आवश्यकता नहीं। दावे में इन्होंने जैसा कुछ इज़हार किया था, वैसा ही अब भी किया, बीच-बीच में सिर्फ़ कई एक हिसाब के काग़ज़ पेश किये थे।

दूसरे गवाह, पहले मुकद्दमे के फ़रियादी, कमालुद्दीन अली ख़ां ने शपथ लेकर कहा—

"मेरा नाम कमालुद्दीन अली ख़ां है। मीरजाफ़र के शासनकाल में मैं मुर्शिदाबाद की जेल में क़ैद रहा था। क़ैद से छुटने के बाद मैंने मीरजाफ़र के पास एक दरख्वास्त भेजी थी। महाराज नन्दकुमार इस वक्त मीरजाफ़र के दीवान थे। उन्होंने मुझको लिखा कि अपने नाम की मोहर लगाकर दरख्वास्त भेजो। तब मैंने अपने नाम की मोहर अपनी भेजी हुई दरख्वास्त पर छाप लेने के लिए, महाराज नन्दकुमार के पास भेज दी। उस वक्त से आज चौदह वर्ष होने आये, मेरे नाम की मोहर महाराज नन्दकुमार ही के पास है उन्होंने वह मोहर फिर मुझे वापस नहीं दी।"

जिस तमस्सुक को जाली बताकर महाराज नन्दकुमार के विरुद्ध यह अभियोग उपस्थित किया गया था, वह तमस्सुक जब इस गवाह को दिखाया गया तो गवाह ने उसे देख कर कहा—"इस तमस्सुक में जो मोहर लगी है, वह मेरे नाम की मोहर है। अब से चौदह वर्ष पहले मैंने महाराज नन्दकुमार के पास यह मोहर भेजी थी; मेरा नौकर हुसेन अली इस बात का गवाह है। तदतिरिक्त इस से पहले

मैंने रुशोजा पेट्र पर और मुंशी सदरुद्दीन से भी इस मामले का जिक्र किया था।

इलाइजा इम्पी — इस तमस्सुक को — मोहर देखकर तुम कहते हो कि यह हमारे नाम की मोहर है। परन्तु तुम्हारा नाम कमालुद्दीन अली खां है, और इस तमस्सुक में आबिद कमालुद्दीन की मोहर और आबिद कमालुद्दीन का नाम है, सो क्यों?

गवाह — धर्मावतार, मैं कभी झूठ नहीं कह सकता। दिन में सात दफे नमाज पढ़ता हूं। पहले मेरा नाम आबिद कमालुद्दीन था, परन्तु अब मैं पहले की अपेक्षा कुछ अधिक प्रतिष्ठित आदमी बन गया हूं। इसी लिए लोगों ने मेरे नाम का अगला भाग छोड़ कर पीछे की तरफ एक "अली" जोड़ दिया है। हमारे यहां प्रतिष्ठित मुसलमानों के नाम के पीछे "अली" और "खां" इत्यादि शब्द जोड़ दिये जाते हैं।

जज हाईड — इस तमस्सुक पर तुम्हारे नाम की मोहर लगाई गई और गवाह के स्थान पर तुम्हारा नाम लिखा गया — यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?

गवाह — धर्मावतार, झूठ कभी नहीं बोलूंगा। महाराज नन्दकुमार ने खुद ही मुझ से कहा था कि हमने इस तमस्सुक में गवाह के स्थान पर तुम्हारा नाम लिख रखा है और तुम्हारे नाम की मोहर लगा ली है। उन्होंने मुझ से यह भी कहा था कि "इस तमस्सुक के सबूत में तुम्हें गवाही देनी पड़ेगी।" परन्तु मैंने उन से कहा कि मैं झूठी गवाही नहीं दे सकूंगा, अधर्म कार्य मैं कभी नहीं करूंगा।

जिरह — सवाल — मोहनप्रसाद ने गवाही देने के लिए तुम्हें कुछ रुपया दिया है?

कमालुद्दीन — ओ अल्लाह — ओ अल्लाह — तोबा — तोबा — ऐसा काम मैं कर सकता था?

गवाह ने यह भी कहा कि मेरे भेजे हुए दस्तखत और मोहरों की प्राप्ति स्वीकार के लिए महाराज नन्दकुमार ने मुझे एक पत्र लिखा था। इसके लिए गवाह ने एक जाली पत्र अदालत में दाखिल भी किया, परन्तु उसमें मोहर की बात का उल्लेख नहीं था।

तीसरे गवाह हुसेन अली ने शपथ लेकर कहा—मेरा नाम हुसेन अली है। मैं कमालुद्दीन का नौकर हूँ। कमालुद्दीन के साथ यहां आया हूँ। कमालुद्दीन ने इस से पहले भी महाराज नन्दकुमार और फाउक साहब के ऊपर एक मुकदमा दायर किया है। उस वक्त से बराबर हम लोग यहीं हैं। प्रायः चौदह बिरस हुए, कमालुद्दीन ने अपने नाम की मोहर महाराज नन्दकुमार के पास भजी थी। जिस थैली में रखकर मोहर भेजी गई थी उस थैली की सिलाई मैंने की थी। इसी से मैं जानता हूं कि कमालुद्दीन ने अपने नाम की मोहर महाराज नन्दकुमार के पास भेजी थी।

चौथे गवाह ख्वाजा पेट्रूस ने शपथ लेकर कहा,— "मेरा नाम ख्वाजा पेट्रूस है। मैं आरमीनियन हूं। मैं हिन्दी और फारसी भाषा जानता हूं। कमालुद्दीन को मैं पहिचानता हूं। चार बरस हुए, एक बार कमालुद्दीन ने मुझसे कहा था कि मेरे नाम की मोहर महाराज नन्दकुमार के पास है।"

पाँचवें गवाह मुंशी सदरुद्दीन ने शपथ लेकर कहा— "११९६ साल १७७३ ई० के अषाढ़ मास में एक बार कमालुद्दीन ने मेरे पास आ कर कहा— 'महाराज नन्दकुमार ने मेरे नाम की मोहर एक जाली तमस्सुक पर छाप ली है और मुझ से उस तमस्सुक की तसदीक़ के लिए झूठी गवाही देने को कहते हैं। यदि मैं यह झूठी गवाही नहीं दूंगा तो वह (महाराज नन्दकुमार) मेरे जामिन नहीं रहेंगे।' मैंने कमालुद्दीन से पूछा कि 'तुम्हारे नाम की मोहर महराज नन्दकुमार को कैसे मिली?' कमालुद्दीन ने कहा— 'चौदह-पन्द्रह बरस पहिले मैंने नवाब मीरजाफ़र के पास एक दरख्वास्त भेजी थी। उस दरख्वास्त पर मेरी मोहर नहीं लगी थी। बाद में दरख्वास्त पर मोहर लगा लेने के लिए मैंने महाराज नन्दकुमार के पास अपने नाम की मोहर भेज दी थी। तब से वह मोहर महाराज नन्दकुमार ही के पास है।'"

छठे गवाह थे राजा नवकृष्ण। इनके इज़हारों को यहाँ पर उद्धृत करने के पहले मुक़दमे के सम्बन्ध की अन्यान्य एक दो घटनाओं का उल्लेख कर देना आवश्यक है।

जिस तमस्सुक को जाली कहकर महराज नन्दकुमार पर अभियोग चलाया गया था, उस तमस्सुक में सिर्फ़ तीन आदमियों की गवाही थी। पहिले गवाह का नाम आबिद कमालुद्दीन, दूसरे का नाम था शीलावत और तीसरे का माधवराय। इस घटना के कई बरस पहले आबिद कमालुद्दीन, शीलावत और माधव राय का देहान्त हो चुका था। नवकृष्ण मुंशी ने यह कहा कि, मैं स्वत

शीलावत सिंह के दस्तखत पहिचानता था। अतएव उक्त तमस्सुक में शीलावत के दस्तखत सच्चे हैं या जाली, इसकी जांच के लिए नवकृष्ण मुंशी की गवाही ली गई।

राजा नवकृष्ण ने शपथ लेकर कहा—"मेरा नाम है नवकृष्णदेव। मैं लार्ड क्लाइव का मुंशी था। बुलाकीदास के जमाने से मैं शीलावत के दस्तखत पहिचानता हूं। शीलावत समय समय पर, बुलाकीदास की तरफ से लार्ड क्लाइव को पत्र आदि लिखा करते थे, इसी से मैं उनके हस्ताक्षरों को पहिचानता हूं।"

मोहनप्रसाद का बताया हुआ जाली तमस्सुक राजा नवकृष्ण के हाथ में देकर जजों ने पूछा—"इस तमस्सुक पर शीलावत सिंह के जो दस्तखत हैं, ये शीलावत के असली दस्तखत हैं या नहीं?"

राजा नवकृष्ण—मैं कुछ कहना नहीं चाहता। मैं कायस्थ हूं, अभियुक्त ब्राह्मण है। मुकदमा साबित हो गया तो अभियुक्त को प्राणदण्ड होगा। ऐसी हालत में साफ-साफ कहना कोई सहज काम नहीं है।

इलाइजा इम्पी—तुमने शपथ ली है सची बात तुम्हें अवश्य कहनी पड़ेगी। ये दस्तखत शीलावत के दस्तखतों की तरह दीख पड़ते हैं या नहीं?

राजा नवकृष्ण—अपने मन की बात प्रकट करने को मेरा जी नहीं चाहता। ब्राह्मण के प्राणों का मामला है। बड़े असमंजस का विषय है। धर्मावतार! मुझे माफ़ कीजिये।

इलाइजा इम्पी—सच-सच कहो, ये शीलावत के दस्तखत हैं या नहीं?

राजा नवकृष्ण, श्रीमान्! ये शीलावत के दस्तखत नहीं हैं। शीलावत के दस्तखत इतने सुन्दर नहीं होते थे।

वादी के सारे गवाहों का इजहार हो जाने के बाद जजों ने देखा कि नन्दकुमार के ऊपर जाली तमस्सुक तैयार करने का अपराध किसी तरह साबित नहीं होता। कम से कम दो दफे मोहनप्रसाद को गवाह की बेंच पर लाया गया। परन्तु उनकी गवाही से इतना बराबर साबित होता रहा कि बुलाकीदास की मृत्यु के बाद पद्म-मोहनदास ने इस तमस्सुक को सच्चा स्वीकार किया था।

जज, जूरी, हेस्टिंग्स और बारवेल इत्यादि सभी बड़े चिन्तित हुए। नन्दकुमार को प्राणदण्ड न हुआ तो घूस लेने और देश लूटने में सुविधा न होगी। अब किस उपाय का अवलम्बन किया जाय।

बुलाकीदास के गुमाश्ता कृष्णजीवनदास कोई चौबीस दफे गवाह की बेंच पर लाये गये, किसी तरह मुकद्दमा न साबित न हुआ। अन्त में हित के विपरीत परिणाम की नौबत आई। कृष्णजीवनदास ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि बुलाकीदास ने अपनी मृत्यु के पहिले पद्ममोहनदास के हाथ के लिखे हुए एक इकरारनामे को स्वयं अपने दस्तखतों से तसदीक किया था। यह मुकद्दमा चलाने के चार पांच बरस पहले मोहनप्रसाद ने वह इकरारनामा अपनी आंखों से देखा है। यह इकरारनामा पढ़ा गया, इसमें स्पष्ट अक्षरों में यह लिखा था कि बुलाकीदास ने ४८०२१ रुपये की बाबत सन् १७६५ ई० में महाराज नन्दकुमार को एक तमस्सुक लिख दिया था।

कृष्णजीवनदास के इजहारों से यह बात प्रकट होते

ही सुप्रीम कोर्ट के जजों तथा हेस्टिंग्स आदि के सिर पर एकदम मानों वज्र टूट पड़ा। इलाइजा इम्पी बड़े चतुर थे। वे कह उठे—"कृष्णजीवनदास ने सारी बातें बिना किसी छल-फेर के साफ-साफ कही हैं। परन्तु अभी इकरारनामे की बात कहते वक्त उनका गला रुक गया था, शरीर कांप उठा था। अतएव कृष्णजीवन की यह आखिरी बात कतई झूठ है—पद्मामोहनदास ने महाराज नन्दकुमार के साथ साजिश कर के अपने मरने से पहले यह इकरारनामा तैयार किया था।"

इस ओर कान्त पोद्दार, नवकृष्ण मुंशी, गङ्गागोविन्द सिंह, कायस्थ-कुलोद्भव द्वितीय राजा राज बल्लभ और स्वयं हेस्टिंग्स नये गवाह इकट्ठे करने का उद्योग करने लगे। बहुत कुछ खोजा-खाजी करने के बाद हमारे पूर्वोल्लिखित—नमक की-कोठी के एजन्ट जान्स्टन साहब के खानसामा—आजिमअली चाचा को ला हाजिर किया।

आजिम अली ने जांस्टन साहब के साथ कलकत्ता आने के बाद से खानसामागीरी छोड़ कर लाल बाजार में जूतों की दूकान खोल ली थी। क्लाइव के द्वारा प्रतिष्ठित वणिक-सभा के अध्यक्षों ने इस व्यक्ति को पहले सरकारी गवाह नियुक्त किया था। उस वक्त सरकारी वकील नियुक्त नहीं होते थे। एक सरकारी गवाह रहा करता था। जब कभी किसी व्यक्ति के ऊपर गुप्तरूप से नमक खरीदने-बेचने का मुकदमा दायर होता था तो आजिमअली को उसके जुर्म के सबूत में गवाही देनी पड़ती थी। परन्तु वणिक-सभा के रद्द हो जाने पर आजिमअली का पद भी टूट गया। अब वे कलकत्ते में एक स्त्री के साथ निकाह

कर, के लालबाजार में रहने लगे थे और जूता बेच कर अपनी जीविका चलाते थे।

गवाही देने के काम में आजिमअली बड़े प्रवीण हैं, इसे हेस्टिंग्स आदि अच्छी तरह जानते थे। इस लिए फ़रियादी की तरफ से इन्हें प्रधान साक्षी के रूप में उपस्थित किया गया।

पाठकों के ज्ञानार्थ इस स्थान पर हम यह कह देना चाहते हैं कि सुप्रीम कोर्ट की अनुमति के अनुसार नन्दकुमार के मुक़दमे की जो रिपोर्ट छप कर प्रकाशित हुई थी उसमें आजिमअली गवाह के नाम का उल्लेख नहीं था। पाठकगण शायद कहें कि यह गवाह लेखक का कपोल-कल्पित है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। हमारी समझ में रिपोर्टर की भूल से आजिमअली का नाम छूट गया है। इसके अतिरिक्त इङ्गलैंड में नन्दकुमार के मुकदमें की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद मेकिन्टस नामक अङ्गरेज ने एक पुस्तक प्रकाशित की है। जिसमें उन्होंने लिखा था,—सुप्रीम कोर्ट के जजों ने सारी बातों को प्रकट नहीं किया। स्वेच्छा से उन्हों ने मुकदमें की कितनी ही बातों को छिपा रखा था। कितने ही गवाहों के इजहार तक बदल डाले थे। यदि मेकिन्टस का कथन सत्य है तो शायद इसी लिए आजिमअली के इजहार भी रिपोर्ट में नहीं दिखाई देते।

परन्तु इस मुक़दमे के सम्बन्ध में हमने जो कुछ भी सुना है, उस सब का उल्लेख करना उचित है। अतएव मुकदमें के प्रधान साक्षी आजिमअली चाचा के इजहारों का विस्तारपूर्वक हम नीचे उद्धृत करते हैं।

तीसरी जून को इस मुक़दमें के फ़रियादी के गवाहों के इज़हार शुरू हुए; और ग्यारहवीं जून को फ़रियादी के अन्यान्य सब गवाहों की गवाही समाप्त हुई। बारहवीं जून को फ़रियादी की तरफ़ से आज़िमअली गवाह पेश हुआ। सेशन अदालत के आईन के अनुसार इस प्रकार एक नये गवाह की गवाही लेना उचित न था। परन्तु महाराज नन्दकुमार के मुक़दमें में जज लोग आईन के अनुसार काम करने को बाध्य न थे यदि आईन के अनुसार काम किया जाता तो मुंशी सदरुद्दीन और ख़्वाजा पट्र अ की गवाही भी नहीं ली जा सकती थी।

आज़िमअली चाचा सुप्रीम कोर्ट में आकर गवाह के रूप में हाज़िर हुए। उन्हें गवाह की बेंच पर जाते देख कर महाराज नन्दकुमार के गुमाश्ता चैतान्नाथ और महाराज के दामाद राय राधाचरण राय बहादुर के सिर पर वज्र सा टूट पड़ा। इन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि जहां किसी गवाह के मुंह से इतनी बात निकल गई कि मैंने महाराज नन्दकुमार को जाली तमस्सुक बनाते देखा है कि बस, जज लोग महाराज को दोषी ठहरा देंगे। अङ्गरेजी प्रथा के अनुसार विचार हो रहा है। आईन के मुताबिक़ सिर्फ़ प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में जज लोग कुछ आगा पीछा सोच रहे हैं, अन्यथा नन्दकुमार का दोष, विचार आरम्भ होने के पहिले ही साबित हो चुका होता।

नन्दकुमार के गुमाश्ता चैतान्नाथ धूर्त्तता और चालबाज़ी में हेस्टिंग्स के सहचरों से कुछ कम न थे। जैसे ही आज़िमअली ने इज़हार देना शुरू किया, चैतान्नाथ ने फ़ौरन अगुलियों के इशारे से उसे पहिले एक सौ, फिर दो

सौ, बाद में तीन सौ रुपया तक देना स्वीकार किया। आज़िमअली इतने पर राजी हुआ और शपथ लेकर इज़हार देने लगा—

"मैं महाराज नन्दकुमार का घर जानता हू। महाराज नन्दकुमार के गुमाश्ता चैतानाथ बाबू मेरी दूकान से जूता खरीद ले जाते हैं। मैं उनके हाथ उधार भी जूता बेचता हू। १७६९ ई० के जुलाई महीने में मैं एक बार चैतान्नाथ बाबू से जूतो के दाम लेने महाराज नन्दकुमार के यहा गया था। उसके दस रोज पहले बुलाक़ीदास की मृत्यु हुई थी। चैतानन्नाथ बाबू उस वक्त बडे व्यस्त थे। उन्हो ने मुझ से कहा—'थोड़ी देर बैठो इस वक्त मैं महाराज के काम में लगा हूँ। मैंने चैतानाथ बाबू से पूछा—आप किस काम में लगे हैं? उन्हो ने कहा— 'महाराज एक तमस्सुक बना रहे हैं, उसी में लगा हू।' उसके बाद महाराज नन्दकुमार अपने बैठके में आये और बक्स खोल कर उसमें से प्राय पचीस तीस नामों की मोहरे निकाली*, और चश्मा लगा कर उन मोहरों के नाम पढ़ने लगे। सब मोहरों में एक मोहर निकाल कर चैतान्नाथ से कहा—"देखो तो यह कमालुद्दीन के नाम की मोहर है या नहीं।' चैतान्नाथ ने उस मोहर को हाथ में लेकर कहा—'हा, यह कमालुद्दीन ही के नाम की मोहर है।'

आज़िम अली के यहां तक कहते ही जज लोग बड़े प्रसन्न हुए। इतने दिनों के बाद अब जा कर प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हुआ। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लेकर जज लोग कहते थे — "Go on — Go on" उसके बाद—उसके बाद।

*Vide Note (10) in the appendix

आजिमअली—हुजूर, उसके बाद तमस्सुक की तरह एक कागज पर वह मोहर छाप ली ।

जज हाइड—Go on—Go on उसके बाद—उसके बाद ।

आजिमअली—उसके बाद चौताननाथ बाबू से कहा—जिस स्थान पर यह मोहर लगाई गई है, इसके पास ही आबिद कमालुद्दीन का नाम लिख लो ।

जज लिमेस्टर—Go on,—इसके बाद ।

आजिम अली—उसके बाद चौतान बाबू ने उस कागज पर आबिद कमालुद्दीन का नाम लिख लिया ।

जज चेम्बर्स—तुम लिखना पढ़ना जानते हो ?

आजिम अली—हुजूर अब आंखों से कम दीखता है, इसलिए अब नहीं लिख-पढ़ पाता हूं । पहिले फारसी लिख पढ़ सकता था ।

इलाइजा इम्पी — Go on — आगे चलो ।

आजिम अली —हुजूर, उसके बाद उस तमस्सुक पर महाराज नन्दकुमार ने गवाह की जगह पर शीलावत सिंह और माधव राय का नाम लिख लिया ।

गवाह के यहां तक कहते ही राय राधा चरण घोर विपत्ति की आशंका करके चुपके-चुपके चौताननाथ से कहने लगे — "आजिम अली को एक हजार रुपया देने कहो ।

चौताननाथ ने अंगुली के इशारे से आजिम अली को एक हजार रुपया देना मंजूर किया ।

इस पर आजिम अली ने चौताननाथ को आश्वासन-सूचक इशारा किया ।

इधर जज लोग और फरियादी के वकील आजिमअली से कहने लगे — उसके बाद, उसके बाद।

आजिम अली — उसके बाद जब मिय गवाहों का नाम तमस्सुक पर लिखा गया तो महाराज नन्दकुमार उसे अपने मुह के पास रख कर पढ़ने लगे। उनके पढ़ते वक्त मैंने सुना कि वह तमस्सुक बुलाकीदास की तरफ से लिखा गया था।

सभी जज — (अत्यन्त आनन्दित होकर) Go on — उसके बाद।

आजिम अली — पढ चुकने पर महाराज नन्दकुमार ने उसे बक्स में रख लिया।

सभी जज — Go on — उसके बाद।

आजिम अली — हुजूर, इतने में घर के भीतर से मुर्गी चीख उठी, मेरी नींद टूट गई। मेरी छोटी बीबी कहने लगी — "मिया, उठोगे नहीं, आंगन में धूप आ गई।"

इन्टरप्रेटर इलियट साहब गवाह की यह बात सुन कर हां करके उस की तरफ देखने लगे। जजों ने जल्दी जल्दी इंटरप्रेटर से गवाह की यह आखिरी बात इन्टरप्रेट करने के लिए कहा और इधर गवाह से बोले — "Go on", Go on"।

आजिम अली — हुजूर, उसके बाद मैंने अपनी छोटी बीबी से कहा — "मीर की बेटी। मैं ख्वाब देख रहा था कि मैं महाराज नन्दकुमार के यहां गया हूं, वहां वे बुलाकी दास के नाम एक जाली तमस्सुक बना रहे हैं।"

इन्टरप्रेटर इलियट साहब ने जब गवाह की ये आखिरी

दोनों बातें जजों को समझाईं तो वे चकित होकर आजिम अली का मुंह ताकने लगे।

आजिम अली ने फिर कहना शुरू किया — "धर्मावतार! जो जो देखा है, वही कहूंगा। जान चली जाय पर झूठ हर्गिज नहीं कह सकता। मेरी छोटी बीबी ने कहा — "मियां, क्या ख्वाब देखा?" मैंने कहा — "बस बड़े मजे का ख्वाब देखा। ख्वाब में देखा कि मैं चैतान बाबू के पास जूतों के दाम लेने गया हू। चैतननाथ और महाराज नन्दकुमार एक जाली तमस्सुक बना रहे हैं"। यह बात सुनकर मेरी छोटी बीबी ने कहा — "मिया! तुम साहब, सूबा, राजा, नवाब, अमीरों के यहां हमेशा आया-जाया करते हो — उनके संग साथ में रहते-सहते हो — इसलिए ख्वाब भी उन्हीं का देखते हो"।

सुप्रीम कोर्ट के चारों जज एकदम भौंचक्के हो रहे। समझ न सके, क्या मामला है। अन्त में जज चेम्बर्स ने इन्टरप्रेटर से कहा — "इस गवाह से पूछो कि क्या इस ने ख्वाब में जो कुछ देखा था, वही अपने इजहारों में कहा है?"

— इंटरप्रेटर ने जब आजिम अली से उपर्युक्त प्रश्न किया तो आजिम अली ने कहा — "हुजूर, मैंने ख्वाब में जो कुछ देखा था, वही सब कहा है। तीन-चार दिन हुए, मैंने मोहन प्रसाद से कहा था कि महाराज नन्दकुमार ने जो जाली तमस्सुक बनाया है, उसे मैंने देखा है। मोहनप्रसाद बाबू मेरी पूरी बात न सुन कर बीच ही में बोल उठे — "तो तुझे गवाही देनी पड़ेगी"। मैंने कहा—

"जो देखा है, वही कहूँगा"। जहाँपनाह, जो कुछ मैंने देखा था, वही यहा कहा। एक भी बात मैंने झूठी नहीं कही। धर्मावतार! मैं कोई छोटा आदमी नहीं हू, मेरी छोटी बीबी मीर घराने की लड़की है। जिले के अफ़सर मौलवी अब्दुल लताफत मेरे सगे ससुर हैं। मौलवी अब्दुल रहमान मेरे सौते साले हैं"।

इतने में पीछे से चौताननाथ कह उठे—"भला, बेटा, अपने को प्रतिष्ठित मुसलमान बता रहा है। लाल बाजार की रहमानी की लड़की के साथ निकाह किया है। कहता है, मौलवी अब्दुल लताफत मेरे ससुर हैं"।

आजिमअली (चिल्ला कर) दुहाई धर्मावतार!—मैं चौताननाथ बाबू के ऊपर हतक-इज्जती का दावा करूगा—ये मेरी सास को लालबाजार की रहमानो बता रहे हैं। धर्मावतार! मेरी सास अब पर्दानशीन हो गई है। हां, पहले वह लाल बाजार में कुछ बरसों जरा बेपर्दा रही थीं। आज प्राय छ महीने हुए, मौलवी साहब ने निकाह करके उसे पर्दानशीन बना लिया है। तभी वो मौलवी साहब मेरे ससुर हुए।

आजिमअली गवाह की बातचीत सुन कर और उस का हाव-भाव देख कर जज, वकील, इन्टरप्रेटर—सभी चक्कर में पड़ गये। किसी ने कुछ न कहा, चुप साध कर बैठ रहे।

बहुत देर के बाद इलाइजा इम्पी ने अभियुक्त के बैरिस्टर फेरर साहब से कहा—"Mr Farrer, have any legal objection to your using this man's statement in evidence" * मिस्टर फेरर, इस गवाह

के इजहारों को प्रमाण-स्वरूप ग्रहण करने के सम्बन्ध में आप को कोई आपत्ति है ?

फेरर — My lord, how his statement can be considered admissible in evidence ? I cannot understand. He stated what he saw in a dream मैं नहीं समझता कि ये इजहार किस प्रकार प्रमाण-स्वरूप ग्रहण किये जा सकते हैं । इस व्यक्ति ने जो स्वप्न में जो कुछ देखा था, वही बयान किया है ।

इलाइजा इम्पी — Mr. Farrer, in this hot climate of India, there is hardly anything like sound sleep In Bengal even when we are supposed to be asleep, we are almost half awakened, I think under these peculiar climate circumstances, Lord Thurlow would not hesitate to accept in evidence a statement of fact observed or perceived, seen or heard in a half awakened state मिस्टर फेरर ! इस अत्यन्त उष्ण देश (भारतवर्ष) मे पूरी नींद कभी नहीं आती हम लोग निद्रित अवस्था मे प्राय आधे जागते रहते हैं । ऐसी अवस्था में यदि किसी व्यक्ति के आंख, कान, नाक इत्यादि किसी इन्द्रिय के द्वारा कोई विषय इन्द्रियगोचर हो तो उस विषय के सम्बन्ध मे उसकी गवाही ग्रहण कर लेने को लार्ड थार्लो शायद अनुचित नहीं समझेंगे ।

फेरर — My lord, I have nothing to do with Lord Thurlow's opinion on the subject But if your Lordship is inclined to use Azimali's

statement in evidence, I hope my objection to the admissibility of such statement in evidence should be recorded लार्ड थार्लो की सम्मति के विषय में मैं कुछ नहीं कहना चाहता। आप यदि आजिमअली की गवाही को प्रमाण-स्वरूप ग्रहण करना चाहें तो इस सम्बन्ध में मेरी आपत्ति का उल्लेख कर रखें।

इलाइजा इम्पी ने अन्यान्य तीन जजों के साथ परामर्श कर के निश्चय किया कि आजिमअली की गवाही प्रमाण-स्वरूप ग्रहण की जा सकती है। अतएव उन्होंने अभियुक्त के बैरिस्टर को सफाई के गवाह पेश करने की आज्ञा दी।

अभियुक्त के बैरिस्टर फेरर साहब ने कहा—"अभियुक्त के विरुद्ध जाली तमस्सुक बनाने का अपराध प्रमाणित नहीं हुआ। अतएव हम सफाई के गवाह पेश नहीं करेंगे। अभियुक्त यों ही छोड़े जाने का हक़दार है।

सुप्रीम कोर्ट के जजो ने कहा कि अभियुक्त के विरुद्ध अपराध प्रमाणित हो गया है। अतएव सफाई के गवाह पेश न करने पर हमें जूररों के निकट सबूत की समालोचना करनी पड़ेगी।

बुलाकीदास ने महाराज नन्दकुमार को तमस्सुक लिखा था—इस बात के सबूत के लिए महाराज नन्दकुमार की तरफ से कितने ही गवाह हाजिर थे। एक एक करके उन सब का इज़हार शुरू हुआ।

इस स्थान पर सफाई के उन समस्त गवाहों का हम सिर्फ़ नामोल्लेख किये देते हैं। सब के इज़हारों को उद्धृत करके उपन्यास का कलेवर बढ़ाना अनावश्यक है। इस मुक़दमें में गवाहों के इज़हार लेना सिर्फ़ एक तरह के दिखावे के सिवाय

और क्या हो सकता था? मुकदमें की दायरी से पहले ही सुप्रीम कोर्ट के चारों जजों के साथ हेस्टिंग्स साहब का पक्का समझौता हो चुका था।

महाराज नन्दकुमार की तरफ़ से तेजराय, बाबू हुजूरीमल, बाबू काशीनाथ, रूपनारायण चौधरी, जयदेव चौबे, मीरअसद अली, शेख यारमोहम्मद, शेर अली खां, चैतान्नाथ आदि कितने ही गवाहों के इजहार लिए गये। फरियादी के गवाहों में मनोहर, रामनाथ दास तथा कृष्णजीवन दास आदि की भी गवाही ली गई।

दोनों पक्षों की गवाही हो जाने के बाद चीफ जस्टिस इला-इजा इम्पो ने जूररों को सम्बोधन करके सबूत की समालोचना शुरू की। इस मौके पर उन्होंने एक बड़ी लम्बी चौड़ी वक्तृता दी। वक्तृता देते हुए बीच-बीच में कोई भी हक्के उन्होंने यह कहा—

"जूरर महाशयों ने बड़े धैर्यावलम्बन-पूर्वक गवाहों के इजहार सुने हैं, इसलिए कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। परन्तु विचार जिस से न्याय-संगत हो, उस के प्रति आप लोग विशेष मनोयोग प्रदान करें।" "न्याय सङ्गत"—"न्याय-सङ्गत"—कह कर वे कोई पचास दफे चिल्लाये। जूररों से उन्होंने यह भी कहा कि 'ऐसा अनुमान किया जाता है, बुलाकीदास के पोष्य-पुत्र मृत पद्म मोहनदास ने नन्दकुमार के साथ मिलकर साजिश की थी।' जब उन की वक्तृता समाप्त हुई तो जूरर लोग परस्पर परामर्श करने के लिए एक दूसरे कमरे में चले गये। आध घण्टे बाद जूररों में से प्रधान व्यक्ति (Foreman) बेरिन्सन साहब ने कहा कि समस्त जूररो की विवेचना में महाराज नन्दकुमार

के ऊपर जाली तमेसुक बनाने का अपराध सच्चा साबित हुआ।

महाराज नन्दकुमार अपराधी हैं।

जूरों के यह राय देने पर सुप्रीम कोर्ट के चारो जज बड़े आनन्दित हुए। इलाइजा इम्पी ने महाराज नन्दकुमार के प्राण दण्ड की आज्ञा दी।



गुरु और शिष्य।

महाराज नन्दकुमार के प्राणदण्ड की आज्ञा के अनन्तर उनके वकील फरर साहब ने जजों के निकट प्रार्थना की कि इस दण्डाज्ञा को कुछ काल के लिए स्थगित किया जाय। परन्तु सुप्रीम कोर्ट के जजों ने इस प्रार्थना को अस्वीकार किया।

महाराज नन्दकुमार के आत्मीय स्वजनों ने आशा की थी कि यह भीषण दण्डाज्ञा यदि जज लोग कुछ काल के लिए स्थगित कर देंगे तो इङ्गलैंडेश्वर के निकट दण्डाज्ञा को रद्द कर देने की प्रार्थना करेंगे। परन्तु हेस्टिंग्स और सुप्रीम कोर्ट के जज अच्छी तरह जानते थे कि इगलैंडेश्वर की मन्त्रि-सभा मुकदमे की हालत देखकर अवश्य ही नन्दकुमार को छोड़ देगी। ऐसी दशा में हमारा सारा षड्यन्त्र निष्फल होगा। इसलिए उन्होंने फाँसी

के हुक्म को थोड़े समय के लिए भी स्थगित करना नामञ्जूर किया।

इस के बाद देश के समस्त प्रधान प्रधान तालुक़दार, ज़मींदार कोई दस हजार आदमियों ने एकत्र होकर नन्दकुमार की फाँसी के हुक्म को स्थगित रखने के लिए प्रार्थना की। परन्तु सारे देशनिवासियों की बात पर जजों ने तनिक भी ध्यान न दिया।

अन्ततः नन्दकुमार के वकील ने जूररों (Jurors) के घर जाकर उनसे प्रार्थना की कि वे इस दण्डाज्ञा को स्थगित रखने के लिए जजों से अनुरोध करें। परन्तु इन अंगरेज जूररों ने कहा कि हम लोग जब नन्दकुमार को दोषी ठहरा चुके हैं तब इस प्रकार का अनुरोध करना हमारे लिए सर्वथा असङ्गत है।

देश के समस्त निवासियों ने महाराज नन्दकुमार की दुरवस्था देखकर हाहाकार मचाना शुरू किया। हेस्टिंग्स और बारवेल ने जब यह देखा कि सुप्रीम कोर्ट के जजों के प्रति देश-निवासियों के हृदय में अत्यन्त घृणा उत्पन्न हो रही है, तब वे सुप्रीम कोर्ट के प्रधान जज इलाइजा इम्पी को एक अभिनन्दन पत्र दिलाने की चेष्टा करने लगे। इन दोनों महात्माओं के मनोरंजनार्थ कान्त पोद्दार, गङ्गा गोविन्द सिंह और राजा नवकृष्ण ने इस काम के लिए बहुत कुछ उद्योग कर के प्रायः चालीस पचास आदमियों को ला कर जमा किया।

इन चालीस पचास आदमियों में प्रतिष्ठित आदमी एक भी न था। कुछ तो लालबाजार के जूतों के दुकानदार थे, दो बारवेल साहब के और दो हेस्टिंग्स साहब के खानसामा थे। तथा नन्द–

कुमार के मुकद्में के विचारार्थ जो बारह अँगरेज जूरर चुने गये थे, उन में के आठ जूरर थे;—इन लोगो ने एकत्र होकर इलाइजा इम्पी को एक अभिनन्दन पत्र प्रदान किया। इस अभिनन्दन पत्र में कान्त पोद्दार, गङ्गागोविन्द सिंह और नवकृष्ण आदि के भी हस्ताक्षर थे।

अभिनन्दनपत्र में लिखा गया कि "पहले जब हम लोगों को यह ज्ञात हुआ था कि सुप्रीम कोर्ट इंगलैंड के आईन के अनुसार कलकत्ता वासियों के मुकद्मों का विचार करेगी तो हम लोग बड़े भीत हुए थे। परन्तु महाराज नन्दकुमार के मुकद्मे में जैसा सद्विचार हुआ, उससे हम लोगों को आश्वासन मिला है, और प्रधान जज इलाइजा इम्पी तथा अन्यान्य तीन जजों ने जिस परिश्रम के साथ मुकद्मे की छान-बीन की है और उसकी असली हालत को समझा है, उसके लिये हम लोग उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।"

राजा नवकृष्ण ने जब यह अभिनन्दन पत्र इलाइजा इम्पी के हाथों में दिया तो इलाइजा इम्पी को, आये हुए अभिनन्दन पत्र दाताओं में आठ जूरर, नवकृष्ण, कान्त पोद्दार और गङ्गागोविन्द सिंह के अतिरिक्त एक भी प्रतिष्ठित आदमी न दिखाई दिया। ऐसी दशा में वे सोचने लगे कि इन में से किस को सम्बोधन कर के अभिनन्दनपत्र का उत्तर दें। कान्त पोद्दार और गङ्गागोविन्द सिंह हेस्टिंग्स के अनुगत आदमी हैं। यदि यह प्रकट करते हैं कि इन से अभिनन्दनपत्र प्राप्त हुआ तो इस अभिनन्दन का कोई मूल्य नहीं रह जाता। राजा नवकृष्ण एक तो हेस्टिंग्स के अनुगत दूसरे फरियादी के गवाह। बाकी जो रह गये वे सब या तो खानसामा

या जूतियाँ बेचने वाले। अस्तु, बहुत कुछ सोच-विचार के अनन्तर इंजाइजा इम्पी ने अभिनन्दनपत्र पर हस्ताक्षर करने वाले आठ जूररों को सम्बोधन करके कहा—

"आप ही लोगों के उद्योग और परिश्रम से इस मुकद्दमे का सुविचार हुआ है। यदि आप (जूरर) लोगों की सहायता न मिलती तो नागरी भाषा में लिखे हुए इन समस्त खातों एवं कागज-पत्रों को हम लोग अच्छी तरह न समझ सकते। अतएव अपने तीनों भाइयों के सहित मैं आप लोगों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।"

दो-चार दिन के भीतर अभिनन्दन की धूमधाम समाप्त हो गई। नन्दकुमार की फांसी का हुक्म स्थगित नहीं हुआ। पांचवीं अगस्त फांसी का दिन नियत किया गया। जून मास के अन्त में नन्दकुमार के प्राणदण्ड का आदेश हुआ था। जजों की इच्छा थी कि जुलाई में उन्हें फांसी दे दी जाय। परन्तु हेस्टिंग्स ने अपने एक अन्य असद् अभिप्राय को सिद्ध करने के लिए फांसी की तारीख कुछ हटा कर रखने की राय दी।

हेस्टिंग्स ने सोचा कि यदि नन्दकुमार को बाध्य करके इनसे यह कहला लिया जाय कि उन्होंने फिलिप फ्रांसिस, कर्नैल मन्सन और जनरल क्लेवारिंग की उत्तेजना से उनके (हेस्टिंग्स) के ऊपर घूंस लेने का अभियोग उपस्थित किया है तो मैं एकदम सारे शत्रुओं के विनाशसाधन में कृत-कार्य होऊंगा। इस आशा से उन्होंने इम्पी के साथ सलाह करके फांसी की तारीख पांचवीं अगस्त रखवाई। परन्तु नन्दकुमार जीते जी यह कहने के लिए तैयार न हुए। मृत्युकाल में भी उन्होंने फिलिप फ्रांसिस, कर्नैल मन्सन और जनरल क्लेवारिं

को आशीर्वाद दिया कि देश के अत्याचार-निवारण में परमेश्वर आप लोगों की सहायता करें।

फांसी का दिन निश्चित हो जाने के बाद भी शहर के सैकड़ों आदमी कारागार में जाकर महाराज नन्दकुमार से मुलाक़ात करते थे। अब भी कारागार में नन्दकुमार का दरबार सा लगा रहता था। जेल के अध्यक्ष मैकेबी साहब महाराज नन्दकुमार के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट करते थे।

बापूदेव शास्त्री अब भी कालीघाट ही में रहते थे। महाराज नन्दकुमार के कारारुद्ध होने के बाद, मुकदमे के विचार से पहले, एक बार कारागार में जाकर वे महाराज नन्दकुमार से मिले थे। परन्तु अब इस भीषण दण्डाज्ञा की बात सुनकर वे अत्यन्त दुखित हुए। प्रमदा की मृत्यु के बाद उन्होंने काशी चले जाने का निश्चय किया था। परन्तु अब वे प्रति दिन महाराज नन्दकुमार के घर पर जाकर उनकी स्त्री और कन्याओं को सान्त्वना देने की चेष्टा करने लगे। महाराज नन्दकुमार की स्त्री बापूदेव को पिता कह कर सम्बोधन करती थीं।

बापूदेव के प्रति महाराज नन्दकुमार के हृदय में प्रगाढ़ श्रद्धा थी। फांसी के पन्द्रह दिन पहले उन्होंने बापूदेव से कहला भेजा कि आप कारागार में आकर मुझ से मिल जांय। बापूदेव कारागार में जाकर महाराज से मिले। वे नन्दकुमार पर पुत्रवत् स्नेह रखते थे। नन्दकुमार की दुरवस्था देखकर वे आंसू बहाने लगे। कारागार में परस्पर एक दूसरे को देख अवाक् हो, बड़ी देर तक दोनों एक दूसरे के मुंह की ओर देखते रहे।

बड़ी देर के बाद महाराज नन्दकुमार ने कहा—"गुरु देव! प्रायः बारह बरस हुए—एक दिन जिस वक्त आप से और मुझ से हलधर तन्तुकार के निराश्रय बालक के पालन-पोषण के सम्बन्ध में वार्त्तालाप हो रहा था, उस वक्त आपने कहा था—"नन्दकुमार तुम्हारे लिए फांसी का फंदा तैयार है।" बड़े आश्चर्य की बात—मैं पूछता हू, भविष्य के गर्भ में जो कुछ निहित था, उसे आपने कैसे जान लिया था?"

वासुदेव—बेटा! भविष्य के गर्भ में जो कुछ निहित रहता है, उसे परमेश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता। परन्तु कर्त्तव्य का पालन न करने पर मनुष्य को इस संसार में दण्डित होना पड़ता है इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं। यह संसार मङ्गलमय परमेश्वर के न्याय विचार के अनुसार परिशासित होता है। इलाइजा इम्पी अथवा हेस्टिंग्स, किसी में तुम्हारा बाल भी बांका करने की शक्ति नहीं थी। तुम अपने ही दुष्कर्मों का फल भोग रहे हो।

नन्दकुमार—गुरुदेव! आप की सहधर्मिणी को, जिन्हें मैं अपनी माता से कम नहीं समझता था, और आप की पुत्री और परम पुण्यवती बहन प्रमदा को उपहार स्वरूप प्रदान करने के लिए जो स्वर्णाभरण खरीदे गये थे, और जिन आभरणों के मूल्य से हजारों दुर्भिक्ष-पीड़ितों को अन्न वितरित किया गया था, वही आभरण मेरी मृत्यु के कारण हुए। क्या अब भी आप यह कहते हैं कि परमेश्वर के न्याय विचार के अनुसार यह संसार शासित होता है? उधर मुहम्मद रज़ा खां ने, देश का सारा चावल खरीद कर गोदाम में बन्द कर रख छोड़ा था, जिसके कारण देश के

हजारो आदमी भूखों छटपटा कर मर गये, परन्तु उसका क्या विचार हुआ ?

बापूदेव—बेटा ! मृत्यु क्या कोई दण्ड है ? मृत्यु की अपेक्षा भीषण दण्ड क्या संसार में और नहीं है ?

नन्दकुमार—स्वाभाविक मृत्यु भले ही दण्ड न हो, परन्तु इस प्रकार के अविचार-द्वारा अपमृत्यु होने की अपेक्षा भीषण दण्ड संसार में और कौन है ? तिस पर यह कलङ्क चिरकाल तक मेरे नाम के साथ संयुक्त रहेगा कि जाली कागज बनाने के अपराध में मुझे फांसी हुई।

बापूदेव—मृत्यु किसी दशा में भी कष्ट का कारण नहीं। मृत्यु को दण्ड नहीं कहा जा सकता। हां, यह अवश्य ही दुःख का विषय है कि जाली कागज बनाने के कलङ्क से तुम्हारा नाम कलङ्कित हुआ। परन्तु यह कलङ्क तुम्हारे निज के कुकर्मों का अवश्यम्भावी फल है।

नन्दकुमार—मैंने ऐसा कौन सा कुकर्म किया है ? क्या आप यह विश्वास करते हैं कि मैंने अपने अनुगत बुलाकीदास की निराश्रया विधवा को ठगने या धोखा देने के उद्देश से थोड़े से रुपयों के लिए जाली तमस्सुक बनाया था ? क्या आप को नहीं मालूम कि जब गङ्गाविष्णु, हिंगूलाल और मोहनप्रसाद ने षड्यन्त्र रचकर बुलाकी की विधवा स्त्री को ठगने की चेष्टा की तो मैंने उस निराश्रया विधवा का पक्ष ग्रहण किया था ? इसी से तो मोहनप्रसाद के साथ मेरी शत्रुता का सूत्रपात हुआ।

बापूदेव—बेटा, मैं अच्छी तरह जानता हूं कि तुमने जाली तमस्सुक नहीं बनाया। परन्तु मनुष्य के जीवन के पूर्व-कृत पाप और कर्त्तव्य की अवहेलना इत्यादि विविध

दृढ़ताएं उसे विपत्ति की ओर खींचती रहती हैं और उन्हीं घटनाओं के स्रोत में बहते बहते वह एक दिन विपत्तिसागर में निमग्न हो जाता है ।

नन्दकुमार—मैंने पूर्व में ऐसे कौन से पाप किये हैं—कौन से कर्त्तव्य की अवहेलना की है—जो मुझे जनसमाज में इस प्रकार निन्दित और कलङ्कित होना पड़ा ?

बापूदेव—कर्त्तव्य-अवहेलना की तो चारों ओर भरमार है। प्रतिदिन, प्रतिक्षण, हम लोग कर्त्तव्य की अवहेलना किया करते हैं । परन्तु तुमने इस जीवन में कितने ही पाप भी किये हैं । क्या तुम हेस्टिंग्स की तरह सदा ही घूस नहीं लेते रहे ? अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए क्या तुमने चालाकी और धोखेबाजी का व्यवहार नहीं किया ? यदि तुम मेरी शिक्षा के अनुसार देश के अत्याचार निवारणार्थ युद्ध-क्षेत्र में प्राण-विसर्जन करने के लिए तैयार होते तो एक ओर तुम्हारे जीवन के कर्त्तव्य का प्रतिपालन होता, दूसरी ओर पापानुष्ठान का मौका भी तुम्हारे सामने कभी न उपस्थित होता । सम्भव था कि युद्ध में विजय प्राप्त करके तुम मुसलमानों के राज्य को सर्वथा विलुप्त कर देने में समर्थ होते।

नन्दकुमार—'परन्तु युद्ध करने पर तुम्हें विजय-प्राप्त होगी' यह बात तो आपने मुझ से कभी नहीं कही । आप तो सदा ही यह कहा करते थे कि 'जय पराजय ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है' । इसी लिए मैंने उस पथ का परित्याग कर कौशल के पथ का अवलम्बन किया था ।

बापूदेव—जय-लाभ की आशा का प्रलोभन देकर यदि मैं तुम्हें युद्धक्षेत्र में भेजता तो तुम अवश्य ही पराजित

होते। मनुष्य को आत्म-विस्मृत होकर युद्धक्षेत्र में अग्रसर होना पड़ता है। जो आत्म-विस्मृत बनने में असमर्थ है, उसके लिए युद्ध-क्षेत्र में अग्रसर होना ही सर्वथा निरर्थक है। तुम में मैंने आत्म-विस्मृति के लक्षण कभी न देखे। वरन् तुम सदा इसी के लिए जी-जान से चेष्टा करते रहे कि किसी तरह दीवानी का पद प्राप्त करें।

नन्दकुमार—मैंने सोचा था कि दीवानी का पद प्राप्त करके मैं देश का अत्याचार दूर कर सकूंगा।

बापूदेव—मैं सदा ही तुम से यह कहता रहा कि तुम्हें दीवानी का पद प्राप्त हो जाने से देश का कोई उपकार होने की सम्भावना नहीं है। तुम्हें देशवासियों का उपकार करने की इच्छा न थी। किन्तु दूसरे लोग देशवासियों पर अत्याचार करते हैं प्रभाव जमाते हैं, यह तुम से नहीं सहन होता था। तुम्हारे हृदय का भाव यह था कि मेरे रहते दूसरा कोई इन पर क्यों प्रभाव जमावे? यही तुम्हारा देशानुराग था, यही तुम्हारी देशहितैषिता थी। मुंह से यह कहते थे कि हम देश के अत्याचार निवारणार्थ दीवानी प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं।

नन्दकुमार—यदि दीवानी हासिल कर पाता तो देश जिस से सुशासित होता, उस के लिए भी उद्योग करता, तब भी तो देश का कल्याण ही होता।

बापूदेव—देश को सुशासित करने के लिये तुम्हें आदमी कहां से मिलते? इस वक्त देश के शासन का भार ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने हाथों में ले रखा है। गंगागोविन्दसिंह, कान्त पोद्दार, राजा राजवल्लभ इत्यादि उसे इस शासन-कार्य में सहायता देते हैं। तुम यदि दीवानी पद प्राप्त करके

देश का शासन भार अपने जिम्मे ले लेते तो तुम्हें भी ऐसे ही आदमियों के द्वारा देश का शासन करना पड़ता। इस वक्त जैसा अत्याचार फैला हुआ है, तुम्हारे सुशासन में भी ऐसा ही अत्याचार जोरों रहता। तुम उस वक्त आत्म-सुख में लीन होकर सब कुछ भूल जाते। प्रजा के क्लेशों की ओर आँख उठा कर भी न देखते।

नन्दकुमार — युद्ध में जय-लाभ करके बंगाल की सूबेदारी प्राप्त करने पर भी तो इन्हीं गंगागोविंद सिंह और कान्त पोद्दार जैसे लोगों के द्वारा शासन-कार्य चलाना पड़ता। ऐसी दशा में आप जो संग्राम में प्राण-विसर्जन करने के लिए कहते थे, उससे भी कोई लाभ न था।

बापूदेव — बेटा! किसी प्रदेश की वायु दूषित हो जाने पर प्रबल आंधी के द्वारा जिस प्रकार वहाँ का वायु विशुद्ध हो जाती है, उसी प्रकार संग्राम के द्वारा जातीय-जीवन समुन्नत हो सकता है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आत्म विस्मृत बनने में असमर्थ रहने पर कोई मनुष्य संग्राम-क्षेत्र में अग्रसर नहीं हो सकता। आत्म-विस्मृत के अभाव में मनुष्य का हृदय घोर स्वार्थपरता और नीचाशयता का आधार बन जाता है। इस देश के लोग क्यों ऐसे नीचाशय और स्वार्थ-परायण बन गये हैं? इसका एक मात्र उत्तर यही है कि इन में आत्म-विस्मृति का अभाव है। यदि एक बार तुम इन बङ्गाभियों को युद्धक्षेत्र में अग्रसर करने में समर्थ होते तो ये अवश्य ही नव जीवन प्राप्त कर सकते, और देश के हित के लिए प्राण निछावर करना सीख जाते। उस वक्त यह बंगाल गङ्गागोविंद और कान्त पोद्दार जैसे नीति-निपुण पण्डितों पिच विसवान-घाती हरिदास वक-पलायन

जैसे धर्म-शिक्षको से परिपूर्ण न रहता।

नन्दकुमार—तो आप का कहना है कि, समामाग्नि प्रज्वलित होने पर देशनिवासियों की प्रकृति और स्वभाव बदल जाता?

वापूदेव—हा, अवश्य ही।

नन्दकुमार—तो ये सब बातें आपने पहले मुझ से समझा कर नहीं कहीं।

वापूदेव—उस वक्त समझा कर कहने से भी तुम्हारी समझ में हर्गिज न आती। दीवानी लाभ की चिन्ता ने पूर्ण रूप से तुम्हारे अन्तरात्मा पर अधिकार जमा रखा था। अन्य कोई चिन्ता, कोई बात तुम्हारे मन में नहीं समाती थी।

नन्दकुमार—आपने मुझे अपने बाहु-बल से मीरजाफर को परास्त करके सूबेदारी प्राप्त करने का परामर्श दिया था। आपका वह परामर्श सर्वथा उचित था, यह मैंने अब जान पाया। परन्तु आप जो यह कह रहे हैं कि ईश्वर के न्याय-विचार के अनुसार ससार शासित होता है इस पर अभी तक मुझे विश्वास नहीं आता। अवश्य ही परमेश्वर परम न्यायवान् हैं, परन्तु उनके राज्य में कितने ही अन्यायाचरण होते हैं।

वापूदेव—ससार में अनेक अन्यायाचरण होते हैं, इस में कोई सन्देह नहीं, परन्तु किसी व्यक्ति का जब तक अपना कोई पाप न हो तब तक कोई उसका बाल भी बाका नहीं कर सकता। परमेश्वर स्वय उसकी रक्षा करते हैं। औरों की बात जाने दो, जिस सावित्री नाम्नी कन्या को तुमने मेरे घर देखा है, इस बेचारी का धर्म नष्ट करने के

लिए एक अङ्गरेज इसे क़ासिम बाज़ार को लिवा ले गया था। परन्तु ईश्वर की कैसी अपार महिमा! अकस्मात् एक ऐसी घटना सघटित हुई कि साहब को अपनी कुप्रवृत्ति चरितार्थ करने के अवसर से वंचित होना पड़ा। ईश्वर की कृपा से इसका धर्म सुरक्षित रहा।

नन्दकुमार—उस कन्या का धर्म सुरक्षित रहा अवश्य, परन्तु यह तो सिर्फ एक घटना हुई, संसार की हज़ारों घटनाओं में ऐसा देखा जाता है कि साधु पुरुषों को बिना ही किसी अपराध के कष्ट-भोग करना पड़ता है। औरों की बात दूर रही, आप जैसा परम धार्मिक पुरुष मैंने दूसरा नहीं देखा। आपकी स्त्री परम साध्वी थीं, अतिशय पुण्यवती थीं। तदतिरिक्त प्रमदा भी साक्षात् भगवती सदृशी, परम साध्वी और पुण्यवती थी। परन्तु क्यों उसे विधवा होना पड़ा, क्यों उसके भाग्य में यह भीषण दुर्घटना घटित हुई?

बापूदेव—प्रमदा के विधवा होजाने पर मेरे हृदय में भी यही प्रश्न उत्पन्न हुआ था। कोई तीन महीने तक मैं इसी विषय का चिन्तन करता रहा। पर अब मुझे यह दृढ विश्वास हो चुका है कि इस घटना में भी ईश्वर का कोई शुभ उद्देश निहित है। परन्तु कौन सा शुभ उद्देश निहित है, यह मनुष्य के जानने की बात नहीं। तथापि अनुमान के द्वारा हम इस घटना के भीतर छिपे हुए दो एक शुभ उद्देशों को जान सकते हैं।

नन्दकुमार—आप के अनुमान में इस के भीतर कौनसा शुभ उद्देश निहित है?

बापूदेव—मैं जिस किसी उद्देश का अनुमान करता हूं, उसे किसी दूसरे के निकट प्रकट नहीं करता, कारण यह

कि अनुमान कभी-कभी भ्रमात्मक भी हो सकता है।

नन्दकुमार—इस वक्त मेरे निकट प्रकट करने में कोई हर्ज नहीं। मैं तो अब इस संसार से जा रहा हूं। आप का मत भ्रमात्मक भी हो, वह औरों पर प्रकट न होगा।

बापूदेव—प्रमदा की इस भाग्य-जनित विपत्ति के भीतर मैं ईश्वर के अनेक शुभ उद्देशों को देख रहा हूं। बेटा, यह संसार चिरकाल के लिए हमारा वास-स्थान नहीं है, संसार सिर्फ मनुष्य का कार्यक्षेत्र है। हमारे सामने अनन्त जीवन वर्त्तमान है। अतएव इस संसार के क्षण-स्थायी कष्टों को ज्ञानी लोग विपत्ति में नहीं गिनते। ऐसा विचार करके देखने पर निश्चय होता है कि प्रमदा की यह विपत्ति कोई भारी विपत्ति न थी। तदतिरिक्त संसार यदि काव्य से सूना हो तो यहां के विषयासक्त स्त्री-पुरुषों का हृदय सर्वथा रूक्ष हो जाय। प्रमदा की विपद्राशि एक काव्य के रूप में उपस्थित हो कर संसार के विषयासक्त स्त्री-पुरुषों के हृदयों को द्रवित करेगी। पितृवत्सल भगवान रामचन्द्र का वनवास न होता तो यह संसार एक अपूर्व काव्य से वञ्चित रह जाता। इसी प्रकार प्रमदा की विपद्राशि संसार में काव्य-वितरण करेगी।

नन्दकुमार—इस प्रकार के विचार में मैं कोई न्यायपरता नहीं देखता। संसार के कल्याण के हेतु प्रमदा को यह दुःसह वैधव्य यन्त्रणा सहनी पड़ी, सो क्यों?

बापूदेव—प्रमदा की इस भाग्य-जनित विपद्राशि के

अन्तर्गत मुझे परमेश्वर के और भी कई शुभ उद्देश दिखाई देते हैं।

नन्दकुमार—सो कौन कौन ?

बापूदेव—वत्स ! यह सब कुछ मैं अनुमान से कह रहा हूं । जिस बात की पूर्ण सत्यता के सम्बन्ध में ठीक निश्चय न हो, उसे किसी दूसरे के निकट प्रकट करना उचित नहीं । क्योंकि इस से किसी भ्रमात्मक मत के फैल जाने की आशंका रहती है । परमेश्वर की माया अगम्य है, मनुष्य उसकी सृष्टि के रहस्यों को नहीं समझ सकता । एक छोटे से वृक्ष के पत्ते के भीतर परमेश्वर के कितने कौशल, कितने रहस्य वर्त्तमान हैं, मनुष्य यह भी नहीं जान सकता । फिर भला ऐसी दशा में हम यह कैसे निर्धारित कर सकते हैं कि उसकी दृष्टि में क्या न्याय है और क्या अन्याय ? इन समस्त विषयों के चिन्तन का अन्त कभी नहीं आता । मैं सिर्फ इतना ही निश्चयरूप में समझ सका हूं कि परमेश्वर मङ्गलमय हैं । विपद-सम्पद, दुःख-सुख—सभी अवस्थाओं में स्नेहमयी जननी की तरह वे हमारा सब का रक्षणावेक्षण करते हैं।

नन्दकुमार—तो मेरी इस अपमृत्यु के अन्तर्गत परमेश्वर का कोई शुभ उद्देश अवश्य ही वर्त्तमान है—इसमें तिनिक भी सन्देह नहीं । परन्तु कौन सा शुभ उद्देश वर्त्तमान है, इसे निश्चय रूप में मनुष्य कभी नहीं कह सकता ।

नन्दकुमार—अनुमान से इस घटना में आपको परमेश्वर का कौन सा शुभ उद्देश प्रतीत होता है ?

बापूदेव—अनुमान से कही हुई बात सर्वदा निर्भ्रान्त ही नहीं होती, वरन् कभी कभी भ्रमात्मक भी हो सकती,

है । इसी तरह, कभी कभी ऐसा भी होता है कि हम लोग जो कुछ अनुमान करते हैं, वही ठीक उतरता है ।

नन्दकुमार—तो आप विचार कर बतलावें कि इस घटना में कौन से शुभ उद्देश के अस्तित्व की सम्भावना हो सकती है ।

बापूदेव—मेरा अनुमान है कि तुम्हारी इस अपमृत्यु के द्वारा देश का अत्याचार अधिकांश में दूर हो जायगा ।

नन्दकुमार—यह तो आप बिलकुल ही उलटी बात कह रहे हैं । इस के विपरीत यदि मैं जीवित रहता तो घूसखोर मिथ्यावादी अङ्गरेजों के ऊपर दो एक अभियोग चलाता । मेरी मृत्यु के बाद तो कोई चूं भी नहीं करेगा । हेस्टिंग्स और बारवेल दिन रात घूस लिया करेंगे, लोगों का सर्वनाश करके देश का सारा धन बटोर लेंगे । सुना है, मेरे मुक़द्दमे के उपलक्ष में सुप्रीम कोर्ट के जजों को हेस्टिंग्स ने बहुत कुछ घूस देनी स्वीकार की है । वह सब रुपया इस देश के लोगों का सर्वनाश करके ही तो इकट्ठा होगा । मैं तो नहीं समझता कि मेरी मृत्यु के द्वारा देश का कुछ भी उपकार हो ।

बापूदेव—वत्स ! तुम कार्य-जगत की फलाफल-शृंखला को नहीं देखते । मेरी समझ में ऐसा आता है कि हेस्टिंग्स और इम्पी ने षडयन्त्र करके तुम्हारा प्राणनाश किया—इस विषय पर विलायत में घोर आन्दोलन मचेगा । सम्भव है, नरहत्या के अपराध में इनका भी विनाश हो । भद्र-समाज में ये मुँह दिखाने योग्य न रह जायँगे । बारवेल इत्यादि घूसखोर अङ्गरेजों के प्रति सर्वसाधारण के चित्त में घृणा उत्पन्न होगी, और ऐसी दशा में ईस्ट इण्डिया कम्पनी

भारतवर्ष में सत्पुरुषों को भेजने के लिए बाध्य होगी। इम्पी और हेस्टिंग्स को इस ब्रह्महत्या के लिए अनेक कष्ट भोगने पड़ेंगे, इस में रत्ती भर भी सन्देह नहीं।

नन्दकुमार—यदि सचमुच ही मेरी मृत्यु से इस देश के निवासियों का उपकार हो तो मैं अत्यन्त संतुष्ट चित्त से मृत्यु का आलिंगन करने में समर्थ होऊँगा।

बापूदेव—मैं निश्चय कह रहा हूं कि तुम्हारी मृत्यु के द्वारा देश का विशेष कल्याण साधित होगा।

नन्दकुमार—मेरी मृत्यु के पहले क्या आप और एक दिन मुझे देखने आवेंगे?

बापूदेव—पांचवीं अगस्त तुम्हारी फांसी का दिन निर्धारित हुआ है। चौथी तारीख को मैं फिर यहां आकर तुम्हारे साथ अन्तिम साक्षात् कर जाऊँगा।

यह कह कर बापूदेव चलने को तैयार हुए। महाराज नन्दकुमार, गुरुदेव के चरणों में प्रणाम कर कारागार के द्वार तक उनके पीछे, पीछे चले आये।



द्वितीय बार गुरु दर्शन ।

वापूदेव शास्त्री ने महाराज नन्दकुमार से जो कुछ कहा था, उनमें से कुछ भी न मिथ्या हुआ। समय पर उनके सभी वाक्य सत्य सिद्ध हुए।

इस घटना के प्राय दस-बारह बरस बाद नन्दकुमार की हत्या के लिए इङ्गलैंड में इलाइजा इम्पी के विरुद्ध एक गुरुतर अभियोग उपस्थित हुआ। इस अभियोग में इम्पी यद्यपि दण्डित नहीं हुए, तथापि भद्र-समाज में वे मुँह दिखाने योग्य न रह गये। उनका नाम आज भी इतना कलङ्कित हो रहा है कि इलाइजा इम्पी के पुत्र वारवेल इम्पी ने अपने पिता के कलङ्क का निराकरण कराने के लिए इम्पी की मृत्यु के बाद भी बहुत कुछ उद्योग किया। थरन्टन साहब जिस वक्त अङ्गरेजी शासनाधीन भारतवर्ष का इतिहास लिख रहे थे, उस वक्त इलाइजा इम्पी के पुत्र उपर्युक्त वारवेल इम्पी ने थरन्टन साहब से अनुरोध किया था कि वे अपने इतिहास में इलाइजा इम्पी के पक्ष का समर्थन करें। परन्तु थरन्टन साहब ने इस पर कुछ ध्यान न दिया। इसके बाद वारवेल इम्पी ने पिता के कलङ्क को मिटाने के लिए स्वयं ही एक पुस्तक लिखी। परन्तु अङ्गारे को जितना ही धोइये, उतना ही काला पड़ता है। वारवेल इम्पी किसी तरह पितृकलङ्क को दूर करने में समर्थ न

हुए, वरन् वह कुछ और अधिक स्पष्ट हो गया।

इधर टामस बेबिंग्टन मेकाले ने इम्पी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह इङ्गलण्ड के सर्व साधारण के हृदय में दृढतापूर्वक जमा हुआ है। जब तक चन्द्र-सूर्य रहेंगे, तब तक मेकाले की यह बात सभ्यजगत् के सामने ज्वलन्त अक्षरों में देदीप्यमान रहेगी—

"Impey sitting as a judge put a man unjustly to death in order to serve a political purpose. No other such judge has dishonoured the English Ermine, since Jafferies drank himself to death in the Tower —"

इम्पी ने विचारासन पर बैठकर अन्यायपूर्वक एक मनुष्य हत्या की थी। नरपिशाच जेफरिज की मृत्यु के बाद इम्पी के अतिरिक्त और किसी के द्वारा विचारासन इस प्रकार कलंकित नहीं हुआ।

हेस्टिंग्स को भी कुछ थोड़ा क्लेश न हुआ। कोई आठ बरस तक अभियुक्त के वेश में उन्हें कालयापन करना पड़ा।

वास्तव में यदि नन्दकुमार की मृत्यु घटना और हेस्टिंग्स की अन्यान्य कुक्रियाओं के सम्बन्ध में इंगलैंड में आन्दोलन न मचता तो आज भी भारतवर्ष में अनेकानेक इम्पी विचारासन को कलङ्कित करते, और अनेकानेक हेस्टिंग्स, वेल विडियर यहां विचरण करते। सिर्फ समय की उन्नति से ही देश की अवस्था उन्नत नहीं होती, किन्तु समय की उन्नति के साथ ही साथ जनसाधारण के मतामत की उन्नति

होने और जनसाधारण में समाज के प्रचलित पापों और कुकार्यों के प्रति घृणा उत्पन्न होने पर ही देश की अवस्था उन्नत या रूपान्तक होती है।

जगद्विख्यात सद्वक्ता महात्मा एडमण्ड बर्क की सुगम्भीर कण्ठध्वनि से सारा इङ्गलैंड गूंज उठा। अत्याचार-पीड़ित बङ्गवासियों की दुःख कहानी सुन कर इङ्गलण्ड के जनसाधारण का हृदय विगलित हुआ। अत्याचार-निवारणार्थ विविध उपायों का अवलम्बन किया गया।

× × ×

चौथी अगस्त को बापूदेव शास्त्री ने पुनः कारागार में आकर महाराजा नन्दकुमार से साक्षात् किया।

आज महाराज नन्दकुमार बड़े प्रसन्न दिखाई दिये मेरी मृत्यु के द्वारा देश का विशेष उपकार होगा—यही विश्वास उनके हृदय में शान्ति और आनन्द की धारा बहा रहा था।

बापूदेव ने जैसे ही अन्दर प्रवेश किया, महाराज नन्दकुमार ने उनके चरणों में प्रणाम करते ही पूछा—"गुरुदेव, मेरा यह कलंक कितने दिनों में दूर होगा।"

बापूदेव—वत्स, बंगवासीगण जिस समय स्वतन्त्र-खोज के द्वारा बंगाल का इतिहास लिखेंगे, उस समय देश के लोगों को ज्ञात हो जायगा कि तुम बिना ही अपराध के दण्डित हुए थे; देश-निवासी उस वक्त यह जान लेंगे कि अङ्गरेजों ने कौंसिल पुस्तक में तुम्हारे विरुद्ध जो कुछ लिखा है, वह सब मिथ्या है। उसी समय देश के लोग यह समझ सकेंगे कि तुमने कुचरित्र अङ्गरेजों के अत्याचार का अवरोध करना चाहा था, इसी लिए वे तुम्हारे चरित्र के

सम्बन्ध में अनेकानेक मिथ्या अपवादों का उल्लेख कर गये हैं। परन्तु बंगाल में तुम कभी एक देशहितैषी व्यक्ति नहीं गिने जाओगे। बहुत कालपर्यन्त इस देश में तुम्हारे जैसे स्वार्थपरायण आदमी देश-हितैषिता का बाना बना कर अपने को देशहितैषी प्रकट किया करेंगे। परन्तु भावी वंशज उनकी वास्तविक स्थिति को सहज ही पहिचान लेंगे।"

इस प्रकार की बातचीत के अन्तर महाराज नन्दकुमार ने बापूदेव शास्त्री के हाथ में, फ़ार्सी भाषा में लिखे हुए दो टुकड़े कागज़ के दिये और कहा—"इन में से एक कागज़ फिलिप फ्रांसिस को दे दीजियेगा और एक जनरल क्लेवारिं को।" बापूदेव शास्त्री ने दोनों काग़ज़ ले लिये और नन्दकुमार से बिदा लेकर चले आये।

"हेस्टिंग्स और सुप्रीम कोर्ट के जजों ने षड़यन्त्र करके मुझे प्राणदण्ड दिया है"—इस कागज़ में यही लिखा था। फिलिप फ्रांसिस इस कागज़ को अपने साथ इङ्गलेण्ड ले गये थे। परन्तु जनरल क्लेवारिं ने इसे यहीं कौंसिल में पेश किया। उस समय हेस्टिंग्स ने कहा कि इसकी एक प्रतिलिपि सुप्रीम कोर्ट के जजों के पास पहुचनी चाहिये। हेस्टिंग्स ने सुप्रीम कोर्ट के जजों के साथ मिल कर जैसा भीषण व्यापार आरम्भ किया था, उससे फिलिप फ्रांसिस और कर्नल मिन्सन भी भयभीत हो गये थे। उन्होंने सोचा कि हेस्टिंग्स और इम्पी जैसे नरपिशाच इस कागज़ को जेनरल क्लेवारिं का जाली बनाया हुआ बता कर दो गवाह पेश करके उन्हें भी कारागार में भेज सकते हैं। इस आशङ्का से उन्होंने कहा कि जजों को इस कागज़ की नक़ल देने की कोई आवश्यकता नहीं। इससे जजों के

विरुद्ध कितने ही अपवादों का उल्लेख है; अतएव इसे जला देना उचित है।" यह कह कर उन्हों ने उस कागज को जला डाला। परन्तु हेस्टिंग्स ने गुप्त रूप से उसकी एक प्रतिलिपि इलाइजा इम्पो के पास भेज दी थी।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

ब्रह्म हत्या।

चौथी अगस्त शुक्रवार को सायंकाल के समय कारागार के अध्यक्ष माकेबी साहब बड़े दुखित भाव में कारागार के भीतर आये, और महाराज नन्दकुमार के पास आकर बैठ गये। वे महाराज को जो सम्वाद देने आये हैं, वह उनके मुँह से न निकला। अतएव महाराज के साथ उन्होंने अन्यान्य बातें करनी शुरू कीं। महाराज नन्दकुमार प्रसन्नता पूर्वक उन से वार्तालाप करने लगे। माकेबी साहब इस प्रकार महाराज को प्रसन्न-मुख बातचीत करते देखकर बड़े चकित हुए। मन ही मन प्रश्न उठा—"महाराज को क्या यह नहीं मालूम कि कल हमें फाँसी होगी?"

बहुत से वार्तालाप के अनन्तर माकेबी ने आँखों में आँसू भर कर कहा—"महाराज! मेरा अन्तिम सम्मान-चिन्ह ग्रहण कीजिये। कल आप को इस संसार से कूच करना पड़ेगा। यदि आप को किसी बात की आवश्यकता

हो, अथवा किसी से आप मिलना चाहते हों तो मुझ से कहें। यथाशक्ति मैं आप की आज्ञा का प्रतिपालन करने में त्रुटि न करूंगा।"

महाराज नन्दकुमार ने कहा—"आप की सज्जनता के लिए मैं आप का परम कृतज्ञ हूं। मेरे भाग्य में जो कुछ बदा था, वह हुआ। भगवान् की इच्छा को कोई नहीं मेट सकता। फिलिप फ्रांसिस, जनरल क्लेवारिंग और कर्नल मन्सन से आप मेरा आशीर्वाद कहें, और कहें कि कृपा कर वे मेरे गुरुदास की देख भाल करते रहें।"

ये बातें कहते वक्त भी महाराज नन्दकुमार किञ्चित मात्र उदास न दिखाई दिये। खेद-व्यञ्जक एक गहरी सांस भी उन्हों ने न ली। इसके थोड़ी ही देर बाद महाराज के दामाद राय राधाचरण रायबहादुर ने उन से सदा के लिए विदा मांगी। चलते वक्त राय राधाचरण रोने लगे, पर महाराज नन्दकुमार ने स्वयं उन्हें सान्त्वना दी।

माक्रेबी साहब के चले जाने के बाद, महाराज नन्दकुमार सायङ्काल की सन्ध्या क्रिया समाप्त करके, अपना हिसाब-किताब देखने लगे। राजा गुरुदास को किस प्रकार अपनी जायदाद का काम सँभालना पड़ेगा, इस सम्बन्ध में उन्होंने बहुत सी बातें लिख कर रख छोड़ीं। उन की दृढ़ता को देखकर माक्रेबी साहब बड़े विस्मित हुए।

रात में महाराज नन्दकुमार को खूब नींद आई। सवेरा होने के पहिले ही प्रायः दो घण्टे तक वे भगवान का नाम जपते रहे। महाराज नन्दकुमार समय-समय पर अनेक धर्म-सङ्गीतों की रचना किया करते थे। इस अवसर पर उन्होंने कई एक स्वरचित पद और भजन गाये।

सबेरा हुआ। हजारों आदमी कारागार के दरवाजे पर आ इकट्ठे हुए। इन में कितने ही महाराज नन्दकुमार के आत्मीय स्वजन भी थे। बहुतों को अब भी यह विश्वास नहीं आता था, कि महाराज नन्दकुमार को फांसी होगी। कितने ही आपस मे एक दूसरे से कहने लगे "क्या यह भी सम्भव है! कम्पनी के आदमी क्या ब्रह्महत्या करेंगे ?" किसी किसी ने कहा—"फिरङ्गियों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं। अर्थलोभ में इन्होंने स्त्री-हत्या तक की है।"

साढे सात बजे के वक्त जेल के अध्यक्ष मार्कीवी साहब महाराज नन्दकुमार के सामने आ उपस्थित हुए।

महाराज ने कहा—"मैं खुद ही तैयार हूं। परन्तु कोई अन्य जातीय पुरुष मेरे मृत शरीर का स्पर्श न करे,—इसके लिए मैंने अपने अनुगत तीन ब्राह्मणों से आज सवेरे के वक्त यहां आ जाने के लिए कह दिया था। वे अभी तक नहीं आये।"

मार्कीवी ने कहा—"आप इसके लिए उत्कण्ठित न हों। मैं उन के आ जाने का इन्तजार करूंगा।"

कुछ ही देर में महाराज के अनुगत वे तीनों ब्राह्मण रोते चिल्लाते आ उपस्थित हुए। नन्दकुमार के चरणों में पडकर रोते-रोते कहने लगे—"प्रभो हम लोगों का निर्वाह कैसे होगा ?"

महाराज नन्दकुमार ने उन्हें धीरज बँधाते हुए कहा—"तुम लोग कुछ चिन्ता न करो, राजा गुरुदास मेरे सभी आश्रितों का प्रतिपालन करेंगे।"

इसके बाद महाराज पालकी पर सवार हुए। जिस स्थान पर फांसी का काष्ठ तैयार हुआ था, वेहरा लोग पालकी को उसी

स्थान की तरफ ले चले। खिदिरपुर के पुल के उत्तर पूरब की ओर स्थित जिस स्थान को आज कल कुलीबाजार कहते हैं, वहीं पर महाराज नन्दकुमार को फांसी लगी थी। माक्रेबी साहब एक दूसरी पालकी पर महाराज की पालकी के पीछे पीछे चले।

फांसी-काष्ठ के चारों तरफ हजारों आदमी स्तम्भित खड़े थे। कलकत्ता इस वक्त बहुत छोटा सा शहर था। कुल आबादी दस हजार से अधिक न थी। इन में से लगभग छ सात हजार आदमी नन्दकुमार की फांसी के स्थान पर उपस्थित थे।

इन उपस्थित लोगों के करुण-क्रन्दन और हाहाकार को सुन कर माक्रेबी इत्यादि सभी आंसू बहाने लगे। परन्तु महा-राज नन्दकुमार अब भी प्रफुल्लित-मुख बैठे हुए हैं।

पालकी से उतरते ही महाराज ने पुन. चारों ओर नजर घुमाकर देखा परन्तु उनके अनुगत वे तीनों ब्राह्मण जो उनके मृत शरीर को ले जाने के लिए आये थे, जब उन्हें इधर उधर कहीं न दिखाई दिये तो वे फिर किंचित उत्कण्ठित हुए।

माक्रेबी साहब ने कहा—"आप कुछ चिन्ता न करें जब तक वे (ब्राह्मण) नहीं आ जावेंगे, हम लोग कोई कार्रवाई नहीं करेंगे।"

हजारों की भीड़ में धींगा-मुश्ती के साथ बड़े कष्ट पूर्वक उन ब्राह्मणों को वहां तक पहुंच मिला, माक्रेबी साहब के सामने आ उपस्थित हुए। उनके आते ही माक्रेबी साहब ने अन्यान्य लोगों से हट जाने के लिये कहा। माक्रेबी का ख्याल था कि शायद महाराज इन ब्राह्मणों से गुप्तरूपेण कुछ कहना चाहें। परन्तु नन्दकुमार ने माक्रेबी साहब को

निषेध करते हुए कहा—"लोगों को हटाने की कोई आवश्यकता नहीं।"

तदनन्तर महाराज फांसी-काष्ठ के पास आये। किसी के बिना ही कहे दोनों हाथ स्वय ही पीठ की तरफ रख लिए और अपने अनुगत एक ब्राह्मण से हाथ बांधने के लिए कहा। ब्राह्मण ने पास आकर रोते रोते महाराज के हाथ बांध दिये।

फासी के काष्ठ पर चढ़ने के बाद, माक्रेबी साहब ने कहा—"आप स्वय जिस समय इशारा करेंगे, उसी समय गले में रस्सी डाली जावगी।"

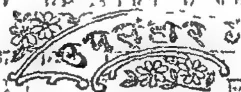
महाराज कुछ देर तक नेत्र मूंद कर परमेश्वर का चिन्तन करते रहे। हाथ बधे हुए थे। दो तीन मिनट के बाद उन्हों ने पाव से इशारा किया। मुह ढांकने के वक्त माक्रेबी साहब ने एक सिपाही को सामने कर के कहा—"यह व्यक्ति भी ब्राह्मण है, यही आप का मुह ढाक देगा।"

महाराज ने कहा, 'मेरे निजी आदमी यहां हैं'। उनके अनुगत उन्हीं ब्राह्मणों ने वस्त्र द्वारा उनका मुह ढाक दिया। गले में रस्सी डाली गई, पाव के नीचे का काष्ठ गिरते ही दर्शक समूह में घोर आर्त्तनाद और करुण कोलाहल उपस्थित हुआ। हजारों आदमी तत्क्षण दौड़ दौड़कर गङ्गा में कूदने लगे। "ब्राह्म हत्या हुई"—"ब्रह्म हत्या हुई"—"कलकत्ता अपवित्र हुआ"—"देश पाप से परिपूर्ण हुआ"—"फिरङ्गियों को धर्माधर्म का ज्ञान नहीं"—इस प्रकार चीत्कार करते करते दिशाओं के ज्ञान से शून्य हो ऊपर को मुह उठाये लोग चारों ओर दौड़ने लगे।

विचारवान् भद्र पुरुषों ने उस दिन कलकत्ते में भोजन नहीं किया। सभी गङ्गापार हावड़ा शिवपुर इत्यादि स्थानों में जाकर भोजनों का प्रबन्ध करने लगे।

इसके दूसरे दिन कलकत्ते के कितने ही ब्राह्मण और प्रतिष्ठित पुरुषों ने कलकत्ते का घर मकान छोड़ कर गङ्गा के उस पार अपने अपने घर बनवाने शुरू कर ब्रह्म हत्या के द्वारा अपवित्र हुआ कह कर वे कलकत्ते को छोड़ गये।

इस ओर ढाका, राजशाही इत्यादि विभिन्न स्थानों में यह समाचार फैलते ही सारे देश में हाहाकार मच गया। सच्चे देशहितैषी न होने पर भी महाराज नन्दकुमार को देश के अधिकांश निवासी एक धार्मिक और परोपकारी पुरुष मानते थे।



महाराज नन्दकुमार की फाँसी के कई दिन बाद सुप्रीम कोर्ट के जजों ने कमालुद्दीन अली खाँ के उठाये हुये पहिले मुक़द्दमे का विचार प्रारम्भ किया। उस मुक़द्दमे में महाराज नन्दकुमार, फाउक साहब और राय राधाचरण अभियुक्त थे। परन्तु नन्दकुमार इहलोक से कूच कर चुके थे। राधाचरण का विचार सुप्रीम कोर्ट की अधिकार-सीमा के अन्तर्गत है या नहीं,—इस सम्बन्ध में बहुत कुछ वाद—

विवाद उपस्थित हुआ। अन्तत. फाउक साहब का विचार प्रारम्भ होने पर उन के एक आत्मीय स्वजन ने बारवेल साहब को भय दिखाते हुए लिख भेजा कि यदि इस मुकदमे में फाउक साहब को कुछ दण्ड हुआ तो मैं आप की सारी कुक्रियाओं को प्रकट कर दूंगा। बारवेल साहब ने इस धुड़की से डर कर सुप्रीम कोर्ट के जजों को लिखा कि फाउक साहब को बहुत हलका दण्ड दिया जाय। जजों ने फाउक साहब के ऊपर सिर्फ कुछ रुपया जुर्माना कर दिया।

बापूदेव शास्त्री कालीघाट छोड़ कर काशी चले आये। मदनदत्त ने इससे पहले अपनी दोनों कन्याओं को कलकत्ते के निवासी दो स्वर्ण-वणिकों को ब्याह दिया था। बापूदेव ने अपना कालीघाट वाला मकान सावित्री के स्वामी और मदनदत्त को दे दिया। शास्त्री जी के काशी को प्रस्थान करते समय सावित्री, जगदम्बा और अहल्या पृथ्वी पर गिर कर इन के चरणों में प्रणाम करती हुई कहने लगीं—"प्रभो! हम आप को साक्षात् भगवान समझती रहीं हैं, हमें यह वर दीजिये कि हमारे वंशजों को कभी तन्तुकारी अथवा स्वर्णकारी का व्यवसाय न करना पड़े। इन लोगों के प्रति जो घोर अत्याचार हुआ है, उसकी याद आते शरीर काँप उठता है।"

बापूदेव ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"तन्तुकार और स्वर्णकार आदि व्यवसायियों को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्याचार से अत्यन्त पीड़ित होना पड़ा है, परमेश्वर करे भविष्य में इन लोगों के वंशज राज-सरकार में उच्च पद प्राप्त करें, और राज पुरुषों के कृपा-भाजन हों।"

वर्तमान समय में तन्तुकार, स्वर्णकार तथा तेली इत्यादि नीच जातियों के लोगों में कितने ही डिपटी कलेक्टर और सबजजों के पद पर काम कर रहे हैं। कितने ही राय बहादुर, राजाबहादुर आदि उपाधियों से विभूषित हैं। सम्भवतः बापूदेव के ही आशीर्वाद से इन्होंने इस प्रकार उन्नति-लाभ किया है। तन्तुकार लोगों में से कितने ही सावित्री के गर्भ-जात सन्तानों के वंशज हैं, इस में कोई सन्देह नहीं। इसी प्रकार अनेकानेक स्वर्णकार जगदम्बा और अहल्या के गर्भजात सन्तानों के वंशज प्रतीत होते हैं।

रामा भी विवाह कर के कलकत्ते ही में रहने लगी। सावित्री के भाई कालाचाँद ने सावित्री के अनुरोध से दूसरा विवाह कर लिया।

हरिदास तर्कपञ्चानन वृद्धावस्था में अन्धे हो गये, और बुढ़ापे मे बहुत कुछ कष्ट झेल कर उन्हें इहलोक से प्रस्थान करना पड़ा।

बापूदेव कालीघाट से विदा हो कर नवकिशोर से मिलने के लिए शोभाबाजार आये। नवकिशोर शोभाबाजार ही के पास किसी जगह पर रहते थे। नन्दकुमार के मुकद्दमे के दिनों में बापूदेव के साथ नवकिशोर चट्टोपाध्याय की जान पहिचान हुई थी। नवकिशोर पहले ही से बापूदेव को जानते थे, परन्तु बापूदेव इसके पूर्व उन्हें नहीं पहिचानते थे।

नवकिशोर की जबानी उनकी माता का मृत्यु-वृत्तान्त सुन कर बापूदेव ने कहा—"बेटा हमारे देश में प्रचलित जाति-भेद और कुलाभिमान विविध बुराइयों और विपदाओं का कारण हो रहा है। मेरे वृद्ध प्रपितामह वासुदेव शास्त्री ने शाक्त होने पर भी, चैतन्य-मत-प्रचार के लिए विशेष

उद्योग किया था। सुना है, वह कहा करते थे कि चैतन्य के मत सर्वमान्य और सर्वसम्मत हो जाने पर देश की जाति-भेद प्रथा, अवश्य ही दूर हो जायगी। क्या यह थोड़े दुख का विषय है कि तुम्हारी माता एक परम साध्वी ब्राह्मण कन्या के छुए हुए जल को बाग्दी के घर की दासी ने अपवित्र समझा।"

नवकिशोर—"बाग्दी के घर की दासी नहीं, वरन वह जगन्नाथ विश्वास के घर की दासी थी। जगन्नाथ विश्वास शूद्र है।"

वापदेव ने कुछ हँसते हुए कहा—"बेटा! जगन्नाथ विश्वास शूद्र नहीं। जगन्नाथ और छिदाम के पिता का नाम निताई बाग्दी था। इनकी माता का नाम रायमणि था। निताई त्रिवेणी में रहते थे। एक बकरी की चोरी के अपराध में हुगली के फौजदार के कर्मचारी ने उन्हें यहाँ तक पीटा कि उनके प्राण ही निकल गये। रायमणि अपने दोनों बालकों के सहित त्रिवेणी में ही जगन्नाथ वाचस्पति के घर के पड़ोस में रहती थीं। तुम्हारे बहनोई शिवदास वन्द्योपाध्याय ने रायमणि को कुपथगामिनी किया। बाद में जब शिवदास के कुकार्य के प्रकट होने की नौबत आई तो शिवदास और हरिदास तर्कपञ्चानन ने मिलकर रायमणि को विष दे मार डाला। उसके दोनों बालक सर्वथा निराश्रय बन गये। शिवदास और हरिदास मेरे साथ एक ही पाठशाला में शास्त्राध्ययन करते थे। उक्त बालकों को विपदमुक्त करने के उद्देश्य से मैंने अपने आसामी कृपाराम की मा से इन दोनों बच्चों का पालन पोषण करने के लिए कहा। उसने इन्हें पाला पोसा, अन्यान्य लोगों के पूछने पर वह इन बालकों को शूद्र बतलाया

करती थी, इसी से ये शूद्र प्रसिद्ध हो गये।"

यह बात सुनकर नवकिशोर बड़े चकित हुए। शिवदास बन्द्योपाध्याय ने मरते समय जिस लिए "रायमणि, रायमणि," कह कर चीत्कार किया था, उसका गूढ़ तत्व उन्होंने अब जान पाया।

पुनः वापूदेव कहने लगे — "हमारे देश में इस जाति-भेद-प्रथा के कारण ही वास्तविक इतिहास का भी अभाव हो रहा है। निम्न श्रेणियों के लोग जब-जब समुन्नत हो कर किसी प्रदेश के राजा अथवा प्रभावशाली पुरुष बने, तब-तब उन्होंने अपने पूर्व-पुरुषों के नाम-धाम को छिपाने की चेष्टा की, कभी-कभी उन्होंने अपने पूर्व-पुरुषों के जन्म अथवा उन्नति-विकास के साथ किसी अलौकिक या ईश्वरीय घटना को सम्बद्ध कर दिया है।*परन्तु जिस जाति के लोगों का सच्चा इतिहास नहीं, उसमें जातीय जीवन भी नहीं होता। वत्स नवकिशोर! मैं तुमसे एक अनुरोध करता हूं — तुम मेरे शिष्य नन्दकुमार के जीवन का इतिहास लिख रखना। अङ्गरेजों ने अपने सरिश्ते के कागजपत्रों में नन्दकुमार को समय-समय पर मिथ्यावादी, प्रवञ्चक और धूर्त्त लिख रखा है। नन्दकुमार अङ्गरेजों के अत्याचार का अवरोध करते थे, इसी कारण उनके विषय में उन्होंने इच्छापूर्वक ये सब झूठी बातें लिखी हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आदमियों के समान झूठे आदमी इस संसार में और हैं या नहीं — इसमें सन्देह है। इन के प्रधान गवर्नर

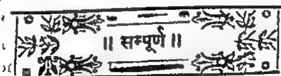
* The story or Legend about the origin of Bishnupur Raj family will prove this fact

† Vide note (26) in the appendix

क्लाइव साहब ने एक जाली कागज़ बनाकर उमीचंद को ठगा था । सिर्फ़ इनके सरिश्ते के कागज़ पत्रों को देख कर यदि इतिहास का संग्रह किया जायगा तो वह भ्रमात्मक होगा । तुम ऐसी चेष्टा करना, जिस से देश के सच्चे इतिहास का संरक्षण कर सको ।"

यह कह कर बापूदेव शास्त्री नवकिशोर से विदा ले काशी को चल दिये ।

नवकिशोर ने उस समय की बहुत सी बातें लिख कर रख छोड़ी थीं । उन्हीं की लिखी हुई पुस्तक को देख कर "महाराज नन्दकुमार" अथवा तत्कालीन बंगाल की सामाजिक अवस्था की रचना की गई है ।



APPENDIX.

KEY TO

MAHARAJAH NANDA KUMAR KO PHANSI.

NOTE

After the defeat of Seraja Dowlah, in 1756, the new Nawab was made to engage, "that he or his officers should, on no account interfere with the Gomastas of the English, but that care should be taken that their business might not be obstructed in any way" And these Gomastas so well availed themselves of this new aquired power, that after the Company, had made their first Nawab Jaffar Ally Khan, in the year 1757, their black Gomastas in every district assumed a jurisdiction which even the authority of Rajas and Zemindars in the country durst not withstand Instances of this influence, so detrimental to the country, are to be met with in every page of Mr Vansittart's Narrative —*Bolts on India affairs, page 191*

NOTE 2

His (Clive s) family expected nothing good from such slender parts and such a head-strong temper It

for him, when he was in his eighteenth year, a writership in the service of the East India Company, and shipped him off to make a fortune or to die of a fever at Madras —*Lord Macaulay*

Clive was a man to whom deception, when it suited his purpose, never cost a pang —*James Mill*

Whether the young adventurer, ('Hastings') when once shipped off, made a fortune or died of a liver complaint, he equally ceased to be a burden to any body —*Macualay on Hastings*

NOTE 8

"But for the better understanding of the nature of these oppressions, it may not be improper to explain the methods of providing an investment of piece goods as conducted either by the export-warehouse keeper and the Company's servants at the subordinate factories, or by English gentlemen in the service of the Company, as their own private ventures In either case, factors or agents called Gomastas are engaged at monthly wages by the gentleman's Banyan, there being generally, on each expedition into the country, one head Gomasta, one mohuree or clerk, and one cash-keeper appointed with some peons and hircarahs, the latter being for the purpose of intelligence or carrying letters to and fro, which, for want of regular posts, every merchant does at his own expence

These are despatched, with a Perwanah from the Governor of Calcutta, to the Zemindar of the district where the purchases are intended to be made, directing him not to impede their business, but to give them every assistance in his power

Upon the Gomasta's arrival at the Aurung, or manufacturing town, he fixes upon a habitation which he calls his Cutchery, to which, by his peons and hircarahs he summons the weavers, whom, after receipt of the money despatched by his masters, he makes to sign a bond for the delivery of a certain quantity of goods, at a certain time and price, and pays them a part of the money in advance The assent of the poor weaver is in general not deemed necessarry, for the Gomastas, when employed in the Company's investment, frequently make them sign what they please, and upon the weavers refusing to take the money offered, it has been known they have had it tied in their girdles, and they have been sent away with a flogging

A number of these weavers are generally also registered in the books of the Company's Gomastas, and not permitted to work for any others, being transferred from one to another as so many slaves subject to the tyranny and roguery of every succeeding Gomasta

The cloth, when made, is collected in a warehouse for the purpose called a Khattab where it is kept marked with the weaver's name, till it is conveni-

ent for the Gomasta to hold a Khattab, for fixing the price of each piece

The roguery practised in this department is beyond imagination, but all terminates in the defrauding of the poor weaver, for the prices which the Company's Gomastas fix upon the goods, are in all places at least fifteen percent, and in some even forty percent, less than the goods so manufactured would sell for in the public bazar, or market, upon a free sale. The weaver therefore, desirous of obtaining the just price of his labour, frequently attempts to sell his cloth privately, to others particularly to the Dutch and French Gomastas, who are always ready to recieve it. This occassions the English Company's Gomasta to set his peons over the weaver, to watch him, and not unfrequently to cut the piece out of the loom when nearly finished With this power and influence, the Gomastas, in the meantime, are never deficient in providing as many goods as they can on their own accounts, and for the Banyans of their English employers.

In the time of the Mogul Government and even in that of the Nawab Aliverdy Khan, the weavers manufactured their goods freely, and without oppression.—*Bolt on India affairs, pages 192—94*

NOTE 4

With every species of monopoly, therefore, every kind of oppression has daily increased, in

so much that weavers, for daring to sell their goods (to other people), and Dullas or Pykars for having contributed to or connived at such sales, have, by the Company's agent, been frequently seized and imprisoned, confined in irons, fined considerable sums of money, flogged, and deprived, in the most ignominious manner, of what they esteem most valuable, their caste

Weavers also upon their inability to perform such agreements as have been forced from them by the Company's agents, universally known in Bengal by the name of Mutchulkas, have had their goods seized, and sold on the spot to make good the deficiency —*Bolts on India affairs, page 194*

NOTE 5

Eight members of the Council, Messrs Johnstone, Watts, Marriot, Hay, Gartier, Billers Batson and Amyatt recorded their opinion, that a regard for the interests of their employers compelled them to call upon the Nawab to revoke his determination to relieve the inland trade of his dominions from duties, and to require him, while suffering the servants of the Company to trade on their own account without charge, to tax the trade of his own subjects for their benefit Selfishness has rarely ventured to desplay itself under so thin a veil as was believed sufficient on this occasion to disguise it —*Thornton's History of British Empire in India, Vol I, page 439*

NOTE 6

The trading therefore in salt, beetle and tobacco, having been one cause of the present disputes, I hope these articles will be restored to the Nawab, and your servants absolutely forbidden to trade in them. This will be striking at the root of the evil.

As a means to alleviate in some measure, the dissatisfaction that such restrictions upon the commercial advantages of your servants may occasion in them, it is my full intention not to engage in any kind of trade myself.—*Extract from Clive's letter, dated Berkeley square, the 27th April 1794.*

NOTE 7

"You are hereby ordered and directed, as soon after the receipt of this as may be convenient, *to consult the Nawab* as to the manner of carrying on the inland trade in salt, beetle-nut and tobacco.

You are therefore to form a proper and equitable plan for carrying on the said trade and transmit the same to us. In doing this as before observed you are to have a particular regard to the interest and entire satisfaction of Nawab. In short this plan must be settled *with His free will and consent.*—*Extract from the Court of Director letter 1st June 1794.*



NOTE 8,

AT A SELECT COMMITTEE, HELD AT FORT WILLIAM,

The 10th August 1799

PRESENT

William Brightwell Sumner, Esq —*President.*

Harry Verelst, Esq

In conformity to the Honourable Company's order contained in their letter of the 1st June, 1794, the committee now proceed to take under their consideration the subject of the inland trade in the articles of salt, beetle-nut and tobacco, the same having frequently been discoursed of at former meetings, and Mr Sumner having lately collected the opinions of the absent members at large on every circumstance, it is now agreed and resolved, That the following plan for conducting this trade shall be carried into execution, the committee esteeming the same, the *most correspondent to the Company's order*, and conducive to the ends which they have in view, when they require that the trade should be put upon such a footing as may appear most equitable for the benefit of their servants, least liable to produce disputes with the country Government, and wherein their own interests and

shall at the same time be proper

considered

consisting of all those who may be deemed justly entitled to a share.

Secondly — That the salt, beetle-nut, and tobacco produced in or imported into Bengal, shall be purchased by this established company and public advertisment shall be issued stricly prohibiting all other persons whatsoever, to deal in those articles.

Thirdly — That application shall be made to the Nawab to issue the like pohibition to all his officers and subjects of the districts where any quantity of either of these articles is manufactured or produced.

Fourthly — That the salt shall be purchased by contract on the most reasonable terms.

Ninthly — That application be made to the Nawab for Perwanahs on the several Zemindars of those districts strictly ordering and requiring them to contract for all the salts that can be made on their lands, with the *English alone* and forbidding the sale to any other person or persons whatsoever.

Tenthly — That the Honourable Company shall either share in this trade as proprietors, or

receive an annual duty upon it

Eleventhly:—That the Nawab shall in like manner be considered as may be judged most proper, either as a proprietor, or by an annual Nuzzeranah to be computed upon inspecting a statement of his duties on salt in former years—*Bolts on India affairs pages 166 to 168.*

—:—

NOTE 9

Translation of the Perwanah issued by Nawab on the requistion of the English Trading Company to the Gomasta of Lukminarain Chowdry of the Pergunnah of Jollamootha

Be it understood, that a request has been made by the Governor and the gentlemen of the Committee and Council to this purport, that until the contracts for salt of the said gentlemen are settled no salt shall be made, or got ready in any District, that a Gomasta be sent to attend on the said gentlemen, and having given a bond, he may then proceed to his business, and make salt, but till the bond be given to the Governor and the gentlemen of the Commitee and Council, they should make none.

Therefore, this order is written, that you

send, without delay, your Gomasta to the said gentlemen in Calcutta, and give your bond, and settle your business, and then proceed to the making of salt. In case of any delay, it will not be for your good. Regard this as a strict order —*Bolts on India affairs, page 176.*

FORM OF MUTCHULKA

I Jaduram Chowdry of the Pergunnah of Deroodumna, in the district of Ingellee, agreeably to an order which has issued from the Nawab to this purpose, "that I should attend upon the Gentlemen of the Committee and Council, in order to settle my trade in salt, and that I should not deal with any other person;" do accordingly oblige myself, and give this writing that, except the said gentlemen called —"*The English society of merchants for buying and selling all the salt, beetle-nut and tobacco in the Provinces of Bengal, Behar and Orissa &c,*" I will on no account trade with any other person for the salt to be made in the year 1173, and without their order I will not otherwise make away with, or dispose of a single grain of salt, but whatever salt shall be made within the dependencies of my Zemindary, I will faithfully deliver it all without delay, to

the said society, and I will receive the mon[ey] according to the agreement which I shall make in writing; and I will deliver the whole and entire quantity of the salt produced, and, without the leave of the said Committee, I will not carry to any other place, nor sell to any other person a single measure of salt. If such a thing should be proved against me, I will pay to the Sarcar of the said society a penalty of five rupees per every maund —*Bolts on India affairs page 177*

NOTE 10

At a Select Committee, held at Fort William,
The 18th September 1765

Present

The Right Hon'ble Lord Clive—*President*
William Brightwell Sumner Esq
John Carnac Esq
Harry Verelst Esq
Francis Sykes Esq

Resuming the consideration of the plan for carrying on the inland trade, in order to determine with respect to the Company and the classes of proprietors, the Committee are unanimously of opinion, that whatever surplus-monies

the Company may find themselves possessed of after discharging their several demands at this Presidency, the same will be employed more to their benefit and advantage in supplying largely, that valuable branch of their commerce, the China trade and in assisting the wants of their other settlements, and that it will be more for their interest to be considered as *superiors* of this trade, and receive a handsome duty upon it, than to be engaged as proprietors in the stock

Bestowing therefore, all due attention to the circumstance of the Company's being at the same time the head and masters of our service, and now come into the place of the country-government by His Majesty's Royal Grant of the Dewani, it is agreed, that the inland trade of the above articles shall be subject to a duty to the Company, after the following rates, which are calculated according to the best judgment we can form of the value of the trade in general, and the advantage which may be expected to accrue from it to the proprietors

On salt, thirty-five per cent, valuing hundred maunds at the rate of ninety Arcot rupees With respect to the proprietors it is agreed and resolved, that they shall be arranged into three classes, that each class shall be entitled to so many shares in the stock

According to this scheme it is agreed, that class first shall, consist—of the Governor, five shares, the second three shares, the General, three shares,

ten gentlemen of the Council, each two shares, . . two Colonels each two shares in all thirty-five shares for the first class

That class second shall consist of one *Chaplain*, fourteen junior merchants, and three Lieutenant Colonels, in all eighteen persons, who shall each be entitled to one third of a Councillor's proportion, or two thirds of a share

That class third shall consist of thirteen factors, four Majors, four first Surgeons at the Presidency, two first Surgeons at the army, one Secretary to the Council one Sub-Accountant, one Persian translator, &c *Bolts on India affairs, page 171-72*

The Trading Company used to pay 75 rupees per hundred maunds to the native merchants

---

NOTE 11

The Chaplain was a second class sharer in the profits of this oppressive salt monopoly as it will appear from the note 10

NOTE 12

Upon the establishment of the private co-partnership, or society, of the gentlemen of the committee among themselves, there was an Armenian merchant, named Parseek Aratoon, who had about 20,000 maunds of salt lying in ware-houses upon the borders of the Rungpore and Dinagepore Provinces

The Armenian, sensible, as well as the gentle[men] of the committee, that the price of salt would [rise,] ordered his *Gomasta to* fasten up his ware-hou[se] and not to sell As the retailing of this salt in th[ose] parts might hurt the partnership sales, it was thou[ght] expedient at any rate, if possible, to get possessi[on] of it Upon failure of the artifices which were pract[is]ed to induce the Gomasta to sell it, the Armeni[an] merchant's ware houses were broken open, the sa[lt] forcibly taken out and weighed off, and a sum [of] money, estimated to be the price of it was force[d] upon the Armenian Gomasta, on his refusing t[o] receive it.—*Bolts on India affairs P. 185—86*



NOTE 13

The winders of raw silk, called Nagads, have been treated also with such injustice, that instances have been known of their cutting off their thumbs, to prevent their being forced to wind silk

These workmen were pursued with such rigour during Lord Clive's late Government in Bengal, from a zeal for increasing the Company's investment of raw silk, that the most sacred laws of Society were atrociously violated, for it was a common thing for the Company's Sepoys to be sent by force of arms, to break open the houses of the Armenian Merchants, established at Sydabad, and forcibly take the Nagads

from their works, and carry them away to the English Factory —*Bolts on India affairs, P* 195

NOTE 14

Mr William Bolts—who is called by Dr Hunter "Notorious Bolts" is said to have amassed nine lacs of rupees during his three year's stay at Kasim Bazar He was shipped off to England under custody by Governor Verelsts for his alleged swindling habit

NOTE 15

Vide the Parwannah issued upon Lackmi Narain Chowdry of Jolla Mutha Pergunnah in note (9)

NOTE 16

In 1763 a consternation of a different kind and from a different source threatened Mr Kiernander's little charge again The abuse of the transit duties by the Company's servants their grasping cupidity and oppressive exaction, fastened on the people with a power from which they had no escape, threw the whole country into disorder

Mr Kiernander in speaking of these things to the Society adds that he feared the mission would be destroyed Not only did he find these contentions unfavourable to the exercise of Christain liberality among his fellow Europeans, but the natives were so exasperated against *the Company's servants for their evil practices*, that the missionary found them utterly unwilling to lend an ear

to truths, which his fellow Christian heeded so little

He is not the only missionary who has found the sins of Europeans, a powerful barrier against the progress of the Gospel and has had those sins retorted on him by natives as an excuse and colour for their own —*Calcutta Review January 1847*

NOTE 17

There is a tradition, that Nawab Aliverdi Khan was being guided by the advice of a Hindu astrologer who was an old Brahmin Aliverdi also treated the Begums of his predecessor with respect and kindness as it appears from Siyar-ul-Mutakherin in which it is said :—

"On advancing to the place, and before taking his seat, he struck off to the right and went to the apartments where Zineten-nissa Begum, daughter of Jafar Khan and mother to the late Serefraz Khan, resided He stopped at the gate and assumed a respectful posture, and in a moving tone of voice, having first made a profound bow, he supplicated her forgiveness, and sent in the following message "

"Whatever was predestined in the book of fate has come to pass, and the ingratitude of this worthless servant is now registered in the

unfading records of history. ' But I swear that so long as life exists, I shall never swerve from the path of respect and the duties of the most complete submission to your Highness; and I hope that the guilt of this poor humbled and afflicted slave may in time be effaced from your memory." *Siyarul Mutakherin* P 462

NOTE 18

Mr Henry Beveridge in his most impartial as well as a very clever article on "Warren Hastings in Lower Bengal" observes "Whether justly or not, it seems evident that Hastings nourished strong resentment against Nand Kumar In a letter of November 1558, he writes that the Nawab is greatly enraged against Nanda Kumar, and adds that he thinks he would be wanting in his duty if he did not acquaint Olive with the Nawab's sentiments."—*Calcutta Review, October 1877.*

NOTE 19.

There is a tradition that the jewels which are alleged to have been deposited by Maharajah Nanda Kumar with Bolaki Dass, and for the value of which, Bolaki Dass executed to him a

bound, which was ultimately declared to be a forged document, were purchased by the Maharajah for one of his nearest female relations who had become widow before the jewels were presented to her

NOTE 20

The servants of the Company obtained not for their employers, but for themselves a monopoly of almost the whole internal trade They forced the natives to buy dear and to sell cheap They insulted with impunity the tribunals, the police, and the fiscal authorities of the country They covered with their protection a set of native dependents who ranged through the provinces spreading desolation and terror wherever they appeared Enormous fortune was thus rapidly accumulated at Calcutta, while thirty millions of human beings were reduced to the extremity of wretchedness *They had been accustomed to live under tyranny, but never under tyranny like this,*—*Lord Macaulay*

NOTE 21

In consequence of most extraordinary topa

pression in the inland parts of the country. an Armenian merchant named Parseek Aratoon on the 15th September 1767, filed a bill in the Mayor's Court against the Gomastas or agents of Governer Harry Verelst and Francis Sykes Esqrs, for 60,432 current rupees, or about 7,500 pounds sterling, principal amount of salt, said to have been forcibly taken out of the plaintiff's ware-houses The cause was brought to an issue, and in the month of August 1768, on a day appointed for hearing, and all the proceedings and depositions were read and fully considered, the demand of the plaintiff established to all appearance, and judgment upon the point of being pronounced when the Mayor, (Cornelius Goodwin) while sitting in judgment received a *private letter* or note, sent from the Governor to put a stop to the proceedings because, as was alleged, he the said Governor, was partly concerned in the cause, and was in expectation of settling matters by a private compromise To the astonishment of the plaintiff's solicitor, who declared he knew of no compromise, and had received no instructions from his client upon this matter, the request contained in the letter or note was complied

with and a stop was at once put to the proceeding, the plaintiff being left without any satisfaction —*Bolts on India affairs, P 91—98*.

NOTE—22

Something more remains to be told Shameful frauds appear to have been practised during the famine by persons in office They were known to have dealt in grain, imported for the supply of the famishing multitude, to have made false returns of its distribution, and to have appropriated the exorbitant price it brought The council tried to throw the blame upon the subordinates who were natives The Directors refused to be thus duped, said plainly that they believed the guilt lay at the door of their own countrymen high in office, and called for the disclosure of their names but the names were never audibly disclosed. One who held an important place at the time, returned to his own country, a wealthy man, founded a family, since ennobled, and amid "honour love, obedience, troops of friends" lay down to spend the evening of his days in peace But that best of blessings was denied him. *His nights were haunted by images and sounds which would not let him sleep*

and though a man of what is called iron frame and of ready courage, to his dying hour he never would allow the lights to be extinguished round his bed.—*W. M. Tarrens' Empire in Asia, P 77.*

NOTE 23.

The Dacca merchants begin by complaining, that in November, 1773 Mr Richard Barewell, then chief of Dacca, had deprived them of their employment and means of subsistance, that he had extorted from them 44424 Arcot rupees (£4731) by the terror of his threats by long imprisonment, and cruel confinement in the stocks, that afterwards they were confined in a small room near the factory gate under a guard of Sepoys, that their food was stopped, and they remained starving a whole day, that they were not permitted to take their food till next day at noon and were again brought back to the same confinement, in which they were continued for six days, and were not set at liberty until they have given Mr Barwell Banyan a certificate for forty thousand rupees, that in July, 1774, when Mr Barwell had left Dacca, they went to Calcutta to seek justice, that Mr Barwell confined them in his house at Calcutta, and sent them

back under a guard of peons to Dacca —*Edmund Burkes, Vol. IV P 80*

NOTE 24

In March 1775, a petition was presented to the Governor-General and Council by a person called Coja Kaworke, an Armenian merchant, resident at Dacca (of which division Mr Barwell had lately been chief), setting forth in substance, *that in November, 1772, the petitioner* had formed a certain salt district called Savagepur (Shabazpur) and had entered into a contract with the committee of circuit for providing for and delivering to the India Company the salt produced in that District : that in 1773 he formed another, called *Selimabad*, on similar conditions He alleges, that in February, 1774, when Mr Barwell arrived at Dacca, he charged the petitioner with 1,25,500 rupees (equal to £ 13,000) as a contribution; and in order to levy it, did the same year deduct 20,799 rupees from the amoun of the *advance money*, which was orcered to be paid to the petitioner, on account of the India Company, for the provision of salt in the two farms, and after doing so compelled, the petitioner to execute and give him four different bonds for 77,627 rupees in the name of one *Porran paul*, for the remainder of such contribution, or unjust profit.—*Burke's Work, Vol IV gage 110*

The facts stated, or admitted, by Mr Barwell

are as follows that the salt-farms of Selimabad and Savagepur were his, and re-let by him to the two Armenian merchants, Michael and Kaworke on condition of their paying him 125,000, rupees, exclusive of their engagements to the Company, that the engagement was written in the name of *Bussant Roy* and *Kissen Deb Singh*, and Mr Barwell says, that the reason of its being "in these people's names was because *it was not thought consistent with the public Regulations that the names of any Europeans should appear Burke's work, Vol IV, page 112*"

NOTE 5.

The author of Siyarul Mutakherin, Gollam Hossin Khan, was a deadly enemy of Maharajah Nanda Kumar. He alone says that a casket of seals, bearing the names of different persons, was found in the house of the Maharajah, after his death This is absolutely false statement

---

NOTE 20

That the servants of the East India Company used to villify and mis-represent Nanda Kumar's character and conduct is quite apparent even from Mr Barwell's letters to his sister recently published by Sir James Stephen in his book on "Nun Coomer and Impey."



प्रताप-पुस्तकमाला।

यह ग्रन्थमाला—हिन्दी भाषा में अद्वितीय है।

यह ग्रथमाला—अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित करती है।

यह ग्रन्थमाला—नैतिक ज्ञान का दिग्दर्शन कराती है।

यह ग्रन्थमाला—सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विषयों पर अच्छे और उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित करती है, और करेगी।

एक बड़ी रियायत।

यदि आप 'प्रताप-पुस्तक-माला' के स्थायी ग्राहक बन जाय तो आपको माला की पुस्तकें पौने मूल्य में मिल जाया करे। स्थाई ग्राहक बनने के नियम ये हैं —

१—स्थायी ग्राहकों को प्रारम्भ मे केवल १) रु० "प्रवेश फी" भेजना होती है।

२—इन ग्राहकों को माला की जो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और वे जो होने वाली हैं, सभी पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलेंगी अर्थात् एक रुपये की पुस्तक बारह आने में।

३—पहले की प्रकाशित पुस्तकों को लेना व न लेना ग्राहक की इच्छा पर है। परन्तु वे पुस्तकें जो भविष्य में प्रकाशित होंगी, अवश्य लेना पड़ेगी।

४—माला की नई पुस्तक प्रकाशित होते ही एक सप्ताह पूर्व इस प्रकार की एक सूचना ग्राहक को देदी जाती है कि, "माला

की अमुक नाम की पुस्तक इतने मूल्य से वी० पी० द्वारा अमक तारीख तक भेजी जावेगी।"

५—दो बार वी० पी० वापस आने पर ग्राहक का नाम ग्राहक श्रेणी से काट दिया जायगा और "प्रवेश फी" से डाक महसूल वसूल कर लिया जायगा।

इस समय तक इस पुस्तक-माला में ये पुस्तकें निकल चुकी हैं—

१ **मेरे जेल के अनुभव**—यह पुस्तक कारागार को तपो भूमि मानने वाले महात्मा गांधी की लिखी हुई है। मूल्य ।=) छः आने।

२ **देवी जोन**—फ्रांस देश को अँगरेजों की पराधीनता से छुड़ाने वाली वीरबाला जान आफ आर्क का जीवन चरित्र है। यह पुस्तक ऐसी है कि देश के बालक और बालिकायें खूब पढ़ें। इसकी भूमिका श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी ने लिखी है। मू० ।=)

३ **भारत के देशी राष्ट्र**—यदि आप देशी राज्यों, देशी राजाओं और उनका ईस्ट इण्डिया कम्पनी और वर्तमान बृटिश गवर्नमेण्ट से जो सम्बन्ध है, उसके विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को पढ़िये। मू० ।।।) बारह आने।

४ **राष्ट्रीय वीणा (प्रथम भाग)**—'प्रताप' के भाग १ और २ में प्रकाशित देश-भक्ति पूर्ण सुललित कविताओं का संग्रह कवितायें पढ़ कर तबियत फड़क उठेगी। मू० ।।=)दस आने।

५ **जर्मन जासूस की रामकहानी**—यूरोप में राजनैतिक जासूसी कितनी चढ़ बढ़ कर होती है इसका पता जर्मन

[illegible]

जासूस डा० ओव्या की इस सची रामकहानी से लग सकता है। मू० =) पाच आने।

६ युद्ध की कहानियां—इस पुस्तक में युद्ध सम्बन्धी सात कहानिया हैं। यह इतनी रोचक और देश-भक्तिकी भावना से परिपूर्ण हैं कि इस पुस्तक के थोडे ही दिनो में तीन सस्करण निकल गये। इस मनमोहक पुस्तक का मूल्य ।) चार आने है।

७ कृष्णार्जुन युद्ध नाटक—इसके लेखक प्रसिद्ध हिन्दी कवि पण्डित माखनलाल जी चतुर्वेदी हैं। चतुर्वेदी जी की कवितायें "भारतीय आत्मा" के नाम से प्रकाशित होती हैं। जिन लोगो ने 'भारतीय आत्मा' की कवितायें पढी हैं वे कह सकते हैं कि उन मे मुर्दो में भी जान डाल देने की कितनी जबदस्त ताकत है। इस समय तक यह अनेक रङ्गमञ्चों पर खेला जा चुका है। मूल्य ॥=)

८ भीष्म नाटक—इसके लेखक हैं, हिन्दी के प्रसिद्ध गल्प लेखक पण्डित विशम्भरनाथ कौशिक। नाटक बहुत सरल भाषा मे लिखा गया है। अच्छी तरह खेला जा सकता है। मूल्य आठ आने।

९ उद्योगी पुरुष—इस पुस्तक में नौ महान, उद्योगी पुरुषों के जीवन चरित्र हैं। नवयुवकों में इस पुस्तक के पढ़ने से आगे बढने और उन्नति करने की विशेष स्फूर्ति उत्पन्न होगी। मू० ।=) छ आने।

१० रूस का राहु—रूस में रासपुटिन नाम का एक बड़ा प्रभावशाली परन्तु साथ ही, अत्यन्त दुराचारी धर्माचार्य हो गया है। इस पुस्तक को पढ कर आप यह जानेंगे कि किस प्रकार

रासपुटिन ने धर्म की ओट में शिकार खेला, अत्याचार और व्यभिचार किया, और रूस की जड़ पर कुठाराघात चलाया मू० ।≡)

११ श्री कृष्ण चरित—भगवान श्रीकृष्णके इस चरित्र को गवालियर के ठाकुर सूर्यकुमार वर्म्मा ने बङ्गाल के महाकवि नवीनचन्द्र सेन के महाकाव्यों से सङ्कलित किया। इस को पढ कर आप भगवान श्रीकृष्णके जीवन पर कहीं और दृष्टि से देखने मे लग जायंगे। मू० ।≈) छः आने।

१२ त्रिशूल तरंग—कविवर 'त्रिशूल' की चुनी हुई कविताओं का सग्रह। प्रत्येक कविता हृदय को हिला देगी। ।≈

चेतसिंह और काशी का विद्रोह—काशी के राजा चेतसिंह पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उस के उस समय के भारतीय गवनर जेनरल वारेनहेस्टिंग्स ने जो जो अन्याय किये उनका ऐतिहासिक आधार पर अच्छा वर्णन, श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी बी० ए० ने इस पुस्तक में अपनी सरल भाषा मे किया है। मू० ।≈) छ आने।

१४ फिजी में भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा—प० बनारसी दास चतुर्वेदी ने जो 'एक भारतीय हृदय' के नाम से लिखा करते हैं, इस पुस्तक को लिखा है। पुस्तक सजिल्द है। मू० १) एक रु० है।

१५ साम्यवाद—'साम्यवाद' का क्या अर्थ है और उस का विकास कैसे हुआ, हिन्दी पढनेवालों मे इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं। इस छोटी सी पुस्तक मे साम्यवाद के मर्मज्ञ एक विद्वान ने इस विषय को सरल ढङ्ग से बहुत अच्छी तरह समझाया है। मू० ।≈) छ आने।